शासन-समुद्र भाग-१६

जैन विश्व भारती प्रकाशन

शासन-समुद्र

(भाग-१६)

अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के समय की साध्वियां

स्वर्गीया मातुःश्री झमकूदेवी, पिताजी स्वर्गीय श्री खींवकरणजी
स्वर्गीया मातुःश्री गणेशीदेवी एवं पिताजी स्वर्गीय श्री जयचंदलालजी
कुचेरिया की स्मृति में मोतीलाल मोहनलाल बच्छराज पृथ्वीराज
आसकरण छतरसिह केशरीचंद सुरेन्द्रकुमार राकेशकुमार
अरविन्दकुमार कुचेरिया, लाडनूं (राज०)
के आर्थिक सौजन्य से प्रकाशित।

प्रथम संस्करण : १९८६

मूल्य : ३०.०० (तीस रुपये)

प्रकाशक : जैन विश्व भारती, लाडनूं, नागौर (राजस्थान)
मुद्रक : जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं-३४१३०६।

SHASAN-SAMUDRA PART-16
Muni Navratanmal

Rs. 30.00

प्रस्तावना

अष्टमाचार्य श्रीमत् कालूगणी के युग मे कुल ४१० दीक्षाएं हुई। उनमें १५५ साधु और २५५ साध्वियां थी। १५५ साधुओं के जीवन-निबंध शासन-समुद्र भाग १४ मे और २५५ साध्वियो मे से १०० साध्वियों (साध्वीश्री लिछमांजी (७२६) कर्णपुरा—साध्वीश्री सोनांजी (८२५) साजनवासी, दीक्षा सं० १९६६ से १९७८ तक) के जीवन-विवरण शासन-समुद्र भाग १५ मे प्रकाशित हो चुके है। १५५ साध्वियों (साध्वीश्री मनोहरांजी (८२६) सुजानगढ़—साध्वीश्री हुलासाजी (९८०) लाडनूं, दीक्षा सं० १९७९ से १९९३ तक) के जीवन-विवरण प्रस्तुत शासन-समुद्र भाग १६ मे समाहित हैं।[1]

२५५ साध्वियों में कतिपय विशिष्ट तपस्विनी एवं योग्यता सम्पन्न साध्वियो का चुम्बकीय दिग्दर्शन शासन-समुद्र भाग १५ की प्रस्तावना मे करा दिया गया है। कई साध्वियो का परिचय-पत्र उपलब्ध न होने के कारण पूरा विवरण नही लिखा जा सका। जैसे—साध्वी राजकवरजी (९४६) नोहर, साध्वीश्री सोहनांजी (९७७) लाडनूं आदि........। प्रकाशित होने के बाद दो साध्वियां दिवंगत हुई—साध्वीश्री गणेशांजी (८५०) चाड़वास और साध्वीश्री झमकूजी (८५८) राजलदेसर। उनके स्वर्गवास से संबंधित कुछ वर्णन परिशिष्ट मे दे दिया गया है।

आलोकपुंज, अमृतपुरुष आचार्यश्री तुलसी एवं महाप्रज्ञ युवाचार्यश्री के असीम अनुग्रह से शासन के विशालतम इतिहास-संग्रह मे गति-प्रगति करता हुआ मैं आत्म-संतुष्टि के साथ हर्ष-विभोर हो जाता हूं। आचार्यश्री भिक्षु से आचार्यश्री कालूगणी तक के साधु-साध्वियो के जीवनवृत्त भाग १ से १६ मे सम्पन्न होने से केवल वर्तमान आचार्यश्री तुलसी के युगकालीन साधु-साध्वियां अवशिष्ट रह जाते है। जिनका शासन-समुद्र भाग १७,१८ मे विवेचन किया

---

१. दिवगत साध्वियो का विवरण पद्य-गद्य रूप मे विस्तार पूर्वक लिखा गया है। वर्तमान साध्वियो का संक्षिप्त परिचय उनके द्वारा प्राप्त परिचय-पत्र के अनुसार लिखा गया है।

गया है। मैं आशा करता हूं कि अमृत-महोत्सव तक समग्र भागों को आचार्य देव के चरणों में भेंट कर सकूं ।

आचार्यप्रवर की कृपा दृष्टि से मुझे साधु-साध्वियों एवं श्रावक-समाज की समुचित सहानुभूति मिल रही है। इस वर्ष नव दीक्षित मुनि जम्बूकुमार-जी का सेवादि कार्य में अपेक्षित सहारा मिला। समण संस्कृति के निदेशक श्री मूलचन्दजी घोसल आदि का शासन-समुद्र ग्रन्थ के पुनरावलोकन एवं समुचित सुझाव आदि मे अच्छा योगदान रहा। जैन विश्व भारती कार्य विभाग की ओर से नियोजित लाडनू निवासिनी कुमारी कनक नाहटा, कुसुम खटेड़ तथा कमला देवी बैद ने शासन-समुद्र के अधिकांश पृष्ठो की अवधारणा की तथा सदर्भ आदि मिलाने का कार्य भी बड़ी तत्परता से किया। इन सबके लिए मैं प्रमोद भावना पूर्वक मंगल कामना करता हूं।

—मुनि नवरत्नमल

भिक्षु-विहार, जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज०)
वि० सं० २०४३ वैशाख कृष्णा ६
२६ अप्रैल, १९८६ मंगलवार

प्रकाशकीय

तेरापंथ धर्मसंघ की इतिहास-शृंखला मे शासन-समुद्र के इस सोलहवें भाग में महामनस्वी श्रद्धेय कालूगणी अष्टमाचार्य द्वारा दीक्षित एक सौ पचपन साध्वियों का जीवन-वृत्त प्रस्तुत है एवं शासन-समुद्र भाग-१५ में अवशिष्ट १०० साध्वियों का जीवन-वृत्त प्रकाशित किया जा चुका है। वैराग्य-संपृक्त अनेक अध्यात्म विधाओं की उच्चता से परिपूरित इन साध्वियों का संयम-जीवन नारी-समाज की गुणात्मक शक्ति का सांगोपांग परिचायक है। मनस्वी मुनिश्री नवरत्नमलजी का इस इतिहास-लेखन में श्रम-साध्य प्रयत्न पाठकवृन्द के लिए अध्यात्म-प्रेरणाप्रद सिद्ध होगा।

इस इतिहास का सृजन महामना आचार्यप्रवर की अनुकंपा की ही निष्पत्ति है, जिसके लिए जैन विश्वभारती संस्थान अपने प्राण-श्रोत के प्रति श्रद्धा-भार ज्ञापित करता है।

अर्थ-सौजन्य दाता मोतीलाल कुचेरिया एवं उनके परिवार के प्रति आभार प्रस्तुत है।

जैन विश्व भारती
२६-४-८६

श्रीचंद बेंगानी
मंत्री

अनुक्रम

क्रमांक	नाम	गांव	पृष्ठ
१०१.	साध्वीश्री मनोरांजी	(सुजानगढ़)	१
१०२.	,, तनसुखांजी	(लाडनूं)	४
१०३.	,, जतनकंवरजी	(राजगढ़)	५
१०४.	,, वालूजी	,,	६
१०५	,, दीपांजी	(सिरसा)	११
१०६.	,, मानांजी	(चाड़वास)	२२
१०७.	,, मनसुखांजी	(मोमासर)	२४
१०८.	,, रायकंवरजी	(चाड़वास)	२८
१०९.	,, लिछमांजी	(लाडनूं)	३२
११०.	,, जड़ावांजी	,,	३३
१११.	,, सिरेकंवरजी	(मोमासर)	३५
११२.	,, मनोराजी	(राजलदेसर)	३७
११३.	,, मालूजी	(रतनगढ़)	३८
११४.	,, संतोकांजी	(चूरू)	५१
११५.	,, कमलूजी	(राजलदेसर)	५५
११६.	,, चांदकंवरजी	(मोमासर)	७०
११७.	,, हुलकंवरजी	(फतेहपुर)	७४
११८.	,, जड़ावांजी	(सरदारशहर)	७८
११९.	,, जडावाजी	(गंगाशहर)	८०
१२०.	,, सुन्दरजी	(मोमासर)	८३
१२१.	,, जसूजी	(गंगाशहर)	९८
१२२.	,, किस्तूरांजी	,,	१००
१२३.	,, मिरेकंवरजी	(भादरा)	१०७
१२४.	,, नाथांजी	(चाड़वास)	१०९
१२५	,, गणेशाजी	,,	१११

क्रमांक	नाम	गांव	पृष्ठ
१२६.	साध्वीश्री	हीरांजी (सुजानगढ)	११४
१२७.	,,	सतोकांजी (पडिहारा)	११५
१२८.	,,	केशरजी (लाडनूं)	११६
१२९.	,,	लिछमाजी (श्रीडूंगरगढ)	११७
१३०.	,,	सिरेकंवरजी (लाडनूं)	११८
१३१.	,,	टमकूजी ,,	१२०
१३२.	,,	जमनांजी (पचपदरा)	१२५
१३३.	,,	झमकूजी (राजलदेसर)	१२७
१३४.	,,	सोहनांजी (चाड़वास)	१३५
१३५.	,,	जुहारांजी (मोमासर)	१३६
१३६.	,,	हुलासांजी (किराड़ा)	१४३
१३७.	,,	सिरेकंवरजी (श्रीडूंगरगढ़)	१४५
१३८,	,,	झमकूजी (वीदासर)	१५०
१३९.	,,	पानकवरजी (पचपदरा)	१५१
१४०.	,,	लाडाजी (लाडनूं)	१५५
१४१.	,,	केशरजी ,,	१८६
१४२.	,,	पूनाजी (श्रीडूंगरगढ)	१८८
१४३.	,,	रूपाजी (सरदारशहर)	१९०
१४४.	,,	गुलावाजी (भादरा)	१९४
१४५.	,,	सुगनाजी (सरदारशहर)	१९९
१४६.	,,	मनोहरांजी (सुजानगढ)	२०१
१४७.	,,	पिस्तांजी (ऊमरा)	२०५
१४८.	,,	मोहनांजी (राजगढ)	२११
१४९.	,,	कमलूजी (जयपुर)	२२३
१५०.	,,	मालूजी (मोमासर)	२२७
१५१.	,,	केशरजी (श्रीडूंगरगढ़)	२३०
१५२.	,,	सोनांजी (डीडवाना)	२३१
१५३.	,,	सजनांजी (वीकानेर)	२३४
१५४.	,,	पन्नाजी (देरासर)	२४५
१५५.	,,	अमृतांजी (देशनोक)	२५५

क्रमांक	नाम	गांव	पृष्ठ
१५६.	साध्वीश्री सुन्दरजी	(श्रीडूंगरगढ़)	२५७
१५७.	,, चूनांजी	(लाडनूं)	२५८
१५८.	,, लाधूजी	(गंगाशहर)	२५९
१५९.	,, इंद्रूजी	(राजलदेसर)	२६०
१६०.	,, किस्तूरांजी	,,	२६२
१६१.	,, सूवटांजी	(लाडनूं)	२६४
१६२.	,, चोथांजी	(छापर)	२६६
१६३.	,, फूलांजी	(गोगुन्दा)	२६७
१६४.	,, राजकंवरजी	,,	२६९
१६५.	,, नानूजी	(सरदारशहर)	२७२
१६६.	,, झमकूजी	,,	२७६
१६७.	,, केशरजी	(रतनगढ़)	२७७
१६८.	,, वृद्धांजी	(छापर)	२८२
१६९.	,, सुन्दरजी	(सरदारशहर)	२८३
१७०.	,, मनोरांजी	(मोमासर)	२८४
१७१.	,, लिछमांजी	(सरदारशहर)	२८६
१७२.	,, सुन्दरजी	,,	२८७
१७३.	,, लाधूजी	,,	२९२
१७४.	,, भत्तूजी	,,	२९५
१७५.	,, छगनांजी	(राजलदेसर)	३१२
१७६.	,, सोहनांजी	(सरदारशहर)	३१४
१७७.	,, पानकंवरजी	,,	३१७
१७८.	,, रायकंवरजी	(लाडनूं)	३२३
१७९.	,, कंचनकंवरजी	(राजनगर)	३२४
१८०.	,, चंपाजी	(राजगढ़)	३२९
१८१.	,, गणेशांजी	(लाडनूं)	३३१
१८२.	,, वालूजी	(टमकोर)	३४०
१८३.	,, आसांजी	(लाडनूं)	३५०
१८४.	,, लिछमांजी	(सरदारशहर)	३५१
१८५.	,, छगनांजी	(नोहर)	३५२

क्रमांक	नाम	गांव	पृष्ठ
१८६.	साध्वीश्री	मनोराजी (सरदारशहर)	३५३
१८७.	,,	पिस्तांजी (जमालपुर)	३५७
१८८.	,,	सिरेकंवरजी (राजलदेसर)	३६३
१८९.	,,	जडावांजी (शार्दूलपुर)	३६६
१९०.	,,	सुन्दरजी (भीनासर)	३६७
१९१.	,,	लिछमाजी (सरदारशहर)	३६९
१९२.	,,	मखूजी (फतेहपुर)	३७०
१९३.	,,	चोथांजी (गंगाशहर)	३७१
१९४.	,,	नोजांजी (श्रीडूंगरगढ़)	३७२
१९५	,,	संतोकाजी (सरदारशहर)	३७३
१९६.	,,	रतनकवरजी (राजगढ़)	३७९
१९७.	,,	गणेशाजी (लाडनूं)	३८०
१९८.	,,	रतनकवरजी (लाडनूं)	३८९
१९९.	,,	मोहनांजी (सरदारशहर)	३९३
२००.	,,	सूवटांजी (वीदासर)	३९५
२०१.	,,	भत्तूजी (भादरा)	३९७
२०२.	,,	पानकंवरजी (राजगढ़)	३९८
२०३.	,,	रायकवरजी (राजलदेसर)	४००
२०४.	,,	पारवतांजी (लाडनू)	४०७
२०५.	,,	सुगनाजी (श्रीडूगरगढ)	४१८
२०६.	,,	नाथांजी (सरदारशहर)	४२५
२०७.	,,	लिछमांजी (सिरसा)	४२७
२०८.	,,	रामूजी (नोहर)	४२८
२०९.	,,	मनोरांजी (मोमासर)	४३०
२१०.	,,	केशरजी (श्रीडूगरगढ़)	४३२
२११.	,,	किस्तूरांजी (लाडनू)	४३३
२१२.	,,	मूलाजी (लूनकरणसर)	४३७
२१३.	,,	मनोरांजी (चाड़वास)	४३९
२१४.	,,	फूलकंवरजी (गंगाशहर)	४४०
२१५.	,,	चूनांजी (डीडवाना)	४४२

क्रमांक	नाम	गांव	पृष्ठ
२१६.	साध्वीश्री	मोहनांजी (डीडवाना)	४४५
२१७.	,,	सूरजकंवरजी (जयपुर)	४४६
२१८.	,,	सुजाणांजी (मोमासर)	४५४
२१९.	,,	धनकंवरजी (सरदारशहर)	४६२
२२०.	,,	रायकंवरजी (रतनगढ़)	४६३
२२१.	,,	राजकंवरजी (नोहर)	४६६
२२२.	,,	वरजूजी (विजयश्रीजी) (रतनगढ़)	४६७
२२३.	,,	इन्द्रूजी (आनन्दकुमारीजी) (मोमासर)	४७२
२२४.	,,	मीरांजी (सरदारशहर)	४७७
२२५.	,,	गोगांजी (श्रीडूगरगढ़)	४८६
२२६.	,,	गोरांजी (सरदारशहर)	४८७
२२७.	,,	पूनांजी (सरदारशहर)	४८८
२२८.	,,	पानकंवरजी ,,	४८९
२२९.	,,	मघूजी ,,	४९१
२३०.	,,	लिछमांजी (उदयपुर)	४९७
२३१.	,,	संतोकांजी (हांसी)	५०१
२३२.	,,	रतनकंवरजी (राजगढ़)	५०३
२३३.	,,	वख्तावरजी (गंगाशहर)	५०६
२३४.	,,	मानकंवरजी (बीदासर)	५०७
२३५.	,,	संतोकांजी (राजगढ़)	५०८
२३६.	,,	छगनांजी (मंजूश्रीजी) (सरदारशहर)	५१२
२३७.	,,	मोहनांजी (टमकोर)	५१५
२३८.	,,	रायकवरजी (सरदारशहर)	५१७
२३९.	,,	सूरजकंवरजी (राजगढ़)	५२४
२४०.	,,	मगनांजी (सुजानगढ़)	५२६
२४१.	,,	गोरांजी (टमकोर)	५२९
२४२.	,,	सूवटाजी (लाडनू)	५४१
२४३.	,,	भत्तूजी (सरदारशहर)	५४९
२४४.	,,	लिछमांजी (आमेट)	५५२
२४५.	,,	मनोरांजी (सरदारशहर)	५५३

क्रमांक	नाम	गांव	पृष्ठ
२४६.	साध्वीश्री	रतनकंवरजी (शार्दूलपुर)	५५४
२४७.	,,	गुलाबांजी (उदयपुर)	५५६
२४८.	,,	चंपाजी (राजलदेसर)	५५९
२४९.	,,	पानकंवरजी (शार्दूलपुर)	५६१
२५०.	,,	कमलूजी (नोहर)	५६२
२५१.	,,	केशरजी (पड़िहारा)	५६५
२५२.	,,	सोहनांजी (लाडनूं)	५६८
२५३.	,,	चांदकंवरजी (सरदारशहर)	५७०
२५४.	,,	लालांजी (पेटलावद)	५७१
२५५.	,,	हुलासांजी (लाडनूं)	५७२
		परिशिष्ट १	५७५

शासन-समुद्र

अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के समय की साध्वियां

(सं० १९६६-१९९३)

दोहा

श्री कालू गुरुदेव की, शिष्याएं शालीन ।
दो-सौ पर पचपन हुई, संयमवती कुलीन ॥१॥

शत पचपन उपयुक्त, सतियां प्रस्तुत भाग में ।
सौ सतियों से युक्त, भाग पंचदशवां पढ़ो ॥२॥

आचार्यश्री कालूगणी (मुनि अवस्था में)

८२६।८।१०१ साध्वीश्री मनोरांजी (सुजानगढ़)

(संयम-पर्याय सं० १६७६-२०१७)

छप्पय

सती मनोरां नै लिया संयम पति के संग ।
यौवन में वैराग्य का चढा मजीठी रंग ।
चढ़ा मजीठी रंग उनासी संवत् आया ।
उत्सव बीकानेर शहर में अद्भुत छाया ।
तेरह दीक्षा का परम गण में प्रथम प्रसंग[1] ।
सती मनोरां नै लिया संयम पति के संग ॥१॥

लगी साधना में अटल आतम-शुद्धि हित एक ।
तपः भावना भर किये उपवासादि अनेक[2] ।
उपवासादि अनेक शेष में अनशन लेकर ।
पाया मरण विशेष सुगुरु-सेवा में सुखकर ।
पावस राजसमद में मिला चतुर्विध संघ[3] ।
सती मनोरां नै लिया संयम पति के संग ॥२॥

१. साध्वीश्री मनोरांजी की ससुराल सुजानगढ़ (स्थली) के वैद (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही कोठारी गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १६५८ द्वितीय श्रावण कृष्णा १२ को हुआ ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम मोतीलालजी, माता का गुलाबांजी और पति का जयचंदलालजी था ।

(सा० वि०)

मनोरांजी ने यौवन के प्रवेश मे विरक्त होकर अपने पति जयचंदलाल जी (४२५) के साथ सं० १६७६ भाद्रव-शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से बीकानेर मे दीक्षा ग्रहण की ।

(ख्यात)

दीक्षा बीकानेर शहर के बाहर डूगर कॉलेज में लगभग दस हजार जन की उपस्थिति मे हुई। दीक्षा-महोत्सव पर बाहर से आने वाले लगभग तीन हजार यात्री थे। कुल तेरह दीक्षाएं हुई,[1] जिनमें ९ भाई और ४ बहिनें थी।

१. मुनिश्री मोतीलालजी (४२१) बास
२. ,, गणेशमलजी (४२२) जसोल
३. ,, रामसुखजी (४२३) बालोतरा
४. ,, आसकरणजी (४२४) सुजानगढ़
५. ,, जयचंदलालजी (४२५) ,,
६. ,, रावतमलजी (४२६) ,,
७. ,, जंवरीमलजी (४२७) ,,
८. ,, हस्तीमलजी (४२८) जसोल
९. ,, मुलतानमलजी (४२९) ,,
१०. साध्वीश्री मनोरांजी (८२६) सुजानगढ
११. ,, तनसुखांजी (८२७) लाडनूं
१२. ,, जतनकंवरजी (८२८) राजगढ़
१३. ,, बालूजी (८२९) ,,

तेरापंथ मे एक साथ तेरह दीक्षाएं होने का सर्वप्रथम अवसर था। उस दिन साधुओ की संख्या १०० हो गई, जो पहले कभी नहीं हुई थी।

(कालूगणी की ख्यात)

२. उन्होने ३८ वर्ष के साधनाकाल मे निम्नोक्त तप किया :—

---

१. बीकाणे उणियासिए, सुद पख भाद्रव मास।
तेरह दीक्षा रो बण्यो, एक नयो इतिहास।
मोती मुनि बास-निवास, रामसुख जाणी,
हस्ती मत्तू सुत-युत गणेश मालाणी।
मुनि आशकरण, जयचन्द-जम्पती, रावत,
जवरी पांचूं सुजानगढ-वासी सावत।
तनसुखां, जतन, बालूजी राजगढी है,
तेरह संख्या श्री सद्गुरु-चरण चढी है।
(कालू० उ० ३ ढा० १६ दो० २ गा० ३)

उपवास	२	३	४
२१००	५५	१३	७

। तप के कुल दिन २२७७, जिनके ६ वर्ष, ३ महीने और २७ दिन होते हैं।

३. सं० २०१७ के द्विशताब्दी समारोह के ऐतिहासिक चातुर्मास राजनगर में साध्वीश्री मनोरांजी आचार्यश्री तुलसी की सेवा में थी। वहां आश्विन शुक्ला ७ को प्रातःकाल वेले की तपस्या में उन्होने ऊर्ध्व भावना के साथ आचार्यप्रवर के मुखारविन्द से आजीवन तिविहार अनशन ग्रहण कर लिया।

आचार्यश्री ने दो-चार दिन पहले ही फरमाया था—'द्विशताब्दी समारोह के उपलक्ष मे अभी तक संथारा नही हुआ।' महापुरुपो के वचन अधूरे क्यो रहें? संभवतः इसी उद्देश्य से साध्वी मनोराजी आगे आई और आचार्यप्रवर के वचन को क्रियान्वित किया।

साध्वीश्री आश्विन शुक्ला ८ को आचार्यप्रवर के मुखारविंद से मंगलपाठ सुनती-सुनती दिवंगत हो गई। उन्हे २६ घटो का अनशन आया। वे वड़ी सौभाग्य-शालिनी थी जिससे उन्हे आचार्यश्री के सम्मुख पंडित-मरण प्राप्त करने का अवसर मिला।

आचार्यश्री ने उनके संवंध मे एक सोरठा फरमाया :—

अनशन कियो अमंद, द्विशताब्दी उपलक्ष में।
'मनोहरां' सानंद, जोड़ायत जयचंद नी।

(तुलसीगणी की ख्यात)

आश्विन शुक्ला ६ को प्रातः उनकी शव-यात्रा निकाली गई। उसमें विशेप उल्लेखनीय वात यह थी कि उसमे किसी प्रकार का आडम्वर नही था—न वैंड वाजा, न वैकुंठी पर स्वर्ण-रजत के कलशो की सजावट, न चांदी-सोने की मुखवस्त्रिका और न रुपयो की उछाल। इसके अतिरिक्त सादी पोशाक, सादी वैकुंठी, साथ मे जाने वाले भाईयो की भी खद्दर की श्वेत पोशाक, वस्त्रो पर लिखे हुए आदर्श वाक्य तथा विभिन्न भजन-मंडलियो द्वारा सम्मुचारित भजन, ये सव सादगी के प्रतीक लग रहे थे। तेरापथ महिला-मंडल की कुछ उत्साहिनी एवं कार्यवाहिनी वहिने भी इस शव-यात्रा में शामिल थी और अर्थी को उठाकर चल रही थी। महिला-समाज के लिए संभवतः यह प्रथम घटना थी।

(तुलसीगणी की ख्यात)

८२७।८।१०२ साध्वीश्री तनसुखांजी (लाडनूं)

(दीक्षा सं० १९७९, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री तनसुखाजी का जन्म लाडनू (मारवाड़) के गुदेचा गोत्र (ओसवाल) में स० १९६० मृगसर कृष्णा ५ को हुआ। उनके पिता का नाम रामलालजी और माता का सुरजां वाई था। तनसुखांजी का विवाह लाडनू मे ही सूरजमलजी चोपडा (ओसवाल) के साथ कर दिया गया।

दीक्षा—उन्होने १९ वर्ष की अवस्था मे पति को छोडकर सं० १९७९ भाद्रव शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा बीकानेर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन एक साथ तेरह दीक्षाएं हुई। उनका वर्णन साध्वीश्री मनोरांजी (८२६) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के वाद १९ साल साध्वीश्री पेफांजी (६२५) 'कांकरोली' के, ६ साल साध्वीश्री तखताजी (६२३) 'वम्बू' के और २५ साल साध्वीश्री टमकूजी (८५६) 'लाडनूं' के सिंघाडे मे समाधिपूर्वक रही। वृद्धावस्था के कारण स० २०३१ से लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे स्थिरवास कर दिया।

तपस्या—साध्वीश्री वडी तपस्विनी है। उन्होने सं० २०४१ तक जो तप किया उसका विवरण इस प्रकार है :—

१. लघुसिंह निष्क्रीडित तप की प्रथम परिपाटी सं० २००९ मे तथा दूसरी परिपाटी स० २०११ मे की।
२ धर्मचक्र दो वार।
३. प्रतर तप एक वार।
४, पचरगी तप एक वार।
५. परदेशी राजा के १२ वेले किये।
६. रसो के ५ तेले किये।

तप की कुल तालिका इस प्रकार है

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९
३४६५	२५१	८१	२९	१९	२	१	१	२

(परिचय पत्र)

साध्वीश्री अभी (२०४२) लाडनू मे स्थिरवास कर रही है। प्राय. तप, स्वाध्याय, ध्यान, मौन आदि मे निमग्न रहती है।

८२८।८।१०३ साध्वीश्री जतनकंवरजी (राजगढ़)

(दीक्षा सं० १९७८, वर्तमान)

'वीसवीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री जतनकवरजी का जन्म राजगढ (स्थली) के पुगलिया (ओसवाल) परिवार में सं० १९६५ भाद्रव शुक्ला १० को हुआ। उनके पिता का नाम वालचन्दजी और माता का केशरजी था।

वैराग्य—वालिका जतनकुमारी दस साल की हुई तव उनकी माता का अचानक देहान्त हो गया। उनकी दादीजी धर्मनिष्ठ और श्रद्धाशील श्राविका थी। विविध त्याग, प्रत्याख्यान रखती थी। अत: वालिका को प्रारम्भ से धार्मिक संस्कार मिलते रहे। साधु-साध्वियो के संपर्क से भी लाभान्वित होती रही। सं० १९७८ मे मुनि चंपालालजी (राजनगर) ने राजगढ चातुर्मास किया। उनके उपदेश से वालिका की दीक्षा लेने की भावना हुई और उत्तरोत्तर वढती चली गई। सं० १९७८ के पौष महीने मे उन्होंने आचार्यश्री कालूगणी के लाडनूं मे दर्शन कर साधु-प्रतिक्रमण सीखने की अनुमति प्राप्त की।

दीक्षा—उन्होने १४ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९७८ भाद्रव शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीकानेर मे दीक्षा स्वीकार की। पहले इनका नाम जानकी था, फिर जतनकुमारी रखा गया। इनकी चचेरी वहिन साध्वी वालूजी (८२९) भी इनके साथ दीक्षित हुई। राजगढ़ क्षेत्र की ये सर्वप्रथम दीक्षाएं थी।

सहवास एवं शिक्षा—दीक्षित होने के वाद वे पांच साल गुरुकुल-वास में और ११ साल साध्वीश्री वृद्धांजी (५७७) 'वोरज' के साथ विहार करती रही। उन्होंने ज्ञानार्जन करते हुए चार आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प और व्यवहार तथा कई थोकड़े, व्याख्यान आदि कठस्थ किये। शारदीया नाममाला व कुछ व्याकरण का अध्ययन किया। क्रमश योग्यता प्राप्त कर साध्वी विरधांजी के सिंघाडे में व्याख्यान आदि का कार्य सभालने लगी। वे आचार-मर्यादा मे कुशल, सघ-संघपति के प्रति समर्पित हैं। हर कार्य मे वड़ा उत्साह रखती हैं और स्वयं हाथ से करना पसंद करती है।

विहार—सं० १९९५ के रतनगढ़ मर्यादा-महोत्सव के समय आचार्य श्री तुलसी ने उन्हें अग्रगामिनी बनाया। उन्होंने दूर, निकट प्रान्तों मे विहरण कर लगभग पचास हजार मील की पदयात्रा की। उनके चातुर्मासों की सूची इस प्रकार है :—

सं० १९९६ ठाणा ५ पचपदरा
सं० १९९७ ,, ५ आपाढ़ा
सं० १९९८ ,, ५ कानोड़
सं० १९९९ ,, ५ बाव
सं० २००० ,, ५ बालोतरा
सं० २००१ ,, ५ ब्यावर (नयाशहर)
सं० २००२ ,, ५ उज्जैन
सं० २००३ ,, ५ पेटलावद
सं० २००४ ,, ५ गंगाशहर
सं० २००५ ,, ५ राजनगर
सं० २००६ ,, ६ भिवानी
सं० २००७ ,, ४ पहुना
सं० २००८ ,, ४ छापर
सं० २००९ ,, ४ हिसार
सं० २०१० ,, ५ गंगापुर
सं० २०११ ,, ५ सिसाय
सं० २०१२ ,, ५ घुरी
सं० २०१३ ,, ५ बाव
सं० २०१४ ,, ५ पीलीबंगा
सं० २०१५ ,, ५ सिसाय
सं० २०१६ ,, ५ टोहाना
सं० २०१७ ,, ५ भादरा
सं० २०१८ ,, ४ टाडगढ़
सं० २०१९ ,, ३० लाडनूं (साध्वीश्री जुहारांजी (८६०) 'मोमासर' का संयुक्त)
सं० २०२० ,, ४ पुर
सं० २०२१ ,, ४ कोटकपूरा

सं० २०२२	ठाणा	४	आसीद
सं० २०२३	,,	४	राजनगर
सं० २०२४	,,	८	जसोल (साध्वीश्री परतापांजी (७८६) 'बीदासर' का संयुक्त)
सं० २०२५	,,	४	बाडमेर
सं० २०२६	,,	४	रतननगर
सं० २०२७	,,	४	श्रीगंगानगर
सं० २०२८	,,	४	नाथद्वारा
सं० २०२९	,,	४	पाली
सं० २०३०	,,	४	जोजावर
सं० २०३१	,,	५	सरदारपुरा
सं० २०३२	,,	४	राजगढ
सं० २०३३	,,	४	धुरी
सं० २०३४	,,	५	पेटलावद
सं० २०३५	,,	५	भुसावल
सं० २०३६	,,	५	बोरी
सं० २०३७	,,	५	भगवतगढ़
सं० २०३८	,,	५	सरदारगढ
सं० २०३९	,,	४	फिल्लोर
सं० २०४०	,,	४	मलेरकोटला
सं० २०४१	,,	४	आसीद
सं० २०४२	,,	५	पुर

(चातुर्मासिक तालिका)

तपः साधना आदि—उन्होने स० २०४० तक इस प्रकार तप किया—

उपवास	२	३	५
१९९२	३१	४	१

वे प्रतिदिन एक हजार गाथाओ का स्वाध्याय करती हैं। उन्हें तीन विगय से अधिक लेने का त्याग है।

सेवा—उन्होने समय-समय पर वृद्ध एवं रुग्ण साध्वियो की सेवा की।

(क) साध्वी संतोकांजी (८१८) 'लाडनू' को सं० २००६ मे महेन्द्रगढ़ से भिवानी तक कंधो पर उठाकर लाईं।

(ख) साध्वी मोहनांजी (६६२) 'टमकोर' को सं० २०२१ मे खारची-स्टेशन (मारवाड़ जंक्शन) से पाली तक कंधो पर उठाकर लाई। अन्य साध्विया भी सहयोगिनी बनी।

(ग) साध्वी हुलासांजी (१०६६) 'श्रीडूंगरगढ' का सं० २००५ कांकरोली मे पीठ के फोड़े (अदीठ) का आपरेशन किया। पाच इंच लम्बा चार इंच चौड़ा और चार इंच गहरा चीरा देकर अन्दर से गांठ निकाली। डाक्टर भी देखकर दंग रह गया और उनके शल्य-चिकित्सा के कौशल की प्रशंसा की।

(परिचय पत्र)

८२६।८।१०४ साध्वीश्री वालूजी (राजगढ़)

(संयम-पर्याय सं० १९७९-१९९९)

'२१वीं कुमारी कन्या'

दोहा

'वालू' नृपगढ़-वासिनी, गोत्र पुगलिया ज्ञात।
लघुवय में लेकर चरण, लाई नया प्रभात[1] ॥१॥

मातुःश्री सान्निध्य में, किया प्रायशः वास।
तन्मय हो सेवा सजी, उनकी भर उल्लास[2] ॥२॥

भद्र प्रकृति निष्ठावती, पूर्ण समर्पण भाव।
यथाशक्य रहता सदा, तप की ओर झुकाव[3] ॥३॥

मोमासर में कर दिया, स्थिति वश पावस एक[4]।
वीस साल पर्याय में, रह पाईं सविवेक ॥४॥

गंगापुर पावस किया, खूमां श्रमणी संग।
लक्ष्य पूर्ण करके चली, फली चाह सोमंग[5] ॥५॥

१. साध्वीश्री वालूजी का जन्म सं० १९६८ फाल्गुन शुक्ला ४ को राजगढ़ (स्थली) के पुगलिया (ओसवाल) परिवार मे हुआ। उनके पिता का नाम हीरालालजी और माता का वन्नीवाई था। वालूजी के जन्म से पहले ही उनके पिताजी का देहान्त हो गया। छह महीने वाद उनका जन्म हुआ। क्रमश वे वाल्यावस्था को प्राप्त हुई। साध्वी जतनकुमारीजी उनके वड़े पिता (वावा) की पुत्री होने से वहिन थी। धर्मनिष्ठ परिवार तथा धर्म-परायणा दादीजी के संयोग से दोनो वहिनो के दिल मे धार्मिक सस्कार पनपने लगे और दीक्षा के लिए कटिवद्ध हो गईं।

(परिचय पत्र से)

तत्पश्चात् वालूजी ने ग्यारह साल की अविवाहित वय (नावालिग) में मे सं० १९७९ भाद्रव शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से वीकानेर मे दीक्षा ग्रहण की। साध्वी जतनकंवरजी की दीक्षा भी उनके साथ मे हुई।

उस दिन होने वाली १३ दीक्षाओ का वर्णन साध्वी मनोरांजी (८२६) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(कालूगणी की ख्यात, ख्यात)

२. साध्वीश्री दीक्षित होने के वाद दो साल गुरुकुलवास मे और फिर साध्वी मातुःश्री छोगांजी की पर्युपासना मे वीदासर रही। वे अधिक पढी-लिखी नही थी, पर उनमे सेवा-भावना वहुत थी। मातुःश्री के पास मे वड़ी विनम्रता-पूर्वक रहीं और उनकी तन-मन से अंत तक सेवा-सुश्रूषा की। मातुःश्री भी उनकी सेवा से वहुत प्रसन्न थी।

(परिचय-पत्र)

३. वे प्रकृति से सरल, संघ, संघपति के प्रति निष्ठाशील एवं पूर्ण समर्पित थी। तप मे भी अच्छी अभिरुचि रखती थी। उन्होने उपवास से ८ दिन तक लड़ीवद्ध तपस्या की। वे प्रतिवर्ष श्रावण, भाद्रव महीने मे एकांतर तप किया करती थी।

(परिचय-पत्र)

४ आचार्यश्री तुलसी ने मुनिश्री सूरजमलजी (४१०) 'भादरा' का सं० १९९४ का चातुर्मास मोमासर के लिए घोषित किया। किन्तु वे अस्व-स्थता के कारण वहा नही पहुंच सके। उन्हे वह चातुर्मास श्रीडूगरगढ मे करना पड़ा। मोमासर के श्रावको ने आचार्यप्रवर से सारी स्थिति प्रस्तुत करते हुए चातुर्मास की प्रार्थना की। आचार्यप्रवर ने चिन्तन कर फरमाया—'मेरे पास मे तो अव साधु-साध्वियो को भेजने का अवकाश नही है। मातुःश्री छोगांजी अपने पास की साध्वियो को भेज सके तो चातुर्मास हो सकता है।'

श्रावको द्वारा आचार्यप्रवर का संकेत मातुःश्री को ज्ञात हुआ, तव उन्होने तुरन्त वालूजी आदि चार साध्वियो को चातुर्मास हेतु मोमासर भेजा। उन्होने सानद चातुर्मास किया। उस समय मैं (मुनि नवरत्न) दीक्षार्थी था। उसी चातुर्मास मे आचार्यश्री तुलसी द्वारा वीकानेर मे दीक्षित हुआ।

साध्वी वालूजी चातुर्मास के पश्चात् वापस वीदासर चली गई।

(दृष्टिगत)

५. मातुःश्री के दिवंगत होने पर साध्वी वालूजी, साध्वी खूमांजी (७००) 'लाडनू' के सिंघाड़े मे रही। उनके सान्निध्य मे स० १९९९ श्रावण कृष्णा ३ को गगापुर मे दिवंगत हो गई। उस समय उनकी ३१ वर्ष की अवस्था थी। २० साल संयम-पर्याय का पालन कर अपने लक्ष्य को पूर्ण कर लिया।

(ख्यात)

१. साध्वीश्री दीपाजी का जन्म पंजाब के अन्तर्गत सिरसा शहर में सं० १६६६ पौष शुक्ला ८ को नवलखा (ओसवाल) गोत्र मे हुआ। उनके पिता का नाम केवलचदजी और माता का जड़ावांबाई था। छह भाई-बहनों में उनका क्रम दूसरा था। बड़े भाई धनराजजी और छोटे भाई चंदनमलजी के बीच वे दो मोतियो में एक लाल की तरह थीं। बचपन मे उनका नाम भंवरी था। धार्मिक परिवार मे जन्म लेने से उन्हे प्रारम्भ से ही धर्म के संस्कार मिलने लगे।

सं० १६७६ में पिता केवलचंदजी सपरिवार गुरु-सेवा में बीदासर पहुंचे। पुत्री भवरी भी साथ थी। वहां उनकी माता का अचानक भीषण ज्वर प्रकोप से देहान्त हो गया। माता का वियोग संतानों के लिए असह्य हो जाता है। पुत्री भंवरी का हृदय इतना व्यथित हुआ कि आंखों से आंसुओ की धारा बहने लगी और माता के बिना सारा संसार सूना-सा लगने लगा। आखिर समझाने से तथा साधु-साध्वियों के उपदेश से कुछ सांत्वना मिली। पिताश्री और बड़े भाई धनराजजी के दीक्षार्थ तैयार हो जाने के पश्चात् पुत्री भंवरी भी दिवंगत माता द्वारा स्वप्न मे आभास (बेटी! तू मेरा मोह क्यों कर रही है! धैर्य रख, संयम के लिए तैयार हो जा) मिलने पर दीक्षा के लिए तैयार हो गई। फिर छोटे भाई चंदनमलजी का भी विचार हो गया।

(पुस्तक से)

सोरठा

करती तप उपवास, अष्टान्हिक दिन तक चढ़ी ।
कर्म-व्याधि का नाश, होता इस भैषज्य से[५] ॥५॥

छप्पय

थी अति कष्ट-सहिष्णुता समता-भाव विशेष ।
रोगोदय के समय में रहती सुदृढ़ हमेश ।
रहती सुदृढ हमेश शान्ति का परिचय देती ।
कल्पाकल्प-विवेक-युक्त पथ्यौषध लेती ।
घवराती बिल्कुल नहीं हो कितनी तकलीफ[६] ।
दीपां के जलते रहे अन्तर दिल के दीप ॥६॥

दोहा

धन-चंदन मुनि के मिले, उन्हें चरम संदेश ।
प्रेरक अन्तर्ज्योति के, भाव-भरे सुविशेष ॥७॥

छप्पय

घोर वेदना शेष में थी वैचेनी और ।
फिर भी अन्तश्चेतना जागृत मानस-मोर ।
जागृत मानस-मोर हाथ दोनों ऊंचे कर ।
अनशन का संकल्प किया मन में साहस धर ।
ज्ञ-प्रज्ञा से प्रज्वलित प्रत्याख्यान-प्रदीप ।
दीपा के जलते रहे अन्तर दिल के दीप ॥८॥

की है उज्ज्वल साधना लगभग वर्ष पचास ।
छोड़ चली है सघ में अपनी सुयश-सुवास ।
अपनी सुयश-सुवास अबोहर था अतिम-स्थल ।
दो हजार उनतीस महीना मृगसर मंगल ।
सतियां बनी सहायिका जो थीं चार समीप[७] ।
दीपा के जलते रहे अन्तर दिल के दीप ॥९॥

सोरठा

है पुस्तक तैयार, साध्वीश्री के विषय में ।
पढ़-सुनकर के सार, खीच लीजिए हसवत्[८] ॥१०॥

सं० २०००	ठाणा ५	सुजानगढ
स० २००१	,, ५	हांसी
सं० २००२	,, ५	श्रीगंगानगर
सं० २००३	,, ६	ब्यावर
स० २००४	,, १०	भिवानी (साध्वीश्री गोरांजी (६८६) 'राजगढ़' का सयुक्त)।
सं० २००५	, ५	केलवा
सं० २००६	,, ५	जगरावां
सं० २००७	,, ७	गंगाशहर
सं० २००८	,, ४	कालू
सं० २००९	,, ५	राजगढ़
सं० २०१०	,, २६	लाडनूं 'सेवाकेन्द्र'
स० २०११	,, ६	पडिहारा
सं० २०१२	,, ५	नोखामंडी
स० २०१३	,, ५	राजनगर
सं० २०१४	,, ५	हिसार
सं० २०१५	,, ५	मलेरकोटला
सं० २०१६	,, ५	नाभा
सं० २०१७	,, ६	चूरू
सं० २०१८	,, ५	फतेहपुर
सं० २०१९	,, ५	श्रीगंगानगर
सं० २०२०	,, ५	अबोहर मंडी
सं० २०२१	,, ५	राणावास
सं० २०२२	,, ५	पाली
सं० २०२३	,, ५	जोधपुर
सं० २०२४	,, ५	विष्णुगढ़ (टमकोर)
स० २०२५	,, ५	हिसार
सं० २०२६	,, ५	तोषाम
सं० २०२७	,, ५	हांसी
सं० २०२८	,, ५	पीलीबंगा

स० २०२६ ठाणा ५ अबोहरमंडी

(चातुर्मासिक तालिका)

४ साध्वीश्री मे निर्भयता, साहस, धैर्यता, वाक्चातुर्य, तटस्थता एवं सघ-सघपति के प्रति निष्ठा आदि विविध विशेपताएं थी जो निम्नोक्त संस्मरणो से प्रस्फुटित हो रही है।

(क) आचार्यप्रवर ने साध्वीश्री दीपाजी का सं० २००४ का चातुर्मास सगरूर फरमाया। उस वर्ष पजाव मे १८ और हरियाणा मे ७ चातुर्मास घोपिय किये जा चुके थे। यह वही सन् ४७ का वर्ष था जव हिन्दुस्तान व पाकिस्तान अलग-अलग हुए थे। साध्वीश्री गुरु-आज्ञा के अनुसार विहार करती हुई टोहाना तक पहुची। वहां पर आचार्यश्री का आदेश आया कि हिन्दू-मुस्लिम दंगो की तीव्र सभावना है अत' कोई भी साधु-साध्वियो के सिंघाडे पजाव मे आगे न जाएं। हरियाणा के सिघाडे भी वापस लौट आएं।

साध्वीश्री वहा से विहार करती हुई हिसार पहुची तब भिवानी के वयोवृद्ध श्रावक पेशीरामजी आदि कई श्रावको ने दर्शन कर साध्वीश्री से निवेदन किया कि आपको भिवानी पधारने का आदेश है, क्योकि वहां साध्वी गोरांजी (६८६) की सहवर्तिनी एक साध्वी कुछ दैविक उपद्रव से आक्रान्त है। उनका विहार सभव नही है। देश का अन्दरूनी वातावरण विषम है। अकेले सिघाडे का भिवानी मे रहना चिन्तनीय है, अतः आप जैसी साहसिक सती का वहा पहुचना आवश्यक है।

साध्वीश्री निर्भयता-पूर्वक भिवानी पहुची। उपद्रव-ग्रस्त साध्वी को मगल-पाठ आदि सुनाते ही रुग्ण साध्वी के शरीर मे पैठी हुई 'ओपरी' छाया भय-भ्रात होकर चली गई।

श्रावको ने साध्वीश्री की मन. स्थिति को जानने के लिए पूछा—'क्या हम आपके चातुर्मास के लिए आचार्यश्री से अनुरोध करें?' साध्वीश्री ने दृढ़ता के स्वर मे कहा—'मैं नितान्त अभय हू। देव, गुरु और धर्म के प्रभाव से मुझे किंचित् भी भय नही है। गुरुदेव जैसा उचित समझे वैसा मुझे शिरोधार्य है।'

कतिपय प्रमुख श्रावको ने आचार्यप्रवर के दर्शन कर अपनी जिम्मेदारी पर साध्वीश्री दीपाजी और गोराजी का चातुर्मास प्राप्त कर लिया। उस वर्ष सिर्फ दो ही सिंघाडे भिवानी नगर मे रहे। अन्य सभी पंजाव, हरियाणा के सिंघाडे थली (वीकानेर-सभाग) मे आ गये।

आंखो की ज्योति नही जाती तो मैं एक स्थान मे कदापि नही रहती।' धीरे-धीरे समय बीतता गया। साध्वीश्री बीमारियो से मुकाबला करती रही। समभाव साधना मे रत होकर स्वाध्याय आदि मे लयलीन रहने लगी।

सं० २०३६ (श्रावणादि २०३५) वैशाख शुक्ला १० को रात के दस बजे साध्वीश्री को प्रकाश दिखाई दिया। सुबह होते ही उनको काफी तेज बुखार आ गया। साध्वियो ने सदा की भाति कफ का प्रकोप समझा। उस दिन उन्हे चाय की भी अरुचि हो गई। साध्वियो ने स्वाध्याय का क्रम चालू कर दिया। बारस के दिन आराधना सुनाई और महाव्रतो का उच्चारण करवाया। उन्होंने बडे ही मनोयोग से सुना। बीच-बीच मे बोलकर 'मिच्छामि दुक्कडं' लिया। रात को अधिकाश बेचैनी रही। तेरस का दिन साध्वीश्री का बेचैनी को कम करता हुआ उदित हुआ। होमियोपैथिक डॉ० चन्द्रशेखरजी जो लम्बे समय से सेवा कर रहे थे, वे उपस्थित हुए। श्रावक कोमलचदजी सिंघी तथा कोमलचंदजी चौपडा भी उपस्थित हुए। चौपड़ाजी ने साध्वीश्री से कहा—'आपके परिवार वालो को तार देता हूं, ताकि वे दर्शन कर सकें।' उन्होने उच्च स्वर मे उत्तर देते हुए कहा—'चोपड़ाजी! क्यू फोडा घालो?' सुनने वाले चकित से रह गए।

दोपहर में स्थिति वापस गंभीर बन गई। साध्वी मोहनांजी ने पूछा—'क्या संथारा करने का विचार है?' उन्होने कहा—'जब अन्तकाल देखें तब करवाना।' शाम को पुन: स्थिति ठीक हो गई। १५ मिनट दिन अवशेष रहा तब प्लास्टिक के चम्मच से पानी पिलाया और उन्हे पूछकर सूर्योदय तक चार आहार का त्याग करवा दिया (बीच मे काल आ जाए तो यावज्जीवन परित्याग है)। उन्होने अच्छी तरह स्वीकार कर लिया। गुरु-वंदना के समय उन्होने अंगुलिया ऊंची कर साध्वियो को 'आलोयणा' प्रदान की और प्रतिक्रमण सुना। साध्विया पास मे ही बैठी थी, स्थिति सामान्य अवगत हो रही थी। लगभग पौने नौ बजे नाड़ी डगमगाने लगी। एक साथ बुखार गायब, हाथ-पैर ठडे, तीन सास के साथ नौ बजकर पाच मिनिट पर देखते-देखते साध्वीश्री के प्राणो का पंछी उड चला।

इस प्रकार साध्वीश्री ने ५४ वर्षीय सयम-यात्रा सपन्न कर स० २०३६ वैशाख कृष्णा १३ को डीडवाना मे समाधि-पूर्वक निर्मल भावो के साथ पडित-

मरण प्राप्त किया।[1]

दूसरे दिन उनकी शवयात्रा का विशाल जुलूस निकाला गया। स्थानीय तथा आसपास के गांवो के हजारो व्यक्ति सम्मिलित हुए। जय-नारों तथा भजनों के साथ जुलूस श्मशान भूमि पर पहुंचा। वहां उनके शरीर का दाह-संस्कार चंदन, नारियल आदि द्वारा किया गया।

(जीवनी से)

११. सहयोगिनी सभी साध्वियों ने साध्वीश्री मालूजी की बड़ी तन्मयता से सेवा की। साध्वी मानकंवरजी तथा वसंतप्रभाजी ने जिस अग्लानभाव से परिचर्या की वह विशेष उल्लेखनीय है। डीडवाना मे उसकी अच्छी प्रतिक्रिया रही। अच्छे-अच्छे व्यक्तियों के मुंह से एक ही घोष निकलता कि जो सेवा तेरापंथ में होती है, वह अन्यत्र कही नही मिलती।

वांगड़ औषधालय के वैद्यजी, होमियोपैथिक डॉ० चन्द्रशेखरजी और श्रद्धानिष्ठ श्रावक जयसिंहजी मुणोत (एडवोकेट) ने साध्वीश्री की जो अनवद्य सेवा की वह प्रशंसनीय है।

(जीवनी से)

१२. साध्वी मोहनाजी ने साध्वीश्री मालूजी की जीवनी लिखकर तैयार की। उसमे उनके जीवन पर चतुर्मुखी प्रकाश डाला है। अधिकांश विवरण उसके आधार पर लिखा गया है।

---

१. उस समय साध्वी मालूजी ने ७९वें वर्ष में प्रवेश किया था। उनके आयुष्य के विषय में डीडवाना-निवासी जयसिंहजी मुणोत वकील (जो हस्तरेखा के अच्छे जानकार थे) ने कहा—'मैं मेरे अनुभव के आधार पर कहता हूं कि साध्वीजी का समाधि-मरण ७९-८०वें वर्ष के बीच में होगा।'

८३९।८।११४ साध्वीश्री संतोकांजी (चूरू)

(संयम-पर्याय सं० १९८१-२०१४)

छप्पय

संतोकां श्रमणी हुई सेवा-तप में लीन ।
पाई गुरुकुल-वास की सेवा चिरकालीन ।
सेवा चिरकालीन वास चूरू में गाया ।
पारख गोत्र पुनीत चरण चूरू में पाया ।
गण-वन में रम हो गई संयम रस से पीन[1] ।
संतोकां श्रमणी हुई सेवा-तप में लीन ।।१।।

दृष्टि निर्जरा की परम आत्मार्थिनी विशेष ।
काम, गोचरी आदि में रहती सजग हमेश ।
रहती सजग हमेश सजी सेवा शासन की ।
गुरु ने परिषद् बीच प्रशंसा की है उनकी ।
विनय-भक्ति व्यवहार में कुशल और शालीन[2] ।
संतोका श्रमणी हुई सेवा-तप मे लीन ।।२।।

लिखे आत्म-पुरुषार्थ से दीर्घ तपोमय लेख ।
बीती उसमें जिन्दगी तीन भाग में एक ।
तीन भाग में एक प्रायशः विगय-विवर्जन ।
वस्तु सेलड़ी त्याग दवा छोड़ी आजीवन ।
की है सचमुच साधना सुन्दर सर्वांगीण[3] ।
संतोकां श्रमणी हुई सेवा-तप में लीन ।।३।।

अन्तिम वर्षो में हुआ उग्र जलोदर रोग ।
बढ़ती जाती वेदना निष्फल सभी प्रयोग ।
निष्फल सभी प्रयोग शेष में कर सच्चिन्तन ।
चौविहार गुरु-पास किया अनशन आजीवन ।
अद्भुत साहस भर लिया कर सीना संगीन ।
संतोकां श्रमणी हुई सेवा-तप में लीन ।।४।।

गुरु-दर्शन समुपासना कर वचनामृत-पान ।
कली-कली खिलती गई उनकी लता समान ।
उनकी लता समान गान तो ऊंचा गाया ।
वीस दिनों में सिद्ध काम सब ही हो पाया ।
कीर्त्तिमान उत्कृष्टतम गण में हुआ नवीन ।
संतोकां श्रमणी हुई सेवा-तप में लीन ॥५॥

दोहा

दसमी कृष्णा कार्त्तिकी, दो हजार पर चार ।
आराधक पद का प्रवर, प्राप्त किया उपहार[४] ॥६॥

सद्य पद्य रच सुगुरु ने, सुना दिया तत्काल ।
संतोकां ने कर लिया, भारी काम कमाल[५] ॥७॥

१. साध्वीश्री सतोकाजी की ससुराल चूरू (स्थली) के पारख (ओस-वाल) गोत्र मे और पीहर राजगढ़ के नाहटा गोत्र मे था । उनका जन्म सं० १९६० वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) को हुआ ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम हीरालालजी, माता का मीनाबाई और पति का मूलचदजी था ।

(सा० वि०)

सतोकांजी ने पति वियोग के पश्चात् सं० १९८१ कार्त्तिक शुक्ला ५ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से चूरू मे दीक्षा स्वीकार की । उस दिन होने वाली सात दीक्षाओ का वर्णन साध्वी श्री जड़ावाजी (८३५) के प्रकरण मे कर दिया गया है ।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२ साध्वीश्री संतोकाजी को दीक्षा लेने के पश्चात् प्रायशः गुरुकुल-वास मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । आचार्यवर के निर्देशानुसार वे साध्वी-प्रमुखा कानकवरजी के सान्निध्य मे साधना, सेवा एवं विनयादिक गुणो का विकास करती रही । उन्होंने आचार्यश्री, साध्वी-प्रमुखा एवं साधु-साध्वियो की निरन्तर वड़ी लगन से सेवा की । गोचरी, काम आदि मे हमेशा आगे

रहती। विनय, व्यवहार मे वहुत कुशल थी।

सं० २००१ के सुजानगढ मर्यादा-महोत्सव के समय आचार्यश्री तुलसी ने साधु-साध्वियो की परिषद् मे फरमाया—'संतोकांजी मे वैयावृत्य का विशेष गुण है अतः मैं इन्हे पांच हजार गाथाओ से पुरस्कृत करता हूं।'

(तुलसीगणी की ख्यात)

३. साध्वीश्री सेवा-भावना के साथ त्याग-तपस्या मे अपनी शक्ति लगाती हुई तपस्विनी वनीं। उन्होंने सं० २००१ से सेलडी वस्तु का, सं० २००४ से औपध सेवन का तथा २००६ से पांच विगय खाने का आजीवन परित्याग कर दिया।

तीस साल तक श्रावण, भाद्रव महीने मे एकांतर तथा तीन वर्ष वेले-वेले तप किया। छव्वीस वर्षो तक प्रतिवर्ष दस-प्रत्याख्यान किये।

(सा० वि०)

उनके तप की समग्र सूची इस प्रकार है —

उपवास	२	३	४	५	६	८	११	१२
३३१३	३२६	४७	१६	६	१	१	१	१

तप के कुल दिन ४२३७, जिनके ११ वर्ष, ९ महीने और ७ दिन होते हैं।

(ख्यात)

अन्तिम वर्षो मे उनके शरीर मे जलोदर का भयंकर रोग हो गया। अनेक उपचार किये। दो वार पानी भी निकाला गया, किन्तु विशेष लाभ नहीं हुआ। आखिर स० २०१४ के सुजानगढ चातुर्मास मे उन्होने अपने आत्म-पौरुष को जगाकर साध्वी-प्रमुखा लाडांजी द्वारा आचार्यश्री तुलसी से अनशन के लिए निवेदन करवाया। आचार्यश्री उन्हें दर्शन देने के लिए पधारे। वे सावधान थीं, आंखें खोली और गुरुदेव के दर्शन किये। आचार्यश्री ने उनकी भावना जानने के लिए पूछा—'क्या चौविहार अनशन कराऊ?' उन्होने तत्काल चिंतन कर निर्णय किया कि गुरुदेव के मुखारविन्द से चौविहार शब्द निकला है अत मुझे चौविहार अनशन ही करना चाहिए। उन्होने उसी के लिए आग्रह किया तव आचार्यप्रवर ने वढ़ती हुई भावो की श्रेणी देखकर उन्हे आजीवन चौविहार अनशन करवा दिया।

क्रमशः संथारा चलने लगा। अनुमान था कि १३ दिन से ज्यादा नही

निकलेंगे, परन्तु संभावना से अधिक दिन निकलने लगे। अनशन के उपलक्ष में साधु-साध्वियो तथा श्रावक-श्राविकाओं में अनेक प्रकार के प्रत्याख्यान हुए।[1]

आचार्यप्रवर जब कभी साध्वीश्री को दर्शन देने पधारते तब वे हर्ष-विभोर होकर बद्धांजलि वंदना करती, मूक भावों से हार्दिक श्रद्धा व्यक्त करतीं। आचार्यश्री ने एक दिन उनको कहा—'संतोकांजी ! तुमने शासन व आचार्यो की बहुत सेवाएं की हैं। साधु-साध्वियों की परिचर्या में तुम सदा जागरूक रहती थी। अन्तिम समय मे भी तुम्हे अच्छा योग मिला है। भावना उत्तरोत्तर अच्छी रखना।' साध्वीश्री अपनी दोनो मुट्ठियो को बंदकर हाथ ऊंचा कर यह व्यक्त करती कि मेरा मन मजबूत है।

अनशन के अन्तिम दिन (२० वें दिन) आचार्यप्रवर ने निम्नोक्त पद्य फरमाते हुए उनके प्रति भूरि-भूरि शुभकामना प्रकट की।

रामायण छन्द

विजय लहो विजया दसमी दिन आजीवन अनशन स्वीकार।
संतोकांजी जीवन बाजी जीतो 'तुलसी' साहस धार।

(तुलसीगणी की ख्यात)

उसी दिन दो बजकर ६ मिनिट पर अनशन सम्पन्न हो गया। वह दिन था—सं० २०१४ कार्त्तिक कृष्णा १०, स्थान सुजानगढ और अनशन २० दिन का चौविहार।

(ख्यात)

तेरापंथ के इतिहास मे २० दिनो के चौविहार संथारे का यह सर्व-प्रथम अवसर था। साध्वीश्री संतोकांजी ने नया कीर्त्तिमान स्थापित कर शासन के सुनहरे पृष्ठों में अपूर्व स्वर्णिम-रेखा खींच दी।

आचार्यश्री तुलसी ने उनकी स्मृति मे एक सोरठा फरमाया :—

कर अनशन चौविहार, बीस दिवस वाह-वा सती।
संतोकां सुखकार, जबर जलोदर जालियो॥

(तुलसीगणी की ख्यात)

---

१. एक बहन ने उनके पीछे तप चालू किया था। किन्तु बीच मे ही उसे पारणा करना पड़ा। इससे यह शिक्षा मिलती है कि अपनी शक्ति को अच्छी तरह तोलकर ही त्याग करना चाहिए।

८४०।८।११५ साध्वीश्री कमलूजी (राजलदेसर)

(संयम-पर्याय सं० १६८१-२०१८)

छप्पय

'कमलू' कमला बन गई कर संयम स्वीकार।
दिखा गई कर्तृत्व-बल रम उसमें हरवार।
रम उसमें हरवार जन्म चूरू में पाया।
गोत्र सुराणा ख्यात तात-कुल का कहलाया।
भाग्योदय से मिल गया धर्म-निष्ठ परिवार।
'कमलू' कमला बन गई कर संयम स्वीकार ॥१॥

बालक-वय में स्वजन ने की शादी सोल्लास।
राजलदेसर के प्रमुख बैद गोत्र में खास।
बैद गोत्र मे खास योग अनुकूल मिलाया।
पर कुछ वर्षो बाद नियति ने चक्र चलाया।
जीवन-साथी चल बसा छाया शोक अपार।
'कमलू' कमला बन गई कर संयम स्वीकार ॥२॥

सतियों के उपदेश से कमलू हुई कृतार्थ।
धृति का आलम्बन लिया चिंतन किया यथार्थ।
चिंतन किया यथार्थ त्याग-तप से मन जोड़ा।
भरे विरति के भाव मोह परिजन का छोड़ा।
जन्म-भूमि में हो गया दीक्षा का संस्कार[१]।
'कमलू' कमला बन गई कर संयम स्वीकार ॥३॥

रह पाई गुरुदेव की सेवा में नौ साल।
साध्वी-प्रमुखा का मिला फिर सान्निध्य विशाल।
फिर सानिध्य विशाल सुशिक्षा उनसे ली है।
चर्या, विनय, विवेक, कला में कुशल बनी है।
तत्पर सेवा-कार्य में रहती थी हरवार[२]।
'कमलू' कमला बन गई कर संयम स्वीकार ॥४॥

साल छियासी में हुआ 'मंडलिया' उपयुक्त।
किया नवति में अग्रणी-पद पर उन्हें नियुक्त।
पद पर उन्हें नियुक्त सीखली गति-विधि सारी।
जन-जन को दे बोध बनाये सत् संस्कारी।
पुर-पुर में करती रही अच्छा धर्म-प्रचार[१]।
'कमलू' कमला बन गई कर संयम स्वीकार ।।५।।

साहस नस-नस में भरा थी दिल से मजबूत।
कठिन-कठिनतम कार्य कर देती सबल सबूत।
देती सबल सबूत साध्वियों को सुखकारी।
मार्मिक शिक्षा-सूत्र सुनाती अति हितकारी।
गण-निष्ठा की भावना बोल रही साकार[२]।
'कमलू' कमला बन गई कर संयम स्वीकार ।।६।।

अन्तिम वर्षों में हुआ भीषण 'कैंसर' रोग।
घोर वेदना बढ़ गई सफल न दवा-प्रयोग।
सफल न दवा-प्रयोग, शुष्क तरुवत् तन मुरझा।
फिर भी रख समभाव घाव कर्मों का समझा।
देख धैर्य जन दे रहे साधुवाद सौ बार[३]।
'कमलू' कमला बन गई कर सयम स्वीकार ।।७।।

आये गुरु-आदेश से सोहन मुनिवर तत्र।
कमलू श्रमणी खिल गई ज्यों जल में शतपत्र।
ज्यों जल में शतपत्र पधारे हैं फिर गुरुवर[४]।
समय-समय पर पत्र छत्रवत् मिलते मनहर।
कस्तूरीवत् शक्ति का करती वे संचार[५]।
'कमलू' कमला बन गई कर संयम स्वीकार ।।८।।

दोहा

संस्मरणात्मक झलकियां, है जीवन की भव्य।
हृदय-स्पर्शिनी प्रेरणा, मिलती उनसे नव्य[६] ।।९।।

छप्पय

चिन्ह और आभास से निकट आयु-स्थिति जान।
कमलू श्रमणी ने किया आत्मालोचन-स्नान।
आत्मालोचन-स्नान चेतना-युत फिर अनशन।
दो मुहूर्त्त के वाद चली कर देह-विसर्जन।
सित ग्यारस वैशाख की मंगल मंगलवार।
'कमलू' कमला वन गई कर संयम स्वीकार ॥१०॥

दोहा

की संयम-आराधना, साल तीस पर सात।
भैक्षवगण-इतिहास में, लिखी सुयश की ख्यात[1] ॥११॥

की सेवा सहवर्तिनी, सतियों नें शालीन।
उनकी चित्त-समाधि के लिए रहीं तल्लीन[10] ॥१०॥

छप्पय

स्मृति में उनकी सुगुरु ने एक बनाया छन्द।
की है व्यक्त विशेषता भर सद्गुण-मकरन्द।
भर सद्गुण-मकरन्द छत्र मुनि द्वारा निर्मित।
पढो गीतिका एक कथा सब उसमें गर्भित।
'भीखां' ने लिख जीवनी की पुस्तक तैयार[11]।
'कमलू' कमला वन गई कर संयम स्वीकार ॥१३॥

१. साध्वीश्री कमलूजी का जन्म सं० १९६२ माघ-शुक्ला द्वितीया को कलकत्ता में हुआ। वे चूरू (स्थली) निवासी मोतीलालजी सुराणा (ओसवाल) की पुत्री थी। उनकी माता का नाम नान्ही बाई था। पांच भाई और तीन वहिनों मे कमलूजी का पांचवां स्थान था। उनके जन्म के पश्चात् घर मे काफी वैभव वढ़ा, अतः उनका नाम कमला रखा गया। वे माता-पिता के स्नेह-भरे लालन पालन से वृद्धिगत हुईं। उस समय छोटी अवस्था मे ही शादी करने की परम्परा थी। अतः वालिका कमला जव ११ साल की हुई तव उनकी शादी सं० १९७३ माघ शुक्ला १५ को राजलदेसर के वैद परिवार में

कर दी गई। उनके पति का नाम मोतीलालजी (हजारीमलजी के पुत्र) था। कमलूजी का सौभाग्य था कि उन्हें दोनों ही पक्ष समृद्ध और धार्मिक संस्कारो से संपन्न मिले।

संसार मे होनहार का एक ऐसा चक्र है कि जिससे अनुकूलता प्रतिकूलता मे परिणत हो जाती है। अकस्मात् कमलूजी के पति मोतीलालजी संग्रहणी की व्याधि से ग्रस्त हो गये। अनेक उपचार करने पर भी स्वस्थ नही हुए। आखिर विवाह के ठीक तीन साल वाद सं० १९७९ माघ शुक्ला १५ को उनका देहान्त हो गया। कमलूजी को चौदह वर्ष की अवस्था मे ही पति-विरह का गहरा आघात सहना पड़ा। दुःख मे सुख इतना ही था कि उनकी सास जेठी वाई ने वहुत ही धैर्य से उस पुत्र-वियोग की व्यथा को सहा और उन्हें भी धीरज वंधाया। वहा (राजलदेसर) विराजित साध्वी-प्रमुखा जेठांजी ने साध्वियो को भेज-भेजकर कमलूजी को धार्मिक सहयोग दिया। साध्वियों के उद्‌वोधक उपदेश एवं शिक्षाओ से कमलूजी का मन आश्वस्त हुआ। वे त्याग-तप, ध्यान-मौन और स्वाध्याय-जप मे संलग्न हो गई। उन्होंने गृहस्थावास में लगभग ६०० उपवास, २५ वेले, १३ तेले, ५ चोले, १ सात, १ नौ, १ ग्यारह तथा दो वार अढाई-सौ प्रत्याख्यान व कई वार दशप्रत्याख्यान किए। क्रमशः विरक्ति वढाती हुई साध्वी वनने के लिए तैयार हो गई।

कमलूजी ने (पति वियोग के वाद) १९ वर्ष की अवस्था मे सं० १९८१ कार्त्तिक कृष्णा ५ को आचार्यश्री कालूगणी के कर-कमलों से चूरू में दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली सात दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जड़ावांजी (८३५) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

दीक्षा-संस्कार संपन्न होने पर नामकरण-संस्कार का प्रसंग आया, तव कालूगणी ने पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है।' उन्होने कहा—'कमलू'। गुरुदेव ने कहा—'कमलू क्या नाम है?' पास मे वैठी महासती कानकंवरजी ने निवेदन किया—'गुरुदेव! कमला नाम वहुत अच्छा है। हमारे धर्मसंघ के विशिष्ट तपस्वी मुनि हीरजी की पत्नी का नाम भी साध्वी कमलू ही तो था।' श्रीमज्जयाचार्य ने उनके विपय मे लिखा है—'कमलू कमला सारिखी, नारी-गुण-मणिखाण।' आचार्यदेव ने महासती कानकंवरजी की वात सुनकर उनका नाम साध्वी कमला ही रखा।

उनके परिवार की निम्नोक्त दीक्षाएं हुई :—

१.	मुनिश्री सोहनलालजी	(३६३)	चूरू	(चाचाजी)
२.	,, छत्रमलजी	(४७७)	,,	(सगे सहोदर)
३.	,, नगराजजी	(५३५)	,,	(सगे भतीजे)
४.	,, श्रीचदजी	(६०७)	,,	(भाई)
५.	साध्वीश्री नोजांजी	(६५६)	,,	(दादीजी)
६.	,, सिरेकंवरजी	(७४६)	,,	(दादीजी)
७.	,, मूलाजी	(११२१)	सुजानगढ	(बुआजी)
८.	,, झमकूजी	(८५८)	राजलदेसर	(वहिन)
९.	,, कानकंवरजी	(११२६)	चूरू	(वहिन)
१०.	,, मानकंवरजी	(११३३)	,,	(वहिन)
११.	,, जतनकंवरजी	(११७३)	,,	(वहिन)
१२.	,, सुमगलांजी	(१२७७)	,,	(वहिन)
१३.	,, रतनांजी	(१०४६)	चाड़वास	(सगी भतीजी)
१४	,, किस्तूरांजी	(१०३५)	,,	(,, ,,)
१५.	,, फूलकवरजी	(१०३४)	चूरू	(भतीजी)
१६.	,, छगनांजी	(९००)	राजलदेसर	(बुआ के लड़के की बहू)
१७.	,, मनोहरांजी	(८३७)	राजलदेसर	(जेठानी)
१८.	,, गणेशाजी	(९२२)	लाडनू	(मामा की बेटी)
१९	,, रायकवरजी	(९४५)	रतनगढ़	(मामा के लड़के की बहू)
२०.	,, विजयश्रीजी	(९४७)	,,	(भानजी)
२१.	,, फूलकंवरजी	(११९३)	सुजानगढ	(भाभी)
२२.	,, संतोकाजी	(७४३)	,,	(भाभी)

२ साध्वीश्री दीक्षित होने के बाद लगभग ९ साल गुरुकुलवास मे रही। साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी द्वारा शिक्षण-प्रशिक्षण पाकर साधु-चर्या मे कुशल, मर्यादा व अनुशासन पालन मे जागरूक बनी। कमलूजी की विविध रुचियो के साथ रोगी-ग्लान की सेवा करने की विशेष रुचि रही। महासती कानकंवरजी की निजी परिचर्या मे संलग्न रहने से उन्हे भी इनको निकटता से निरखने-परखने का मौका मिला। विनय-विवेक तथा कार्य करने की स्फूर्ति देखकर उनके दिल मे इनके प्रति एक प्रकार का विश्वास जम गया। कुछ ही महीनों बाद कानसती ने साध्वी कमलूजी को कार्य सौंपते हुए कहा—

'कमला ! आजकल सर्दी का मौसम है, संतों के यहां ज्वर के लिए घासा, उकाली लेने की आवश्यकता रहती है। वह काम तुम्हारे जिम्मे है।' उन्होंने महासती के आदेश को सादर शिरोधार्य किया। दीक्षा के एक वर्ष बाद ही प्रात: एवं सायं गोचरी का काम भी कानसती ने उनको सौंप दिया, जिसका निर्वाह उन्होंने बहुत सजगता, कुशलता तथा तत्परता से किया।

३. आचार्यश्री कालूगणी की कृपा से साध्वीश्री अपनी योग्यता में निखार लाती गई। सं० १९८६ मे उनका 'साझ' (मंडलिया) बना दिया। फिर भी वे पूर्ववत् सेवादि कार्यों में तत्पर रहती। सं० १९९० मे आचार्यवर ने उन्हे अग्रगण्या बनाकर साडवा मे चातुर्मास करने के लिए आदेश दिया। उन्हे व्याख्यान देने का काफी संकोच रहता था, अत: अलग विहार का प्रसंग आने पर उनका दिल भारी हो गया। उन्होने साथ में रखने के लिए प्रार्थना भी की, पर आचार्यश्री कालूगणी ने उसे स्वीकार नही किया। जब व्याख्यान देने का प्रसंग चला तब पास में बैठे मंत्री मुनिश्री मगनलालजी ने सहजता से कहा—'व्याख्यान का तुम क्यो विचार करती हो, गांव कोतवाली अपने आप सिखा देगा। तुम तो गुरुदेव का नाम लेकर चली जाओ, सब ठीक होगा।'

साध्वीश्री उस बात की गाठ बांधकर सांडवा चातुर्मास करने के लिए गई और वहां सानन्द चातुर्मास संपन्न हुआ। व्याख्यान, त्याग-तपस्या आदि सभी दृष्टियो से उनका प्रथम प्रवास सफल रहा। तब से सं० २०१८ तक साध्वीश्री धर्म-प्रचारार्थ विहार करती रही। उन्होंने निम्नोक्त क्षेत्रों में चातुर्मास किए—

सं० १९९०	ठाणा ४	सांडवा
स० १९९१	,, ५	पादू
सं० १९९२	,, ६	कांकरोली
सं० १९९३	,, ५	देशनोक
सं० १९९४	,, ५	केलवा
सं० १९९५	,, ५	डीडवाना
सं० १९९६	,, ६	रतलाम
सं० १९९७	,, ५	झकणावद
सं० १९९८	,, ५	फतेहपुर
सं० १९९९	,, ५	ब्यावर

सं० २०००	ठाणा	५	पड़िहारा
सं० २००१	,,	६	सोजतरोड़
सं० २००२	,,	५	चूरू
सं० २००३	,,	५	रीछेड़
सं० २००४	,,	५	उदासर
सं० २००५	,,	५	मोमासर
सं० २००६	,,	६	राणावास
सं० २००७	,,	७	बीदासर
सं० २००८	,,	५	कांकरोली
सं० २००९	,,	५	गोगुन्दा
स० २०१०	,,	५	रायसिहनगर
सं० २०११	,,	५	सरदारशहर
सं० २०१२	,,	६	फतेहपुर
सं० २०१३	,,	५	गंगापुर
सं० २०१४	,,	५	जसोल
सं० २०१५	,,	१३	सरदारशहर (साध्वीश्री हरकवरजी (८४२) 'फतेहपुर' का संयुक्त)
स० २०१६	,,	१०	गंगाशहर (साध्वीश्री सुन्दरजी (६८३) 'तारानगर' का संयुक्त)
सं० २०१७	,,	१४	सुजानगढ(साध्वीश्री मनसुखाजी(८३२) 'मोमासर' का सयुक्त)
सं० २०१८	,,	५	सुजानगढ़ ।

(चातुर्मासिक तालिका)

४. साध्वीश्री का सीना मजबूत तथा हिम्मत वहुत थी। कठिन से कठिन कार्य भी वड़ी निष्ठा से सम्पन्न करती। सघ-संघपति के प्रति गहरी आस्था रखती। साथ मे रहने वाली साध्वियो के निर्माण का पूरा-पूरा ध्यान रखती। उन्हे पढने-लिखने की प्रेरणा देती और सहयोगिनी वनती। मार्मिक शिक्षाए देकर उन्हे कर्त्तव्य-वोघ कराती। उनके द्वारा दी गई शिक्षा का कुछ अश इस प्रकार है—'गुरु कहे वैसा करना, वे करे वैसा नही करना। गुरु जहा भेजे वहा जाना, जाने मे हिचकिचाहट नही करना। गुरुदेव से वात करने

का काम पड़े तो नम्रता से बात करना। मालिकों के आगे जो करड़ाई रखता है उसे फायदा नही होता। धर्म का प्रचार खूब परिश्रमपूर्वक करना। संघ का काम पूर्ण तन्मयता से करना। आने वाले पाहुणों की भक्ति उनका चित्त प्रसन्न हो वैसी करना। सभी से हिलमिलकर रहना, इत्यादि।'

साध्वीश्री पानकंवरजी (६०२) 'सरदारशहर' तथा साध्वी भीखांजी (१०३०) 'सरदारशहर' दीक्षित होते ही साध्वीश्री के पास आयी थी। साध्वीश्री ने अत्यन्त आत्मीयता से उनके जीवन का विकास किया। साध्वी पानकंवरजी लगभग तेईस साल उनके सान्निध्य मे रही। सं० २००६ मे अग्रगण्या बन गई। साध्वी भीखांजी को २० साल उनका सान्निध्य मिला। दोनों साध्वियां उनका बहुत उपकार मानती हैं।

५. असात वेदनीय के उदय से स० २००१ मे साध्वीश्री के 'कैंसर' की गांठ हो गई। उसका दर्द, कुलन, बेचैनी आदि असह्य रूप में थे। फिर भी वे अपने मनोबल से उसे यो ही चलाती रहीं। जहां भी जैसा उपचार मिलता वैसा कर लिया जाता। धीरे-धीरे उसका विस्तार बढ़ता गया। सं० २००६ मे तो उसने उग्ररूप धारण कर लिया, यहा तक कि एक स्तन का तो आकार ही समाप्त हो गया। आचार्यश्री ने उस रुग्णावस्था मे बहुत ही कृपा रखी। समय-समय पर अनेक बार औषधि का सुयोग मिलाया। सरदारशहर मे सेठ सुमेरमलजी व उनके पुत्र भंवरलालजी दूगड़ इस रोग की चिकित्सा किया करते थे। वहां मन्त्री मुनि स्थिरवास थे ही, फिर भी उन पर महती कृपा कर आचार्यश्री ने उन्हे दो-तीन बार वहां रखा। बारह-बारह महीने वहां रहना भी हुआ। उन दिनो पिता-पुत्र ने बहुत ही श्रद्धा से चिकित्सा की। उन्होंने भी उन कषैली-कड़वी दवाइयो को मधुघृत की तरह सुपेय मानकर बहुत ही मनोयोग से ली। मंत्री मुनिश्री मगनलालजी तथा मुनिश्री सोहनलालजी भी उनका बहुत ध्यान रखते थे। जब-जब भी वहां से विहार का प्रसग आता तब-तब आचार्यश्री एक ही बात फरमाते—'उनके लिए मुझे यहां से कुछ नही कहना है। भंवरलाल तथा सेठ जैसा उचित समझे, वैसे कर ले।'

इस प्रकार चिकित्सा चलने पर भी विशेष लाभ नही हुआ और रोग असाध्य बनता ही गया। उस रुग्णावस्था मे भी सहवर्तिनी साध्वी मघूजी (६५४) 'सरदारशहर' ने साध्वीश्री की जिस अग्लान-भाव व आत्मीयता से सेवा की उसे देखकर दर्शक दंग रह जाते थे। इतना घाव होने पर

भी ऊपर की इतनी चतुराई रखती कि कही मक्खी भी क्यो न बैठ जाए। वास्तव मे उनकी सेवा-भावना सराहनीय थी।

साध्वीश्री ने अस्वस्थता के कारण सं० २०१७ तथा २०१८ के दो चातुर्मास सुजानगढ़ मे किये। उस समय उनकी वेदना चरम शिखर पर थी। साध्वीश्री भी उस घोर वेदना के साथ तितिक्षा भाव से जूझ रही थी।

६. मुनिश्री सोहनलालजी (चूरू) सं० २०१८ का चातुर्मास जोधपुर मे सम्पन्न कर तेज गति से चलकर साध्वीश्री के लिए सुजानगढ पधारे। उनको दर्शन दिये, तव वे अधिक तो नही बोल सकी, पर संक्षेप मे बहुत कृतज्ञता व्यक्त की। मुनिश्री का वह प्रवास वहां १७ दिन का रहा। साध्वीश्री अस्वस्थ थी, अत: आचार्यश्री के आदेशानुसार मुनिश्री सोहनलालजी, छत्रमलजी और नगराजजी वही पधारते। साध्वीश्री को सेवा कराते तथा समय-समय पर आध्यात्मिक गीतिकाए आदि सुनाते।

मुनिश्री ने वहा से विहार कर 'श्रीडूंगरगढ' मे आचार्यप्रवर के दर्शन किये। वहां आचार्यश्री का अभिनन्दन और साध्वीश्री के लिए प्रार्थना करते हुए दो श्लोक कहे—

मनोहर छन्द

आपकी अनुज्ञा हुअी, आया म्हें सुजानगढ़,
देखी कमला ने बंधी हिम्मत कै खूटे है।
सामी छाती खायी विस्तार रोग कॅंसर को,
ठोड़-ठोड़ नई-नई गांठां और ऊठे है।
दर्द है असह्य और बुखार भी हमेशा रैवे,
धोवै जद घाव लोही धारा मेघ छूटै है।
कमला की वेदना तो कमला ही जाणै नाथ,
म्हारै तो बतावतां ही धूजणी-सी छूटै है ॥१॥

द्विमिला छन्द

रिपु-वेदन तो विकराल बण्यो,
तिल भी नहीं शांति मिले सिर टेकण।
सुख सात की वात तो दूर टली,
अति क्रूर चली कटु कर्म कि लेखण।

अरे आयु कठे अटक्यो है पड़्यो,
सिसकार करै नहीं है बड़ी नेकण।
प्रभु-दर्शन देवो जल्दी कमला नै,
वा जींवती बैठी है आपने देखण ॥२॥

आचार्यश्री ने सब ध्यान से सुना। फाल्गुन महीने में 'धवल समारोह' सानन्द सम्पन्न हो जाने के बाद गंगाशहर से मुनिश्री सोहनलालजी को पुनः सुजानगढ़ जाने का आदेश दिया। मुनिश्री वृद्धावस्था में भी प्रायः सौ मील का चक्कर खाकर वहां पधारे। चातुर्मास के लिए उन्हें ब्यावर जाना था। मुनिश्री के कुछ दिन बाद ही स्वय आचार्यप्रवर भी पधार गये। आचार्यश्री के दर्शनों को पाकर साध्वीश्री फूली नही समा रही थी। आचार्यश्री ने उनके रोग की स्थिति की जानकारी कर अपनी अमृतवाणी से सात्त्विक पोप प्रदान किया तथा सहिष्णुता की सराहना की।

७. जब तक संभव हो सका तब तक साध्वीश्री आचार्यप्रवर के दर्शनार्थ गईं। अस्वस्थता तथा दूरी के कारण जाना संभव न होता, तब आचार्यप्रवर की सेवा में पत्र प्रेपित करतीं। उनमें अपनी गुरु-दर्शन की अभिलाषा, शासन एवं शासनपति के प्रति अपनी हार्दिक भक्ति व समर्पण-भावना व्यक्त करतीं।

आचार्यप्रवर की भी साध्वीश्री पर अच्छी कृपा रहती। समय-समय उन्हें याद करते और सान्त्वना भरे पत्र देते—

पत्र १[1]

शिष्या कमलूजी आदि स्यू सुखसाता वंचै। सुखसाता स्यूं रहिज्यो। औपध दवाई पथ-परहेज स्यू लीज्यो। सारा ही सत्यां घणा हेत मिलाप स्यूं रहिज्यो।

—आचार्य तुलसी

पत्र २

शिष्यणी कमलूजी स्यू सुखसाता वंचै। थांरै कारण घणो है, सो चित्त-समाधि राखीज्यो। शिष्या रतनकंवरजी ने थांरै खनै भेज्या है, सो अच्छी तरह सेवा चाकरी करैला।

सं० २०१८ मृगसर कृष्णा २
छापर

—आचार्य तुलसी

1. यह पत्र लाडनूं मर्यादा-महोत्सव पर सरदारशहर दिया गया था।

८. संस्मरण-साध्वीश्री के जीवन में अनेक घटना-प्रसंग घटित हुए। उनमें से कुछ संस्मरण इस प्रकार हैं—

गुरु की सीख

साध्वीश्री कढी और छाछ मे प्राय: चीनी मिलाकर खाया करती थीं। एक दिन आचार्यश्री कालूगणी ने उनका शरीर दुर्वल देखकर पूछा—'आजकल तेरा शरीर कमजोर कैसे हो रहा है?' पास मे वैठी हुई साध्वियों ने निवेदन किया—'ये आजकल चीनी अधिक खाती हैं।' पूज्य कालूगणी ने फरमाया—'घणी चीणी नही खाणी चाहिजै, कढ़ी-छाछ में कै चीणी?' साध्वीश्री ने गुरुदेव की उस शिक्षा को लोह-लीक की तरह धारण कर लिया और उसके वाद कभी भी कढ़ी-छाछ मे मिलाकर चीनी नही खाई।

साहसिका

वि० सं० १९९१ में पाली (राज०) के पास साध्वीश्री को एक वार जंगल में रात्रि-प्रवास करना पडा। वहां स्थान इतना सुरक्षित नही था। जहां ठहरी थी, वहां पांच-सौ साधुओं की एक जमात भी ठहरी हुई थी। अन्य स्थान न होने से उन्हे उसी धर्मशाला की कोठरी मे ठहरना पड़ा। टूटे हुए किवाड़ों को वन्द करके वे तीन अन्य सतियों के साथ उसी दरवाजे के पास वैठ गई ताकि कोई कपाट न खोल सके। सारी रात पहरा दिया। रात को कपाटो को खुलवाने की कई लोगों ने चेष्टा की। कपाटो के लातें भी लगाई, पर कपाट नही खुले। साध्वीश्री ने साहस तथा सूझवूझ से अपनी सुरक्षा करते हुए रात वहां गुजारी। आचार्यश्री को जव यह सारा घटना-प्रसंग निवेदित किया गया तो गुरुदेव ने उनके साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

दवा के प्रति इकतारी

वि० सं० २०१० की वात है। साध्वीश्री दवा के लिए सरदारशहर रुकी। कई तरह की कड़वी-कड़वी छालें भंवरलालजी दूगड़ देते थे। तीन सतिया को तो दो-दो घण्टे तक उन छालो को कूटने, पीसने और छानने मे लग जाते थे। मजीठ, अशोक, रोहिड़े तथा नीम आदि की छाले चलीं। दो तोला उनको दी जाती। मंत्री मुनि समय-समय पर वहुत कृपा तथा वत्सलता रखते। पथ्य आदि के लिये वार-वार पूछते तथा फरमाते रहते कि सन्तो की गोचरी मे से आवश्यकता हो तो मंगा लिया कर। मंत्री मुनि ने एक दिन हिसाव लगाया कि ११ महीनो में प्राय: १८ सेर के लगभग छालें ली गईं, पर ली उन्होने

बिल्कुल निःसंकोच। कई लोग सुझाव देते कि वैद्य को बदल लो, परन्तु साध्वीश्री कहती—'मुझे तो इन पर पूर्ण विश्वास है।' इसके लिए भंवरलालजी दूगड़ भी कहा करते—'जो इतनी इकतारी से दवा लेता है तभी देने वाले का मन बढ़ता है।'

एक अज्ञात आवाज

सं० १९९७ मे साध्वीश्री मध्यप्रदेश से सुजानगढ़ की तरफ आ रही थी। साथ की चारो साध्वियो को ज्वर बहुत आता था। एक दिन रात्रि के समय साध्वीश्री लेटी हुई थी, नीद नही आ रही थी। वे इस चिन्ता मे लगी हुई थी कि सतिया बीमार है, दूरी बहुत है अतः आचार्यश्री के दर्शन कैसे हो सकेंगे! इतने मे एक अज्ञात आवाज सुनाई दी —'चिन्ता की कोई बात नहीं है, अच्छी तरह से पहुच जाओगी। साध्वीश्री ने वंदना स्वीकार करते हुए पूछा—'आप कौन है?' कुछ उत्तर नही आया। पास मे सोयी हुई साध्वीश्री छगनांजी (राजलदेसर) ने कहा—'आप किन से बात कर रही हैं?' साध्वीश्री ने कहा—'आवाज तो तुम्हारे पिताजी जैसी लगी।[1]'

साध्वीश्री को उनके दिवंगत होने का पता तक नही था। पर उस आवाज से उन्होने अनुमान लगाया कि वे दिवंगत हो गये है तथा अभी यहां आये भी है। वास्तव मे बात सही निकली। साध्वीश्री धीरे-धीरे चलकर आचार्यश्री की सेवा मे सुजानगढ पहुंच गई।

गुरु-वाक्य पर विश्वास

सं० १९९८ मे साध्वीश्री अस्वस्थ थी। उपचार चला उससे कुछ लाभ भी हुआ। एक दिन आचार्यश्री ने साध्वीश्री से पूछा—'कैसे है?' उन्होने निवेदन किया—'एक तरह से ठीक ही है, पर अभी बिल्कुल ठीक नही है।' आचार्यश्री के मुह से निकला—'अच्छा तो ऐसा करो, चातुर्मास के लिए फतेहपुर चली जाओ। वहां गुसांईजी की दवा ले लेना, उससे ठीक हो

---

१. उनके पिताजी सरदारशहर के सम्पतरामजी लूनिया थे। जिन्होंने अपनी दोनो पुत्रियो—साध्वी छगनांजी, पानकवरजी को तथा अपने पुत्र मुनि उदयचन्दजी को उनकी पत्नी-सहित दीक्षा की सहर्ष आज्ञा प्रदान की थी। कुछ वर्षो बाद उन्होंने दृढ परिणामो से अनशन करके समाधि-मरण प्राप्त किया था।

जाओगी ।'

साध्वीश्री ने आचार्यश्री के उस वचन की गांठ वांध ली । हिम्मत कर विहार कर दिया और सं० १९९९ का चातुर्मास फतेहपुर मे किया । वहां दवा के प्रयोग से स्वस्थ हो गईं । वास्तव मे दृढ़ विश्वास ही सौ दवाओ की एक दवा है ।

गजव की हिम्मत

एक वार साध्वीश्री कमलूजी लाडनूं मे थी । उपवास का पारणा था। शौच से निवृत्त होकर स्थान पर आ रहा थी । रास्ते मे साध्वीश्री संतोकांजी मिल गई, जो कि गोचरी के लिए जा रही थी। साध्वी कमलूजी ने उनके हाथ से झोली ले ली और गोचरी के लिए चली गई । संयोग की वात थी कि एक घर मे सीढिया उतरते समय उन्हे चक्कर आ गया और गिर गई । दो पात्रियां भी फूट गईं तथा चोट भी काफी आई । चोट आने के वाद भी प्रायः तीस घरो की और गोचरी करके स्थान पर आई । आचार्यश्री कालूगणी को सारी स्थिति निवेदित की और पात्रियो के लिए पश्चात्ताप करते हुए कहा—पात्रियां फूट गईं ।'

आचार्यश्री ने कहा—'भोली कही की, पात्रियो की ऐसी क्या चिन्ता है ? चोट आई है, इसकी तो चिन्ता कर । चोट आने के वाद तीस घरो मे गोचरी जाकर आई है, हिम्मत तो वहुत है ।'

संतों का काम सतियां

सं० २००३ मे साध्वीश्री का चातुर्मास रीछेड मे था । उस वर्ष एक अन्य सम्प्रदाय के आचार्यजी का चातुर्मास भी वहां था । चातुर्मास के पूर्व भाईयो ने सोचा—'यदि सतो का चातुर्मास हो तो अच्छा रहेगा । समय पर न जाने कोई चर्चा-वात का प्रसग भी आ जाए ।' उन्होने आचार्यश्री के दर्शन कर सारी स्थिति सामने रखी । आचार्यश्री ने पूछा—'सतियो ने कुछ कहा है क्या ?' वे वोले—'सतियो ने तो कुछ नही कहा है ।'

आचार्यश्री ने कहा—'तव क्या है, संतो का काम हमारी सतिया अच्छी तरह कर ेंगी । आचार्यश्री के दिल मे साध्वीश्री के प्रति पूरा भरोसा था। वहां पर भी वैसा ही हुआ । साध्वियों ने क्षेत्र को अच्छी तरह से संभाल लिया ।

भक्तामर का चमत्कार

एक बार एक गांव मे साध्वीश्री भीखांजी (सरदारशहर) रात्रि का व्याख्यान कर रही थी। चारोओर अंधकार था। इतने में एक विशाल नगराज वहां आकर फुफकारने लगा। उसकी फुफकार से श्रोतागण इधर-उधर चले गये। दोनो तरफ सांप फैला हुआ था अतः साध्वीश्री उठ नही सकी। नीचे मौन देखकर ऊपर बैठी हुई साध्वीश्री कमलूजी ने पूछा—'भीखांजी! क्या बात है? व्याख्यान बन्द क्यो कर दिया?' उन्होंने कहा—'एक सांप की जाति का प्राणी यहां आकर बैठ गया है। इससे लोग भयभीत होकर चले गये।'

सहसा साध्वीश्री कमलूजी ने कहा—'तुम वहां बैठी क्या देख रही हो। भक्तामर याद नही है क्या?' साध्वीश्री भीखाजी ने निर्भय होकर—'रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलम्' आदि श्लोको का पाठ करना शुरू कर दिया। थोड़ी ही देर मे देखा वह सांप वहां से चला गया।

अद्‌भुत संयोग

साध्वीश्री स० २००८ मे उदयपुर सभाग मे विहार कर रही थी। आचार्यश्री बीकानेर संभाग मे थे। उस वर्ष का मर्यादा-महोत्सव सरदारशहर मे था। साध्वीश्री ने एक प्रसंग पर सतियो से कहा—'उदयपुर संभाग के कई गावो मे चातुर्मास कर दिये, फिर भी गोगुन्दा चातुर्मास करने की इच्छा तो और है।' संयोग की बात थी कि ठीक उसी समय टेलीग्राम से समाचार मिला कि साध्वीश्री कमलूजी का चातुर्मास गोगुन्दा फरमाया है।

९. सं २०१८ मृगसर शुक्ला पूर्णिमा की बात है। साध्वीश्री ने स्वप्न मे एक दिव्य पुरुष देखा, जो कि सिंहासन पर बैठा है। उसकी दांतो की पंक्ति बहुत उज्ज्वल है। साध्वीश्री सामने खड़ी है। पास में बैठे एक व्यक्ति ने साध्वीश्री के लिए पूछा तो वह बोला—'इनका क्या, इसने तो गति सुधार ली है। यह तो बहुत पवित्र आत्मा है।' जब आयुष्य के लिए पूछा तब उसने अपना हाथ उठाया और फिर पाचो अगुलिया इकट्ठी करके दिखा दी। साध्वीश्री की आख खुल गई, उन्होंने सबको यह स्वप्न सुनाया। कोई भी सही अर्थ तक नही पहुंच सका। पर वह स्वप्न अन्तिम समय पूर्णतया आ मिला। अर्थात् हाथ उठाकर दिखाया और पांचो अंगुलिया इकट्ठी करके दिखाई। इसका अर्थ हुआ कि पांच महीने मे पांच दिन कम अर्थात् मृगसर शुक्ला

पूर्णिमा से वैशाख शुक्ला एकादशी तक वह समय पूर्ण होता है।

ऊपर के चिन्ह देखकर नवमी-दशमी के दिन साध्वीश्री को महाव्रतारोपण, आत्मालोचन, क्षमायाचना आदि सब करवा दिये। एकादशी के दिन सूर्योदय होते ही लगने लगा कि आज काम मुश्किल है। तब छगनमलजी सेठिया आदि का परामर्श लेकर एव साध्वीश्री को पूछकर तत्रस्थ मुनि अगरचन्दजी (गादाणा) ने तिविहार अनशन करा दिया। फिर अन्तिम स्थिति देखकर चौविहार संथारा भी करा दिया गया। अनशन बहुत ही सजगता के साथ किया। परिणामो मे मजबूती भी बहुत रही। उन्हे ५० मिनट का तिविहार और एक घटे, १० मिनिट का चौविहार अनशन आया।

साध्वीश्री ने सैंतीस वर्ष तक सयम की आराधना कर ५९ वर्ष की अवस्था मे स० २०१९ वैशाख शुक्ला ११ मगलवार के दिन मध्यान्ह के समय सुजानगढ मे स्वर्ग-गमन कर दिया।

१० सहवर्तिनी साध्वीश्री मघूजी (९५४) 'सरदारशहर', भीखाजी (१०३०) 'सरदारशहर', रतनकवरजी (१०४९) 'चाडवास' ने साध्वीश्री की तन्मयतापूर्वक सेवा-सुश्रूषा की और उन्हे सभी तरह समाधि पहुचाई।

११. आचार्यप्रवर को स्वर्गवास के समाचार मिले तब उन्होने साध्वीश्री की फक्कडता, सहनशीलता, स्पष्टवादिता तथा संघीय-निष्ठा की सराहना करते हुए एक छप्पय छन्द फरमाया—

कमलू जी जूझी घणी कर्म कटक रै साथ।
भूली भी जासी नहीं एक बखत की बात।
एक बखत की बात दिखाई हिम्मत भारी।
शासन-प्रीत प्रख्यात बणी बा न्हारी नारी।
गण-गणपति ने समझती जीवन-धन पितु-मात।
कमलूजी जूझी घणी कर्म-कटक रै साथ॥

मुनिश्री छत्रमलजी ने साध्वीश्री की सक्षिप्त जीवन-झाकी प्रस्तुत करते हुए एक गीतिका बनाई, जिसकी पद्य संख्या ८८ है।

साध्वीश्री भीखाजी ने साध्वीश्री का जीवन लिखकर तैयार किया। पुस्तक का नाम है—'कमलू बन गई कमला' उपर्युक्त अधिकांश विवरण उसके आधार से लिखा गया है।

साध्वीश्री कमलूजी के दिवंगत होने के बाद आचार्यश्री ने साध्वी भीखांजी को अग्रगण्या बनाया।

८४१।८।११६ साध्वीश्री चांदकंवरजी (मोमासर)

(दीक्षा सं १९८१, वर्तमान)

'२५ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री चांदकंवरजी का जन्म मोमासर (स्थली) के संचेती परिवार मे सं १९७० आपाढ़ कृष्णा ८ को हुआ। उनके पिता का नाम दीपचन्दजी और माता का सिरेकंवरजी था ।

वैराग्य—सं १९७९ के बीकानेर चातुर्मास मे बालिका ने आचार्यश्री कालूगणी के दर्शन किये। वहा नवदीक्षिता अल्पवयस्का साध्वी सोनांजी (८२५) साजनवासी' को देखकर दीक्षा लेने की भावना हो गई। साध्वी हरखूजी (संसार पक्षीया मामी) की प्रेरणा से वह परिपक्व बन गई।

दीक्षा—चादाजी ने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में अपनी माता सिरेकंवरजी (८३६) के साथ सं १९८१ कार्त्तिक शुक्ला ५ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा चूरू मे चारित्र ग्रहण किया। उस दिन होने वाली सात दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जडावाजी (८३५) के प्रकरण में कर दिया गया है

सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के बाद १ साल साध्वीश्री सुवटांजी (५८४) 'राजलदेसर' के और १२ साल साध्वीश्री लाधूजी (६३२) 'सरदारशहर' के सिंघाड़े मे रही।

शिक्षा—उन्होने निम्नोक्त सूत्र, थोकडे आदि कंठस्थ किये :—

आगम—आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी, बृहत्कल्प ।

थोकड़े—पच्चीस बोल, पाना की चरचा, तेरहद्वार, लघुदण्डक बावनबोल, इक्कीसद्वार, इकतीसद्वार, कर्मप्रकृति, गतागत, संजया, नियंठा महादण्डक, गमा, सेरया, गुणस्थानद्वार, हरखचन्दजी स्वामी की चर्चा, हेमराजजी स्वामी के पच्चीस बोल, पांच ज्ञान का थोकड़ा।

स्फुटकर—भक्तामर, सिन्दूरप्रकर, शारदीयानाममाला एव आराधना, चौबीसी आदि।

वाचन—३२ सूत्रों का तीन बार वाचन किया तथा अनेक ग्रंथो का

वाचन किया।

कला—सिलाई, चित्र-कला एवं लिपि-कला का विकास किया। दो चित्र की चोपिया बनाईं। सात सूत्र तथा कई ग्रंथो को लिपिबद्ध किया।

तपस्या—	उपवास	२	३	४	५
	५३५	२२	७	२	२ ।

दसप्रत्याख्यान ११ बार, ८१ एकासन, तीन आयम्बिल के तेले किये।

स्वाध्याय—दो करोड़, इकावन लाख पद्यो का स्वाध्याय किया। एक घटा प्रतिदिन मौन रखती है।

जप—नमस्कार महामंत्र का दो बार मे अढ़ाई लाख का जाप किया।

विहार—आचार्यश्री ने सं० १९९५ माघ शुक्ला ३ को साध्वीश्री चांदांजी का सिंघाड़ा बनाया। उन्होने यथाशक्य धार्मिक-प्रचार करते हुए निम्नोक्त स्थानो मे चातुर्मास किये—

सं० १९९६	ठाणा ५	ऊमरा
सं० १९९७	,, ५	आडसर
सं० १९९८	,, ५	रामगढ़
सं० १९९९	,, ५	केलवा
सं० २०००	,, ५	कांकरोली
सं० २००१	,, ५	थामला
सं० २००२	,, ५	कानोड़
सं० २००३	,, ५	चाणोद
सं० २००४	,, ५	पाली
सं० २००५	,, ५	आसीन्द
सं० २००६	,, ५	आपाढ़ा
सं० २००७	,, ५	लावा सरदारगढ़
सं० २००८	,, ४	छातर
सं० २००९	,, ५	भगवतगढ़
सं० २०१०	,, ५	फतेहपुर

सं० २०११	ठाणा ६	छापर
सं० २०१२	,, ५	लूनकरणसर
स० २०१३	,, ५	वागोर
सं० २०१४	,, ५	शार्दूलपुर
सं० २०१५	,, ५	दौलतगढ
सं० २०१६	,, ५	वरार
सं० २०१७	,, ५	कालू
सं० २०१८	,, ५	ईडवा
सं० २०१९	,, ५	तारानगर
सं० २०२०	,, ५	नोहर
सं० २०२१	,, ५	डीडवाना
सं० २०२२	,, ५	ईड़वा
सं० २०२३	,, ५	वोरावड
सं० २०२४	,, ४	डीडवाना
स० २०२५	,, ४	नोखा
स० २०२६	,, ५	लूनकरणसर
सं० २०२७	,, ५	फतेहपुर
सं० २०२८	,, ४	पीपाड
सं० २०२९	,, ५	जोजावर
सं० २०३०	,, ४	ब्यावर
स० २०३१	,, ४	ईडवा
स० २०३२	,,	वीदासर (मातुश्री वदनांजी के सान्निध्य में)
स० २०३३	,, ४	लाछुड़ा
सं० २०३४	,, ४	पादू
सं० २०३५	,, ४	मेड़तासिटी
सं० २०३६	,, ३	फतेहपुर
सं० २०३७	,, ४	आडसर
स० २०३८	,, ४	जोजावर
सं० २०३९	,, ५	नोखा
सं० २०४०	,, ५	ईड़वा

सं० २०४१	ठाणा ५	टमकोर
सं० २०४२	,, ५	शार्दूलपुर

(चातुर्मासिक तालिका)

सेवा—उनके द्वारा की गई विशेष सेवा का तथा सेवा के उपलक्ष मे प्राप्त पुरस्कार का उल्लेख साध्वी लाघूजी (६३२) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

संस्मरण—(१) स० २०२८ के पीपाड चातुर्मास की घटना है। एक दिन रात्रि के समय साध्वी आशावतीजी (१२६८) 'नोखा' एकान्त मे बैठकर स्वाध्याय कर रही थी। अकस्मात् एक कनखजूरा उनके हाथ मे छेद करके घुस गया। उन्होने साध्वी चांदाजी को संबोधित कर कहा—'मेरे हाथ पर कुछ सर-सर चल रहा है।' साध्वीश्री ने ध्यान से देखा तो ज्ञात हुआ कि हाथ के अन्दर लगभग एक इंच का कनखजूरा घुसा हुआ है और थोड़ा-सा बाहर है। उन्होने बड़ी सावधानी से कपडे के द्वारा उसे पकडकर जीवित अवस्था मे निकालकर एकान्त में रख दिया।

(२) सं० २००७ के मृगसर महीने की घटना है। साध्वीश्री विहार करती हुई नारनोल के समीपवर्ती एक छोटे गांव में गई। स्थान के लिए पूछा तो ग्रामवासियो ने कहा—'तुम लोग डाकू हो, अतः हम जगह नहीं देंगे।' बहुत कोशिश करने पर भी जगह नही मिली, तब साध्वियां वहां से दो-तीन किलो-मीटर की दूरी पर जंगल मे एक हनुमानजी के मन्दिर मे ठहरी। संध्या के समय गांव के कई आदमी वहा आये और बोले—'यह शेखावाटी है, यहां चोर बहुत हैं, अतः तुम वापस गाव मे चलो।' साध्वियो ने साहसपूर्वक उत्तर देते हुए कहा—'हम रात्रि के समय मकान के बाहर नही जाती, इसलिए यहीं रहेंगी।' वे लोग वापस चले गये। साध्वियो ने ओम् भिक्षु का जप प्रारम्भ कर दिया। कुछ देर बाद ऐसी अज्ञात आवाज आई—'तुम्हें कोई डर नहीं है, आराम से सो जाओ। कुछ ही समय पश्चात् पैरो की गड़गड़ाहट सुनाई दी, परन्तु किसी प्रकार का खतरा नही हुआ। सुबह होते ही गाव के लोग आये और साध्वियो को सकुशल देखकर आश्चर्य-चकित हो गये।

(परिचय पत्र)

८४२।८।११७ साध्वीश्री हरकंवरजी (फतेहपुर)

(संयम-पर्याय १६८१-२०३७)

छप्पय

किया बड़ा हरकंवर ने भर यौवन में त्याग।
संयम का रस चख लिया दिल में भरा विराग।
दिल में भरा विराग वास फतेहपुर गाया।
दूगड़ परिजन-गोत्र वोध आतमा में पाया।
धन-वैभव पति छोड़ कर पाया अमर सुहाग।
किया बड़ा हरकंवर ने भर यौवन में त्याग ॥१॥

दीक्षा अपने ग्राम में ली कालू गुरु-हाथ।
संघ-शरण में आ गई नई पा गई आथ[1]।
नई पा गई आथ भरी गण-निष्ठा उर में।
धर गुरु-आज्ञा शीष किया विहरण पुर-पुर में।
लक्ष्य-विन्दु पर टिक गया चिंतन और दिमाग[2]।
किया बड़ा हरकंवर ने भर यौवन में त्याग ॥२॥

तीस-आठ का समदड़ी घोषित चातुर्मास।
पहुंचीं जब वे पारलू ज्येष्ठ आ गया मास।
ज्येष्ठ आ गया मास अचानक दौरा आया।
कर अनशन तत्काल मरण सर्वोत्तम पाया।
रही देखती साध्वियां पल में बुझा चिराग।
किया बड़ा हरकंवर ने भर यौवन में त्याग ॥३॥

शुक्ल चौथ तिथि श्रेष्ठतर सिद्ध योग शनिवार।
चरम-महोत्सव पर मिले सज्जन पांच हजार।
सज्जन पांच हजार लगाते जय-जय नारे।
भर-भर श्रद्धा-भाव सती-गुण गाते सारे।
धन्य-धन्य ध्वनि उठ रही भरती मधुर पराग[1]।
किया बड़ा हरकंवर ने भर यौवन में त्याग ॥४॥

१. साध्वीश्री हरकवरजी का जन्म सं० १९६४ माघ शुक्ला १० को बीदासर (स्थली) के नाहटा (ओसवाल) गोत्र में हुआ। उनके पिता का नाम खूवचंदजी और माता का लाधूदेवी था।[1] लघु वय मे ही उनका विवाह फतेहपुर (ढूढाड) निवासी किसनलालजी दूगड (ओसवाल) के साथ कर दिया गया। दोनो परिवार धार्मिक होने के कारण हरकंवरजी के दिल मे धार्मिक संस्कार सहज ही पनपने लगे। शादी के कुछ वर्ष वाद साधु-साध्वियो के सम्पर्क से उनकी भावना सांसारिक सुखो से विरक्त हो गई। क्रमशः वैराग्य उभरता गया और पारिवारिक जन से आज्ञा प्राप्त कर वे दीक्षा के लिए कटिवद्ध हो गई।

(गुणवर्णन ढाल से)

उन्होने १७ साल की सुहागिन अवस्था (नावालिग) मे पूर्ण वैराग्य से अपने पति तथा लाखो की संपदा को छोडकर सं० १९८१ मृगसर शुक्ला २ को आचार्यवर कालूगणी के कर-कमलो से फतेहपुर मे दीक्षा स्वीकार की।[2]

२ साध्वीश्री संयम मे अनुरक्त होकर गण-गणी के प्रति निष्ठाशील होकर विनयादिक गुणो की वृद्धि करती रही। यथाशक्य अध्ययन कर अपनी योग्यता को वढाया। सं० १९९५ मे आचार्यश्री तुलसी ने उन्हे अग्रगण्या वनाया। उन्होने ग्रामानुग्राम विहार कर जन-जन को धार्मिक उद्वोधन दिया और शांत स्वभाव, मिलन-सारिता एवं मधुर व्यवहार से सवको प्रभावित किया। उनके पावस-प्रवासों की सूची इस प्रकार है—

सं० १९९६	ठाणा ५	टोहाना
सं० १९९७	,, ५	पीपाड
सं० १९९८	,, ५	थामला
सं० १९९९	,, ५	जोवनेर
सं० २०००	,, ६	दौलतगढ
सं० २००१	,, ६	बीदासर
सं० २००२	,, ५	लावा सरदारगढ
सं० २००३	,, ५	भादरा

१. साध्वी विवरणिका मे सदू देवी है।

२. हरकंवर सुहागण फतेपुरी मिगसर मे।

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० ८)

सं० २००४	ठाणा ६	खिवाड़ा
सं० २००५	,, ५	पुर
सं० २००६	,, ५	गोगुन्दा
सं० २००७	,, ५	पाली
सं० २००८	,, ५	फतेहपुर
सं० २००९	,, ५	सांडवा
सं० २०१०	,, ५	आमेट
सं० २०११	,, ५	ब्यावर (नयाशहर)
सं० २०१२	,, २७	लाडनूं 'सेवाकेन्द्र'
सं० २०१३	,, ५	लूनकरणसर
सं० २०१४	,, १२	सरदारशहर (साध्वीश्री आसांजी (८०३) 'राजलदेसर' का संयुक्त)
सं० २०१५	,, ५	सरदारशहर (साध्वीश्री कमलूजी (८४०) 'राजलदेसर' का संयुक्त)
सं० २०१६	,, ४	हांसी
सं० २०१७	,, १०	सरदारशहर (साध्वीश्री रतनकंवरजी (१०५९) सरदारशहर का संयुक्त)
सं० २०१८	,, ५	चूरू
सं० २०१९	,, ५	चूरू
सं० २०२०	,, ४	फतेहपुर
सं० २०२१	,, १२	सरदारशहर (साध्वीश्री सूरजकंवरजी (१०३१) 'सरदारशहर' का संयुक्त)
सं० २०२२	,, ४	टाडगढ़
सं० २०२३	,, ४	आसींद
सं० २०२४	,, ६	लुधियाना
सं० २०२५	,, ६	नाभा
सं० २०२६	,, ६	मोगामंडी

सं० २०२७	ठाणा ६	जगरावां
सं० २०२८	,, १२	रतनगढ
स० २०२९	,,	चूरू (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०३०	,, ५	तारानगर
सं० २०३१	,, ६	हिसार
सं० २०३२	,, ५	हांसी
सं० २०३३	,, ५	,,
सं० २०३४	,, ४	फतेहपुर
सं० २०३५	,, ६	चूरू (साध्वी गोराजी(९८९) 'राजगढ़' का सयुक्त)
सं० २०३६	,, ५	जसोल
स० २०३७	,, ५	पचपदरा

(चातुर्मासिक तालिका)

३ आचार्यश्री ने साध्वीश्री का सं० २०३८ का चातुर्मास समदड़ी के लिए घोषित किया। साध्वीश्री का शरीर कुछ समय से अस्वस्थ चल रहा था। फिर भी गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य कर मनोवल के साथ छोटी-छोटी मंजिले करती हुई वे पारलू पहुंच गईं। जहा से समदडी लगभग २५ किलोमीटर ही दूर था। वहा ज्येष्ठ शुक्ला ३ को अकस्मात् हार्ट का दर्द हुआ। शारीरिक शक्ति क्षीण होती हुई देखकर उन्होने गहराई से चितन किया और संध्या के समय आजीवन अनशन कर लिया। दूसरे दिन ज्येष्ठ शुक्ला ४ शनिवार (सिद्धयोग) को ९ बजकर २० मिनिट पर स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया। लगभग ५ प्रहर का अनशन आया। उनके भावो की श्रेणी वर्धमान रही। अत तक इष्टदेव का नाम मुख पर गूंजता रहा।

(गुणवर्णन ढा० गा० ४,५)

श्रावक लोगो ने उनकी शोभा-यात्रा का जुलूस वडे ठाट-वाट से निकाला। आस-पास के अनेक गावो के लगभग ५ हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए। उनकी स्मृति मे साध्वी पानकवरजी (१०२७) 'सरदारशहर' आदि ने गीतिका द्वारा भाव-भरी श्रद्धाजलि प्रस्तुत की।

साध्वी हरकवरजी के दिवंगत होने के वाद आचार्यश्री ने साध्वी जतनकंवरजी (१०२८) 'सरदारशहर' को अग्रगण्या वनाया।

८४३।८।११८ साध्वीश्री जड़ावांजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८१-२०२१)

छप्पय

वास शहर सरदार में जम्मड़ गोत्र प्रसिद्ध।
सती जड़ावां ने लिया पति सह चरण समृद्ध[1]।
पति सह चरण समृद्ध साधना सतत चली है।
आस्था से आत्मीय भावना सकल फली है।
उम्र पचहत्तर साल की हुई अवस्था वृद्ध[2]।
वास शहर सरदार में जम्मड़-गोत्र प्रसिद्ध ॥१॥

१. साध्वीश्री जडावांजी की ससुराल सरदारशहर (स्थली) के जम्मड (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही गीया गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९४६ मे हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम चूनीलालजी और माता का चूनीबाई था।

(सा० वि०)

जडावांजी ने अपने पति लिखमीचंदजी के साथ सं० १९८१ माघ शुक्ला १४ (शनिवार) को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा भैरूदानजी भंसाली के बाग मे हुई। उस दिन कुल नौ दीक्षाएं हुई—३ भाई ६ वहिनें[1]।

---

१. माह सुद चवदस सरदारशहर नव विरमे।
तिण पुर रो लिखमीचंद, सुगन भाद्रा रो,
दोनू जोडै स्यू, मालचंद मुनि प्यारो।
सुन्दर मोमासर और जड़ाव, जसूजी,
गगाणै री कस्तूरा शिव-मग जूझी।
तपसण सुरगति पच्चास दिवस संथारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।

(कालू उ० ३ ढा० १६ गा० ८)

१. मुनिश्री लिखमीचंदजी (४४४) सरदारशहर
२ ,, सुगनचंदजी (४४५) भादरा
३. ,, मालचंदजी (४४६) सरदारशहर
४. साध्वीश्री जड़ावांजी (८४३) सरदारशहर
५. ,, जडावांजी (८४४) गंगाशहर
६. ,, सुन्दरजी (८४५) मोमासर
७. ,, जसूजी (८४६) गंगाशहर
८. ,, किस्तूरांजी (८४७) गगाशहर
९. ,, सिरेकंवरजी (८४८) भादरा

(कालूगणी की ख्यात, ख्यात)

२. साध्वी जड़ावांजी ने लगभग चालीस साल संयम का रसास्वादन कर स० २०२१ मृगसर कृष्णा ११ को लाडनू मे स्वर्ग-गमन कर दिया।

(ख्यात)

उस समय साध्वी छोटांजी (७५२) 'तारानगर' और मनोराजी (८७१) 'सुजानगढ़' लाडनू 'सेवाकेन्द्र' में थी।

(चा० ता०)

८४४।८।११९ साध्वीश्री जड़ावांजी (गंगाशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८१-२०३०)

छप्पय

आत्म-विजय पाई बड़ी जय-जय सती जड़ाव।
छोड़ चली संसार में अपना प्रौढ़ प्रभाव।
अपना प्रौढ़ प्रभाव शहर गंगा से आई।
चढ़ संयम की नाव भाव निर्मलतम लाई[1]।
सर्वोपरि तप की तरफ उनका हुआ झुकाव।
आत्म-विजय पाई बड़ी जय-जय सती जड़ाव ॥१॥

उमड़ी सावन की घटा झड़ी लगी इकसार।
उपवासों की हो गई संख्या पांच हजार।
संख्या पांच हजार सैंकडो बेले आदिक।
ग्यारह तक क्रम-बद्ध दिवस पन्द्रह अधिकाधिक।
ध्यान जाप स्वाध्याय का खोल दिया है श्राव[2]।
आत्म-विजय पाई बड़ी जय-जय सती जड़ाव ॥२॥

विहरण सतियों साथ में कर पाई बहु वर्ष।
रमकर आत्म-समाधि में भर पाई बहु हर्ष।
भर पाई बहु वर्ष शेष में पुर चंदेरी।
रही साल तक चार बजाती मंगल भेरी।
कर अनशन संलेखना खूब बढ़ाई आब।
आत्म-विजय पाई बडी जय-जय सती जड़ाव ॥३॥

फैली बडी प्रभावना निकले दिन इक्कीस।
दिवस दशहरा आ गया दो हजार पर तीस।
दो हजार पर तीस लक्ष्य चिर वांछित पाया।
कलश चढ़ाया ऊर्ध्व सुयश का ध्वज फहराया।
बोल उठा स्मृति में मधुर गुरु का दिल-दरियाव[3]।
आत्म-विजय पाई बडी जय-जय सती जड़ाव ॥४॥

१. साध्वीश्री जड़ावांजी की ससुराल गंगाशहर (स्थली) के भसाली (ओसवाल) गात्र मे और पीहर उदासर के चोरड़िया गोत्र में था। उनका जन्म सं० १६४६ कार्त्तिक शुक्ला १५ को हुआ।

उनके पिता का नाम भैरुदानजी, माता का पद्मावाई और पति का पाचीलालजी था।

(सा० वि०)

जड़ावांजी ने पति-वियोग के पश्चात् सं० १६८१ माघ शुक्ला १४ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे संयम ग्रहण किया। उस दिन होने वाली ६ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री जडावांजी (८४३) 'सरदारशहर' के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वीश्री साधु-चर्या का दृढनिष्ठा से पालन करती हुई तपस्या के क्षेत्र मे उत्तरोत्तर कदम वढाती रही। फलतः उग्र तपस्विनी की कोटि में समाविष्ट होकर उन्होने उपवास से ११ दिन तक क्रमवद्ध और ऊपर मे पन्द्रह दिन तक तप किया। उनके तप की लम्वी सूची इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	६	१०	११
५००३	५८८	५६	३६	१२	४	४	५	४	१	१

१५
— । तप के कुल दिन ६७३६, जिनके १८ वर्ष, ८ महीने और १६ दिन
१
होते हैं।

(ख्यात)

तपस्या के साथ स्वाध्याय-जाप भी वहुत किया।

(परिचय-पत्र)

३. साध्वी जडावाजी दीक्षित होने के पश्चात् लगभग १२ वर्ष साध्वीश्री मनोरांजी (६७६) 'भिवानी' के, १७ वर्ष साध्वीश्री सुन्दरजी (८६७) 'सरदारशहर' के और १६ वर्ष साध्वीश्री तीजांजी (१०६०) 'सरदारशहर' के सिंघाडे में रही। फिर सं० २०२६ से वृद्धावस्था व शारीरिक दुर्वलता के कारण लाडनूं मे स्थिरवास रूप से रही। उनका मनोवल वहुत मजवूत था। यथासंभव अपना काम अपने हाथ से करती थी।

(परिचय-पत्र)

साध्वीश्री ने अन्त मे संलेखना-तप एवं अनशन के लिए चिंतन किया और आचार्यप्रवर द्वारा आदेश प्राप्त कर तप प्रारम्भ कर दिया। तिविहार तप के छठे दिन ऊर्ध्व भावों से तिविहार अनशन तथा पन्द्रहवे दिन चौविहार अनशन ग्रहण कर लिया जो इक्कीसवे दिन सानन्द संपन्न हुआ।

इस प्रकार उन्होने २१ दिन के तप, अनशन (५ दिन संलेखना-तप, १० दिन तिविहार अनशन, ६ दिन चौविहार अनशन) से सं० २०३० आश्विन शुक्ला १० को सायं ५ बजकर २५ मिनिट पर लाडनूं मे परम-समाधि पूर्वक पंडित-मरण प्राप्त किया।

आचार्यश्री तुलसी ने उनकी स्मृति मे निम्नोक्त दोहा फरमाया—

सुख-दुःख, जीवन-मरण में, शान्त हृदय समभाव।
आजीवन अनशन कियो, जय-जय सती जड़ाव॥

(ख्यात)

उस समय लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे साध्वीश्री सूरजकवरजी (९४२) 'जयपुर' और विजयश्रीजी (९४७) 'रतनगढ़' थी।

(चा० ता०)

८४५।८।१२० साध्वीश्री सुन्दरजी (मोमासर)

(संयम-पर्याय सं० १९८१-२०४१ चैत्रादि)

छप्पय

साहस का परिचय दिया 'सुन्दर' ने सविवेक।
सम-दम शम-संवेग का घोष लगाया एक।
घोष लगाया एक किया है सीना लम्बा।
तपस्विनी बन घोर बजाई तप की भम्भा।
संयम-जीवन में बड़ी खीची स्वर्णिम-रेख।
साहस का परिचय दिया 'सुन्दर' ने सविवेक ॥१॥

जन्म शहर सरदार में दूगड़ वंश विशाल।
संचेती परिवार मे मोमासर ससुराल।
मोमासर ससुराल भाल में तिलक लगाया।
पर सुहाग का चिह्न नियति ने शीघ्र मिटाया।
चिन्तातुर सब हो हुए विकट-विकट स्थिति देख।
साहस का परिचय दिया 'सुन्दर' ने सविवेक ॥२॥

मां ने तनया में भरे कुछ धार्मिक संस्कार।
गुरुवर के उपदेश से पाये वे विस्तार।
पाये वे विस्तार त्याग-तप-तुला चढ़ी है।
जला विरति का दीप भावना खूब बढ़ी है।
हुआ शहर सरदार में दीक्षा का अभिषेक।
साहस का परिचय दिया 'सुन्दर' ने सविवेक ॥३॥

दोहा

साल इकासी माघ की, चतुर्दशी दिन भव्य।
चरण-महोत्सव की छटा, छाई पुर मे नव्य[१] ॥४॥

छप्पय

सती हुलासां साथ में रह पाई बहु वर्ष।
ज्ञान-ध्यान विनयादि रस भरती गई प्रकर्ष।

भरती गई प्रकर्ष थोकड़े आदिक सीखे।
आत्म-शुद्धि हित शुद्ध चुने है विविध तरीके।
ध्यान-मौन-स्वाध्याय-जप करती थी अतिरेक[१]।
साहस का परिचय दिया 'सुन्दर' ने सविवेक ॥५॥

अच्छी सेवा-भावना अनासक्त थी वृत्ति।
गण-गणि से निष्ठा अचल वज्र लोह की भीत्ति।
वज्र लोह की भीत्ति सरलता मृदुता मनहर।
अग्रगण्य पद भार दिया गुरु ने करुणा कर।
पुर-पुर में जाकर किया उपदेशामृत-सेक[३]।
साहस का परिचय दिया 'सुन्दर' ने सविवेक ॥३॥

तपस्विनी बनकर महा की है तप में दौड़।
एक तिहाई भाग की आई लगभग जोड़।
आई लगभग जोड़ प्रवल पौरुष दिखलाया।
तप का विविध प्रकार सबल आयाम चलाया।
वृद्धि वड़ी वैराग्य की की ले नियम अनेक[४]।
साहस का परिचय दिया 'सुन्दर' ने सविवेक ॥७॥

दोहा

नेत्र ज्योति की अल्पता, होने से स्थिरवास।
पुर बीदासर में किया, चाड़वास फिर वास[५] ॥८॥

छप्पय

अस्सी वर्षो वाद में अनशन का संकल्प।
निकट समय चालू किया तप का कायाकल्प।
तप का कायाकल्प झोंक दी शक्ति समूची।
वढ़ती गई नितान्त भावना भर कर ऊंची।
मिलता गुरु-सदेश शुभ पत्रों में प्रत्येक[६]।
साहस का परिचय दिया 'सुन्दर' ने सविवेक ॥६॥

सतरह दिन का तप किया फिर बेला प्रारंभ।
वेले के दिन तो बड़ा रोपा अनशन-स्तम्भ।

रोपा अनशन-स्तंभ आत्म-पुरुषार्थ जगाकर।
आराधक पद इष्ट पा गई श्रमणी सुन्दर।
जनता उनके शौर्य का करती है उल्लेख।
साहस का परिचय दिया 'सुन्दर' ने सविवेक ॥१०॥

सित तेरस वैशाख की साल एक-चालीस।
चारुवास की भूमि पर गगन लगाया शीष।
गगन लगाया शीष विजय का ध्वज फहराया।
नियत अवधि से पूर्व लक्ष्य पूरा हो पाया।
भैक्षव-गण इतिहास में लिखे सुनहरे लेख[७]।
साहस का परिचय दिया 'सुन्दर' ने सविवेक ॥११॥

दोहा

साध्वी भीखां आदि का, योगदान अनुकूल।
पाकर परम समाधि वे, गईं हृदय से फूल ॥१२॥

स्मृति में श्री गुरुदेव नें, रचकर पद्य प्रशस्त।
तपस्विनी के सत्त्व का, वर्णन किया दुरस्त[८] ॥१३॥

१. साध्वीश्री सुन्दरजी का जन्म सं० १९६१ कार्त्तिक शुक्ला ९ बुधवार को बंगाल प्रान्त के नलफामारी ग्राम मे हुआ। उनके पिता का नाम हरखचंदजी दूगड़ (ओसवाल), माता का मखू बाई और भाई का मुन्नीलालजी था। मूलत: उनका परिवार सरदारशहर (स्थली) निवासी था। व्यापारिक दृष्टि से बंगाल मे रहता था। बालिका सुन्दर दो साल की थी तब उनके पिता का देहावसान हो गया।

प्राचीन परम्परा के अनुसार साढे नौ वर्ष की अवस्था मे ही बालिका सुन्दर का विवाह मोमासर (स्थली) निवासी कालूरामजी सचेती (ओसवाल) के पुत्र तोलारामजी के साथ बडे उल्लासमय वातावरण मे कर दिया गया। शादी के बीस दिन बाद तोलारामजी देशान्तर चले गये। वे शात-स्वभावी और व्यवहार-कुशल थे। उनकी धार्मिक रुचि भी अच्छी थी। पर विधि के प्रकोप से पति-पत्नी का सबध थोडे समय पश्चात् ही विच्छिन्न हो गया। सं० १९७२ के सांवत्सरिक पर्व का तोलारामजी ने उपवास किया। दूसरे दिन

क्षमायाचना का पत्र लिखते समय अचानक उनकी हथेली के मध्य भाग मे एक छोटी-सी विषैली फुसी उठी। वेदना को समभाव से सहते हुए वे उसी दिन अर्धरात्रि के बाद काल-कवलित हो गये। उनकी दु:खद मृत्यु के समाचार सुनकर सारा परिवार शोक-विह्वल हो गया। नववधू सुन्दर को दुःख होना तो स्वाभाविक ही था, लेकिन काल के आगे किसी का बल चल नही सकता। उनकी माता मखू देवी उस विकट स्थिति को देखकर एक बार अत्यधिक चिंतित हुई। पर वे विवेक-संपन्न थी, अत: उन्होने सोचा—अब तो चिंता नही, चिंतन करना चाहिए, व्यथा नही व्यवस्था करनी चाहिए, जिसमे इस बारह वर्षीय पुत्री का जीवन शातिमय व्यतीत हो। उन्होने मधुर-मधुर शिक्षा के द्वारा तनया सुन्दर मे धार्मिक संस्कार भरे और अक्षर-ज्ञान का बोध कराया। क्रमश: उनकी धार्मिक-भावना विकसित हो गई।

तेरह साल की उम्र मे उन्होने अपने परिजन के साथ अष्टमाचार्यश्री कालूगणी के रतनगढ मे दर्शन किए। गुरुदेव के उपदेश से कुछ-कुछ वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हो गए और अच्छी तरह सोच-समझकर चारो स्कंधो—सचित्त, हरियाली (सब्जी), रात्रि-भोजन और अब्रह्मचर्य का आजीवन प्रत्याख्यान कर दिया। उससे पूर्व उन्होने उपवास भी कभी नही किया था। पर जब वि० स० १९७४ मे आचार्यश्री कालूगणी का सरदारशहर मे पावस-प्रवास हुआ तब उन्होने एक महीने तक एकांतर और एक चोले का थोकड़ा किया। उनकी भुआ सुवटी बाई (चुन्नीलालजी दसानी की धर्मपत्नी) एक अच्छी धार्मिक वृत्ति वाली श्राविका थी। वे अधिकतर आचार्यवर की सेवा मे ही रहती थी। बहिन सुन्दर उनके साथ-साथ रहकर धार्मिक क्रिया करने लगी। धीरे धीरे उनकी भावना वैराग्य-रस से आप्लावित हो गयी।

सं० १९७७ के भिवानी चातुर्मास मे पारिवारिक जन के साथ गुरुदेव के दर्शन कर उन्होने अपनी विचार-धारा प्रस्तुत की। आचार्यवर ने पूछ-ताछ कर कार्तिक कृष्णा ८ को उन्हे साधु-प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया। वे वापस सरदारशहर लौट आई। उस समय वहां कोई साधु-साध्वियों का सिंघाड़ा नही था, इसलिए उन्होने राजलदेसर जाकर साध्वी-प्रमुखा जेठाजी के सान्निध्य मे साधु-प्रतिक्रमण कठस्थ किया तथा अन्य आवश्यक ज्ञान भी सीखा। ज्ञान-ध्यान, सामायिक-संवर के साथ वे तप: साधना करती हुई दीक्षा की प्रतीक्षा करने लगी। गृहस्थ-जीवन मे उन्होने उपवास से नौ दिन तक लड़ीबद्ध तप किया। तप की तालिका इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९
२७१	१०	६	४	५	१	२	१	१

चार साल की कठिन साधना के बाद उनकी बढ़ती हुई भावना को देखकर आचार्यप्रवर ने दीक्षा-स्वीकृति प्रदान की।

(निबध के आधार से)

सुन्दरजी ने २० साल की अवस्था मे १९८१ माघ शुक्ला १४ (पुष्यनक्षत्र) को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन कुल ६ दीक्षाएं हुई। उनका वर्णन साध्वीश्री जड़ावांजी (८४३) 'सरदारशहर' के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात)

साध्वी सुन्दरजी के संसारपक्षीय भतीजे (मुन्नीलालजी के पुत्र) मुनि चौथमलजी (४७३) 'सरदारशहर' सं० १९८७ मे दीक्षित हुए।

(उनकी ख्यात)

२. दीक्षित होने के पश्चात् साध्वी सुन्दरजी को केवल चार मास गुरु-सेवा मे रहने का अवसर मिला। फिर आचार्यवर ने उन्हे साध्वीश्री हुलासांजी (७०८) 'सरदारशहर' के साथ भेज दिया गया। लगभग २८ साल उनके सिंघाड़े मे रही। सिर्फ सं० १९९६ का एक चातुर्मास साध्वीश्री सोनांजी (८२५) 'साजनवासी' के साथ सुजानगढ किया। साध्वी हुलासांजी के सान्निध्य मे रहकर साध्वी सुन्दरजी ने विनय, विवेक एवं ज्ञान आदि का अच्छा विकास किया। क्रमशः लगभग २१ हजार गाथाए कंठस्थ की। कंठस्थित ज्ञान की सूची इस प्रकार है :—

सूत्र, थोकड़े—दशवैकालिक सूत्र। पच्चीस बोल, पाना की चर्चा, तेरह द्वार, लघुदंडक, बावन बोल, इक्कीस द्वार, इकतीस द्वार, सेर्‌यां, संजया, खंडाजोयण, महादडक, पज्जुवापद, कालूतत्त्वशतक।

व्याख्यानादि—रामायण, छोटे बड़े लगभग २० व्याख्यान तथा अनेक औपदेशिक गीतिकाए। आराधना, चौबीसी, विघ्नहरण, मुणिन्द मोरा आदि गीतिकाएं।

कंठस्थित ज्ञान को सुरक्षित रखने के लिए वे उनका स्वाध्याय करतीं और 'समय गोयम ! मा पमायए' वाक्य को हृदयंगम कर समय को सफल बनाती।

(निबंध से)

३. साध्वीश्री मे सघ-निष्ठा, संघपति के प्रति समर्पण-भाव, शांत-स्वभाव, सेवा-भावना, अनासक्त-वृत्ति आदि विशेषताएं थी। वे गुरु-आदेश को सर्वोपरि समझतीं और प्रत्येक कार्य गुरु-इंगित पर करतीं। सभी दृष्टियो से योग्य समझकर आचार्यश्री तुलसी ने सं० २००६ में उन्हें अग्रगण्य पद पर नियुक्त कर दिया। उन्होने अनेक क्षेत्रो मे विहार कर धर्म का प्रचार-प्रसार किया। उनकी वाणी मे मधुरता थी जिससे उनके उपदेशों का लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ता। भाई-बहिनो मे त्याग-तपस्या की अभिवृद्धि होती।

(जीवनी से)

उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है :—

स० २०१०	ठाणा	५	रीछेड़
सं० २०११	,,	५	बोरियापुर
स० २०१२	,,	५	भगवतगढ
सं० २०१३	,,	५	हांसी
स० २०१४	,,	५	उचानामंडी
स० २०१५	,,	५	बाव
सं० २०१६	,,	५	फतेहगढ
सं० २०१७	,,	५	बक्काणी
सं० २०१८	,,	५	नाथद्वारा
स० २०१९	,,	५	जोजावर
स० २०२०	,,	५	जावद
सं० २०२१	,,	५	कानोड़
सं० २०२२	,,	८	जसोल (साध्वी परतापाजी (७८६) 'बीदासर' का सयुक्त)
स० २०२३	,,	५	बोरज
सं० २०२४	,,	३०	लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' (साध्वी मोहनांजी (९४१) 'डीडवाना' का सयुक्त)
स० २०२५	,,	५	दिवेर
स० २०२६	,,	५	दौलतगढ़
स० २०२७	,,	५	कुवाथल
सं० २०२८	,,	४	आसाहोली

सं० २०२९	ठाणा ५	पचपदरा
सं० २०३०	,, ५	समदडी
स० २०३१	,, ५	साडवा
सं० २०३२	,,	वीदासर (साध्वी मातु श्री वदनांजी के साथ)
सं० २०३३	,,	श्रीडूंगरगढ (साध्वी लाडाजी (६१०) 'लाडनूं' के साथ)
स० २०३४	,,	वीदासर 'समाधिकेन्द्र[1]'
स० २०३५	,,	वीदासर 'समाधिकेन्द्र[2]'
सं० २०३६	,,	वीदासर 'समाधिकेन्द्र[3]'
सं० २०३७	,,	वीदासर 'समाधिकेन्द्र[4]'
स० २०३८	,, ८	चाडवास
सं० २०३९	,, ७	,,
सं० २०४०	,, १०	,,

(चातुर्मासिक-तालिका)

४. साध्वीश्री का आन्तरिक चैतन्य जाग उठा। जिससे उन्होने तप, स्वाध्याय, ध्यान और मौन की विलक्षण साधना की। उसका विवरण इस प्रकार है :—

तपस्या—१ स० २०१२ से एकातर तप चालू किया। उसके वीच वे वेले, तेले, चोले, पचोले आदि भी करती थी।

२ स० २०३३ (चैत्रादि २०३४) वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय-तृतीया) को वीदासर मे आचार्यश्री द्वारा आजीवन वेले-वेले तप का सकल्प कर लिया।

कार्त्तिक से चैत्र महीने तक चौविहार वेले-वेले तप करती रही।

३. स २०३३ मे तप की पचरगी की। जिसमे ५ उपवास, ५ वेले, ५ तेले, ५, चोले और पंचोले किए जाते हैं।

४ धर्मचक्र तप एक वार किया।

---

१. व्यवस्थापिका साध्वी सोहनांजी (१११५) छापर।

२. व्यवस्थापिका साध्वी संघमित्राजी (११७०) श्रीडूगरगढ।

३. व्यवस्थापिका साध्वी नजरकंवरजी (७८१) वास।

४. व्यवस्थापिका साध्वी गोरांजी (९८९) राजगढ़।

५. कंठीतप एक बार किया।

तप की कुल तालिका इस प्रकार है —

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	६	१०
६१११	११६१	१५६	४४	३६	३	२	३	२	१

११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
३	१	१	१	१	१	१

। तप के कुल दिन ६४७०, जिनके २६ वर्ष, ३ महीने, २० दिन होते है।

मौन—स० २०१० से प्रतिदिन पन्द्रह घंटा मौन। महीने मे चार दिन पूर्ण मौन।

प्रत्याख्यान—(१) कृष्ण पंचमी (साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी की दिवंगत-तिथि), शुक्ला ६ (कालूगणी की स्वर्गवास-तिथि) को आहार करने का त्याग।

(२) सप्तमी (साध्वी हुलासांजी 'सरदारशहर' की स्वर्गवास-तिथि), शुक्ला दशमी (साध्वी-प्रमुखा जेठाजी की स्वर्गवास-तिथि) और शुक्ला त्रयोदशी (आचार्य भिक्षु का स्वर्ग-प्रयाण दिन) को छह विगय खाने का त्याग।

(३) अग्रेजी दवा तथा इंजेक्शन लेने का परित्याग।

स्वाध्याय—प्रतिदिन एक हजार गाथाओ का स्वाध्याय करने का नियम। इस प्रकार साध्वीश्री का सम्पूर्ण जीवन त्याग-वैराग्य-मय रहा।

(जीवनी से)

५ स० २०३० मे साध्वीश्री का चातुर्मास समदड़ी (मारवाड़) में था। वहा उनके ललाट पर अचानक एक जहरीली फुसी उठी। उसकी पीड़ा के कारण आख की ज्योति दिन-प्रतिदिन क्षीण होती चली गई। तव उन्होने आचार्यप्रवर से निवेदन करवाया कि 'मेरी आख की ज्योति कमजोर है अतः मैं थली-प्रदेश मे आना चाहती हूं, क्योकि अभी तो मुझे रास्ता आदि दृष्टिगत हो सकता है, फिर भविष्य मे न जाने क्या हो।'

आचार्यप्रवर ने आदेश दे दिया। साध्वीश्री छोटे-छोटे विहार करती हुई थली के क्षेत्रो मे पहुंच गई। सं० २०३१ का चातुर्मास सांडवा में किया।' उस वर्ष आचार्यप्रवर का पावस-प्रवास दिल्ली मे था। मर्यादा-महोत्सव श्रीडूंगरगढ मे हुआ। साध्वीश्री ने वहां गुरुदेव के दर्शन कर अपूर्व आनन्द का अनुभव किया।

आचार्यप्रवर ने साध्वीश्री से पूछताछ की तव उन्होने विनम्र शब्दो मे निवेदन किया—'गुरुदेव ! मैं अव दृष्टि-मन्दता के कारण ग्रामानुग्राम विहार करने मे विवश हूं अतः आप मुझे जहां रखाएं वहां सहर्ष रहने के लिए तैयार हूं। मेरे मन मे कोई ऊहापोह तथा किसी प्रकार का ननुनच नही है। आपकी शुभ दृष्टि ही मेरे लिए सुधा की वृष्टि है।'

आचार्यप्रवर ने पूर्ण समर्पण-भाव से प्रसन्न होकर साध्वीश्री को मातु.श्री वदनांजी के पास बीदासर रहने का आदेश दिया। साध्वीश्री भीखाजी (११७१) 'श्रीडूगरगढ' को विशेष रूप से उनकी सेवा मे रखा। आचार्यप्रवर एव साध्वी-प्रमुखाश्री ने साध्वी सुन्दरजी को उस समय एक-एक पत्र लिखकर दिया। वे इस प्रकार हैं :—

अर्हम्

सुजानगढ
चैत वदी स० २०३१

शिष्या सुन्दरजी (मोमासर) !

इस वर्ष थे थारे सिंघाडे रो विसर्जन कर जो समाधि-केन्द्र मे रहणे री पहल की वा अनुकरणीय है। थारी नीति-रीति और आचार-कुशलता आछी है। निजर विशेष नही रहणे पर भी थारे मन मे कोई विशेष खेद नही, आ एक सहनशीलता की बात है। थे समाधि-केन्द्र (बीदासर) मे अच्छी तरह से रेवो और चित्त समाधि राखो, आ ही शुभकामना है।

—'आचार्य तुलसी

'अर्हम्'

बीदासर
वि० स० २०३१ फाल्गुन कृष्णा १५

आदरणीया साध्वीश्री सुन्दरजी (मोमासर) !

जिस ऊंचे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आपने साधना-पथ स्वीकार किया है, उसकी उपलब्धि मे सवसे अधिक सहायक तत्त्व है—समभाव की साधना और उसके सहायक तत्त्वो के प्रति उत्कृष्ट समर्पण भाव भी लक्ष्य की निकटता मे सहयोगी वनता है। आपके जीवन मे समता और समर्पण का एक रूप देखने को मिला है, आप इसे उत्तरोत्तर विकसित करती जाए। संघ हमारे लिए बहुत वडा आलम्वन है। संघपति की कृपा-दृष्टि हमारा जीवन है। क्षमा,

निर्लोभता, ऋजुता और मृदुता जीवन को उन्नत बनाने वाले गुण हैं। ध्यान और स्वाध्याय के अभ्यास से ये गुण विकसित होते है। आप 'संपिक्खए अप्प-गमप्पएण' आत्मा से आत्मा को देखो। इस आर्षवाणी का अपने जीवन मे प्रयोग करें। विशेप चित्त-समाधि रखे। मातु श्री की सेवा मे रहकर विशेप आनन्द का अनुभव करे।

—'कनकप्रभा'

६. साध्वीश्री सुन्दरजी ने सं० २०३२ का चातुर्मास मातु.श्री वदनांजी के सान्निध्य मे बीदासर (अस्थायी समाधि-केन्द्र)[1] किया। सं० २०३३ का चातुर्मास साध्वी लाडाजी (६१०) 'लाडनूं' के साथ श्रीडूगरगढ मे किया। चातुर्मास के पश्चात् साध्वी सुन्दरजी ने गुरुदेव के दर्शन किये।

उस वर्ष फाल्गुन शुक्ला २ को 'कालू जन्म-शताव्दी समारोह' ताल छापर मे मनाया गया। साध्वी सुन्दरजी आचार्यश्री की सेवा मे उपस्थित थी। उस समय आचार्यप्रवर ने बीदासर मे स्थायी रूप से समाधि-केन्द्र की स्थापना की। समाधि-केन्द्र मे प्रविष्ट होने वाली सर्व प्रथम साध्वी सुन्दरजी थी।[2] फिर समाधि-केन्द्र का स्थायित्व हो गया। अनेक सिंघाडवध साध्वियो ने वहा रहकर परम समाधि का अनुभव किया। आचार्यप्रवर समाधि-केन्द्र मे स्थित साध्वियो की सेवा-सुश्रूषा तथा क्षेत्र की सभाल के लिए प्रतिवर्ष एक सिंघाडा वहां भेजते हैं। आचार्यप्रवर के उर्वर मस्तिष्क की सूझ-बूझ का यह सुन्दरतम परिणाम है।

छापर से विहार करते समय साध्वीश्री सुन्दरजी ने आचार्यप्रवर से निवेदन किया—'मैं आजीवन एकातर तप का सकल्प करना चाहती हूं।' आचार्यश्री ने पूछा—'तुम कव से एकातर तप कर रही हो?' साध्वीश्री ने कहा—'स० २०१२ से चल रहा है।' आचार्यश्री ने आश्चर्य करते हुए फर-

१ आचार्यप्रवर ने प्रयोग रूप में अस्थायी समाधि-केन्द्र का रूप दिया। उस वर्ष उसमे रहने वाली निम्नोक्त साध्वियां थी :—१. सुन्दरजी, २ चाद-कंवरजी (मोमासर), ३. गणेशांजी (लाडनू), ४. भीखाजी (श्रीडूगर-गढ), ५ केशरजी (राजलदेसर), ६. मनोहराजी (लावा सरदारगढ)।

२. उस वर्ष अन्य सिंघाड़े थे—साध्वी हुलासांजी (सिरसा), मनोहरांजी (सुजानगढ), इन्द्रूजी (मोमासर)।

(वि० सं० २०३२ पावस-प्रवास पृ० ११)

माया—'अच्छा इक्कीस वर्ष हो गये, तब तो तुम तपस्विनी बन गई।' उस दिन से सभी उन्हे तपस्विनी नाम से पुकारने लगे।

आचार्यप्रवर ने विशेष परिस्थिति के अतिरिक्त उन्हें आजीवन एकातर तप करने का सकल्प दिला दिया। उससे पूर्व साध्वीश्री पारणे के दिन एक विगय लेती थी। आचार्यश्री ने निर्देश देते हुए कहा—'तपस्या बहुत मुश्किल से होती है, इसलिए और विगय भी काम मे ले लिया करो।' तब से वे एक से अधिक विगय का प्रयोग करने लगी।

समाधि-केन्द्र बीदासर मे पहुचते ही साध्वीश्री ने बेले-बेले की तपस्या चालू कर दी। साथ-साथ विशेष रूप से समभाव-साधना का अभ्यास करने लगी। सं० २०३७ मे वहा तपस्विनी साध्वीश्री हुलासाजी (७५६) 'सिरसा' थी, जो बेले-बेले तप कर रही थी। अतः लोग दोनो तपस्विनी साध्वियो को ब्राह्मी और सुदरी की जोड़ी कहकर सबोधित करने लगे।

साध्वीश्री सुन्दरजी समाधि-केन्द्र मे लगभग छह साल (स० २०३२, २०३४ से २०३७ तक) रही। महावीर-जयती के दिन आचार्यश्री ने साध्वीश्री सुन्दरजी को चाडवास जाने का आदेश दिया। साध्वीश्री ने उसे सहर्ष स्वीकार किया और वैशाख कृष्णा ७ को विहार कर वैशाख कृष्णा ११ को सानन्द चाड़वास पहुंच गई। तपस्विनी साध्वी के स्थायी प्रवास को पाकर चाडवास का श्रावक-श्राविका समाज फूल उठा।

(जीवनी से)

७. आचार्यप्रवर का समय-समय पर चाडवास पदार्पण होता रहा। साध्वीश्री गुरुदेव के दर्शन, सेवा का लाभ लेकर अत्यधिक-आनदानुभूति कर अपने भाग्य की सराहना करती।

सं० २०४० के फाल्गुन महीने मे आचार्यप्रवर चाडवास पधारे। साध्वीश्री के लिए वह अन्तिम सेवा का अवसर था, क्योकि उन्होने बीस साल की उम्र मे यह सकल्प कर लिया था कि मैं अस्सी साल की अवस्था के बाद आजीवन अनशन ग्रहण करूगी। उस समय साध्वीश्री ने आचार्यप्रवर से तेले-तेले तप स्वीकार किया।

आचार्यप्रवर ने साध्वीश्री को अन्तिम शिक्षा फरमाते हुए एक सार गर्भित पत्र लिखकर प्रदान किया, वह इस प्रकार है—

'अर्हम्'

चाड़वास

फाल्गुन कृष्णा १०, स २०४०

साध्वी शिष्या सुन्दरजी !

थे तपस्या करो हो । और ईं वर्ष ने आखिरी वर्ष मानकर चालो हो। अपश्चिम मारणांतिय संलेखना रो संकल्प-सो कर राख्यो है। बड़ो भयंकर काम है। मौत रे सामने मंडणो है। आत्मार्थी जीव ही इस्यो काम करणे सके है। धन्य है। पर संलेखना स्यूं पहली कषाय री उत्तेजना री संलेखना जरूरी है। बीस्यूं संलेखना रो आनन्द दूणो बढ ज्यावै। अबै थे विशेष साव-धानी, जागरूकता राख कर बिल्कुल कषाय विजय कर लीज्यो और संलेखना रो मानसिक संकल्प दृढ राखीज्यो। पल-पल अप्रमाद री स्थिति में रहीज्यो। सज्झाय-जप रो अभ्यास पूरो-पूरो राखीज्यो। कोई रे प्रति ऊंची-नीची भावना मती राखीज्यो। समभाव री, समता री भावना स्यूं आत्मा ने ज्यादा स्यूं ज्यादा भावित राखीज्यो। और विशेष कांई लिखां, मानसिक सम्पूर्ण समाधि स्यूं संलेखना री साधना करीज्यो। परिणामा री श्रेणी वढती-चढ़ती राखीज्यो। शेष शुभकामना।

—आचार्य तुलसी

युवाचार्यश्री पड़िहारा से वापस छापर पधारे तब साध्वी भीखाजी वहां दर्शनार्थ गई। उस समय साध्वी सुन्दरजी को पत्र दिया वह इस प्रकार है—

'अर्हम्'

छापर

२०४० फाल्गुन शुक्ला ८

आत्मा और शरीर की भिन्नता का अनुभव करना ही सही अर्थ मे अनशन है। अनशन के समय ऐसी तैयारी करनी जरूरी है।

तैयारी का मतलब वैसे मन का निर्माण। कषाय शांत, राग-द्वेष की अल्पता, बाहर की तरफ ध्यान कम, सारा ध्यान अपने भीतर की ओर। इस प्रकार की तैयारी के साथ किया जाने वाला अनशन आत्म-विकास का हेतु बनता है।

—युवाचार्य महाप्रज्ञ

महाश्रमणी साध्वी-प्रमुखाश्री ने छापर मे पत्र दिया, वह इस प्रकार है—

'अर्हम्'

फाल्गुन कृष्णा १३ छापर

आदरास्पद साध्वीश्री सुन्दरजी (मोमासर) !

आपका सकल्प महान् है। आपका मनोवल मजवूत है। अव आपको पूर्ण रूप से अन्तर्मुखी वनना है। 'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं' आत्मा से आत्मा को देखें। आत्मा को देखते-देखते ही आत्मा उपलव्ध हो सकती है। वाह्य जगत् की सव प्रवृत्तियो से हटकर आत्मलीन वनें। जिस सिंहवृत्ति से आपने संकल्प किया है, उसी सिंहवृत्ति से उसका पार पाना है। संकल्प की सफलता के लिए शत-शत शुभकामनाएं।

—कनकप्रभा

मुनि चौथमलजी (४७३) 'सरदारशहर' साध्वीश्री सुन्दरजी के—संसारपक्षीय भतीजे थे और मुनि अग्रचंदजी (५४१) 'गादाणा' के सिंघाडे मे विहार करते थे। वे आचार्यप्रवर के आदेशनुसार मुनि अगरचदजी के साथ चाड़वास आये और लगभग डेढ़ महीने रहकर साध्वीश्री को सेवा करवाई।

साध्वीश्री सलेखना-तप, स्वाध्याय, ध्यान, मौन आदि विशिष्ट साधना करती हुई अपने कृत संकल्प को सम्पन्न करने के लिए प्रतिपल जागरूक रहती। अन्तिम वर्ष कठोर तप करने के कारण उनका शरीर क्रमश: क्षीण होता गया, पर मनोवल उत्तरोत्तर वढ़ता गया। आखिर में १७ दिन की तपस्या की। वैशाख शुक्ला ११ को पारणा कर वेले का संकल्प किया। वेले के दिन वैशाख शुक्ला १३ को ८ वजे शारीरिक स्थिति कमजोर देखकर उन्होने आजीवन अनशन कर लिया। लगभग वीस मिनिट के वाद ऊर्ध्व भावो के साथ पंडित-मरण प्राप्त कर लिया। साठ वर्ष पूर्व जो अनशन का संकल्प (८० वर्ष की आयु के वाद) लिया था[1]। उससे छह महीने पहले अपना कार्य सिद्ध कर अपने लक्ष्य को पूर्ण कर लिया।

साध्वीश्री के त्याग-तप-प्रधान जीवन का चतुर्विध सघ मे अच्छा प्रभाव पड़ा।

---

१. अनशन की अन्तिम अवधि स० २०४१ कार्तिक शुक्ला ६ थी।

८ साध्वीश्री भीखाजी दीक्षित होने के पश्चात् २१ साल तक साध्वीश्री मजनाजी (८७८) 'बीकानेर' के सिंघाड़े मे रही। तत्पश्चात् आचार्यप्रवर ने उन्हें साध्वीश्री सुन्दरजी की सेवा मे रखा। वे उनके साथ १७ वर्षों तक बड़ी विनम्रता से रही। तन्मय होकर उनकी अच्छी परिचर्या की और उन्हे सभी तरह से सहयोग दिया। अन्य साध्विया—पूनाजी (१०७३) 'सुजानगढ' कानकवरजी (११६१) 'चाडवास' और प्रभाश्री जी (१३५९) 'वाव' थी। सभी तपस्विनी की चित्त-समाधि मे वहुत-वहुत सहयोगिनी वनी। साध्वी मनोहराजी (१०७८) 'सरदारशहर' ने अस्वस्थ होते हुए भी साध्वीश्री सुन्दरजी की लगभग ८ वर्ष सेवा की।

साध्वीश्री मनोहराजी (८७१) 'सुजानगढ' दो साल (स० २०३८, ४०) और साध्वी सुन्दरजी (१०००) 'सरदारशहर' कुछ महीने साध्वीश्री के साथ रहकर यथाशक्य उनकी सहायिका वनी।

चाडवास के श्रावक-श्राविकाओ ने तपस्विनी की गहरी निष्ठा से सेवा की। उन्होने अपना परम सौभाग्य माना कि आचार्यप्रवर ने ऐसी तपः साधिका का चाड़वास मे स्थायी प्रवास करवा कर हमारे पर महती कृपा की। साध्वीश्री के अन्तिम समय मे चाड़वास के श्रावक मोहनलालजी दूगड़ और भवरलालजी वैद ने साडवा मे विराजित आचार्यप्रवर के दर्शन कर निवेदन करते हुए कहा—'गुरुदेव ! साध्वीश्री को आपके दर्शनो की प्रवल उत्कठा है।' आचार्यप्रवर ने फरमाया—'दर्शन तो उनके घट मे ही हैं।' श्रावक वापस पहुंचे तव साध्वीश्री को होश नही था अतः गुरुदेव के मुखारविंद के शब्दो को वे नही सुन सकी, साथ की साध्वियो ने सुना।

९ साध्वीश्री के दिवंगत होने के पश्चात् आचार्यप्रवर ने उनके सम्वन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—

साध्वी सुन्दरजी वर्षो तक साध्वी हुलासाजी के साथ रही। वह सेवाभावी साध्वी थी। गुरु के वचनो पर उनके मन में गहरा विश्वास था। बाईस वर्षो तक उन्होने एकान्तर तप किया। सात वर्षो से वे वेले-वेले पारणा कर रही थी। इन दिनो तेले-तेले पारणा कर रही थी। दो दिन पूर्व उन्होने १७ दिनो की तपस्या सम्पन्न की थी। अचानक दो दिनो की तपस्या मे २१ मिनट के संथारे मे साध्वीजी ने चाडवास की धरती पर पडित-मरण प्राप्त कर लिया। अपनी दीर्घ तपस्या के द्वारा साध्वी सुन्दरजी ने आत्म-कल्याण के साथ-साथ सघ की वहुत प्रभावना की है। साथ मे रहने वाली

साध्वियो और चाड़वास के श्रावक-श्राविकाओं ने अच्छी सेवा की और उनके मन मे समाधि उपजाई, यह प्रसन्नता की वात है। चाड़वास एक तपोभूमि है। वहां अनेक साधु-साध्वियो ने दुर्धर-तप तपा है। तपस्वी साधु-साध्वियों की समाधि-भूमि मे साध्वी सुन्दरजी ने अपना नाम और जोड़ दिया, यह चाड़वास के लिए गौरव की वात है।

परमाराध्य आचार्यप्रवर ने स्वर्गीया साध्वीश्री के संवध मे ये पद्य भी फरमाए—

तपसण मोमासर री सुन्दरजी सती सयाणी।
बाईस वरष एकान्तर तप तन-मन दृढ़ ठाणी॥
फिर सात वरष वेले-वेले नित कियो पारणो।
वड़ भाग मिल्यो भैक्षव-शासन भव-सिन्धु तारणो॥
इकचालीसे भाद्रव संलेखन करणी धारी।
वैसाख महीने में ही निज आतम उद्धारी॥
शुभ शांत वास पुर चाड़वास आछो दिन आयो।
चढ़ते परिणामे पंडित-मरण महासती पायो॥

साध्वी भीखांजी (११७१) 'श्रीडूंगरगढ़' ने तपस्विनी साध्वीश्री सुन्दरजी की संक्षिप्त में जीवनी लिखकर उनके विशिष्ट साधना-प्रधान जीवन की गौरव-गाथा प्रस्तुत की। उसके तथा ख्यात आदि के आधार से उपर्युक्त विवरण लिखा गया है।

८४६।८।१२१ साध्वीश्री जसूजी (गंगाशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८१-२००८)

छप्पय

सती 'जसू' का स्वजन-स्थल गाया गंगाशहर।
दीक्षा-स्थल क्षेत्राग्रणी था सरदारशहर।
था सरदारशहर नहर में गण की आई।
पाकर गुरु की महर लहर लम्बी हो पाई[1]।
बीते तप-जप से सुखद दिन के आठों प्रहर[2]।
सती 'जसू' का स्वजन-स्थल गाया गंगाशहर ॥१॥

सोरठा

शेष आठ की साल, आश्विन सित वारस दिवस।
प्राप्त कर गई काल, 'दौलतगढ़' मेवाड़ में[3] ॥२॥

१. साध्वीश्री जसूजी की ससुराल गंगाशहर (स्थली) के डागा (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही सेठिया गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९५९ आषाढ शुक्ला २ को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम हीरालालजी, माता का पांची वाई और पति का जसकरणजी था।

(सा० वि०)

जसूजी ने पति-वियोग के वाद सं० १९८१ माघ शुक्ला १४ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली ९ दीक्षाओं का वर्णन साध्वी जड़ावांजी (८४३) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

२. उन्होने उपवास, वेला आदि इस प्रकार तप किया :—

उपवास	२	३	४	५	६	७	६
९६३	२५	५	६	६	१	१	१

।

(ख्यात)

३. वे सं० २००८ आश्विन शुक्ला १२ को दौलतगढ़ मे दिवंगत हुई।

(ख्यात)

साध्वी-विवरणिका में लिखा है कि 'लकवे' के कारण उनका स्वर्गवास हो गया।

उस वर्ष साध्वी लिछमांजी (९७३) 'सरदारशहर' का चातुर्मास दौलतगढ़, मे था, अतः वे उनके सिंघाड़े में थी।

८४७।८।१२२ साध्वीश्री किस्तूरांजी (गंगाशहर)

(संयम-पर्याय सं० १६८१-२०३१)

छप्पय

कस्तूरी ने भर लिया भारी भरकम रंग।
शक्ति-शालिनी ने वड़ी खोदी शक्ति-सुरंग।
खोदी शक्ति-सुरंग, शहर गंगा की गाई।
परम्परा अनुसार शीघ्र शादी हो पाई।
मिटा विन्दु सिन्दूर का पड़ा रंग में भंग।
कस्तूरी ने भर लिया भारी भरकम रंग॥१॥

झेला दुःख-पहाड़ को स्मृति में आया धर्म।
धारा चली विरक्ति की समझ लिया है मर्म।
समझ लिया है मर्म चरण-निधि पाई सच्ची[1]।
साध्वी 'सुन्दर' पास साधना करती अच्छी।
सेवा दी बहु संघ को जब-जब मिला प्रसंग[2]।
कस्तूरी ने भर लिया भारी भरकम रंग॥२॥

तपस्विनी बन कर वड़ी खीची तप की रेख।
वीती उसमें जिन्दगी तीन भाग में एक।
तीन भाग में एक लेख तो लिखा निराला।
भर पौरुप धृति धार देह से सार निकाला।
ध्यान-मौन-स्वाध्याय का क्रम चलता था संग[3]।
कस्तूरी ने भर लिया भारी भरकम रंग॥३॥

संलेखन-तप के लिए जागृत हुए विचार।
सविनय गुरु-पद में किया अनुनय वारम्वार।
अनुनय वारम्वार मिली अनुमति गुरुवर की।
कर पाई साकार भावना वे अन्दर की।
ज्यों-ज्यों दिन वढ़ने लगे वढ़ती गई उमंग।
कस्तूरी ने भर लिया भारी भरकम रंग॥४॥

संयम-जीवन में रही प्रायः वर्ष पचास ।
अनशन भी तो पा गई दिन पचास सोल्लास ।
दिन पचास सोल्लास स्वर्ग में सती सिधाई ।
दो हजार पर तीस छट्ठ भाद्रव सित आई ।
बड़ा ग्राम तोपाम में जीत लिया है जंग ।
कस्तूरी ने भर लिया भारी भरकम रंग ।।५।।

सती मोहनां आदि ने दिया उन्हे सहयोग ।
पल-पल परम समाधि-हित रखा अधिक उपयोग ।
रखा अधिक उपयोग वढ़ाई शोभा गण की[४] ।
की गुरुवर नें मुक्त प्रशंसा तपाचरण की ।
स्तुति गाता दिल खोलकर सकल चतुर्विध संघ[५] ।
कस्तूरी नें भर लिया भारी भरकम रंग ।।६।।

दोहा

पात्री वर्ष पचास की, विद्यमान है एक ।
लिख पाई 'कृष्णा' सती, उनकी स्मृति में लेख[६] ।।७।।

१. साध्वीश्री किस्तूराजी का जन्म सं० १९६१ (ख्यात मे सं० १९६०) आश्विन कृष्णा ९ को गंगाशहर के भैरूदानजी छाजेड़ के घर हुआ। तेरहवें वर्ष के प्रवेश मे उनका विवाह गंगाशहर मे ही हजारीमलजी दूगड के साथ कर दिया गया। परन्तु विधि के योग से तीन साल वाद ही उनके पति का देहान्त हो गया। वहिन कस्तूरी ने उस असह्य कष्ट को धृतिपूर्वक सहा और साधु-साध्वियो के संपर्क से अपने मन को आश्वस्त किया। धीरे-धीरे धर्म के प्रति अनुरक्ति वढती गई और भौतिक-सुखो से विरक्ति होती गई। २०वे वर्ष के प्रवेश मे उनकी साधुत्व की भावना प्रवल हो गई। गुरु-दर्शन कर दीक्षा के लिए निवेदन किया, पर 'श्रेयासि वहु विघ्नानि' श्रेष्ठ कार्य मे अनेक वाधाएं आती हैं। एक भाई ने आचार्यवर से उनकी शिकायत करते हुए कहा— 'दीक्षार्थिनी वहिन कस्तूरी की आख की ज्योति कम है, अतः वह ईर्या-समिति का सम्यग् पालन कैसे कर सकेगी ?' आचार्यवर ने इस शिकायत पर ध्यान देते हुए अन्य वहिनो को तो साधु-प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे

दिया पर वहिन कस्तूरी को नही दिया। साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी ने जब यह सुना तो उन्होने उसका स्पष्टीकरण करते हुए आचार्यश्री से निवेदन किया—'मैंने इसकी आंख की परीक्षा कर ली है, वर्तमान मे इसे अच्छी तरह दिखाई देता है, भविष्य में यदि कोई स्थिति घटित हो गई तो मैं इसके निर्वाह मे सहयोग करूगी। अतः आप इसे दीक्षा देने की कृपा कराएं।' साध्वी-प्रमुखा के सहयोग से वहिन किस्तूरी का कार्य सफल हो गया। आचार्यवर ने दीक्षा की स्वीकृति प्रदान कर दी।

(निवंध से)

उन्होने पति-वियोग के पश्चात् स० १६८१ माघ शुक्ला १४ को आचार्यश्री कालूगणी के कर-कमलो से सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली ६ दीक्षाओ का वर्णन साध्वी जड़ावांजी (८४३) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. दीक्षित होने के एक महीने वाद ही आचार्यवर ने उन्हे साध्वीश्री सुन्दरजी (६८३) 'तारानगर' के सिंघाड़े मे भेज दिया। लगभग ३८ साल उनके साथ रहकर उन्होंने अपने सयमी-जीवन को विकसित किया। सं० २०१७ मे साध्वी सुन्दरजी के दिवंगत होने पर उनके साथ की साध्वी मोहनांजी (१०५८) 'तारानगर' का सिंघाड़ा हुआ। तव से अन्त तक वे उन्ही के साथ रहीं।

यद्यपि वे विशेष शिक्षा प्राप्त नही कर सकी पर उनमे व्यावहारिक ज्ञान अच्छा था। उनकी अधिक रुचि तपस्या, स्वाध्याय व सेवा-कार्य में रहती थी। जव कभी संघीय-सेवा का अवसर आता तव उसमे आगे रहतीं। सं० १६६३ मे साध्वी रतनांजी को आठ मील तक अन्य साध्वियो के साथ झोली मे बैठाकर लाई। सं० १६६५ मे साध्वी लिछमांजी (५७६) 'लाडनूं' को शिमला से सरदारशहर तक पहुंचाया। साध्वी अजवूजी (६६१) 'गंगापुर' को गेनाणे से लाडनूं तक लाई। आचार्यप्रवर ने उनकी सेवा-भावना से प्रसन्न होकर एक वार ८ वारी वखशीश की थी। साथ की साध्वियो से विशेष सेवा नहीं लेती। प्रायः सेवा देकर ही प्रसन्नता का अनुभव करती। तपस्या करते समय भी अपना कार्य वे स्वयं करती थी।

(निवंध से)

३. तपस्या के प्रति उनका प्रारंभ से ही आकर्षण था। यों कहना

चाहिए कि उनका तपस्या करने में विशेष क्षयोपशम था। उन्होने उपवास से लेकर १९ दिन तक लड़ीवद्ध तप किया। २१ से ३१ दिन तक के ९ थोकड़े किये। सं० २०१० मे उन्होने एकांतर तप चालू किया जो अन्त तक (२२ वर्षो तक) चलता रहा। अनेक कठिनाइयां उपस्थित होने पर भी उसका क्रम नही टूटा। पचास वर्ष के साधुत्व-काल मे प्रायः एक भाग उनका तप में व्यतीत हुआ। पढ़िये तप का विवरण—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
४९६३	२०१	२२	११	१६	२	१	४	१	१	१	१

१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२१	२२	२३	२७
१	१	२	१	१	१	१	१	१	१	१

२८	२९	३०	३१
१	१	१	१

।

तप के कुल दिन ५९८६ हुए। जिनके १६ वर्ष, ७ महीने और १६ दिन होते हैं।

तपस्या के साथ-साथ वे स्वाध्याय भी करती। १० वर्षो से प्रतिदिन पाच घटे मौन भी रखती थी।

(निवध से)

४. सं० २०३० का चातुर्मास साध्वीश्री मोहनांजी का संगरूर था। उस चातुर्मास मे साध्वी किस्तूराजी का मन संलेखना-तप करने के लिए उत्कंठित हो गया। उन्होने साध्वी मोहनांजी से भी कहा, पर वे उनकी भावना को 'पीछे कर लेना' कह कर टालती गई। चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री के भिवानी मे दर्शन हुए तव उन्होने अवसर देखकर एक दिन गुरुदेव से निवेदन किया—'मुझे आप लम्वी तपस्या (संलेखना) करने की स्वीकृति प्रदान करे।

आचार्यश्री—'अभी तपस्या क्यो करती हो? क्या अनाज खारा लगता है?'

साध्वीश्री किस्तूरांजी—'मेरा शरीर कमजोर हो गया है, आख की ज्योति कमजोर हो गई है, अतः मैं संलेखना-तप करना चाहती हूं।'

उनकी तीव्र भावना देखकर आचार्यप्रवर ने फरमाया—'तुम्हारी इच्छा

हो तब कर लेना।'

गुरुदेव का आदेश पाकर उनका मन प्रफुल्लित हो गया। वे अवसर की प्रतीक्षा करने लगी।

आचार्यश्री के आदेशानुसार साध्वी मोहनांजी विहार कर हिसार पहुंची। वहां साध्वी किस्तूरांजी ने पन्द्रह दिन का तप किया।[1] फिर सं० २०३१ का चातुर्मास करने 'तोषाम' (हरियाणा) पहुंची। वहा आषाढ शुक्ला पूर्णिमा (तेरापंथ स्थापना-दिवस) को साध्वी किस्तूरांजी ने तपस्या प्रारंभ की। क्रमशः दिन बीतने लगे। समूचा श्रावण और भाद्रव का कृष्ण-पक्ष बीत गया। सवत्सरी-पर्व निकट आ गया। तप के ४६ वें दिन उन्होने केशलुंचन करवाया। ७० वर्ष की अवस्था व शरीर की कमजोरी होने पर भी उनका आत्म-बल बढ़ता जा रहा था। तपोबल से चेहरा खिल रहा था।

संवत्सरी के दिन उनके ४९ दिन का उपवास था। तब तक उनकी तपस्या को जनता के सामने प्रकाश में नही लाया गया था क्योकि वे नाम से दूर रहना चाहती थी। फिर भी आवश्यक समझकर संवत्सरी के दिन प्रकट कर दिया कि आज साध्वी किस्तूरांजी के ४९ दिन की तपस्या है। फिर तो तपस्या की खबर शहर मे फैलने लगी। दिन भर लोगों के आने का ताता जुड गया। हर जाति के लोग तपस्विनी साध्वी के दर्शन कर अपने को धन्य मानते। दूसरे दिन भी भाई-बहनो का काफी आवागमन रहा। सभी उनकी

---

१. उक्त १५ दिन की तपस्या के पांचवें दिन से साध्वीश्री को मिथ्यात्वी देव (यक्ष) उपसर्ग देने लगा। जिससे वे कभी मारपीट करने लग जाती, कभी अत्यधिक हंसने लग जाती, कभी साध्वियो की मुख-वस्त्रिका खोल देतीं तथा खाने के लिए मिठाई मांगती। उस समय साध्वी मोहनकुमारीजी उन्हे 'उवसग्गहरं स्तोत्र' एव 'चइत्ता भारहवासं' आदि पद्य सुनाती तो वे मनाही करतीं। इस प्रकार यक्ष ने विविध प्रकार के कष्ट दिये।

जिस समय यक्ष का उपसर्ग नही होता तब वे कहती—'पात्र आदि सामान मेरे पास मत रखना, तुम भी यहां मत सोना। मुझे यक्ष कहता है कि तुम तपस्या छोड़ दो, संयम व्रत को तोड़ दो, अन्यथा बहुत भयंकर कष्ट दूगा।'

कुछ दिनो तक यह क्रम चला पर साध्वीश्री का मनोबल इतना दृढ़ था कि वे कभी भी कष्टो से नही घबराई और उन्हें समभावो से सहन किया। आखिर तपश्चर्या के प्रभाव से सारा उपद्रव समाप्त हो गया।

दीर्घ तपः साधना से आश्चर्य-चकित थे ।

तप के पचासवें दिन तीन वजकर २१ मिनिट पर उन्होंने तिविहार और ४ वजकर २१ मिनिट पर चौविहार संथारा किया । रात के ११ वजकर २१ मिनिट पर देह-त्याग कर स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया ।[1] वह दिन सं० २०३१ भाद्रव शुक्ला ६ का था । अष्टमाचार्य कालूगणी का भी उसी दिन स्वर्गवास हुआ था । साध्वीश्री किस्तूरांजी को भी सौभाग्य से वही शुभ दिन मिला ।

उनकी शव-यात्रा का जुलूस मंगल-गीतों व जयनारों के साथ धूमधाम से निकाला गया । लगभग ६,७ हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए । विधिवत् दाह-संस्कार किया गया । उस दिन शहर की सारी दुकानें वंद रही ।

तेरापंथ की तपस्विनी साध्वियों की शृंखला में एक कडी और जोड़कर साध्वीश्री किस्तूरांजी सदा के लिए अमर वन गई । साध्वी मोहनांजी आदि ने तपस्विनी साध्वी को पूर्ण सहयोग देकर अपना कर्त्तव्य निभाया और भिक्षु-शासन की गरिमा को वढ़ाया ।

(निवंध से)

५. उनकी स्मृति मे आचार्यश्री तुलसी ने एक दोहा फरमाते हुए जो उद्गार व्यक्त किये वे इस प्रकार हैं—

किस्तूरां करणी करी, तपोयोग सुविशेष ।
दिन पचास संलेखना, अंतिम अनशन शेष ।।

साध्वीश्री किस्तूरांजी ने वि० सं० १९८१ में दीक्षा ग्रहण की थी ।

---

१. ज्योतिष शास्त्रों मे अंकों का वडा महत्त्व है । अंक के आधार पर कहा जा सकता है कि तुम्हारे जीवन की विशेष घटनाएं इस अंक वाली तारीख पर घटेंगी । साध्वीश्री किस्तूराजी के जीवन मे ज्योतिष संवंधी किस अंक का प्रभाव रहा, यह ज्योतिष का विषय है । परन्तु उनके जीवन की कतिपय घटनाओं में अंतिम अंक एक ही रहता है यह स्पष्ट है—
जन्म वि० सं० १९६१ ।
तिविहार अनशन ३ वजकर २१ मिनिट पर ।
चौविहार अनशन ४ वजकर २१ मिनिट पर ।
स्वर्गवास वि० स० २०३१ भाद्रव शुक्ला ६ को ११ वजकर २१ मिनिट पर ।
तिविहार, चौविहार अनशन तथा देह-त्याग ये तीनों २१-२१ मिनिट पर हुए इसलिए स्पष्ट है उनका अन्तिम जीवन २१ ही रहा ।

काफी लंबे समय तक सुन्दरजी (वड़ा) के साथ रही। अच्छी तपस्या की। इस वर्ष उनकी संलेखना करने की इच्छा हुई। मैंने उनकी भावना देखते हुए अनुमति दे दी। ५० दिनो की लम्बी तपस्या करने के बाद तोपाम में उन्होने अनशन पूर्वक समाधि-मरण प्राप्त किया। साध्वी मोहनांजी, जिनके साथ मे इस वर्ष चातुर्मास व्यतीत कर रही थी, ने साधना मे अच्छा सहयोग दिया। यही हमारे सघ की विधि है। मैं दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी शुभ कामना प्रकट करता हूं।

साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी ने साध्वीश्री के विषय मे निम्नोक्त दो दोहे फरमाये—

आत्मलीन स्वाध्यायरत, तप में भी संलग्न।
साध्वीश्री कस्तूरांजी, रही स्वयं में मग्न।।

तप को जीवन मानती, था तप में अनुराग।
अनशन-पूर्ण समाधि में, था जीवन वेदाग।।

६. साध्वीश्री को दीक्षित होते ही जो पात्र-पात्रिकाए मिली थी उनमे से एक पात्री को उन्होने पचास साल तक सुरक्षित रखकर अपने चातुर्य का उदाहरण प्रस्तुत किया।

साध्वीश्री कृष्णाकुमारीजी (१३७७) 'पद्मपुर' ने दिवगत साध्वी श्री के संबंध मे एक निवध लिखा, उसमे उन्होने साध्वीश्री की विविध विशेषताओं पर सुन्दर प्रकाश डाला। निबंध जैन भारती अंक २३, ८ जून १९७५ में प्रकाशित हुआ है। उपर्युक्त अधिकाश विवरण उसके आधार से लिखा गया है।

८४८।८।१२३ साध्वीश्री सिरेकंवरजी (भादरा)

(संयम-पर्याय सं० १९८१-१९९७)

छप्पय

सिरेकंवर साध्वी बनी अपने पति के संग।
नव यौवन में विरति का नया चढ़ गया रंग।
नया चढ़ गया रंग भादरा-वासी परिजन।
गोत्र बैद सुप्रसिद्ध धर्म से जागृत जीवन।
चार व्यक्ति दीक्षित हुए घर में बढ़ी उमंग[1]।
सिरेकंवर साध्वी बनी अपने पति के संग ॥१॥

दोहा

सोलह वार्षिक साधना, कर पाई पर्याप्त।
अग्रगामिनी रूप में, चतुर्मास दो प्राप्त[2] ॥२॥

माघ कृष्ण तिथि पंचमी, साल नवति पर सात।
चंदेरी में लिख गई, चरमोत्सव की ख्यात[3] ॥३॥

१. साध्वी सिरेकंवरजी की ससुराल भादरा (स्थली) के बैद (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर नोहर के नखत गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९६२ में हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम लाभूरामजी और माता का चादावाई था।

(सा० वि०)

सिरेकंवरजी ने १९ वर्ष की अवस्था मे अपने पति सुगनचंदजी (४४५) के साथ सं० १९८१ माघ शुक्ला १४ को पूज्य कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन कुल ९ दीक्षाएं हुईं, उनका वर्णन साध्वीश्री जड़ावांजी (८४३) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

उनकी सास साध्वीश्री चंपाजी (८१७) और देवर मुनिश्री सूरज-

मलजी (४१०) सं० १९७७ मे दीक्षित हो चुके थे। फिर इनके (सपति) दीक्षित होने से एक परिवार के चार व्यक्ति संघ के सदस्य हो गये।

२. साध्वी सिरेकंवरजी का साधनाकाल सोलह वर्षों का रहा। दो वर्ष वे अग्रगामिनी रूप मे रही। सं० १९९६ का सिसोदा और १९९७ का पीपली चातुर्मास किया।

(चा० ता०)

३. सं० १९९७ माघ कृष्णा ५ को लाडनूं मे उनका स्वर्गवास हुआ।

(ख्यात)

साध्वी-विवरणिका मे स्वर्गवास-तिथि माघ कृष्णा ७ है।

उस वर्ष लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे साध्वी सुन्दरजी (६८३) 'तारानगर' थी।

(चा० ता०)

८४६।८।१२४ साध्वीश्री नाथांजी (चाड़वास)

(संयम-पर्याय १९८१-२०४०)

दोहा

चाड़वास जन्म-स्थली, चाड़वास ससुराल।
चाड़वास में ही मिली, संयम की वरमाल ॥१॥

श्रमणी नाथां नाम से, बहिन गणेशां साथ।
भैक्षव-गण में आ गई, भेटे शासन-नाथ ॥२॥

श्रेष्ठ रामनवमी दिवस, संवत् अस्सी-एक।
नये वर्ष की आदि में, नये लिख दिये लेख[२] ॥३॥

सेवा गुरुकुल-वास की, मिली साल तक अष्ट।
सती गणेशां साथ में, रही शेष तक स्पष्ट[३] ॥४॥

यथाशक्य तप आदि कर, खीचा तन से सत्त्व।
जोड़ा संयम से गहन, साठ साल एकत्व[३] ॥५॥

दो हजार चालीस की, नवमी कृष्णा माघ।
राजलदेसर में किया, नश्वर तन का त्याग[४] ॥६॥

१ साध्वीश्री नाथांजी का जन्म सं० १९५९ मृगसर कृष्णा १२ को चाड़वास (स्थली) के भटेरा (ओसवाल) गोत्र मे हुआ। उनके पिता का नाम तिलोकचंदजी और माता का सोनांदेवी था। यथासमय नाथांजी का विवाह चाड़वास मे ही हुकमचंदजी वैद (ओसवाल) के साथ कर दिया गया। समयान्तर से उनका देहान्त होने पर नाथांजी का मन संसार से विरक्त हो गया।

(साध्वी-विवरणिका)

तत्पश्चात् उन्होने २२ साल की अवस्था मे अपनी छोटी बहिन कुमारी कन्या गणेशाजी (८५०) के साथ सं० १९८१ चैत्र शुक्ला ९

(रामनवमी) को आचार्यवर कालूगणी के हाथ से चाड़वास में संयम ग्रहण किया।[1]

(ख्यात)

२. साध्वीश्री दीक्षित होने के बाद लगभग ६ मास गुरुदेव की सेवा में रही। सं० १९८९ मे साध्वी गणेशांजी का सिंघाड़ा हुआ तब से उनके साथ विहार करती रही। उन्होंने दशवैकालिक सूत्र तथा १५ थोकड़े याद किये। सं २०३७ मे वृद्धावस्था एवं अस्वस्थता के कारण राजलदेसर में स्थायी वास कर दिया।

३. उन्होंने अपनी शक्ति मुताबिक तप, स्वाध्याय आदि का लाभ लिया। उपवास मे १० दिन तक लड़ीबद्ध तप किया। उनकी सं० २०२५ तक की तपस्या इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६
१६६३	१३२	२८	२४	९	३

। तप के कुल दिन २२००, जिनके ६ वर्ष, १ महीना, १० दिन होते हैं।

(परिचय पत्र)

४ उनका स्वर्गवास सं० २०४० माघ कृष्णा ९ को राजलदेसर मे हुआ।

उस समय साध्वी कमलूजी (११०४) 'उज्जैन' वहां थीं। उन्होंने तथा अन्य सभी साध्वियों ने साध्वी नाथांजी की रुग्णावस्था के समय अच्छी परिचर्या की।

(ख्यात)

---

१. दो दीक्षा चाड़वास सुद चेत महीनैं,
नाथां रु गणेशा भगिनी चिन्मय चीनैं।

८५०।८।१२५ साध्वीश्री गणेशांजी (चाड़वास)

(दीक्षा सं० १९८१, वर्तमान)

'२६वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री गणेशांजी चाडवास (स्थली) निवासी तिलोकचंदजी भटेरा (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १९७० श्रावण शुक्ला २ को हुआ। माता का नाम सोनाबाई था।

वैराग्य—साधु-साध्वियो के उपदेश से वैराग्य भावना हो गई।

दीक्षा—गणेशांजी ने ११ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) मे अपनी बडी बहन नाथांजी (८४९) के साथ स० १९८१ चैत्र शुक्ला ९ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से अपनी जन्मभूमि चाडवास मे दीक्षा स्वीकार की।

गुरुकुल-वास—दीक्षित होने के बाद वे लगभग ९ साल कालूगणी की सेवा मे रही।

शिक्षा—उन्होने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, सूत्रकृतांग तथा बृहत्-कल्प सूत्र, लगभग २५ थोकड़े, जैनसिद्धांत-दीपिका, शारदीया-नाममाला, भक्तामर आदि कठस्थ किए।

कला—लिपिकला का अभ्यास कर लगभग १५ सूत्र तथा कुछ व्याख्यान आदि लिपिबद्ध किए।

तपस्या—स० २०४१ तक का तप इस प्रकार है—

उपवास	३	४	५	७	८
३००	६	७	६	१	१

वे दस साल से प्रतिदिन दो घंटे मौन रखती है।

विहार—आचार्यश्री कालूगणी ने सं० १९८९ मे साध्वी गणेशाजी का सिंघाडा बनाया। उन्होने अनेक क्षेत्रो मे विहरण कर निम्न स्थानो मे चातुर्मास किए—

स० १९९०	ठाणा ५	टमकोर
सं० १९९१	,, ५	ईडवा
स० १९९२	,, ५	पहुना

सं० १९९३	ठाणा ५	उदासर
स० १९९४	,, ५	जसोल
स० १९९५	,, ४	कानोड़
सं० १९९६	,, ५	पुर
सं० १९९७	,, ५	केलवा
सं० १९९८	,, ५	रतननगर (थेलासर)
सं० १९९९	;: ५	डीडवाना
सं० २०००	,, ५	नाल
सं० २००१	,, ६	सांडवा
सं० २००२	,, ५	टमकोर
सं० २००३	,, ५	आडसर
सं० २००४	,, ५	भादरा
सं० २००५	,,	सांडवा
सं० २००६	,, ५	लाडनूं (साध्वीश्री भीखांजी (७८३) 'बीदासर' के साथ)
सं० २००७	,,	चूरू (साध्वीश्री सोनांजी (८२५) 'साजनवासी' के साथ)
सं७ २००८	,,	राजलदेसर (साध्वीश्री सोनांजी (८२५) 'साजनवासी' के साथ)
स० २००९	,,	लूनकरणसर (साध्वीश्री लिछमां जी (८०१) 'मोमासर' के साथ)
सं० २०१०	,,	गड़वोर (साध्वीश्री रायकंवर जी (९४५) 'रतनगढ़' के साथ)
सं० २०११	,, ५	भादरा
सं० २०१२	,, ४	छातर
सं० २०१३	,, ५	रीछेड

सं० २०१४	ठाणा	५	समदड़ी
सं० २०१५	,,	५	लूनकरणसर
स० २०१६	,,	४	सांडवा
सं० २०१७	,,	४	पीपाड़
सं० २०१८	,,	४	जावद
त्रं० २०१९	,,	५	सायरा
सं० २०२०	,,	४	विष्णुगढ
सं० २०२१	,,	५	थामला
सं० २०२२	,,	५	मोखणुदा
सं० २०२३	,,	५	नान्देशमा
सं० २०२४	,,	४	लूनकरणसर
सं० २०२५	,,	५	चाणोद
सं० २०२६	,,	५	सोजतरोड
सं० २०२७	,,	५	खीवाड़ा
सं० २०२८	,,	५	भगवतगढ़
सं० २०२९	,,	५	आषाढा
सं० २०३०	,,	५	पचपदरा
सं० २०३१	,,	४	काणाणा
सं० २०३२	,,	५	कालू
सं० २०३३	,,	४	खीवाड़ा
सं० २०३४	,,	४	कंटालिया
सं० २०३५	,,	४	सिरियारी
सं० २०३६	,,	४	ईड़वा

(चातुर्मासिक तालिका)

स्थिरवास—वृद्धावस्था के कारण वे सं० २०३७ से राजलदेसर में स्थिरवास कर रही हैं।

८५१।८।१२६ साध्वीश्री हीरांजी (सुजानगढ़)

(संयम-पर्याय सं० १६८१-२०१२)

दोहा

'गढ़ सुजान' की वासिनी, हीरां सती पवित्र।
'गढ़ सुजान' में पा गई, गुरु-कृपया चारित्र[1] ॥१॥
रही साल इकतीस तक, संयम में सानंद।
आजीवन पीती रही, तप-जप का मकरन्द ॥२॥
'लू' लगने से शेष में, प्राप्त कर गई काल।
चंदेरी के चमन में, सुयश चढ़ाया भाल[2] ॥३॥

१. साध्वीश्री हीरांजी की ससुराल सुजानगढ (स्थली) के भूतोड़िया (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही राखेचा गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९६० चैत्र कृष्णा १० को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम अमीचंदजी, माता का हुलासीबाई और पति का केशरीचंदजी था।

(सा० वि०)

हीराजी ने पति-वियोग के पश्चात् साध्वीश्री संतोकांजी (८५२) के साथ ज्येष्ठ कृष्णा ११ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से सुजानगढ़ मे दीक्षा स्वीकार की।[1]

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२ अंत मे 'लू' लगने के कारण उनका शरीर शिथिल और अस्वस्थ हो गया (साध्वी-विवरणिका)। आखिर सं० २०१२ (चैत्रादि २०१३) प्रथम ज्येष्ठ कृष्णा ६ को 'लाडनू' मे वे दिवंगत हो गयी।

(ख्यात)

उस समय लाडनू 'सेवाकेन्द्र' मे साध्वीश्री टमकूजी (८५६) 'लाडनूं' थी।

(चा० ता०)

---

१. हीरां संतोकां कीन्ही आत्म-विशोही।
दसमी आपाढ़ लाडनूं संवली सूझी ॥

(कालू उ० ३ ढा० १६ गा० ९)

८५२।८।१२७ साध्वीश्री संतोकांजी (पड़िहारा)

(संयम-पर्याय सं० १९८१-२००४)

दोहा

पड़िहारा की वासिनी, हीरावत परिवार।
संयम-पथ पर आ गई, संतोका सविचार[1] ॥१॥
संवत्सर तेईस तक, चलती रही नितांत।
लक्ष्य पूर्ण अपना किया, भर समता-रस शांत[2] ॥२॥

१. साध्वीश्री संतोकांजी की ससुराल पडिहारा (स्थली) के हीरावत (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर सुजानगढ़ के मालू गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९६२ जेयष्ठ शुक्ला १४ को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम जेतरूपजी, माता का मुखीवाई और पति का भैरूंदानजी था।

(सा० वि०)

संतोकांजी ने पति-वियोग के वाद साध्वीश्री हीरांजी (८५१) के साथ सं० १९८१ ज्येष्ठ कृष्णा ११ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से सुजानगढ़ मे संयम ग्रहण किया।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. उन्होने लगभग २३ साल साधुत्व का पालन कर स० २००४ (चैत्रादि क्रम से २००५) आपाढ़ कृष्णा १० को लाडनू मे स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया।

(ख्यात)

उस समय लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे साध्वीश्री नोजांजी (७९१) 'सरदारशहर' थी।

(चा०ता०)

८५३।८।१२८ साध्वीश्री केशरजी (लाडनूं)

(संयम-पर्याय १९८१, २०१९ में गणवाहर)

रामायण छन्द

शहर लाडनूं में रहते थे 'केशर' के दोनों परिवार।
और वहीं पर हो पाई है दीक्षित करने आत्म-सुधार[1]।
रही साल अड़तीस संघ में फिर अशुभोदय के कारण।
छोड़ दिया है पथ संयम का देखा वापस गृह-आंगण[2] ॥१॥

१. केशरजी की ससुराल लाडनूं (मारवाड़) के वावेल (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही दूधोडिया गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९४६ में हुआ।

(ख्यात)

साध्वी-विवरणिका मे जन्म स० १९५३ वैशाख कृष्णा १३ को हुआ लिखा है।

उनके पिता का नाम टीकमचदजी, माता का मगनीवाई और पति का सूरजमलजी था।

(सा० वि०)

केशरजी ने पति वियोग के वाद साध्वीश्री लिछमांजी (८५४), सिरेकंवरजी (८५५) और टमकूजी (८५६) के साथ सं० १९८१ आपाढ़ कृष्णा ११ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा लाडनूं मे दीक्षा ग्रहण की।[1]

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. वे लगभग ३८ साल धर्मसंघ मे रही। फिर अशुभ कर्म के योग से सं० २०१९ आपाढ़ शुक्ला ९ को लाडनू मे गण से पृथक् हो गई।

(ख्यात)

---

१. केशर, लिछमांजी, सिरेकवर, टमकूजी।
जीवन-जागृति-हित कालू-चरण जुहारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे ॥

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० ९)

८५४।८।१२९ साध्वीश्री लिछमांजी (श्रीडूंगरगढ़)

(संयम-पर्याय सं० १९८१-२००२)

सोरठा

श्री डूंगरगढ़ ग्राम, गोत्र पुगलिया श्वसुर का।
लिछमां ने साराम, धाम संयमी ले लिया[1] ॥१॥
हो पाई सब चाह, पूर्ण साल इक्कीस से।
ली सुरपुर की राह, दो हजार-दो साल में[2] ॥२॥

१ साध्वीश्री लिछमांजी की ससुराल श्रीडूंगरगढ (स्थली) के पुगलिया (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही चोरडिया गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९६० प्रथम ज्येष्ठ कृष्णा १३ को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम शोभाचंदजी, माता का तीजांबाई और पति का कुशलचंदजी था।

(सा० वि०)

छिलमांजी ने पति-वियोग के पश्चात् साध्वी केशरजी (८५३) सिरेकंवरजी (८५५) और टमकूजी (८५६) के साथ सं० १९८१ आपाढ कृष्णा ११ को आचार्य श्री कालूगणी के हाथ से दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२ वे इक्कीस साल संयम का पालन कर सं० २००२ आपाढ महीने के कृष्णपक्ष में होरणाबाद (पंजाब) में दिवंगत हुई।

(ख्यात)

८५५।८।१३० साध्वीश्री सिरेकंवरजी (लाडनूं)

(संयम-पर्याय १९८१-२०४०)

छप्पय

सिरेकंवरजी ने कर दिया ममता का परित्याग।
भर यौवन में कर लिया समता से अनुराग।
समता से अनुराग वास चंदेरी गाया।
उभय पक्ष परिवार बड़ा धार्मिक मिल पाया।
मुनि-सतियों के बोध से जागृत हुआ विराग।
सिरेकंवर ने कर दिया ममता का परित्याग ॥१॥

वय अष्टादश साल की पति परिजन-जन छोड़।
गुरु-सम्मुख चारित्र से तार लिये हैं जोड़।
तार लिये हैं जोड़ साल इकासी आई।
ग्यारस कृष्णाषाढ़ शरण शासन की पाई[1]।
एक लक्ष्य पर लग गया चिंतन और दिमाग।
सिरेकंवर ने कर दिया ममता का परित्याग ॥२॥

लाडां श्रमणी साथ में रह पाई सोल्लास।
किया चरण-पर्याय का साठ साल अभ्यास।
साठ साल अभ्यास भाग्य तरुवर लहराया।
गुरु-सेवा में श्रेष्ठ मरण समाधि-युत पाया।
दो हजार चालीस की तेरस कृष्णा माघ[1]।
सिरेकंवर ने कर दिया ममता का परित्याग ॥३॥

१. साध्वीश्री सिरेकंवरजी लाडनूं (मारवाड़) निवासी डालमचंदजी बोरड़ (ओसवाल) की पुत्री थी। उनकी माता का नाम झमकूदेवी था। सिरेकंवरजी का जन्म सं० १९६२ कार्तिक शुक्ला ४ को हुआ। यथासमय उनका विवाह लाडनूं में ही महालचंदजी बोथरा (ओसवाल) के साथ कर

दिया गया ।

(साध्वी-विवरणिका)

उनके पीहर एवं ससुराल के दोनो परिवार धार्मिक थे। उनकी संसारपक्षीया बुआ साध्वीश्री लाडांजी (६१०) सं० १९५५ मे डालगणी द्वारा दीक्षित हो गई थी। उनके तथा साधु-साध्वियो के उद्‌बोधन से सिरे-कंवरजी के हृदय मे विरक्ति की लौ जल उठी ।

उन्होंने १८ साल की सुहागिन अवस्था मे पति को छोड़कर सं० १९८१ आषाढ कृष्णा ११ को साध्वीश्री केशरजी (८५३) लिछमाजी (८५४) और और टमकूजी (८५६) के साथ आचार्यश्री कालूगणी द्वारा लाडनूं में दीक्षा ग्रहण की ।

(ख्यात)

२ दीक्षित होने के पश्चात् वे प्राय. साध्वीश्री लाडांजी के साथ में विहार करती रही। साधु-चर्या मे रमण करती हुई यथाशक्य तप, सेवा, स्वाध्याय आदि द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती रही ।

साध्वीश्री लाडांजी के दिवंगत होने के बाद सं० २०३८ से २०४१ तक बीदासर समाधि-केन्द्र मे स्थिरवास कर दिया ।

आचार्यश्री तुलसी सं० २०४० का मर्यादा महोत्सव करने के लिए माघ कृष्णा १२ को बीदासर पधारे। साध्वी सिरेकंवरजी अस्वस्थ थी। माघ कृष्णा १३ को आचार्यप्रवर उन्हें दर्शन देने के लिए पधारे। उन्होने गुरुदेव के दर्शन कर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और श्रीमुख से उस दिन उपवास का संकल्प किया। उस समय वे पूर्ण सचेत थी। उसी दिन पश्चिम रात्रि में उन्होंने स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया। उनका साधना-काल लगभग साठ साल का रहा ।

८५६।८।१३१ साध्वीश्री टमकूजी (लाडनूं)

(दीक्षा सं० १९८१, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री टमकूजी का जन्म लाडनूं (मारवाड़) के गुदेचा (ओसवाल) गोत्र में सं० १९६५ कार्त्तिक कृष्णा १३ को हुआ। उनके पिता का नाम मोहनलालजी गुंदेचा और माता का तखतांवाई था। टमकूजी का १३ साल की अवस्था मे स्थानीय हुलासमलजी भंसाली के साथ विवाह कर दिया गया।

वैराग्य—शादी के तीन साल वाद टमकूजी की भावना दीक्षित होने की हो गई। उन्होने संकल्पवद्ध होकर पूज्य कालूगणी से साधु-प्रतिक्रमण सीखने की तथा दीक्षा की स्वीकृति प्राप्त कर ली। पारिवारिक जनो ने दीक्षा का उत्सव चालू कर दिया। वरनोलिया निकलने लगीं। परन्तु उनके पति हुलासमलजी (जो देशान्तर मे रहते थे) की तव तक आज्ञा नही मिली थी। आचार्यवर ने वहिन टमकूजी को कहा—'यदि पति की आज्ञा नही आयेगी तो दीक्षा नही होगी।' टमकूजी ने दृढता के साथ निवेदन किया—'गुरुदेव ! आज्ञा आ जाएगी।' उन्होने मन मे निर्णय भी कर लिया कि संयोगवश आज्ञा नही आएगी तो दीक्षा-तिथि के तीन दिन पूर्व सागारी अनशन कर लूंगी। आखिर आत्म-विश्वास फलित हुआ। दीक्षा के पांच दिन पूर्व आज्ञा-पत्र मिल गया। स्वयं हुलासमलजी विशेप कार्यवश उपस्थित नही हो सके।

दीक्षा—टमकूजी ने १७ साल की अवस्था (नावालिग) मे अपने पति को छोड़कर सं० १९८१ आपाढ कृष्णा ११ को साध्वीश्री केशरजी (८५३), लिछमांजी (८५४) और सिरेकंवरजी (८५५) के साथ आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से लाडनूं में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा-समारोह चिमनीरामजी वैद के नोहरे मे हुआ।

सहवास—दीक्षित होने के पश्चात् साध्वी टमकूजी ने सं० १९८२ का प्रथम चातुर्मास कालूगणी की सेवा में बीदासर किया। वहां साध्वीश्री हस्तूजी (३९२) 'मोखणुंदा' का सिंघाड़ा भी गुरुदेव की सेवा में था। आचार्य-वर ने चातुर्मास मे साध्वी टमकूजी को साध्वीश्री हस्तूजी के सिंघाड़े में वंदना करवा दी। उन्होने साध्वीश्री हस्तूजी के साथ सं० १९८३ का चातुर्मास छापर,

१९८४ का चाडवास और १९८५ का छापर गुरुदेव की सेवा मे किया। उस चातुर्मास मे संवत्सरी के दिन साध्वीश्री हस्तूजी का स्वर्गवास हो गया। उनके पीछे आचार्यवर ने साध्वीश्री दाखांजी (६५३) 'मोखणुंदा' को अग्रगण्या बनाया और साध्वी टमकूजी को उनके साथ दे दिया। वे २१ वर्ष तक साध्वीश्री दाखांजी के सिंघाड़े में रही। सं० २००७ मे साध्वीश्री दाखांजी के दिवंगत होने के पश्चात् आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी टमकूजी को अग्रगामिनी बना दिया। उन्होने ग्रामानुग्राम विहार कर निम्नोक्त स्थानो मे चातुर्मास किए—

सं० २००८	ठाणा	५	आसींद
सं० २००९	,,	५	पाली
सं० २०१०	,,	५	नमाणा
सं० २०११	,,	५	घोइन्दा
सं० २०१२	,,	५	कुंवाथल
सं० २०१३	,,	५	ईड़वा
सं० २०१४	,,	२७	लाडनू 'सेवाकेन्द्र'
सं० २०१५	,,	५	पेटलावद
सं० २०१६	,,	५	उज्जैन
सं० २०१७	,,		राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०१८	,,	५	भिवानी
सं० २०१९	,,	५	सोजतरोड़
सं० २०२०	,,	४	समदड़ी
सं० २०२१	,,		बीदासर (मातुश्री वदनांजी के साथ)
सं० २०२२	,,		बीदासर (साध्वी-प्रमुखा लाडांजी, मातुःश्री वदनांजी की सेवा मे)
स० २०२३	,,	५	केलवा
सं० २०२४	,,		सरदारशहर (साध्वीश्री राजीमतीजी (१२२२) 'रतनगढ़' चिकित्सा-केन्द्र की व्यवस्थापिका थी)

सं० २०२५	ठाणा	५	व्यावर
स० २०२६	,,	८	जसोल (साध्वीश्री परतापांजी (७८६) 'बीदासर' का संयुक्त)
सं० २०२७	,,	५	बायतू
सं० २०२८	,,		लाडनूं (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २०२६	,,	६	देवगढ़
सं० २०३०	,,	५	पुर
स० २०३१	,,	५	व्यावर
सं० २०३२	,,	८	रतनगढ़
स० २०३३	,,	५	जोजावर
सं० २०३४	,,	५	उचानामण्डी
सं० २०३५	,,	५	टोहाना
सं० २०३६	,,	६	नोहर
सं० २०३७	,,	५	नाल
सं० २०३८	,,	५	दौलतगढ
स० २०३६	,,	५	आपाढा
स० २०४०	,,	५	फतेहपुर
सं० २०४१	,,	५	समदडी
सं० २०४२	,,	५	आमेट (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)

(चातुर्मासिक तालिका)

वैराग्य वृत्ति—साध्वीश्री संयम का रसास्वादन करती हुई उत्तरोत्तर वैराग्य-भावना बढ़ाती रही। उनके द्वारा गृहीत नियमों की तालिका इस प्रकार है :—

१ सं० १६६८ वैशाख कृष्णा १ से सेलड़ी की वस्तु का आजीवन त्याग।

२ सं० २००२ फाल्गुन महीने से कडाई विगय का त्याग।

३ सं० २००४ से छह विगय का परित्याग।

बीमारी की हालत तथा उपवास आदि के पारणे मे विगय लेने का आगार होने पर भी साध्वीश्री प्राय. विगय नहीं लेती है। बड़ी दृढता और

जागरूकता से नियमो का पालन करती है ।

स्वाध्याय-जप—साध्वीश्री १५ वर्षो से प्रतिदिन विघ्नहरण, मुणिन्द-मोरा आदि स्मरण-प्रधान गीतिकाओ का स्वाध्याय तथा कुछ चुने हुए मांगलिक-मंत्र के पद्यो का जप नियमित रूप से करती हैं । जैसे—

१. नमस्कार महामंत्र की ५ माला ।

२. चौवीस तीर्थंकरो की १ माला ।

३. नौ आचार्यो की १ माला ।

४. मगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमः प्रभु ।
मंगल स्थूलिभद्राद्या·, जैन धर्मोस्तु मंगलम्' । की ११ माला ।

५ 'विघ्नहरण मंगल करण, स्वाम भिक्षु रो नाम ।
गुण ओलख स्मरण कियां, सरै अचिंत्या काम ।' की एक माला,

इत्यादि ।

सेवा भावना—(क) स० २००८ मे साध्वी टमकूजी का चातुर्मास आसीद और साध्वी लिछमांजी (७९३) 'सरदारशहर' का चातुर्मास दौलतगढ मे था । वहां उनके साथ की साध्वी जसूजी (१०३७) 'नोहर' को टाइफाइड हो गया। साध्वी टमकूजी आश्विन महीने मे साध्वियो से 'खमत-खामणा' करने के लिए दौलतगढ गई और उसी दिन वापस लौट आई । दूसरे दिन दौलतगढ़ के एक भाई ने साध्वी टमकूजी के दर्शन कर कहा—'साध्वी जसूजी के लकवे की शिकायत हो गई ।' साध्वीश्री ने तत्काल साध्वी महतावाजी (१०५७) 'सरदारशहर' और कलावतीजी (१२१८) 'लाडनू' को औषध देकर दौलतगढ भेजा । साढे तीन कोस का रास्ता, पथरीली जमीन, फिर भी दोनो साध्वियां वहां गईं, दवा देकर एवं एक घंटा ठहरकर वापस आ गईं ।

तीसरे दिन साध्वी टमकूजी आदि तीन साध्वियां दौलतगढ़ पहुची और साध्वी महतावांजी को उनकी परिचर्या मे रखकर दो साध्विया वापस आसीद आ गईं ।

आचार्यप्रवर का उस वर्ष दिल्ली में चातुर्मास था । दौलतगढ के एक भाई द्वारा समाचार मिलने पर आचार्यश्री ने फरमाया—'टमकूजी ने वहुत अच्छा काम किया ।'

साध्वी महतावांजी १५ दिन वहा ठहरकर वापस आसीद आ गईं । इस प्रकार साध्वीश्री ने उत्साहपूर्वक कई वार वृद्ध एव रुग्ण साध्वियो की सेवा की ।

(ख) साध्वीश्री टमकूजी सं० २०२६ में साध्वीश्री प्रतापांजी (७८६) 'बीदासर' की परिचर्या के लिए १४ महीने तक जसोल में रही। सं० २०२७ का चातुर्मास उन्होने वायतू मे किया। साध्वीश्री प्रतापांजी की सेवा मे साध्वी फूलकंवरजी (११४४) 'लाडनूं' रही। साध्वी प्रतापांजी का चातुर्मास से पूर्व ज्येष्ठ महीने मे स्वर्गवास हो गया। साध्वी फूलकंवरजी क्षेत्र को तथा रुग्ण साध्वी सूरजकंवरजी (१०१४) 'टमकोर' को सुचारू रूप से नहीं संभाल सकी। तब आचार्यप्रवर के आदेशानुसार साध्वी टमकूजी चातुर्मास के बाद वायतू से विहार कर जसोल पहुंची और वहां की स्थिति को संभाला। साध्वी सूरजकंवरजी की सेवार्थ उन्हें लगभग ६ महीने वहां रुकना पड़ा। फिर आचार्यप्रवर के दर्शन कर सं० २०२८ का चातुर्मास आचार्यश्री की सेवा में लाडनूं किया।

(परिचय पत्र)

८५७।८।१३२ साध्वीश्री जमनांजी (पचपदरा)

(संयम-पर्याय सं० १९८२-२०१६)

छप्पय

जमना ने अपना किया सपना सब साकार।
पांनकंवर पुत्री-सहित चरण लिया श्रीकार।
चरण लिया श्रीकार ग्राम पचपदरा गाया।
शुक्लेचा परिवार बयासी संवत् आया।
दस दीक्षा की साथ में भारी लगी बहार[1]।
जमना ने अपना किया सपना सब साकार ॥१॥

चखा साल चौंतीस तक संयम-रस का स्वाद।
रखा ध्यान चर्यादि मे भरकर परमाल्हाद[2]।
भरकर परमाल्हाद सुता-सह विहरण करती।
कर तप-जप-स्वाध्याय सुकृत रस सचमुच भरती।
आषाढ़ा से ली विदा कर अनशन स्वीकार[3]।
जमना ने अपना किया सपना सब साकार ॥२॥

१. साध्वीश्री जमनांजी की ससुराल पचपदरा (मारवाड़) के शुक्लेचा (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही गोलेछा गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९३९ आषाढ़ शुक्ला ७ को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम पुरखजी, माता का नोजांबाई और पति का चौथमलजी था।

(सा० वि०)

जमनांजी ने पति-वियोग के पश्चात् अपनी पुत्री पानकंवरजी (८६४) के साथ सं० १९८२ कार्तिक शुक्ला ५ को आचार्य श्री कालूगणी के हाथ से

वीदासर मे दीक्षा स्वीकार की ।[1]

उस दिन कुल १० दीक्षाएं हुईं—२ भाई ८ वहिने ।

१. मुनिश्री चिरंजीलालजी (४४७) मोठ
२. „ खूबचदजी (४४८) लुहारी
३. साध्वीश्री जमनांजी (८५७) पचपदरा
४. „ झमकूजी (८५८) राजलदेसर
५. „ सोहनाजी (८५९) चाडवास
६. „ जुहारांजी (८६०) मोमासर
७. „ हुलासांजी (८६१) किराड़ा
८. „ सिरेकंवरजी (८६२) श्रीडूंगरगढ़
९. „ झमकूजी (८६३) वीदासर
१०. „ पानकवरजी (८६४) पचपदरा

(कालूगणी की ख्यात, ख्यात)

२. उन्होंने उपवास से पंचोले तक का तप इस प्रकार किया :—

उपवास	२	३	४	५
१३०६	५७	१७	५	१३

। तप के कुल दिन ११५६, जिनके ४ वर्ष, ३ महीने, २६ दिन होते हैं ।

(ख्यात)

३. साध्वीश्री जमनांजी ने स० २००१ से साध्वीश्री पानकंवरजी (८६४) के साथ चातुर्मास किए। सं० २०१६ मे उनका चातुर्मास आपाढ़ा (मारवाड़) में था । वहां साध्वी जमनांजी ने ६ दिन के चौविहार अनशन से कार्तिक शुक्ला ७ को समाधियुक्त पडित-मरण प्राप्त किया ।

(ख्यात)

साध्वी पानकंवरजी द्वारा प्राप्त परिचय पत्र मे १० दिन के अनशन का उल्लेख है ।

---

१. वयासिय वीदासरे, सुद पख कार्तिक मास ।
दस दीक्षा दी दीपती, कालू कृपा विलास ।
जमनां पानकंवर मां-बेटी, पचपदरै री जाणो ।

(कालू० उ० ३ ढा० १६ दो० १० गा० १२)

८५८।८।१३३ साध्वीश्री झमकूजी (राजलदेसर)

(दीक्षा सं० १९८२, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री झमकूजी का जन्म चूरू (स्थली) के सुराणा (ओसवाल) परिवार मे स० १९६४ पौष शुक्ला पूर्णिमा को हुआ। उनके पिता का नाम सुजानमलजी और माता का मूली देवी था। उनके छह भाई थे जिनमे तीन बडे और तीन छोटे। वालिका झमकू का वचपन कलकत्ता मे वीता। शादी के समय ही उन्हे चूरू लाया गया। सभी परिवार का उनके प्रति अत्यधिक स्नेह था।

जब वे वारह साल की हुई तब (स० १९७६ मे) उनका विवाह राजलदेसर-निवासी रूपचंदजी नाहर के सुपुत्र वेगराजजी के साथ कर दिया गया। दोनो परिवार आर्थिक तथा धार्मिक दृष्टि से सपन्न थे।

वैराग्य—विवाह के पश्चात् सामाजिक रीति-रिवाजो के अनुसार देवी-देवताओ की परिक्रमा करते हुए वर-वधू दोनो धर्मस्थान मे पहुंचे। वहा महामनस्वी आचार्यश्री कालूगणी के दर्शन किये। उनके तेजोमय ललाट व दिव्य मुद्रा को देखकर झमकूजी के हृदय मे एकाएक चुम्वकीय आकर्पण पैदा हुआ, जवकि उनकी शादी हुए केवल छह दिन ही हुए थे और हाथो के काकड-डोरे भी वधे हुए थे। उन्होने मन मे चिन्तन किया—'अच्छा हो, मैं भी महामना कालूगणी के चरणो मे दीक्षा स्वीकार करलू।' वस, उसी क्षण उनका झुकाव भोगो से हटकर त्याग की तरफ हो गया। क्रमशः दीक्षा लेने की भावना सुदृढ वन गई। दोनो पक्ष के परिवार वाले उन्हे वडे-वड़े शहरो मे ले गये। वहां अनेक मनोरंजन के साधनो द्वारा उन्हे भौतिक-सुखो की ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया। पर उनके वैराग्य का ऐसा मजीठी रंग चढ़ा हुआ था कि जिसे उतारने मे सभी असफल रहे। फिर भी दीक्षा-स्वीकृति के लिए हिचकिचाहट करते रहे। समय वीतता चला गया। झमकूजी साधु-साध्वियों के सान्निध्य का विशेष रूप से लाभ लेती हुई विविध नियमों (रात्रि भोजन, सचित्त, जमीकन्द का त्याग, चतुर्दशी के उपवास करना आदि....) द्वारा त्याग-विराग वढाती रही। एक वार अवसर देखकर उन्होने वड़ी चतुराई से अपने पति वेगराजजी से आज्ञा-पत्र लिखवा लिया।

आचार्यश्री कालूगणी के समक्ष अपनी भावना भी प्रकट कर दी।

उनकी माता का उनके प्रति इतना मोह था कि वे जब दीक्षा लेने की वात करती, तव आवेश मे आकर धमकी देती हुई कहती—'यदि तू दीक्षा लेगी तो मैं कुएं मे गिर जाऊंगी।' विविध प्रयत्न करने पर भी माता तथा परिवार का मानस अनुकूल नहीं वना, तव झमकूजी ने कठोर साधना चालू कर दी। ३७ दिनो तक तीन द्रव्यों के अतिरिक्त कुछ नही खाया। आखिर सभी के समझाने पर बड़ी मुश्किल से अभिभावक जन ने दीक्षा की अनुमति दी। उनके पिताजी की भी कलकत्ता से दिए गए तार द्वारा सहमति आ गई। तत्पश्चात् परिवार वालो के निवेदन पर पूज्य गुरुदेव ने उन्हें साधु-प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया।

दीक्षा—झमकूजी ने लगभग १८ साल की सुहागिन (नावालिग) वय मे अपने पति, विपुल धन एव परिवार को छोड़कर सं० १९८२ कार्तिक शुक्ला ५ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीदासर मे दीक्षा स्वीकार की[1]। उस दिन होने वाली १० दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री जमनांजी (८५७) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के वाद दो साल गुरुकुल-वास मे रही। फिर संसारपक्षीया दादीजी साध्वीश्री नोजांजी (६५९) के सिंघाड़े में स० २००० तक रही। इसके वीच स० १९९८ का एक चातुर्मास साध्वीश्री अणचाजी (७७०) के साथ सुजानगढ़ किया। वहां अस्वस्थता के कारण छह महीनो तक परपटी ली। पंडित रघुनन्दनजी शर्मा का इलाज चला।

साध्वीश्री नोजांजी ५ साल से राजलदेसर मे स्थिरवास रही। साध्वी झमकूजी उनकी सेवा मे रहकर अपनी क्षमता वढ़ाती गईं। क्रमशः उनके सिंघाडे का प्रायः सारा ही काम संभाल लिया।

शिक्षा—साध्वीश्री ने परिश्रमपूर्वक अध्ययन किया और हजारों पद्य कंठस्थ कर लिए :—

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प, नन्दी।

तात्त्विक—पचीस वोल (तीन प्रकार के), चर्चा, तेरहद्वार, लघुदडक, वावनवोल, इक्कीसद्वार, इकतीसद्वार, कायस्थिति, गतागत, संजया, नियंठा,

१. झमकू पीहर जात सुराणा, श्वसुरालय राजाणो ॥
(काल० उ० ३ ढा० १६ गा० १२)

वड़ी चर्चा, गमा, सेर्‌यां, अल्पावहुत, पज्जुवापद, भवनद्वार, भ्रमविध्वंसन की हुंडी, लोकोजी की हुंडी।

संस्कृत—शारदीया नाममाला, भक्तामर, सिन्दूरप्रकर, शांतसुधारस।

व्याख्यान—रामचरित्र, मुनिपत आदि।

अध्यात्म-प्रधान—आराधना, चौवीसी, शील की नववाड़।

वाचन—३२ सूत्रो का तीन वार, अन्य सूत्रो का कई वार तथा भगवती सूत्र की जोड़ का वाचन किया।

आचार्य भिक्षु, जयाचार्य, आचार्यश्री तुलसी तथा युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा रचित अनेक ग्रन्थों का वाचन किया।

विहार—सं० २००० मे साध्वीश्री नोजांजी के दिवंगत होने के वाद आचार्यश्री तुलसी ने झमकूजी का सिंघाड़ा वनाया। उन्होने अनेक क्षेत्रों मे विहरण कर भाई-वहिनो को धर्म के प्रति आकृष्ट किया। संघीय-भावना भरकर उन्हे दृढ़ श्रद्धालु वनाये। उनके चातुर्मासो की सूची इस प्रकार है—

सं० २००१	ठाणा ५	सिरसा
सं० २००२	,, ६	छापर
सं० २००३	,, ६	गंगाशहर
सं० २००४	,, ५	चूरू
सं० २००५	,, ५	गगापुर
स० २००६	,, ५	रतलाम
सं० २००७	,, ५	औरंगावाद
सं० २००८	,, ५	जालना
स० २००९	,, ३०	लाडनू 'सेवाकेन्द्र'
स० २०१०	,, ५	गगाशहर
सं० २०११	,, ५	जोधपुर
सं० २०१२	,, ५	वालोतरा
सं० २०१३	,, ५	भिवानी
सं० २०१४	,, ५	कांकरोली
स० २०१५	,, ५	चूरू
सं० २०१६	,, ६	वीकानेर (साध्वीश्री रतनकवरजी (१०५९) 'सरदारशहर' का संयुक्त)

सं० २०१७	ठाणा ५	जसोल
सं० २०१८	,, ५	पुर
सं० २०१९	,, ५	गंगापुर
सं० २०२०	,, ४	ब्यावर
सं० २०२१	,, ११	सुजानगढ़ (साध्वीश्री चूनाजी (८१९) 'बीदासर' का संयुक्त)
सं० २०२२	,, ५	चूरू
सं० २०२३	,, ५	फतहेपुर
सं० २०२४	,, ५	रीणी
सं० २०२५	,, ५	राजगढ़
सं० २०२६	,, ८	राजलदेसर (साध्वीश्री सुखदेवांजी (७८४) 'राजलदेसर' की सेवा मे)
सं० २०२७	,, ७	छापर
सं० २०२८	,, ५	ईड़वा
सं० २०२९	,, ५	जोधपुर
सं० २०३०	,, ६	सरदारपुरा (जोधपुर)
सं० २०३१	,, ५	बोरावड़
सं० २०३२	,, ५	विष्णुगढ (टमकोर)
सं० २०३३	,, ५	चूरू
सं० २०३४	,, ६	बीकानेर
सं० २०३५	,,	गंगाशहर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २०३६	,, ५	देशनोक
सं० २०३७	,, ६	,,
सं० २०३८	,, ६	,,
सं० २०३९	,, ६	,,
सं० २०४०	,, ६	,,
सं० २०४१	,, ५	,,
सं० २०४२	,, ५	,,

(चातुर्मासिक तालिका)

कला—साध्वीश्री ने कला के क्षेत्र मे वहुमुखी विकास किया। वे विविध वस्तुओ का निर्माण वड़े कलात्मक ढंग से करती। जैसे—हरे रंग की पटरिया, फांटियो की पटरियां, पूट्ठे, लेखनघर, टोकसिया, डोरिया तथा रजोहरण, प्रमार्जनी आदि। सिलाई, रंगाई मे भी पूर्ण दक्षता प्राप्त की।

एक वार उन्होने काष्ठ के १२ प्यालो पर मोनोग्राम[1] रूप मे अंग्रेजी के अक्षर लिखे। जव आचार्यश्री को वे भेंट किये गये तव आचार्यप्रवर ने परिपद् के वीच साध्वीश्री को खड़ी करके उनकी कलाकृति की प्रशंसा करते हुए फरमाया—'तेरापथ धर्मसघ में अग्रेजी के नाम लिखने वाली ये प्रथम साध्वी हैं।

कला-प्रदर्शिनी मे १५ और कलाप्रतियोगिता मे ९ परिष्ठापन पुरस्कृत किये।

साध्वीश्री ने लिपिकला का अभ्यास कर आगम, व्याख्यान आदि के चालीस हजार पद्य लिपिवद्ध किए।

साध्वीश्री शल्य-चिकित्सा मे भी निपुण वनी। सं० २०१३ के भिवानी चातुर्मास मे साध्वीश्री ने सुप्रसिद्ध डा० पुरुपोत्तम द्वारा आंख का ऑपरेशन करना सीखा। फिर रतनगढ़ मे साध्वीश्री गौराजी (९५१) 'सरदारशहर' की आंख का ऑपरेशन किया। कई साध्वियो के फोडे-फुन्सियो का ऑपरे-शन और इन्जेक्शन लगाने का कार्य किया। शल्य-चिकित्सा तथा इन्जेक्शन लगाने के कौशल को देखकर डा० अश्विनीकुमार ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'आप जैसी मेरे कार्य-दक्ष लड़की होती तो साढे सात-सौ रुपये महीना घर वैठे ही प्राप्त हो जाता।'

सेवा—साध्वीश्री संघीय-सेवा मे यथाशक्य भाग लेती रही। उन्होंने अपनी सुविधाओ को गौणकर आचार्यश्री के निर्देशानुसार कई अस्वस्थ साध्वियो को सहयोग दिया :—

(१) सं० २००९ मे 'लाडनूं' 'सेवाकेन्द्र' की एक वर्ष तथा स० २०२६ में साध्वीश्री सुखदेवाजी (राजलदेसर) की राजलदेसर मे १७ महीनो तक सेवा की।

(२) सं० २०१६ मे साध्वी रतनकंवरजी (सरदारशहर) एव उनकी सहयोगिनी साध्वी कानकंवरजी (सरदारशहर) की छह महीनो तक परिचर्या की।

---

१. किसी नाम के अक्षरो के सयोग से वना हुआ साकेतिक रूप।

(३) सं० २०३० के सरदारपुरा (जोधपुर) चातुर्मास मे साध्वी सूरज-कवरजी (शार्दूलपुर) की ७ महीनो तक परिचर्या की।

(४) सं० २०३४ बीकानेर मे साध्वी सुदर्शनांजी (गंगाशहर) के गाठ का ऑपरेशन हुआ। तव ८ महीनो तक उनकी परिचर्या की।

(५) सं० २०३५ मे साध्वी यशोधराजी (लाडनूं) की सहवर्तिनी साध्वी कविताश्रीजी (चूरू) की परिचर्या मे साथ की साध्वियो को अढाई महीनो तक रखा।

तपः साधनादिक—साध्वीश्री ने स० २०४१ तक निम्नोक्त तप किया—

उपवास	२	३	४
५०१	४१	१५	१

तथा १५ वार दसप्रत्याख्यान किये। वे प्रतिदिन नवकारसी तथा अनेक वार पोरसी करती है। प्रतिदिन आधा घंटा ध्यान तथा चार हजार गाथाओ का स्वाध्याय करती हैं।

दीक्षार्थी—साध्वीश्री ने १५ भाई-वहिनो को दीक्षा के लिए तैयार किया—मुनि सोहनलालजी (खाटू), भवभूतिजी (कांकरोली), साध्वी कान-कवरजी (राजलदेसर) आदि।

संस्मरण—साध्वीश्री के जीवन से संवधित कुछ घटना-प्रसंग ऐसे हैं जो उनकी शासन-निष्ठा, सघीय-भावना और विवेक के परिचायक है—

(१) **विवेक का परिचय**—साध्वीश्री झमकूजी ने सं० २०१५ का चातुर्मास चूरू मे किया। जब वे वहां से विहार करने लगी तब सरदारशहर के चार भाईयो ने साध्वीश्री के दर्शन कर कहा—'मत्री मुनि मगनलालजी ने फरमाया है कि साध्वी झमकूजी जितनी साध्वियो को भेज सके उतनी ही साध्वियो को भेज दे, क्योकि रास्ते में रुकी हुई साध्वी सुजानाजी (मोमासर) को उठाकर लाना है।' साध्वी-श्री ने एक साध्वी को अपने पास रखकर उसी समय तीन साध्वियो—चादकवरजी (जोधपुर), मूलाजी (सुजानगढ़), मदनकंवरजी (उज्जैन) को भेज दिया। भाइयो ने वापस आकर मत्री मुनि को निवेदन किया तब उन्होने कहा—'झमकूजी ने समय पर बहुत विवेक का काम किया।'

(२) **हर कार्य में उत्साह**—साध्वीश्री झमकूजी का सं० २०३३ का चातुर्मास चूरू मे था। चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री वहा पधारे।

साध्वीश्री गुरु-दर्शन पाकर परम प्रसन्न हुई। उन्होने साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी से निवेदन किया—'कोई पात्र-पात्री, तुम्बा आदि को ठीक करना हो तो आप हमे देने की कृपा करवाना। दूसरे दिन से प्रतिदिन एक पात्र आदि फूटा हुआ आता और साध्वीश्री ठीक करके वापस दे देती'। लगभग २१ दिनो मे २० पात्र-पात्री व तुम्बा आदि ठीक करके दे दिये।

साध्वी-प्रमुखा आदि सभी साध्वियां उनके कार्य की प्रशंसा करने लगी। वास्तव मे हृदय की उमंग से हर कार्य सुगमता से हो जाता है।

(३) **समय की सूझ-बूझ**—सं० २०१८ मे साध्वीश्री ज्ञानाजी (पीतास) केलवा मे विराज रही थी। साध्वीश्री झमकूजी वहा पर पधारी। साध्वी ज्ञानांजी ने उनकी ससम्मान भक्ति की। दूसरे दिन साध्वी झमकूजी वहां से विहार करने लगी। तीन साध्वियो को तो पहले विहार करा दिया और दो साध्वियां पीछे रही। साध्वी ज्ञानांजी साध्वी झमकूजी को पहुचाने के लिए मकान से नीचे उतरी कि अकस्मात् चक्कर आ गया। शरीर पसीने से तर-वतर हो गया। तव वे वहीं चवूतरे पर लेट गईं। साध्वी झमकूजी ने उनको संभाला। पास मे वैठकर उनके सीने पर हाथ फेरा। लौग आदि की चासनी भी दी। जिससे उन्हें आराम मिला। साध्वी झमकूजी ने कहा—'साध्वीश्री! आपको इस स्थिति मे छोडकर मैं आज विहार नही करूंगी।'

साध्वी ज्ञानांजी—'तीन साध्वियो को तो विहार करा दिया है, फिर····।'

साध्वी झमकूजी—'साध्वियां अपनी ही है, अभी वापस वुला लूगी।'

तत्पश्चात् वैसा ही किया गया। पर सयोग की वात थी कि उस दिन दो-ढाई वजे साध्वीश्री ज्ञानांजी के हार्ट का दर्द हुआ। ज्योही उन्होने करवट वदली कि प्रदेशो का खिचाव होने लगा। साध्वी झमकूजी ने अनशन कराया और वे दिवंगत हो गईं। एकाएक ऐसी स्थिति देखकर उनकी सहवर्तिनी साध्वी सुखदेवांजी (चूरू) आदि उदासीन हो गईं। साध्वी झमकूजी ने उन्हें सांत्वना दी। फिर अपने साथ की तीन साध्वियो को चोखले के गाव स्पर्शने के लिए भेज दिया। साध्वी मदनकवरजी (उज्जैन) को शिक्षण-केन्द्र मे अध्ययन के लिए भेज दिया। स्वयं साध्वी सुखदेवांजी आदि के पास रही और डेढ महीने तक साथ रहकर उन्हे सभी तरह सहयोग दिया।

स्थायी-प्रवास—साध्वीश्री का शरीर कई वर्षों से अस्वस्थ चल रहा था। फिर भी वे मनोबल से छोटे-छोटे विहार करती रही। आखिरी वर्षों मे जब विविध रोगो ने घेराव-सा कर लिया तब उन्हे देशनोक मे स्थायी-प्रवास करना पडा। सं० २०३४ से अब तक (सं० २०४२) वहां विराज रही है। अनेक प्रकार की व्याधि तथा शारीरिक दुर्बलता होने पर भी साध्वीश्री बडी सहनशीलता रखती है और सम-भाव से वेदना सहन करती है।

सहवर्तिनी साध्वी चांदकंवरजी (१०४७) 'जोधपुर', साध्वी मूलांजी (११२१) 'सुजानगढ' तथा साध्वी मदनकंवरजी (१२१३) 'उज्जैन' बड़ी तत्परता से साध्वीश्री की परिचर्या करती है।

समय-समय पर आचार्यप्रवर साध्वीश्री को आशीर्वादमय संदेश-पत्र देते हैं। पढिये निम्नोक्त एक पत्र—

अर्हम्

शिष्या झमकूजी (राजलदेसर) !

थे शारीरिक अस्वस्थता के कारण देशनोक रुक रह्या हो। निजोरी बात है। गंगाशहर मोछव, फिर भी दर्शण कोनी कर सक्या। न म्हे दे सक्या। जोग की बात है। बाकी थांरी शासण की सेवावां है जकी स्मरणीय है, थांरी रग-रग शासण में रम्योड़ी है। मैं जाणू हूं। पर अबार म्हारैं उठीनै आणे रो वैत कोनी तिण सूं कोई विचार करीज्यो मती। चित्त में घणी-घणी समाधि राखीज्यो। शरीर रो व खेतर रो ध्यान राखीज्यो। शेष कुशलं।

सं० २०३८ माघ शुक्ला ११ —आचार्य तुलसी
गंगाशहर

इस प्रकार आचार्यप्रवर एवं साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी द्वारा प्रदत्त और भी कई पत्र हैं।

(परिचय पत्र)

८५६।८।१३४ साध्वीश्री सोहनांजी (चाड़वास)

(दीक्षा सं० १६८२, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री सोहनांजी राजलदेसर (स्थली) निवासी संचियालालजी वैद (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १६६२ कार्त्तिक कृष्णा १० को हुआ। माता का नाम काला वाई था। सोहनांजी का विवाह चाड़वास के पन्नालालजी वच्छावत के पुत्र लूनकरणजी के साथ कर दिया गया।

वैराग्य—दीक्षार्थी भाई-वहिनो के लिए गाये जाने वाले गीतो के सुनने तथा स्वयं वहिनो के साथ गाने से उन्हें उद्‌वोधन मिला। चार वर्षों की कठिन परीक्षा के वाद पति ने आज्ञा प्रदान की।

दीक्षा—सोहनांजी ने २० साल की अवस्था मे पति को छोड़कर सं० १६८२ कार्त्तिक शुक्ला ५ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीदासर मे दीक्षा स्वीकार की।[1] उस दिन होने वाली १० दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री जमनांजी (८५७) के प्रकरण में कर दिया गया है।

सेवा—साध्वीश्री सात साल गुरु-कुल-वास मे रही। समुच्चय के झोली, पल्ला आदि धोने का काम प्रायः वे करती।

तपस्या—उपवास	२	४	८
१०००	१५	५	१

यथाशक्य स्वाध्याय, ध्यान, मौन का क्रम चलता रहता है।

पुरस्कृत—एक वार सतियो को उठाकर लाई तव आचार्यश्री ने उन्हें ५ वारी की वक्शीस की। एक वार पांच महीने विगय-वर्जन की वक्शीस की।

(परिचय पत्र)

---

१. सती सोहनां चाडवास री....।

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० १३)

८६०।८।१३५ साध्वीश्री जुहारांजी (मोमासर)

(संयम-पर्याय १९८२-२०३८)

छप्पय

सती जुहारां ने किया संयम-पथ स्वीकार।
ऋजुता, मृदुता आदि से जीवन लिया निखार।
जीवन लिया निखार ग्राम मोमासर गाया।
पटावरी परिवार धर्म का ध्वज फहराया।
पति वियोग के बाद में वही विरति-रस-धार।
सती जुहारां ने किया संयम-पथ स्वीकार॥१॥

मातुःश्री (सा० छोगांजी) का मिल गया योग-ज्ञान अनुकूल
शिक्षा से दिल खिल गया गया फूलवत् फूल।
गया फूलवत् फूल बयासी संवत्सर में।
पाई गुरु के पास चरण-निधि बीदासर में।
वय में सोलह साल की बड़ा उठाया भार[1]।
सती जुहारां ने किया संयम-पथ स्वीकार॥२॥

आठ साल गुरुदेव की सेवा में सोल्लास।
तीन साल तक फिर रही नोजां श्रमणी पास।
नोजां श्रमणी पास विनय-युत शिक्षा पाई।
यथाशक्य कर ज्ञान योग्यता क्रमशः लाई।
अग्रगामिनी बन किया पुर-पुर में सुविहार[2]।
सती जुहारां ने किया संयम-पथ स्वीकार॥३॥

दोहा

गंगापुर में जब हुए, कालू गुरु अस्वस्थ।
पहुंची भाद्रव में सती, गुरु-सेवा में स्वस्थ[3]॥४॥

करती जप-स्वाध्याय सह, तप भी उपवासादि।
भरती समता-भाव से, आत्मा में सुसमाधि[4]॥५॥

छप्पय

अन्तिम वर्षों में हुई रोगों से आक्रांत ।
सहती धृति से वेदना चित्त-वृत्ति कर शांत ।
चित्त-वृत्ति कर शांत भावना निर्मल भाती ।
ध्यान-मौन कर दीर्घ साधना सफल बनाती ।
वाचन सह स्वाध्याय कर लगी खींचने सार ।
सती जुहारां ने किया संयम-पथ स्वीकार ॥६॥

रही सांडवा ग्राम में लगभग ग्यारह मास ।
आठ-तीस का आ गया चैत्र महीना खास ।
चैत्र महीना खास शेष में करके अनशन ।
सती गई सुरलोक सुयश गाते सब सज्जन ।
छप्पन वार्षिक साधना सफल हुई साकार[1] ।
सती जुहारां ने किया संयम-पथ स्वीकार ॥७॥

सेवा में सहयोगिनी सतियां एकाकार ।
परिचर्या में हर समय रहती थीं तैयार ।
रहती थी तैयार पूर्णतः प्रीति निभाई ।
शांत सुखद सहवास बहुत वर्षों तक पाई ।
विनय-भक्ति एकत्व से रही जोड़कर तार[1] ।
सती जुहारां ने किया संयम-पथ स्वीकार ॥८॥

दोहा

देख संगठन संघ का, सेवा-भाव सतोल ।
विस्मित मानव-मेदिनी, स्तुति गाती दिल खोल ॥९॥

१. साध्वीश्री जुहाराजी का जन्म सं० १९६६ चैत्र शुक्ला ३ को बीदासर (स्थली) के बैगाणी (ओसवाल) परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम संतोषचंदजी और माता का गौरां देवी था। तेरह साल की उम्र में जुहारांजी का विवाह मोमासर-निवासी कनीरामजी पटावरी (ओसवाल) के सुपुत्र पूनमचंदजी के साथ कर दिया गया। किन्तु नियति के योग से

एक साल बाद ही उनके पति का देहान्त हो गया। जिससे उनके तथा उभय पक्ष परिवार के सम्मुख एक दुःख का पहाड-सा खडा हो गया। पर भावी के आगे किसी का बल चल नही सकता। उस विकट बेला मे सहयोग मिला—देव, गुरु और धर्म का।

बीदासर मे विराजित साध्वी मातुःश्री छोगांजी ने वहिन जुहारां को मार्मिक शिक्षा देते हुए कहा—'वहिन! अब तुम्हारे सामने दो मार्ग हैं—पहला तो इस दुःख को भोगती रहना और दूसरा है इसे भूलकर जीवन को साधना-पथ की ओर मोड देना।' समय पर दिया गया मातुःश्री का उपदेश वहिन पर तत्काल असर कर गया और उन्होने संसार की अनित्यता का अनुभव करते हुए साधु-व्रत ग्रहण करने का दृढ संकल्प कर लिया। कुछ समय धर्म-ध्यान एवं तत्त्व-ज्ञानार्जन मे लगाकर दीक्षा के लिए कटिबद्ध हो गई और पारिवारिक जन को सहमत कर लिया। अष्टमाचार्य श्री कालूगणी से निवेदन किया तब गुरुदेव ने थोडे समय मे ही वहिन की भावना को दृष्टिगत कर दीक्षा-स्वीकृति प्रदान कर दी। इसके लिए मातुःश्री छोगाजी का अच्छा सहयोग रहा।

(परिचय-पत्र)

जुहारांजी ने (पति वियोग के बाद) १६ साल की अवस्था (नाबालिग) मे सं० १९८२ कार्तिक शुक्ला ५ को आचार्यवर कालूगणी के हाथ से बीदासर मे दीक्षा स्वीकार की।[1]

(ख्यात)

उस दिन होने वाली १० दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जमनांजी (८५७) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

२. साध्वीश्री को दीक्षित होने के बाद ८ साल गुरु-चरणों में रहने का अवसर प्राप्त हुआ। तीन साल साध्वीश्री नोजांजी (६५९) 'चूरू' के सिंघाड़े मे रही। इस अवधि मे उन्होने यथाशक्य अध्ययन कर अपने आपको अनेक दिशाओ मे अग्रसर किया। सं० १९९३ मे आचार्यवर कालूगणी ने उनको अग्रगामिनी बना दिया। उन्होने ग्रामानुग्राम विहार कर जन-जन मे धार्मिक-संस्कार भरने का अच्छा प्रयत्न किया। उनके चातुर्मास-स्थल इस

---

१. ....मोमासर री माणो।
नाम जुहारां गोत पटावरी, पीहर है बीदाणो॥
(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० १३)

प्रकार हैं :—

सं० १९९३	ठाणा	५	वागोर
सं० १९९४	,,	५	लूनकरणसर
सं० १९९५	,,	५	दौलतगढ़
सं० १९९६	,,	५	टाडगढ़
सं० १९९७	,,	५	कांकरोली
सं० १९९८	,,	५	केलवा
सं० १९९९	,,	५	पाली
सं० २०००	,,	५	पुर
सं० २००१	,,	५	पहुना
सं० २००२	,,	५	आषाढ़ा
सं० २००३	,,	५	थामला
सं० २००४	,,	५	वीदासर
सं० २००५	,,	५	सेमल
सं० २००६	,,	५	ऊमरी
सं० २००७	,,	५	उज्जैन
सं० २००८	,,	५	पेटलावद
सं० २००९	,,	५	झखणावद
सं० २०१०	,,	५	वरार
सं० २०११	,,	५	कसूण
सं० २०१२	,,	५	हिसार
सं० २०१३	,,	५	कोसीवाड़ा
सं० २०१४	,,	६	छापर
सं० २०१५	,,	५	डावड़ी
सं० २०१६	,,	५	सिसाय
सं० २०१७	,,	५	शार्दूलपुर
सं० २०१८	,,		वीदासर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०१९	,,	३०	लाडनूं (साध्वी जतनकंवरजी (८२८) 'राजगढ़' का संयुक्त)

सं० २०२०	ठाणा	५	देवगढ़
सं० २०२१	,,	५	गोगुंदा
सं० २०२२	,,	५	वाव
सं० २०२३	,,	५	व्यावर (नया शहर)
सं० २०२४	,,	५	भिवानी
सं० २०२५	,,	५	उकलानामण्डी
सं० २०२६	,,	५	उचानामण्डी
सं० २०२७	,,	५	टोहाना
सं० २०२८	,,	६	नोहर
सं० २०२९	,,	५	खीवाडा
सं० २०३०	,,	५	राणी
सं० २०३१	,,	६	जोजावर
सं० २०३२	,,	४	सांढवा
सं० २०३३	,,	५	तारानगर
सं० २०३४	,,	५	राजगढ़
सं० २०३५	,,	५	शार्दूलपुर
सं० २०३६	,,	५	,,
सं० २०३७	,,	१०	सरदारशहर (साध्वीश्री रुपांजी (८६८) 'सरदारशहर' का संयुक्त)
सं० २०३८	,,	५	सांडवा

(चातुर्मासिक तालिका)

३. सं० १९९३ मे उनका अग्रगण्य रूप मे प्रथम चातुर्मास वागोर में हुआ। उस वर्ष आचार्यवर कालूगणी का चातुर्मास गंगापुर मे था। वहां आचार्यवर को असाध्य बीमारी ने घेर लिया। साध्वीश्री भाद्रव महीने में गंगापुर पहुंची और गुरुदेव के दर्शन एव सेवा का कुछ दिन लाभ लिया। एक दिन आचार्यवर ने फरमाया—'जुहारांजी ! तुम्हारे तो दर्शन-सेवा हो गई इसीलिए तुम वापस वागोर चली जाओ और साथ की अन्य साध्वियों को भी दर्शन-सेवा का लाभ दो।' गुरु के आदेश को शिरोधार्य कर साध्वीश्री ने गंगापुर से वागोर के लिए विहार कर दिया। पर बीच मे नदी मे पानी आ गया, जिससे वे आगे तो जा नही सकती थी, पर पीछे भी कैसे लौटे ! अतः

नदी के किनारे के एक छोटे-से गांव मे ठहर गईं। सोचती रही—'अव क्या होगा! न जाने आचार्यवर कितना उलाहना देंगे!' पर आचार्यवर को जव इस वात का पता लगा तो उन्होने साध्वीश्री को वापस गंगापुर वुला लिया। उन्हें सहज ही गुरुदेव की अतिम समय की सेवा का मौका मिल गया। पूज्य कालूगणी की साध्वीश्री पर अच्छी कृपा थी।

(परिचय-पत्र)

४. साध्वीश्री सरल-हृदया, प्रकृति से कोमल और संघ-संघपति के प्रति गहरी निष्ठा रखती थी। अपने साधना-प्रधान जीवन को विकसित करने के लिए स्वाध्याय-ध्यान, मौन, जप-तप आदि मे प्रायश: लगी रहती। उन्होंने अपने जीवनकाल मे इस प्रकार तप किया—

उपवास	वेला	३	४	५	८
१६२१	३८१	८	५	२	१

सं० २०२१ से २०३८ तक दिन मे छह घंटे तथा रात्रि मे १० वजे से ५ वजे तक वे निरन्तर मौन करती थी। प्रतिदिन दो घंटे का ध्यान, चार-सौ गाथाओं का स्वाध्याय और आगमादि साहित्य-वाचन एवं श्रवण का क्रम प्राय: नियमित रूप से चलता था।

(परिचय-पत्र)

५ साध्वीश्री अंतिम छह वर्षो मे घोर वीमारी से आक्रांत रही। इसीलिए १ वर्ष राजगढ, २ वर्ष शार्दूलपुर, १० महीने सरदारशहर और अन्तिम ११ महीने साडवा मे प्रवास किया। विविध औपधोपचार करने पर भी उनका शरीर स्वस्थ नही हो सका। निकाचित असात-वेदनीय का योग समझकर उन्होने वड़े समता-भाव से वेदना को सहन किया और अपनी वृत्ति को अन्तर्मुखी वना लिया। स्वाध्याय, ध्यान, जाप और मौन मे निमग्न रहने लगी।

आखिर अधिक अस्वस्थ होने पर उन्होने सं० २०३८ चैत्र कृष्णा २ (दिनांक ११-३-८२) को अपने आप आजीवन अनशन कर लिया। साध्वियो को पता नही चला, जिससे वे दो-दो घटे का प्रत्याख्यान कराती रही। आखिर ज्ञात होने पर शाम को ६ वजकर ४० मिनिट पर उनको संथारा कराया गया। वे अत्यन्त समाधि-भाव से लगभग ९ वजे दिवंगत हो गईं। उनका संयम-काल साधिक छप्पन साल का रहा।

(परिचय-पत्र)

६. साध्वीश्री साथ मे रहने वाली साध्वियों के प्रति अमित वात्सल्य रखती थी। उनके जीवन-निर्माण के लिए योगदान करती थीं। निम्नोक्त साध्वियां काफी वर्षों से उनके सिंघाड़े में विनयपूर्वक रही—

१. साध्वीश्री गौरांजी (६५१) सरदारशहर ४६ वर्ष तक
२. ,, पूनांजी (१०७३) सुजानगढ़ ४० वर्ष तक
३. ,, कानकंवरजी (११६१) चाड़वास ३८ वर्ष तक
४. ,, किस्तूरांजी (१०४३) बीदासर २१ वर्ष तक
५. ,, भानुमतीजी (१२३२) गंगाशहर २० वर्ष तक

सभी साध्वियां उनकी पूर्णरूपेण सहयोगिनी रहीं। रुग्णावस्था में तन-मन से सेवा-सुश्रूषा कर उन्हे सुख-समाधि पहुंचाने में पूर्ण जागरूक रहीं।

तेरापंथ धर्म-संघ की विनय-प्रणाली एवं सेवा-व्यवस्था को देखकर जन-जन का मानस हर्ष-विभोर हो जाता है।

(परिचय-पत्र)

८६१।८।१३६ साध्वीश्री हुलासांजी (किराड़ा)

(दीक्षा सं० १९८२, वर्तमान)

'२७वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री हुलासाजी का जन्म किराड़ा (स्थली) के नाहटा गोत्र मे स० १९६९ भाद्रव कृष्णा अमावस्या[1] को हुआ। उनके पिता का नाम भूरामलजी और माता का तीजाजी था।

वैराग्य—किराडा छोटा-सा गाव है और कुछ ही तेरापथी परिवार हैं। पर भाई-वहिनो मे धार्मिक लगन अच्छी है जिससे प्राय: प्रतिवर्ष साधु-साध्वियो का विराजना हो जाता है। साध्वियो के प्रेरक उपदेश से वालिका हुलासी के मन मे वैराग्य का स्रोत उमड़ पड़ा। उन्होने सकल्प-वद्ध होकर अभिभावक जन से दीक्षा की अनुमति प्राप्त की और पूर्णरूपेण तैयारी कर ली।

दीक्षा—उन्होने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९८२ कार्त्तिक शुक्ला ५ को आचार्यश्री कालूगणी से बीदासर मे दीक्षा ग्रहण की।[2] उस दिन होने वाली १० दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जमनाजी (८५७) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सहवास एवं सेवा—साध्वीश्री हुलासाजी दीक्षित होने के वाद ७ महीने तक गुरुकुल-वास मे रही। फिर साध्वी चादांजी (६७३) 'सरदारशहर' के साथ १९ वर्ष तक विहार किया। उनके सिघाड़े मे तीन वृद्ध साध्वियां थी। उनकी वहुत सेवा की। साध्वी चपाजी (६९२) 'बालोतरा' ने काफी तपस्या की। उनकी सेवा का भी विशेष लाभ लिया।

अध्ययन—दशवैकालिक, कुछ थोकडे तथा रामचरित्र आदि कण्ठस्थ किए। भगवती सूत्र को छोड़कर प्राय: सभी आगमो का वाचन किया।

	उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९
तपस्या—	२६५१	२५०	३१	१७	६	१	१	१	२

१ ख्यात आदि मे भाद्रव कृष्णा १ है।

२. हुलस हुलासा सयम साध्यो,

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० १४)

$\frac{१०}{१}$ $\frac{११}{१}$ $\frac{१२}{१}$ $\frac{१५}{१}$।

प्रदेशी राजा के बारह बेले तथा तेरहवां तेला किया। तप के कुल दिन ३४२६, जिनके ९ वर्ष, ६ महीने और ९ दिन होते है। यह तप सं० २०४१ तक का है।

तप से रोग-मुक्ति—सं० २००० शार्दूलपुर की घटना है—साध्वीश्री हुलासाजी रात्रि के समय सोयी हुई थी कि अचानक ऐसी व्याधि उत्पन्न हुई कि वे मुह से 'भैंसे' की तरह जोर-जोर से फुफकार करने लगी। सभी साध्वियां जग गईं। पहले तो उन्होने सोचा—कोई भैंसा है, पर बाद मे ज्ञात हुआ कि यह आवाज साध्वी हुलासांजी के मुंह से निकल रही है। वे सब घबरा गईं। दूसरे दिन वैद्यजी द्वारा निदान कराने पर बताया गया कि यह एक प्रकार का दौरा है। फिर वह प्रत्येक पूर्णिमा की रात्रि को आने लगा। अढाई वर्षों तक उसका आतंक चलता रहा। इससे साध्वीश्री के शरीर मे घाव हृ जाते। एक बार तो जीभ कटते-कटते बच गई। इस व्याधि से उन्हे बड़ी तकलीफ भोगनी पडी।

सं० २००३ का चातुर्मास नाल मे था वहां गुरुदेव के आदेशानुसार साध्वीश्री ने ९ दिन की तपस्या की। तप के प्रभाव से उनका उपद्रव मिट गया और गुरुदेव के प्रताप से वे व्याधि-मुक्त हो गईं।

(परिचय-पत्र)

साध्वीश्री स० २०३९ से वृद्धावस्था के कारण बीदासर (समाधि-केन्द्र) मे स्थिरवास कर रही है।

८६२।८।१३७ साध्वीश्री सिरेकंवरजी (श्रीडूंगरगढ़)

(दीक्षा सं० १९८२, वर्तमान)

'२८वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री सिरेकंवरजी का जन्म श्रीडूंगरगढ (स्थली) के मालू (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७१ फाल्गुन शुक्ला १० को हुआ। उनके पिता का नाम जीवराजजी (लाभूरामजी के पुत्र) और माता का छोटां वाई था।

वैराग्य—सिरेकंवरजी का ननिहाल वीदासर मे था, जिससे वहां विराजित साध्वी मातु:श्री छोगांजी का उन्हें सान्निध्य मिलता रहा। उनके तथा अन्य साध्वियो के उपदेश से संयम लेने की भावना प्रस्फुटित हो गई।

दीक्षा—सिरेकंवरजी ने ११ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९८२ कार्त्तिक शुक्ला ५ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से वीदासर मे दीक्षा ग्रहण की[1]। उस दिन होने वाली १० दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जमनांजी (८५७) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

उनकी संसार-पक्षीया वुआ किस्तूरांजी (८०२), वुआ की वेटी वहिन आसांजी (८०३) 'राजलदेसर' ने सं० १९७६ मे, वावा की वेटी वहिन पूनांजी (८६७) ने सं० १९८२ मे तथा पिता जीवराजजी (४८५), भाई संपतमलजी (४८८) और छोटी वहिन केशरजी (९३५) ने सं० १९८९ मे दीक्षा स्वीकार की।

इस प्रकार उनके परिवार की और भी कई दीक्षाएं हुईं।

गुरुकुल-वास—साध्वी सिरेकंवरजी को दीक्षित होने के वाद साढ़े दस साल गुरुकुल-वास मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी (ससार-पक्षीया वुआ दादीजी) का निकटतम सान्निध्य मिला। अढ़ाई साल साध्वी-प्रमुखा की सेवा मे राजलदेसर रहना हुआ। इस अवधि में उन्होने ज्ञानार्जन एवं कला का विकास करते हुए अपने जीवन का निर्माण

---

१. ....सिरेकंवर श्रीकारी।
जीवराज मालू की पुत्री..........।
(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० १४)

किया ।

उनके द्वारा किये गये कंठस्थ ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है—

आगम—आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प ।

अन्य—भ्रमविध्वंसन, जैनसिद्धान्त दीपिका, शारदीया नाममाला, कालुकौमुदी, सिन्दूरप्रकर तथा अनेक व्याख्यान थोकड़े आदि ।

तप—उपवास से आठ दिन तक प्रायः लड़ीवद्ध तप किया।

विहार—साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी के स्वर्गवास के बाद आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी सिरेकंवरजी का सिंघाड़ा वनाया । उन्होंने निकट-दूर क्षेत्रों में विहरण कर धर्म-प्रचार किया । अनेक व्यक्तियो में धार्मिक संस्कार भरे। लगभग एक हजार व्यक्तियो को सम्यक्त्व दीक्षा (गुरु-धारणा) दी । पंजाब प्रान्त मे साध्वी-समाज मे सर्वप्रथम वे ही गईं । उनके चातुर्मासो की तालिका इस प्रकार है—

सं० १९९४	ठाणा ५	राजगढ़
सं० १९९५	,, ५	भिवानी
सं० १९९६	,, ५	नावा
सं० १९९७	,, ५	राजनगर
सं० १९९८	,, ५	हिसार
सं० १९९९	,, ५	बलुन्दा
सं० २०००	,, ५	गंगानगर
सं० २००१	,, ५	जगरावां
सं० २००२	,, ५	संगरूर
सं० २००३	,, ५	भीखी
सं० २००४	,,	रतनगढ़ (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २००५	,, ५	फतेहपुर
सं० २००६	,, ५	लुधियाना
सं० २००७	,, ५	रायकोट
सं० २००८	,, ५	जगरावां
सं० २००९	,, ५	चूरू
सं० २०१०	,, ५	पेटलावद
सं० २०११	,, ५	केसूर

सं० २०१२	ठाणा		उज्जैन (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २०१३	,,	५	जयपुर
सं० २०१४	,,	५	कालू
सं० २०१५	,,	६	,,
सं० २०१६	,,	६	,,
सं० २०१७	,,	५	पाली
सं० २०१८	,,	५	रीछेड़
सं० २०१९	,,	५	टाडगढ
सं० २०२०	,,	५	वाडमेर
सं० २०२१	,,	५	कुमारनगर (धूलिया)
सं० २०२२	,,	५	भुसावल
सं० २०२३	,,	५	जालना
स० २०२४	,,	५	औरगावाद
सं० २०२५	,,	५	जालना
सं० २०२६	,,	५	जालना
सं० २०२७	,,	५	शाहदा
सं० २०२८	,,	५	पुर
सं० २०२९	,,	५	जसोल
सं० २०३०	,,	५	वाडमेर
सं० २०३१	,,	५	वालोतरा
सं० २०३२	,,	३९	लाडनूं 'सेवाकेन्द्र'
सं० २०३३	,,	६	जयपुर
सं० २०३४	,,	६	जयपुर (जनता कोलोनी)
सं० २०३५	,,	६	भिवानी
स० २०३६	,,	६	रोहतक
स० २०३७	,,	६	हासी
सं० २०३८	,,	६	हिसार
सं० २०३९	,,	६	ईड़वा
स० २०४०	,,	७	आमेट
सं० २०४१	,,	६	राणावास
सं० २०४२	,,	६	गोगुन्दा

(चातुर्मासिक तालिका)

संस्मरण—

(१) अति सर्वत्र वर्जयेत्—साध्वी सिरेकुमारीजी बाल्यावस्था मे चावल बहुत खाती थी। एक दिन साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी ने पूज्य कालूगणी को निवेदन किया—'गुरुदेव ! इस नानकी को बासी चावल मिल जाए तो भी नही छोडती।' आचार्यवर ने बाल साध्वी को शिक्षात्मक शब्दों मे फरमाया—'अति सर्वत्र वर्जयेत्—अर्थात् खाद्य-पेय आदि की अति-मात्रा वर्जनीय होती है। अधिक चावल खाने से कभी शरीर मे बीमारी भी हो सकती है।'

समयान्तर से ऐसा ही हुआ। उनके 'सूगर' की बीमारी हो गई और उन्हे विवश होकर चावल छोड़ देना पडा। तब उन्होने गुरुवर की उक्त शिक्षा को हृदयंगम कर लिया कि अधिक मात्रा मे खायी हुई वस्तु वास्तव मे हानिकारक होती है। इसके लिए पहले से ही सावधान रहना चाहिए।

(२) गुरु-स्मरण का चमत्कार—साध्वीश्री एक बार ज्येष्ठ महीने मे धुरी (पजाब) से विहार कर प्रसोद गाव मे गईं। वहा स्थान न मिलने के कारण दस बजे तीन मील का विहार कर लच्छोपट्टी नामक गांव मे पहुंची। वहा दो-सौ दूकाने थी, किन्तु उनमे ४० दूकाने ही आबाद (चालू) थी। साध्विया जहा ठहरी वहा से वे आबाद दूकाने काफी दूर थी। स्थान के पीछे जंगल का दृश्य नजर आ रहा था। वहा की बहिनो ने कहा—'साध्वीश्रीजी ! यहा रात के बारह बजे रेल आती है। उस समय गुण्डे-बदमाशो का भय रहता है, अतः हमारे यहां पहरा लगाने वाले पहरेदारों को हम आपके यहा भेज देगी ताकि आपको किसी प्रकार की कठिनाई नही होगी।'

रात्रि का समय, नीरव वातावरण। साध्वियो को एक ध्वनि सुनाई दी। उन्होने आश्चर्यपूर्वक देखा तो जगल की ओर के दरवाजे का किवाड़ जोर से गिर पडा। थोडी देर बाद दो व्यक्ति दरवाजे के नीचे हंसी-मजाक करते हुए दिखाई दिये। साध्वीश्री ने साहसपूर्वक जोशीले शब्दो मे कहा—'तुम लोग हमे यहां अकेली साध्वियो को ही समझते होगे, पर हम अकेली नही है। हमारे पास मे गुरु के नाम की शक्ति है।' यह कहती हुई सभी साध्विया आचार्य भिक्षु तथा आचार्य तुलसी के स्मरण मे लग गईं। लगभग आधे घंटे बाद पहरेदार वहां पहुंच गये। फिर उनके आते ही वे लोग भाग गये। मडी के लोग भी काफी इकट्ठे हो गये।

यह था गुरु नाम के स्मरण का चमत्कार।

साध्वी- जी

८६३।८।१३८ साध्वीश्री झमकूजी (बीदासर)

(दीक्षा सं० १९८२, वर्तमान)

'२९ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री झमकूजी का जन्म सं० १९७१ माघ शुक्ला ५ को बीदासर (स्थली) मे हुआ। उनके पिता का नाम घमंडीरामजी सिंघी (ओसवाल) और माता का सुवटी देवी था।

दीक्षा—झमकूजी ने ११ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १९८२ कार्त्तिक शुक्ला ५ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा बीदासर मे दीक्षा स्वीकार की।[1] उस दिन होने वाली १० दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री जमनांजी (८५७) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के बाद चार साल गुरुकुल-वास में; आठ साल साध्वी मातु:श्री छोगाजी की सेवा मे, आठ साल साध्वीश्री दीपांजी (८३०) 'सिरसा' के साथ तथा चालीस साल साध्वीश्री मालूजी (८३८) 'रतनगढ़' के सिंघाड़े मे रही। अभी साध्वीश्री मनोहरांजी (८७१) 'सुजानगढ़ के साथ मे है।

शिक्षा—दशवैकालिक, आराधना, चौवीसी, शील की नौ बाड़, तेरहद्वार, बावनबोल, इक्कीसद्वार तथा कालू शतक आदि कंठस्थ किये।

तपस्या— उपवास/२३६९, २/५१, ३/३। ४१ बार दसप्रत्याख्यान तथा ३५ बार आयम्बिल के तेले किये।

(परिचय पत्र)

---

१. ....झमकू तिण पुर-वारी।

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० १४)

८६४।८।१३६ साध्वीश्री पानकंवरजी (पचपदरा)

(दीक्षा सं १९८२, वर्तमान)

'३० वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री पानकवरजी का जन्म सं० १९७२ कार्त्तिक कृष्णा ३ को पचपदरा (मारवाड़) मे हुआ। उनके पिता का नाम चौथमलजी सकलेचा (ओसवाल) और माता का जमनादेवी था।

वैराग्य—वालिका पानकुमारी जव चार महीने की हुई तभी उनके पिता का देहावसान हो गया। इस घटना से उनकी माता जमनादेवी के मन में वैराग्य के वीज अंकुरित हो गए। उन्होने अपना जीवन धर्म-ध्यान मे लगाया और समय आने पर अपनी पुत्री को भी संयमी-जीवन अपनाने के लिए प्रेरित किया। उस समय वालिका की अवस्था नौ साल की थी। फिर भी जन्मान्तर संस्कारो के कारण वे भी माता के साथ दीक्षित होने के लिए तैयार हो गईं। उन वर्षो मे साध्वीश्री नानूजी (४९६) 'पचपदरा' पचपदरा मे स्थिरवास कर रही थी। मां-पुत्री की वैराग्य-वृद्धि मे उनका भी विशेष सहयोग रहा।

दीक्षा—पानकवरजी ने दस साल की अविवाहित वय (नावालिग) मे अपनी माता जमनांजी (८५७) के साथ सं० १९८२ कार्त्तिक शुक्ला पचमी को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीदासर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली १० दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जमनांजी (८५७) के प्रकरण में कर दिया गया है।

सान्निध्य—दीक्षा के कुछ महीनो वाद आचार्यश्री कालूगणी ने साध्वी जमनांजी और पानकवरजी को साध्वीश्री नोजांजी (६५९) 'चूरू' के सिंघाड़े मे भेज दिया। साध्वी पानकंवरजी ने उनके सान्निध्य मे १८ वर्ष रहकर अपने जीवन का निर्माण किया। विनयपूर्वक शिक्षाभ्यास करते हुए यथाशक्य ज्ञान-कला आदि मे प्रगति की।

विहार—साध्वीश्री नोजाजी का स्वर्गवास सं० २००० मे हुआ। उसी वर्ष आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी पानकंवरजी को अग्रगण्या वना दिया। उन्होने अनेक क्षेत्रो मे विहरण कर धर्म-प्रचार किया। उनके चातुर्मास-स्थल

इस प्रकार हैं—

सं० २००१	ठाणा	५	बायतू
सं० २००२	,,	५	दौलतगढ़
सं० २००३	,,	५	टाडगढ़
सं० २००४	,,	५	गडबोर
सं० २००५	,,	५	पचपदरा
सं० २००६	,,	५	देवगढ़
सं० २००७	,,	५	लाछुड़ा
सं० २००८	,,	५	नाल
सं० २००९	,,	५	कंटालिया
सं० २०१०	,,	५	आसींद
सं० २०११	,,	५	बरार
सं० २०१२	,,	५	पचपदरा
सं० २०१३	,,	५	दिवेर
सं० २०१४	,,	५	पींपाड़
सं० २०१५	,,	५	जसोल
सं० २०१६	,,	५	आपाढ़ा
सं० २०१७	,,	५	पेटलावद
सं० २०१८	,,	५	उचानामण्डी
सं० २०१९	,,	५	भगवतगढ़
सं० २०२०	,,	५	सिसोदा
सं० २०२१	,,	४	पुर
सं० २०२२	,,	५	नोहर
सं० २०२३	,,	२७	लाडनू 'सेवाकेन्द्र' (साध्वीश्री सोनांजी (८७७) 'डीडवाना' का संयुक्त)
सं० २०२४	,,	५	ब्यावर (नयाशहर)
सं० २०२५	,,	५	जावद
सं० २०२६	,,	५	देवगढ़
सं० २०२७	,,	६	मोखणुंदा
सं० २०२८	,,	५	कालांवाली

सं० २०२९	ठाणा	५	कानोड
सं० २०३०	,,	४	थामला
सं० २०३१	,,	५	केलवा
सं० २०३२	,,	४	टापरा
सं० २०३३	,,	५	नोहर
सं० २०३४	,,	४	पचपदरा
सं० २०३५	,,	४	समदड़ी
सं० २०३६	,,	४	गडवोर
सं० २०३७	,,	५	सिसोदा
सं० २०३८	,,	५	छोटी खाटू
सं० २०३९	,,	५	पचपदरा
सं० २०४०	,,	५	टाडगढ
सं० २०४१	,,	५	बायतू
सं० २०४२	,,	६	जोधपुर

(चातुर्मासिक तालिका)

प्रतिलिपि—लिपिकला का विकास कर साध्वीश्री ने लगभग पांच पुस्तकें (एक पुंस्तक में लगभग ४००, ५०० पन्ने) लिखी।

संस्मरण—साध्वीश्री के निम्नोक्त संस्मरण उनकी सरलता, साहस आदि विशेषताओ को अभिव्यक्त करते हैं—

(१) **गुरु-कृपा**—एक बार बाल्यावस्था मे साध्वी पानकुमारीजी के कान में दर्द हो गया। पर वे उसे साफ नही करवाती। पूज्य कालूगणी ने वात्सल्य-भरे शब्दो मे फरमाया—'तुम्हे मैं अपने पुट्ठे के पन्ने पढने के लिए दूंगा, तुम सफाई करवा लो।' बाल साध्वी ने गुरुदेव के आदेश को तत्काल क्रियान्वित कर दिया। आचार्यवर उन्हे प्रोत्साहित करने के लिए कई बार अपने पुट्ठे के पन्ने प्रदान करते। वे गुरुदेव के इस अनुग्रह से बहुत प्रसन्न होती।

(२) **अनुशासन**—बाल्यावस्था मे स्वभाव-चचलता के कारण इधर-उधर घूमते-फिरते वे किसी की स्याही गिरा देती तथा किसी की कलम तोड़ देती। एक दिन साध्वीश्री नोजांजी ने उन्हें उलाहना देते हुए कहा—'इस खिड़की मे बैठ जाओ, उठना मत।' बाल साध्वी वही बैठ गई। गोचरी आ गई साध्वियो ने आहार करना चालू कर दिया। तत्पश्चात् साध्वीश्री नोजांजी को याद आया तब उन्होने कहा—'नानकी कहां है ?' देखा तो वे उसी स्थान

पर बैठी हुई थी। फिर उन्हें बुलाकर आहार करवाया। इस प्रकार वे बाल्य-काल से ही अनुशासन के प्रति जागरूक रहती थी।

(३) साहस—एक बार साध्वीश्री मध्यप्रदेश (मालवा) जा रही थी। रास्ते मे एक छोटा-सा 'आकिया' नामक गाव आया। वहां किसी ने भी ठहरने के लिए जगह नहीं दी, शाम हो गई। तब साध्वीश्री गाव के बाहर एक खुली स्कूल मे ठहरी। रात्री में गुण्डो का उपद्रव रहा। काफी देर तक वे पत्थर फेंकते रहे। साध्वियां बिल्कुल शान्त रही। फिर जब वे नजदीक आने लगे तब साध्वीश्री ने जोर से ललकार लगाई। उनकी आवाज सुनकर ग्रामवासी इकट्ठे हो गये और गुण्डे भाग गये।

(४) मधुर उपदेश—सं० २००७ मे साध्वीश्री मेवाड़ से भिवानी जा रही थी। दूरी का रास्ता होने से उज्जड़ का रास्ता ले लिया। वे चारणों के गांव मे पहुंची। उस दिन साध्वी जमनांजी के पैरो मे दर्द भी हो गया। गांव मे ठहरने के लिए किसी ने भी स्थान नही दिया। साध्वीश्री ने जैन साधुओं की चर्या बतलाते हुए लोगो को समझाया। तब उन्होने केवल स्थान ही नहीं दिया बल्कि साध्वीश्री के मधुर उपदेशो से प्रभावित होकर अनेक व्यक्तियो ने सम्यक्त्व दीक्षा (गुरु-धारणा) भी स्वीकार कर ली।

(परिचय पत्र)

साध्वी-प्रमुखा लाडांजी

८६५।८।१४० साध्वी-प्रमुखा लाडांजी (लाडनूं)

(संयम-पर्याय सं० १६८२-२०२६)

लय—लो लाखों अभिनन्दन.......

सती-शेखरा का पाया है लाड सती ने स्थान।
सतियों की वहुमुखी प्रगति का रखा निरन्तर ध्यान ॥
सती.......॥ध्रुव॥

राजस्थान प्रान्त, चन्देरी नगरी जन्म-स्थान।
था कुल-गोत्र खटेड़ स्वजन का वंश-वृक्ष फलवान।
दादा राजरूपजी नामी श्रावक आस्थावान ॥१॥

झूमर पिता और माता का श्री वदनांजी नाम।
मोहन अग्रज छह वांधव में अवरज तुलसीराम।
तीन भगिनियो में ज्येष्ठा का था लाडां अभिधान ॥२॥

शैशव वय बीती सुखपूर्वक पढ़ी न कक्षा एक।
पर सत्संस्कारों से विकसित अनुभव-ज्ञान विवेक।
कुशल बनी पाकादि कार्य मे गृहोपयोगी जान ॥३॥

लघुवय में ही हुआ वही पर वैवाहिक-संस्कार।
हीरालाल नाम पतिवर का बैद श्वसुर-परिवार।
योग मिला समुचित वर-घर का स्वर्ण-सुरभि उपमान ॥४॥

सात साल की स्वल्पावधि तक भौतिक सुख-संयोग।
तदनन्तर जीवन-साथी का सहसा हुआ वियोग।
शोकाकुल सब स्वजन हुए है करते आर्त्तध्यान ॥५॥

किन्तु काल के आगे किसका भी न चल सका जोर।
रोते दिल को थामा परिजन-जन ने करके गौर।
ले धृति का आलम्बन लाडां करती धर्म-ध्यान ॥६॥

साधु-साध्वियों की संगति से हुआ विरति-विस्तार।
त्याग-कसौटी पर चढ़कर सकल्प कर लिये चार।
सीखे कई थोकड़े स्तवनादिक अध्यात्म-प्रधान ॥७॥

लघु भाई चम्पक सह दीक्षित होने को तैयार।
प्रतिक्रमण भी सीख लिया है गुरु-आज्ञा अनुसार।
पर उस समय पड़ा नियतिवश शारीरिक व्यवधान ॥८॥

साधिक एक साल के पीछे आया नया प्रभात।
हो पाये दीक्षा हित उत्सुक श्री तुलसी लघु भ्रात।
मणिकांचन का योग मिला है खिला भाग्य-उद्यान ॥९॥

साल बयासी की आई है कृष्ण पंचमी पौष।
तुलसी भाई सह लाडां को मिला परम सन्तोष।
संयम-श्री पाकर गुरु-द्वारा चढ़ी उर्ध्व सोपान[1] ॥१०॥

दोहा

कालूगुरु की वर्ष दो, सेवा सजी प्रशस्त।
मुनि-चर्या श्रुत आदि में, हो पाई अभ्यस्त ॥११॥

लय—लो लाखों अभिनन्दन.......

दाखां सती साथ में करके नौ वार्षिक सुखवास।
क्षमा आदि गुण का जीवन में क्रमशः किया विकास।
उनके प्रति आभार-प्रदर्शन करती दे बहुमान[2] ॥१२॥

कालू गुरु ने तुलसी मुनि को सौंपा शासन-भार।
समाचार सुन भगिनी फूली खुशियां हुई अपार।
गुरु-दर्शन की उत्सुकता में भूली भोजन-पान ॥१३॥

साक्षात्कार किया मृगसर में चतुर्मास के बाद।
रोम-रोम खिल गया सती का पाकर परमाह्लाद।
अपलक पलक बिछाती गाती मुख से मीठी तान ॥१४॥

स्नेहिल वचनों से की गुरु ने सुख-पृच्छा उपयुक्त।
सामूहिक सब काम-बोझ से उन्हें कर दिया मुक्त।
छह सतियां दे 'साझ' बनाया करके कृपा महान[3] ॥१५॥

गुरु-कुल में रह कर वे लेतीं गुरु-सेवा का लाभ।
विविध योग्यता गई बढ़ातीं पढ़कर ज्ञान-किताब।
सहचर सतियों को भी देती यही प्रेरणा-दान[4] ॥१६॥

सोरठा

नवति-चार की साल, पावस बीकानेर में ।
संयम की वरमाल, पाकर मा वदना खिली ॥१७॥

था अपूर्व यह योग, दो भाई मा बहिन का ।
होते विस्मित लोग, प्राकृतिक इस मेल से[५] ॥१८॥

सुप्रसन्न गण-ईश, होकर श्रमणी लाड को ।
कर पाये बख्शीश, भोजन-पान-विभाग की[६] ॥१९॥

लय—लो लाखों अभिनन्दन........

साध्वी-प्रमुखा झमकूजी ने किया स्वर्ग-प्रस्थान ।
तदनन्तर श्री तुलसी गुरु ने देकर गहरा ध्यान ।
लाड सती को सती-शेखरा बना दिया सविधान[७] ॥२०॥

करती वे गुरु-दृष्टि मुताबिक सतियों की सभाल ।
भरती थी वात्सल्य-भाव से शिक्षा-सुधा रसाल ।
सूक्ष्म दृष्टि से रखती सबका पूरा-पूरा ध्यान ॥२१॥

सतियों को संतोष मिला है गुरु को भी सतोष ।
श्रावक और श्राविकाओं में भी गूंजा यश का घोष ।
कार्य-शीलता जागरूकता से सुफलित अभियान[८] ॥२२॥

निज उत्तरदायित्व निभातीं लाती नया निखार ।
कला-वृद्धि को देती रहती प्रोत्साहन हरवार ।
प्रगति-क्षेत्र की विविध भूमिका में उनका श्रम-दान ॥२३॥

चालू किया सुगुरु ने सतियों में शिक्षा-आयाम ।
योगदान श्री लाडसती का था उसमे हरयाम ।
सिद्ध और साधक मिलने से फलते सब अरमान[९] ॥२४॥

महिला-जागृति में भी उनका था सहयोग विशेष ।
रूढ़ी-उन्मूलन हित देती बहिनों को उपदेश ।
एक-एक को समझाकर करवाती प्रत्याख्यान[१०] ॥२५॥

नई व्यवस्था की सतियों में जब गुरु ने उन्मुक्त।
महासती ने अपनी सहमति की प्रस्तुत उपयुक्त।
नहीं अन्यथाभाव, मन:स्थिति उनकी एक समान[११] ॥२६॥

वज्रासन में स्थित हो नियमित दो-दो घंटे प्राय।
पश्चिम रजनी में करती थीं ध्यान और स्वाध्याय।
रहन-सहन में खान-पान में संयम का उपधान[१२] ॥२७॥

दो हजार तेईस साल तक गुरु सह किया विहार।
जयपुर दिल्ली और बम्बई देखा बंग विहार।
जा न सकी दक्षिण-यात्रा में होने से तन ग्लान ॥२८॥

बीदासर की वीर-भूमि पर मातु:श्री का वास।
गुरु ने रखा सती-प्रमुखा को फिर उनके ही पास।
उछल रहे पाकर दो निधियां बालक वृद्ध जवान ॥२९॥

आस-पास के क्षेत्रों की फिर सतियों की संभाल।
करती रहतीं, भरती रहतीं जन में भाव रसाल।
संघ-संघपति-निष्ठा से ही जीवन का उत्थान[१३] ॥३०॥

हुआ असातोदय से तन में उग्र जलोदर रोग।
डॉक्टर जन की देख-रेख में चलते विविध प्रयोग।
विधि-विधान पूर्वक पथ्यौषध अथवा रोग-निदान ॥३१॥

दिन-प्रतिदिन दुर्बलता बढ़ती स्थिति बनती गंभीर।
चिंतित वैद्य चिकित्सक होते देख-देख दिलगीर।
धैर्य बंधाती सबको साध्वी-प्रमुखा बन चट्टान ॥३२॥

सहनशीलता अजब-गजब की अन्तर मन मजबूत।
विकट स्थिति में वीर वृत्ति की देती सबल सबूत।
'क्षमता की प्रतिमूर्ति' विशेषण से तब ही आह्वान[१४] ॥३३॥

समय-समय पर मिलते गुरु के पत्र और संदेश।
सुन-सुनकर रोमांकुर खिलते पुलकित आत्म-प्रदेश।
व्यक्त सबल शब्दों में करती गुरु के प्रति अहसान[१५] ॥३४॥

संस्मरणों से भरा हुआ है लम्बा जीवन-ग्रन्थ।
बोध-प्रधान महान् श्रेय का दिखलाते वे पन्थ।
ग्राह्य बुद्धि से सुज्ञ वन्धुओ! सुनो खोलकर कान[16] ॥३५॥

तीन साल स्थिरवास किया है बीदसर में खास।
भाई-बहिनों में शिक्षात्मक स्थायी भरा प्रकाश।
एक बहिन को गुरु-आज्ञा से संयम किया प्रदान ॥३६॥

दो हजार छब्बीस साल में दुर्बल हुआ शरीर।
प्रतिदिन कमजोरी बढ़ती है बनती स्थिति गंभीर।
क्षमायाचना की सब से सह आत्मालोचन-स्नान ॥३७॥

हुई हर्निया की बीमारी चैत्र मास में घोर।
साथ भयंकर उदर-व्याधि ने पकड़ लिया है जोर।
लिये ऑपरेशन के सब कहते डॉक्टर चतुर सुजान ॥३८॥

शौर्यभरा साध्वी-प्रवरा नें उत्तर दिया अमोघ।
सुनकर विस्मित वैद्य चिकित्सक आस्तिक-नास्तिक लोग।
उदाहरण रखते हैं ऐसे विरले ही बलवान ॥३९॥

वीर-जयन्ती का दिन आया तेरस शुक्ला चैत्र।
मध्य-दुफेरे चेतन तन का लगा छोड़ने क्षेत्र।
अनशन करवाया सतियों ने देख समय अवसान ॥४०॥

सावधान मुद्रा में लेटी महासती सुप्रसन्न।
सुना रहीं मंगल शरणादिक सतियां जो आसन्न।
चंद समय में पलक मूंदते किया स्वर्ग-प्रस्थान ॥४१॥

देह-विसर्जन कर सतियों ने ध्याया निर्मल ध्यान।
रचा श्रावकों ने मिल-जुलकर चरमोत्सव-मंडान।
मिले हजारों जन जुलूस में गाते जय-जयगान[17] ॥४२॥

स्मृति मे उनकी किये सुगुरु ने अपने व्यक्त विचार।
सेवाभावी चंपक मुनि के निकले हृदयोद्गार।
चार तीर्थ ने दी श्रद्धाञ्जलि भावों से उत्तान[18] ॥४३॥

सती संघमित्रा आती थी ले गुरु का संदेश ।
समाचार सुन स्वर्ग-गमन के लगी हृदय में ठेस ।
लेकिन होनहार के आगे दुनिया सब हैरान ॥४४॥

'बूंद बन गई गंगा' नामक लिखकर पुस्तक एक ।
की है जीवन-झांकी प्रस्तुत करके श्रम अतिरेक ।
तदनुसार मैं 'लाड सती' का लिख पाया आख्यान[१९] ॥४५॥

सप्तम साध्वी-प्रमुखा लाडां पहुंची अमर विमान ।
दो वर्षों के बाद सुशोभित हो पाया वह स्थान ।
बढ़ा रही श्री कनकप्रभाजी श्रमणी-गण का मान ॥४६॥

भिक्षु आदि नवमाधिप तुलसी, युवाचार्य प्रत्यक्ष ।
आठ हुईं साध्वी-प्रमुखाएं एक-एक से दक्ष ।
तेरापंथ धर्म-शासन की बढ़ती जाती शान[२०] ॥४७॥

१. राजस्थान प्रान्त के अन्तर्गत जोधपुर संभाग के लाडनू (मारवाड़) शहर मे सं० १६६० श्रावण शुक्ला तृतीया को साध्वी-प्रमुखा लाडांजी का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम श्री झूमरमलजी और मातु श्री का वदनांजी था। उनके छह पुत्र और तीन पुत्रियो मे 'लाड' का स्थान चतुर्थ था। उन्हे माता-पिता आदि सभी परिवार का अत्यन्त स्नेह मिला। वे कल्पलता की तरह वृद्धिगत होने लगी। धार्मिक परिवार मे जन्म लेने के कारण सहज ही धार्मिक सस्कार मिले। वाल्यकाल से ही उन्होने प्रतिदिन प्राय साध्वियो के दर्शन करना, मध्याह्न मे उनसे अध्यात्म शिक्षा ग्रहण करना आदि चालू कर दिया। उस समय की परम्परानुसार (घर मे दो कलमे नही चलती) उन्हें न स्कूल पढने के लिए भेजा गया और न घर मे ही दो अक्षर सीखने का अवसर मिला।

गृही-जीवन मे गृहोचित कार्य की अपेक्षा होती है। वहिन लाड जव सात-आठ साल की हुई तव से अपनी माता द्वारा गृह-कार्य का प्रशिक्षण लेने लगी। क्रमश. रसोई वनाना, सिलाई करना आदि कार्यो मे निपुण वन गई। उस समय छोटी अवस्था मे ही विवाह करने की परम्परा थी। अत पारिवारिक जनो ने स्थानीय धनराजजी वैद (सोनेली वैद) के सुपुत्र हीरालालजी के साथ सं० १६७१ ज्येष्ठ शुक्ला १ को दस वर्षीया वहिन लाड का पाणिग्रहण कर दिया। वे ससुराल गईं। सास-श्वसुर आदि का स्नेह और घर का अनुकूल वातावरण देखकर प्रसन्नता का अनुभव करने लगी।

उनके पति हीरालालजी शान्त, सरल एवं धार्मिक संस्कारो के व्यक्ति थे। युवावस्था मे ही हरी सब्जी न खाना आदि कई प्रकार के त्याग रखते थे। समयान्तर से उनका मन संसार से विरक्त हो गया। संयम-पथ पर अग्रसर होने का चिन्तन करने लगे। उन्होने धर्मपत्नी को भी संयमी-जीवन स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया। धर्मपत्नी ने भी इसके लिए अपनी सहमति प्रकट की। पर पिताजी की वृद्धावस्था एव वहिन की शादी करना आदि कारणो से वे अपनी भावना क्रियान्वित नही कर सके।

व्यक्ति के जैसा नियति का योग होता है वैसा ही होता है। हीरालाल जी अचानक अस्वस्थ हो गए। उनके मुह मे छाले हुए और क्रमशः वढते गए। जितने उपचार किए गए वे सव विफल हुए। आखिर सं० १६७७ कार्त्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन उन्होने ससार से विदा ले ली। सारा परिवार शोक-

विह्वल हो गया। बहिन लाड के कोमल हृदय पर तो मानो वज्राघात-सा हो गया। उनके आंखो के सामने अंधेरी-सी छा गई। उस समय साध्वियो ने उन्हे दर्शन दिए और बोधात्मक शब्दों मे कहा—'बहिन ! जहां संयोग है वहां वियोग निश्चित है। संयोग और वियोग मे समभाव रखने वाला ही सच्चा तत्त्वदर्शी होता है।' साध्वियो के उपदेश से बहिन लाड को बडी सान्त्वना मिली। उन्होने धैर्य का आलम्बन लेकर अपने आपको अध्यात्म की ओर मोड़ लिया। नियमित धार्मिक अनुष्ठान करने लगी। क्रमशः साधु-मार्ग स्वीकार करने के लिए अपनी क्षमता को प्रतिज्ञाओं की कसौटी पर कसना प्रारम्भ कर दिया साध्वियो के पास चार नियम ग्रहण कर लिए—१. यावज्जीवन रात्रि-भोजन न करना २. सचित्त पानी न पीना ३. किसी प्रकार की हरी सब्जी न खाना ४. रात्रि में पानी न पीना।

बहिन लाड ने अपने हृदय को इतना दृढ बना लिया कि वे दूसरो को धैर्य बधाती और विवेकपूर्ण शब्दो मे उत्तर देतीं। जब उनके बड़े भाई मोहनलालजी सिराजगंज से घर लौटे तो बहिन लाड को वैधव्य रूप मे देख कर फूट-फूटकर रो पडे। उस समय लाड ने दृढता के स्वरो मे कहा—'भाईजी ! क्या कर रहे है ? आप ही ऐसा करेगे तो इस शोक-संतप्त परिवार की क्या स्थिति होगी ?' मोहनलालजी यह सुनकर चकित रह गए। आंखें पौछी और मन को दृढ किया।

चार महीने के बाद बहिन लाड ने अपनी मा के साथ बीदासर मे आचार्यश्री कालूगणी के दर्शन किए और दीक्षा की प्रार्थना भी की। आचार्य-वर ने कहा—'अभी क्या जल्दी है ? पहले धार्मिक अध्ययन करो।' गुरु का सकेत पाकर लाड ने तात्त्विक ज्ञान सीखना चालू कर दिया। लगभग चार वर्षो मे चार हजार पद्य-प्रमाण थोकड़े आदि कठस्थ कर लिए। जैसे—पच्चीस बोल, चर्चा, तेरहद्वार, लघुदण्डक, बासठिया, इकतीस द्वार, भिक्षु-पृच्छा, पांच ज्ञान का थोकडा, गमा, महादडक, सेर्यां, हरखचन्दजी स्वामी की चर्चा, जयाचार्य कृत ध्यान आदि।

बहिन लाड अपनी सास के समीप अत्यन्त विनम्र भाव से रहती। प्रत्येक कार्य विवेक-पूर्वक करती। एक बार किसी बहिन ने लाड से कहा—'देखो, पहले की बात कुछ और थी, अब बात कुछ और है। अभी तुम भोली हो। अपने पास सास से छिपाकर कुछ भी सपत्ति नही रखती। अपने भविष्य की बात तो सोचो। तुम्हारी अवस्था छोटी है। आठ को साठ कब आएंगे ?'

वहिन लाड ने बड़ी सजगता के साथ उत्तर देते हुए कहा—'ऐसी वात आज तुमने मेरे सामने कही है, फिर कभी मत कहना। तुम नहीं जानती मेरी सास मुझे कितने स्नेह से रखती है। धन और आभूषणों की अपेक्षा मैं अपनी मातृ-हृदया सास के वात्सल्यमय स्नेह से अधिक संतुष्ट हूं।' कहने वाली वहिन दूसरी वार कहने का साहस नही कर सकी।

लाड की वैराग्य-भावना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। संयम के लिए उनका मन उत्कठित हो रहा था। गुरुदेव का आदेश प्राप्त कर उन्होने साधु-प्रतिक्रमण भी कंठस्थ कर लिया। उन्हीं दिनो (सं० १९८१) उनके छोटे भाई चम्पालालजी दीक्षित होने के लिए तैयार हो गए। तव वहिन लाड को शीघ्र ही दीक्षा स्वीकृति मिलने की संभावना हो गई। परन्तु प्रत्येक कार्य समय आने पर ही पूर्ण होता है। लाड की दीक्षा का समय एक शारीरिक व्यवधान के कारण आगे वढ गया। उनकी एक आंख मे सफेद छाया थी जिससे लघु भ्राता चंपक के साथ उन्हे दीक्षा का आदेश नही मिल सका। फिर भी लाड अपने लक्ष्य पर अटल रही। धृति-पूर्वक समय की प्रतीक्षा करने लगी।

आखिर चाह को राह मिल ही जाती है। सं० १९८२ मे उनके लघु भ्राता तुलसी दीक्षित होने के लिए उद्यत हुए। वडे भाई मोहनलालजी पहले तो इसके लिए सहमत नही हुए, पर तुलसी की सुदृढ भावना के आगे उन्हें झुकना पडा। उन्होंने भाई तुलसी और वहिन लाड के लिए आचार्यश्री कालूगणी से प्रार्थना की। पर लाड के लिए आख की छाया वाला वही प्रश्न सामने था। पुन· आंख की जाच की गई। इसके लिए मुनि सुखलालजी (गोगुन्दा) और भ्राता चपक मुनि ने धरती पर गोलाकर वृत्त वनाकर लाड से पूछा—'इसमे तुम क्या देख रही हो ?' लाड के नेत्र मे विशेप दोप नही था अतः उन्होने वृत्त मे चलती हुई चीटियो को वता दिया। गुरुदेव को जव विश्वास हो गया कि आख ठीक है तव उनके भाई तुलसी के साथ वहिन लाड को भी दीक्षा-स्वीकृति प्रदान कर दी।

सं० १९८२ पौप कृष्णा पचमी का नया सूर्योदय हुआ। आचार्यश्री कालूगणी मालचन्दजी वोरड की कोठी के वाहर विशाल कालीजी के चोक में श्रमण-श्रमणी-परिवार-सहित उच्चासन पर विराजमान थे। बडी धूमधाम से दोनो दीक्षार्थी भाई और वहिन ठीक समय पर वहा पहुचे। सूर्योदय के वाद शुभ वेला और नक्षत्र मे सहस्त्र-सहस्त्र जन-समूह के वीच पूज्य कालूगणी के

कर-कमलों द्वारा दीक्षा-संस्कार संपन्न हुआ।[1]

२. साध्वीश्री लाडांजी दीक्षित होने के बाद दो वर्षों तक गुरुकुल-वास मे रही। सं० १९८३ का चातुर्मास गंगाशहर और सं० १९८४ का चातुर्मास श्रीडूंगरगढ में किया। साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी के सान्निध्य में रहकर साधु-चर्या में सजग एवं सेवादिक कार्य मे कुशल बनी। यथाशक्य ज्ञानाभ्यास कर दशवैकालिक सूत्र तथा शालिभद्र का व्याख्यान कंठस्थ किया।

तत्पश्चात् आचार्यवर ने साध्वीश्री लाडाजी को डीडवाना में स्थिर-वासिनी वयोवृद्धा साध्वीश्री नानूजी (४२२) 'खीचन' के सिंघाडे मे भेज दिया। उन्होंने तत्परता के साथ उनकी सेवा-सुश्रूषा की। कुछ ही महीनो बाद साध्वी नानूजी ने स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया। तब उनकी सहयोगिनी साध्वियो ने पूज्य कालूगणी के दर्शन किए। आचार्यवर ने साध्वी नानूजी के स्थान पर साध्वी दाखांजी (७४१) 'दिवेर' को अग्रगामिनी बनाया और साध्वी लाडांजी को उनके पास रखा।

साध्वीश्री दाखाजी सरल, शान्त एवं विविध गुण-संपन्न थी। उनके सान्निध्य मे विनम्रतापूर्वक रहकर साध्वी लाडांजी ने परम समाधि और आत्म-तोष का अनुभव किया। अनेक गुणो को सजोया। काम, गोचरी आदि में कुशलता प्राप्त की। व्याख्यान देने का अभ्यास भी कर लिया।

सं० १९८४ से १९९३ तक उनके साथ निम्नोक्त क्षेत्रों मे चातुर्मास किए :—

सं० १९८५	आडसर
सं० १९८६	टाडगढ
स० १९८७	बालोतरा
सं० १९८८	आमेट
सं० १९८९	पहुना
सं० १९९०	सुधरी

१. सोनेली-वेदा घर ब्याही, भगिनी लाडकुमार।
पहिलां स्यू ही रही उमाही, लेवण संजम-भार॥
(कालू० उ० ३ ढा० ३ गा० ४२)

बंयासी पो विद पांचम नै मुझ नै गणिवर तार्‌यो।
भगिनी सहित लाडनू फणधर-शकुन सहज सच कार्‌यो॥
(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० १५)

सं० १९९१	हिसार
सं० १९९२	भीनासर
सं० १९९३	झकणावद

साध्वीश्री लाडांजी साध्वी दाखाजी के प्रति सदैव कृतज्ञता के भाव रखती । अनेक वार वार्ता-प्रसंगो मे उनसे संवन्धित अपने सस्मरण वडे आदर के साथ सुनाया करती थीं ।

३. आचार्यश्री कालूगणी ने सं० १९९३ प्रथम भाद्रव शुक्ला तृतीया को गंगापुर मे अपने सुयोग्य व प्रतिभा-सपन्न शिष्य मुनि तुलसी को अपना उत्तराधिकारी घोपित किया । सभी के हृदय मे हर्ष की लहर दौड गई । उस सयम लाडसती मालव प्रदेश (झकणावद) मे थीं । जव उन्होने यह शुभ समाचार सुना तो उनका मन प्रसन्नता से भर गया । भाद्रव शुक्ला ६ को पूज्यपाद कालूगणी का स्वर्गवास हो गया । भाद्रव शुक्ला ९ को आचार्यश्री तुलसी पदासीन हुए । चातुर्मास संपन्न होने के पश्चात् साध्वी लाडांजी ने साध्वी दाखांजी के साथ झकणावद से विहार किया । मृगसर कृष्णा चतुर्दशी को संध्या के समय पुर ग्राम मे नवीन आचार्यश्री तुलसी के दर्शन किए । उस दिन के प्रथम साक्षात्कार से साध्वी लाडांजी को अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति हुई ।

आचार्यप्रवर ने साध्वी लाडांजी को ससम्मान सुख-पृच्छा की । मृगसर कृष्णा अमावस्या को उन्हें समुच्चय के कार्य एवं वोझ से मुक्त किया । मृगसर शुक्ला द्वितीया को साध्वी-प्रमुखा झमकूजी के साथ जव वे प्रभात-वंदन के लिए उपस्थित हुईं तव आचार्यप्रवर ने उनका 'साझ' वनाया । सहयोगिनी के रूप मे छह साध्वियां नियुक्त की गईं । गणेशाजी (९२२) लाडनू, पानकंवरजी (९२७) राजगढ़, मूलांजी (९३७) लूनकरणसर, विजयश्रीजी (९४७) रतनगढ, सूरजकवरजी (९६४) राजगढ़ और गुलावाजी (९७२) उदयपुर ।

४. साध्वीश्री लाडांजी ने गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर अपनी क्षमता और योग्यता को निखारा । धैर्य, विनय आदि गुणो मे विशेप विकास किया । नवीन अध्ययन भी प्रारम्भ किया । चार सूत्र कठस्थ किए—दशवैकालिक, वृहत्कल्प, नन्दी, उत्तराध्ययन के ७ साथ अध्ययन । चौवीसी, आराधना, झीणी चर्चा, कई छोटे-वड़े व्याख्यान तथा विविध गीतिकाए याद की । सोलह सूत्रो तथा कई आख्यानो का वाचन किया ।

साध्वीश्री लाडांजी स्वय अध्ययन मे रुचि रखती हुई शिक्षा के क्षेत्र मे

अनेक साध्वियों की प्रेरक बनी। उनकी इस विशेषता को लक्षित कर आचार्यश्री अध्ययनशील साध्वियों को विशेषकर उनके पास रखते। प्रारंभ से उन्हें आचार्यश्री की बहिन होने का सौभाग्य मिला, परन्तु इसके कारण उनमें किसी भी तरह का अहम् नहीं था। वे निर्मल, निश्छल भाव से साधना करती रही। सतत गुरु-दृष्टि की आराधना एवं अपने करणीय कार्य में जागरूक रहती।

५. सं० १९९४ कार्तिक कृष्णा अष्टमी को बीकानेर में मातुश्री वदनाजी की दीक्षा हुई। साध्वीश्री लाडांजी उनके प्रति विनम्रता व्यवहार रखती। उन्हें विशेष रूप से आदर देती। उनका छोटा-बड़ा प्रत्येक कार्य स्वयं करने में अग्रसर रहती।

पूर्व दीक्षित मुनि चंपालालजी तथा नवदीक्षित आचार्यश्री तुलसी की भगिनी होने का साध्वीश्री लाडांजी को गौरव प्राप्त था। फिर मातुश्री वदनाजी की दीक्षा होने से वे अपने को परम सौभाग्यशालिनी समझने लगी। इस प्रकार आचार्यों के भाई, बहिन और माता के दीक्षित होने का तेरापंथ में अपूर्व अवसर था। इसे एक विचित्र योग ही समझना चाहिए।

६. सं० २००१ माघ शुक्ला ७ को सुजानगढ़ में मर्यादा-महोत्सव के समय आचार्यश्री ने साध्वीश्री लाडांजी को आहार-पानी के विभाग से मुक्त किया।

(तुलसीगणी की ख्यात)

७. सं० २००२ (चैत्रादि २००३) आषाढ़ कृष्णा ८ को सार्दूलपुर में साध्वी-प्रमुखा झमकूजी का स्वर्गवास हुआ। साध्वीश्री झमकूजी ने प्रमुखा रूप में जो संघ की सेवाएं की और आचार्यों की दृष्टि की आराधना की वह शासन के इतिहास में सदैव अमर रहेगी। साध्वी-प्रमुखा के नये निर्वाचन तक आचार्यश्री ने साध्वी-समाज को साध्वीश्री अणचांजी (श्रीडूंगरगढ़) के निर्देशन में कार्य करते रहने का आदेश दिया।

साध्वी-प्रमुखा पद

आषाढ कृष्णा नवमी के दिन आचार्यप्रवर ने भूतपूर्व सती-प्रमुखा झमकूजी की अनेक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उनके सम्पूर्ण जीवन का सजीव चित्र खींचा। सती-प्रमुखा का पद सौंपने से पूर्व आचार्यप्रवर ने भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहा—तेरापंथ वह संघ है जिसका सम्पूर्ण नेतृत्व

एक आचार्य के हाथ में होता है। गण मे समग्र प्रवृत्तियो का संचालन वे करते है, किन्तु जितना नैकट्य आचार्यो का मुनिगण पा सकते हैं उतना साध्वी-समाज नही। साधु-समाज की अन्तरंग बातो की जानकारी आचार्य आसानी से कर सकते है, परन्तु साध्वियो की अन्तरंग स्थितियो का जानना भी जरूरी है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जयाचार्य ने इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप साध्वी-समूह मे से एक साध्वी को चुना एवं समग्र साध्वी-समाज का नेतृत्व उसके हाथ मे सौंपा। इस प्रकार के नेतृत्व करने का सर्वप्रथम अवसर सरदार सती को मिला। उन्हे सती-प्रमुखा के नाम से सबोधित किया गया। यह परम्परा उन्ही से प्रारम्भ हुई। इस पंक्ति मे बैठकर क्रमश गुलाब, नवल, जेठा और कान सती ने सेवा का कार्य किया। इधर कुछ वर्षो से साध्वी झमकूजी इस उत्तरदायित्व को निभा रही थी। किन्तु अब वह भी न रही। अत: आज से इस पद का उत्तरदायित्व निभाने का भार मैं साध्वी लाडांजी को सौपता हूं। मुझे विश्वास है कि साध्वी लाडाजी जैसे आज तक साधु-जीवन मे सफल हुई हैं, इस पद को भी वैसे ही सफलता के साथ निभाने वाली सिद्ध होगी। साध्वी लाडांजी ने आचार्यश्री के आदेशानुसार बडी नम्रता से झुककर इस पद को स्वीकार किया। सबकी आखे आनन्द से खिल उठी।

यद्यपि साध्वीश्री लाडाजी मे धैर्य, गम्भीरता एव सद्व्यवहार का संगम था। परन्तु आचार्यश्री ने शासन के नियमानुसार निरासक्त भाव से (बहन के सबध का तनिक लगाव न रखते हुए) साधु-साध्वियो की उपस्थिति मे साध्वीश्री लाडाजी को इस प्रकार शिक्षाए दी।

'गम्भीरता. धैर्य, विनय, सहनशीलता, समता आदि गुण साध्वी-प्रमुखा की विशेषताएं है। काम सम्भालने वालो को कभी साधुवाद, तो कभी कड़ा उलाहना भी मिल सकता है। उनकी प्रशंसाएं कम, आलोचनाएं अधिक होती हैं। इन सारी स्थितियों को पचा लेने वाला व्यक्ति ही इस कार्य मे सफल हो सकता है। आज तक तुम्हारा जीवन एक निश्चित परिधि के प्रति उत्तरदायी था। परन्तु अब तुमको प्रमुखा पद के अनुकूल समत्व-दृष्टि से सबके साथ एक जैसा व्यवहार करते हुए अपने उत्तरदायित्व का प्रतिपालन करना है।

समग्र साध्वी-समुदाय को सम्बोधित करते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—सती-प्रमुखा पद का सम्मान व्यक्ति का सम्मान नही, शासन का सम्मान है।

यह साध्वी-समाज की गरिमा है। अनुशासन, निष्ठा, विनय तथा नम्रता साध्वी-समाज के सहज गुण है। आज तक जैसा साध्वी-समुदाय का इस पद के प्रति गौरवभरा व्यवहार रहा है वैसा ही व्यवहार सदा-सदा के लिए बना रहे। साध्वी-प्रमुखा झमकूजी का उत्तरदायित्व लाडाजी को सौंपा गया है। लाडांजी का कार्य है कि साध्वियो की अपेक्षाओ से मुझे अवगत कराते रहना और साध्वियो का कर्त्तव्य है कि अपनी भावना को उन तक पहुंचा देना। मुझे विश्वास है कि अपने-अपने कर्त्तव्य में सजग रहती हुई सभी साध्वियां इस पद की मर्यादा के अनुकूल साध्वी लाडांजी के निर्देशन मे सदा-सदा जागरूक रहेगी और सहज प्राप्त विनय आदि गुणो की गरिमा को न भूलेंगी।

आचार्यश्री की अमूल्य शिक्षाओ को सुनकर सभी साध्वियो को बहुत प्रसन्नता हुई।

८. साध्वीश्री लाडांजी आचार्यप्रवर के इंगितानुसार प्रमुखा पद के उत्तरदायित्व का सुचारु रूप से निर्वाह करने लगी। वे साध्वी-समाज को आत्मीय स्नेह और वात्सल्य द्वारा पूर्ण रूप से संतुष्ट रखने का प्रयत्न करती। छोटी-बड़ी सभी साध्वियो की पूछताछ कर उनकी अपेक्षाओ की पूर्ति और मानसिक समाधि मे सर्वात्मना सहायिका बनती। समय-समय पर साध्वियो को शिक्षा प्रदान करती। वे कहती—'साध्वियां ने देखकर म्हारो मन बड़ो खुशी है। इतो आनन्द आवै है कि मन मे मावै ही कोनी। सगला सत्या ने मै कहणू चावू हूं, कि कोई भी बात कहणी हुवै तो खुलकर कह्या करो। मैं थारी बात ने प्रेम स्यू सुणस्यू। सब आचार-विचार और नियमा मे सजग बण्या रहो, घणा प्रसन्न रहो।'

सती-प्रमुखा के आत्मीय भाव और सात्विक स्नेह से साध्विया परम प्रसन्नता का अनुभव करती।

साध्वी-प्रमुखा श्राविका वर्ग को सभालने का कार्य भी बड़ी दक्षता से करती।

इस प्रकार साध्वी-प्रमुखा श्राविका-वर्ग को सभालती हुई, साध्वी समुदाय का कुशलता से संचालन करती हुई, संघ-व्यवस्था तथा शासन-सेवा मे आचार्यश्री की दृष्टि के अनुकूल अपने आपको समर्पित करती रही।

९. साध्वी-प्रमुखा साध्वियो की कला-वृद्धि व ज्ञान-वृद्धि मे अपना पूरा-पूरा योगदान करती। उन्हे प्रोत्साहित कर पढने-लिखने में हर तरह से सहयोग देती रहती। आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी-समाज मे शिक्षा के नये-

नये आयाम चालू किये । उन्हें सफल बनाने मे सती-प्रमुखा लाडांजी का भी सतत प्रयास रहता । उनका हर क्षण यही चिन्तन रहता कि संतो की तरह साध्वी-समाज भी शिक्षित और विद्या-सम्पन्न बने ।

संवत् १९९९ मे चूरू की घटना है—आचार्यश्री सन्तों को पढा रहे थे । साध्वी-प्रमुखा ने नम्र निवेदन किया—प्रभो ! आपके पास सन्त पढ़ रहे हैं, क्या इसी तरह साध्वियां नही पढ़ सकती ? क्यो नही पढ सकती ? आचार्य-प्रवर मुस्कराते हुए बोले । 'भगवन् ! आपकी कृपा हो तो मैं सब साध्वियों को आपके पास ले आऊ' सती-प्रमुखा ने आज्ञा मांगी । 'कल तक सबको ले आना' आदेश की भाषा मे आचार्यश्री ने फरमाया ।

इस प्रकार सवत् १९९९ मे सभी साध्वियो के लिए पठन-पाठन की सामूहिक सुन्दर व्यवस्था का श्रीगणेश हुआ ।

सती-प्रमुखा ने सती-समाज को शिक्षा की दिशा मे बहुत अच्छी प्रेरणाए दी । वे साध्वियो को अपने पास बुलाती, उनका वक्तव्य सुनती, प्रतिभा और बुद्धि-कौशल का निरीक्षण करती और उन्हें यथोचित प्रशिक्षण पाने का अवसर देने के लिए गुरुदेव से विशेप निवेदन करती । साध्वीश्री की प्रेरणा से अनेक साध्वियों को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए फिर से गुरु के सान्निध्य मे रहने का अवसर मिला । जो साध्विया पढने मे कम रुचि रखती उन्हे साध्वोश्री उत्साहवर्धक शब्दो मे कहती—'साध्वियो ! अभी पढने का दिन है, थानै कितो सुन्दर अवसर मिल्यो है । आचार्यश्री बहुत अमूल्य समय थानै पढाणे वासते दिरायो है । इसो अवसर बार-बार कोनी मिलैला । देखो ! पढ़ने वाले रै चार आंख्या हुवै है । अबार पढ लेस्यो तो आगै घणा सुख पास्यो ।'

आचार्यश्री के सतत प्रयास एवं साध्वी-प्रमुखा की प्रबल प्रेरणा से साध्वी-समाज मे हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत आदि का अच्छा विकास हुआ । गद्य-पद्य कविता, निबन्ध, सस्कृत श्लोक आदि की रचना करने मे अनेक साध्वियां निपुण बनी ।

१०. नारी-जागरण की दिशा मे सती-प्रमुखा ने जो कार्य किया वह चिर-स्मरणीय रहेगा । उन्होने बहिनो को सरल भापा और मधुर शब्दो मे उद्बोधन देकर सामाजिक रूढ़ियो से अन्मुक्त करने का भगीरथ प्रयास किया । जिससे सैकडो-सैकड़ो बहिनो ने मृतक के पीछे न रोना, पति-मरण के बाद काले वस्त्र न पहनना, गालिया न गाना आदि कुरूढियो का परित्याग किया ।

नारी-जागृति हेतु दी गई साध्वीश्री की बहुमूल्य शिक्षाओं तथा प्रेरणाओ को नारी-समाज युग-युग तक नही भूल सकेगा।

११. तेरापंथ-संघ में साध्वी-प्रमुखा पद की परम्परा सरदार सती से आरम्भ हुई और तदनुसार उस नेतृत्व का भार साध्वी लाडांजी पर भी आया। लाडांजी उसे सफलतापूर्वक निभा रही थीं।

विक्रम संवत् २०२० माघ कृष्णा प्रतिप्रदा के प्रातः एक विशेष आयोजन के समय चतुर्विध सघ के समक्ष अभूतपूर्व घोषणा करते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—'साध्वियो की संख्या बढती जा रही है। उनकी शिक्षा, साधना और व्यवस्था की ओर ध्यान देना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है। सभी साध्वियों के विचार मेरे तक नही पहुंच सकते। इसलिए उनके कार्यो को तीन भागों मे विभक्त कर मैं एक नयी व्यवस्था देना चाहता हूं।

तीन विभाग इस प्रकार है—

प्रवर्तन विभाग

व्यवस्था विभाग

साधना-शिक्षा विभाग

इन तीन विभागों के लिए मुझे साध्वियो की नियुक्ति करनी है।

मैंने किसी भी साधु-साध्वी से इस व्यवस्था के लिए परामर्श नहीं लिया और न लाडाजी से भी इस विषय मे पूछा है। फिर भी मेरा ऐसा विश्वास है कि इस घोषणा से लाडांजी को बहुत ही प्रसन्नता होगी।

सती-प्रमुखा ने आचार्यश्री की इस घोषणा पर अपनी हार्दिक भावना व्यक्त करते हुए कहा—'मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आचार्यश्री ने साध्वी-समाज मे शिक्षा, साधना आदि भव्य प्रवृत्तियो को विकास देने हेतु नयी व्यवस्था की घोषणा की है। आचार्यश्री महान् है, भविष्यद्रष्टा है। उनके गम्भीर चिन्तन से प्रसूत इस अभूतपूर्व व्यवस्था के द्वारा जहां एक ओर कई प्रकार की सुविधाएं उत्पन्न होगी तो दूसरी ओर मेरा भार भी हलका हो जायेगा।'

जब आचार्यप्रवर ने विक्रम संवत् २०२० माघ कृष्णा ६ को प्रभातकालीन हाजिरी की वेला में प्रवर्तन-विभाग साध्वी सघमित्राजी को, व्यवस्था विभाग साध्वीश्री राजीमतीजी को सौंप दिया और उनकी सहयोगिनी के रूप मे साध्वीश्री मजुलाजी को नियुक्त किया। तब सती-प्रमुखा ने आचार्यश्री के प्रति आभार प्रकट करते हुए विनम्र स्वर मे कहा—'गुरुदेव ने मेरी निजी साधना के लिए इस पद्धति द्वारा अवसर देकर मुझ पर महती कृपा की है।

सती-प्रमुखा लाडाजी की यह उदारता, गभीरता तथा साध्वी-समाज के प्रति सहज वत्सलता वास्तव मे प्रशंसनीय है ।

१२. साध्वी-प्रमुखा की स्वाध्याय मे विशेष अभिरुचि थी । उनके हजारो गाथाओ का स्वाध्याय प्रायः नियमित रूप से होता था । दो-दो घंटो तक वज्रासन मे बैठकर स्वाध्याय, ध्यान का अच्छा अभ्यास हो गया था ।

उन्होने प्रतिवर्ष तीन लाख श्लोको का स्वाध्वाय दस वर्ष तक नियमित रूप से किया । जो उनके स्वाध्यायी जीवन की एक प्रेरक झांकी प्रस्तुत करता है ।

उनकी खाद्य-संयम संबंधी साधना भी चलती थी । जैसे-एक दिन मे पन्द्रह द्रव्य से अधिक न खाना, तीन विगय से अधिक न लेना, पाच साल तक कडाही विगय का परिहार, छाछ मे चीनी न लेना आदि ।

उन्होने साधु-जीवन मे इस प्रकार तप किया—

उपवास	२	३	५	६	८
६७२	१५	१	१	१	१

१३ साध्वी-प्रमुखा स० २०२३ तक आचार्यश्री के साथ लम्बी-लम्बी यात्राए करती रही । स० २०२३ मे आचार्यप्रवर ने दक्षिण-यात्रा के लिए प्रस्थान किया तब सती-प्रवरा को अपनी शारीरिक दुर्बलता के कारण बीदासर (स्थली प्रदेश) मे रुकना पडा । बीदासर मे मातु श्री वदनाजी कई वर्षों से स्थिरवास कर रही थी । दो-दो महान् आत्माओ का सान्निध्य मिलने से बीदासर के श्रावक-श्राविका-समाज मे अपार हर्ष की धारा प्रवाहित हो गई ।

स्थली-प्रदेश मे विराजने से आस-पास की क्षेत्रीय-जनता को साध्वी-प्रमुखा के दर्शन-सेवा का अवसर प्राप्त होता रहा । साध्वी-प्रमुखा जन-समूह को जीवनोपयोगी शिक्षा प्रदान करती । उनके उपदेशो व सत्प्रयत्नो से जनता मे धर्म-जागृति की लौ प्रज्वलित होती रही ।

साध्वी-प्रमुखा स्थली-प्रदेश मे विहार करने वाली साध्वियो के सिंघाड़ो की सभाल कर लेती । इस प्रसंग मे आचार्यश्री ने फरमाया—'लाडाजी वठै रह्या चोखो काम करयो । अठे वा स्यू इत्ता लम्बा विहार किया पार पड़ता ? ई शरीर स्यू वै वठै का सत्यां को काम भी बहुत ठीक सर कर रह्या है । ईं स्यूं म्हे भी निश्चित हां ।'

१४ साध्वी-प्रमुखा का शरीर बहुत वर्षो से अस्वस्थ चल रहा था और निरन्तर रक्तश्राव के कारण चिकित्सक कैंसर होने तक की भी कल्पना करने लगे थे। कभी-कभी आंख की पीड़ा भी भयंकर रूप धारण कर लेती थी। पानी की घूंट तक पीने में असह्य दर्द होता था। ये बीमारियां ऐसी थी कि जिनको उस वीरात्मा ने कितनी वार साहस के साथ सहन किया था, परन्तु अन्तिम दिनो की स्थिति कुछ भिन्न थी। प्रारम्भ मे तो साधारण उदर-दर्द ही हुआ था, पर धीरे-धीरे वह वढता गया। उपचार-पर-उपचार चले पर सव व्यर्थ। वीमारी का सही निदान नही हो पा रहा था। अनुमान के आधार पर दवाइयां चल रही थी। देखते-देखते साधारण-सी उदर-व्याधि ने भयंकर रूप धारण कर लिया। कृशता वढती गई, उदर फूलता गया। न रात को नींद आती, न दिन मे भूख लगती। ज्वर भी रहने लगा। कइयो की कल्पना थी कि अन्दर कैसर की प्रतिक्रिया हो रही है। वेदना और वढने लगी, परन्तु आश्चर्य की वात तो यह थी कि रोग के साथ-साथ उनका मनोवल भी वढ़ रहा था। चार-चार सूत्रो का स्वाध्याय चलने लगा और समस्त सूत्रो का एक बार पारायण करने की इच्छा वलवती हो गयी। आने वाले उनकी बेजोड़ दृढता देखकर आश्चर्य करते। आचार्यश्री ने स्वय अपने शब्दो मे इस स्थिति का सजीव चित्र प्रस्तुत किया—

'लाडांजी के शरीर की भयंकर स्थिति को जानकर स्तब्ध रह गए। पर जव यह पढा कि आजकल शास्त्र-स्वाध्याय की अभिरुचि बढ़ गई है, चार साध्वियो द्वारा अलग-अलग चार सूत्रो का स्वाध्याय चलता है तव हमे वहुत हर्ष हुआ, क्योकि ऐसे अवसर पर ही वीर-वृत्ति का अंकन होता है।'

सती-प्रमुखा की सहनशीलता, समता, आत्मिक दृढता का सजीव चित्र तो तव प्रस्तुत हुआ जब जोधपुर से डाक्टर आए और शरीर की जांच करने के वाद उन्होने निवेदन किया कि हम रीढ़ के द्वारा पानी निकालना चाहते है। सती-प्रमुखा ने तत्काल कहा—"साध्वियां पास बैठी है, उन्हे समझा दीजिए। ये पानी निकाल लेगी।" डाक्टर बोले—'रीढ़ की हड्डी से पानी निकालना आसान नही है। साध्वियां इसे निकाल नही सकती। आप हमे ही अनुमति दे।' डाक्टरो के इस निवेदन को अस्वीकार करते हुए सती-प्रमुखा ने स्पष्ट कहा—'विधान के प्रतिकूल कोई कार्य न होगा।'

स० २०२६ आश्विन कृष्णा अष्टमी, बैंगलोर मे आचार्यप्रवर के सान्निध्य मे साधु-साध्वियो की एक अन्तरग गोष्ठी हुई। उसमे आचार्यश्री ने

सती-प्रमुखा की स्वास्थ्य सम्बन्धी चर्चा करते हुए उनकी धृति-पूर्ण सहिष्णुता की प्रशंसा की । तत्पश्चात् साधु-साध्वी-वर्ग ने एक स्वर से कहा—'सचमुच सती-प्रमुखा के धैर्य और सहिष्णुता से धर्म-शासन के गौरव की वृद्धि हुई है ।'

उस परिषद् मे सार्वजनिक निर्णय हुआ कि सती-प्रमुखा लाडाजी को इस समय किसी विशेष उपाधि से विभूषित किया जाना चाहिए ।

दूसरे दिन आचार्यश्री ने व्याख्यान मे कहा—'लाडाजी ने जिस कष्ट-सहिष्णुता का परिचय दिया है उससे वह स्वय गौरवान्वित हुई है और धर्म-संघ को भी गौरवान्वित किया है । अस्तु, आज मैं लाडांजी की सेवा और सहिष्णुता को देखते हुए उन्हे 'सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति' उपाधि से पुरस्कृत करता हूं । वे साध्वी-प्रमुखा है ही । यह विशेषण भी उनके नाम के साथ आज से जुड़ जाएगा ।'

१५. आचार्यश्री साध्वी-प्रमुखा लाडाजी को समय-समय भावपूर्ण पत्र (गद्य-पद्यात्मक) देते । उनमे उनकी अध्यात्म-निष्ठा, पाप-भीरुता, सहिष्णुता आदि का सतोले शब्दो मे उल्लेख करते । साध्वी-प्रमुखाजी भी आचार्यश्री को पत्र देती । उनमे अपनी आत्म-श्रद्धा एवं सर्वात्मना समर्पण की भावना प्रस्तुत करती । सेवाभावी मुनिश्री चपालालजी भी सती-प्रमुखा को पत्र (गद्य-पद्यात्मक) देते । उनमे अपनी सहानुभूति के साथ उनके प्रति सर्वतोन्मुखी शुभाशसा व्यक्त करते । पत्रो की कुल सख्या २६ है ।

आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त पत्र-१२

सेवाभावी मुनि चंपालालजी द्वारा प्रदत्त पत्र-८

साध्वी-प्रमुखा लाडांजी द्वारा प्रदत्त पत्र-६

सभी पत्र पढ़िए 'बूद बन गई गगा' पृष्ठ सख्या ६६ से १२७ ।

१६ साध्वी-प्रमुखा के जीवन-संस्मरणो की विशाल झांकी है । उनमे से कुछ प्रस्तुत किये जा रहे है—

सहज संकोच

एक दिन सरदारशहर-निवासी श्री महालचंदजी सेठिया आये । उन्होने महासतीजी कहकर वन्दन किया । साध्वीश्री लाडांजी ने कहा—'मुझे ऐसा मत कहा करें ।' महालचंदजी बोले—'महासतीजी कहने से आपका अविनय होता है तो हम नही कहेगे । किन्तु ग्राम-ग्राम से आने वाले पत्रो मे लोगो के द्वारा १०८ श्री महासतीजी लिखा जाता है, उन्हे कैसे निषेध

'किया जायेगा !'

महालचंदजी अच्छे प्रतिष्ठित श्रावकों में से थे। वे शासन की रीति-नीति और परम्परा से भली-भांति परिचित थे। उन्होंने स्थिति का गहराई से अध्ययन किया और देखा, सती-प्रमुखा धरती पर ही कम्बल बिछाकर विराज रही हैं। महालचंदजी ने साध्वियों की ओर संकेत करते हुए कहा—'सती-प्रमुखा के लिए पट्ट क्यों नहीं बिछाया ?'

साध्वियों ने अपनी विवशता प्रकट की। समस्या का कोई समाधान न पाकर चिन्तन-पूर्वक वे सीधे आचार्यप्रवर के पास पहुंचे और इस विषय में निवेदन किया। आचार्यप्रवर का ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित हुआ। जब सती-प्रमुखा आचार्यप्रवर के स्थान पर पहुंची तो आचार्य-प्रवर ने पट्ट पर बैठने के लिए कड़ा आदेश दिया। आखिर मन में कितना ही संकोच हो, परन्तु आचार्य का आदेश सर्वोपरि होता है, वहां कोई विकल्प नहीं चल सकता। स्थान पर आने के बाद सती-प्रमुखा को पट्ट पर बैठना पड़ा। आप कुछ दिनों तक तो सकुचाई-सी बैठी रहती, किन्तु धीरे-धीरे सब व्यवस्थित हो गया।

आत्मतोष

एक बार की बात है—गाय की चपेट में आने से साध्वीश्री इन्द्रूजी के भारी चोट लग गई। सूचना पाते ही सती-प्रमुखा घटनास्थल पर गईं। इन्द्रूजी के चेहरे को लहू-लुहान देखकर आपका कोमल हृदय द्रवित हो उठा। उन्हें स्थान पर लाया गया। उनके पैर घायल हो गये थे, पत्थर की टक्कर से कुछ दांत भी गिर गये थे। साध्वी-प्रमुखा के संकेत मात्र से सभी साध्वियां परिचर्या में जुट गईं। पीड़ा असहनीय थी। आप स्वयं उपचार के लिए आदि से अन्त तक उपस्थित रही। आपके कपड़ों पर खून के छींटे भी लग गए। एक साध्वी ने प्रार्थना की—'इनकी सेवा में बहुत-सी साध्वियां लगी हुई हैं, आप ऊपर पधारें। आपके कपड़ों पर खून लगा हुआ है। सती-प्रमुखा ने कहा—'कपड़ों की क्या चिन्ता हैं, धुल जाएंगे। पहले चिकित्सा पूर्ण रूप से हो जाने दो। आहत का उपचार ठीक प्रकार से हो जाने पर ही मुझे आत्मतोष होगा।'

सहानुभूति

रोगी कितना ही रोग से आक्रान्त क्यों न हो परन्तु सहानुभूति की

दो बूदें भी उसे शीतलता प्रदान करती हैं।

एक साध्वी की एड़ी में फोडा हो गया था। उसमे मवाद पड जाने के कारण असह्य वेदना होती थी। सती-प्रमुखा ने अपने हाथ से फोड़े पर चीरा लगाया। दूसरी वार जव एक अन्य साध्वी ने ऑपरेशन किया तो आप अपने समस्त कार्यों की उपेक्षा कर रुग्ण साध्वी के पास वैठी रही। समय-समय पर उन्हे मधुर स्वरो मे गीतिकाएं भी सुनाती रही। आपकी इस सहानुभूति से रुग्ण साध्वी को परम शांति मिली।

सहयोग

सेवा-भावना से ओत:प्रोत व्यक्ति को अहंकार प्रभावित नही कर सकता। वह छोटे-वड़े-सभी कार्यो को विना किसी गर्व से सम्पादित कर लेता है।

एक वार की घटना है—रासीसर ग्राम मे भोजन की विकृति से प्राय: सभी साध्वियों को वमन होने लगा। उस समय सती-प्रमुखा अपने उच्च पद का तनिक भी विचार न करती हुई सवकी सेवा करने लगी। किसी को दवा देना, किसी का पेट-मर्दन करना, किसी का प्रतिलेखन करना आदि कार्यो में दिन भर व्यस्त रही। छोटे-छोटे कार्यो मे आपका वह सहयोग सवको रुग्ण-सेवा का नया सवक सिखाता रहा।

गुरु-भक्ति

एक वार रेतीले टीलो को पार करती हुई आप दस मील का विहार कर किरोदे से वड़ी खाटू पधारी। धूप अधिक चढ़ जाने के कारण आपका दम घुटने लगा। शरीर की कमजोर स्थिति को देखकर साध्वियो ने प्रार्थना की—'विहार वहुत लम्वा हो गया है, अत आज पूरे दिन यही विश्राम करना उचित होगा।' सती-प्रमुखा ने उत्तर दिया—'छोटी खाटू पहुंचने के लिए आचार्यप्रवर का आदेश है।' साध्वियो ने सुझाव की भाषा मे कहा—'शारीरिक अस्वस्थता मे आदेश परिवर्तित हो सकता है।' सशक्त स्वर मे साध्वी-प्रमुखा की आवाज उठी—'मुझे विहार करना है। मैं गुरुदेव के आदेश का अवश्य पालन करूंगी।'

ऐसी ही दूसरी घटना है—आप सरदारशहर मे विराज रही थी। धर्म-निष्ठ श्रावक महालचन्दजी सेठिया अचानक अस्वस्थ हो गए। सती-प्रमुखा उन्हे दर्शन देने पधारी। सेठियाजी ने प्रार्थना की—'आप मुझे वैठकर

सेवा कराएं।' सती-प्रमुखा ने कहा—'बैठकर सेवा कराने का विधान नहीं है।' महालचन्दजी ने उत्तर दिया—'मैं संघ के विधि-विधानो को जानता हूं। आपके लिए कोई विशेष बात नही है। आपका बैठना विधान के प्रतिकूल नहीं होगा।' सती-प्रमुखा ने कहा—'अपवाद हो सकता है, पर अपवाद को जल्दी से काम मे नहीं लाना चाहिए।'

सती-प्रमुखा की यह जागरूकता देखकर महालचन्दजी के मानस पर विशेष प्रभाव पड़ा।

परार्थभावना

महान् व्यक्तियो के जीवन मे स्वार्थ गौण होता है तथा परार्थ मुख्य। वे परार्थ मे ही अपना स्वार्थ देखते है।

सती-प्रमुखा के उदर से जब तीसरी बार पानी निकाला गया तो उनका शरीर अस्थिपंजर की तरह दिखाई दे रहा था। उस समय एक भाई ने सती-प्रमुखा से पूछा—'मैं आचार्यश्री के दर्शनार्थ बैंगलोर जा रहा हूं आपकी क्या भावना है। क्या मै दर्शन देने के लिए आचार्य श्री से बीदासर पधारने की प्रार्थना करूं?' सती-प्रमुखा ने कहा—'गुरुदेव महान् है। वे अहेतु उपकार करा रहे हैं। लगता है मेरे जीवन के दिन अब अधिक शेष नही है। मेरी प्रबल इच्छा है कि एक बार आचार्यश्री के दर्शन कर लू, परन्तु आचार्यश्री अपनी यात्रा पूर्ण करके ही पधारे। इतनी दूर आचार्यो का बार-बार पधारना संभव नही होता।'

साध्वी-प्रमुखा के इन शब्दो को सुनने वाले उनके मन की संतुलित वृत्ति पर चकित थे।

१७ साध्वी-प्रमुखा लाडांजी का लगभग तीन साल बीदासर मे स्थायी प्रवास हुआ। उन्होने स्थानीय श्रावक-श्राविकाओ को विविध शिक्षाओ द्वारा उद्बोधित एवं लाभान्वित किया। आचार्यप्रवर के आदेशानुसार साध्वीश्री सोमलताजी (१३७०) 'गंगाशहर' को सं० २०२५ मे दीक्षा प्रदान की।

स० २०२६ मे सती-प्रमुखा का शरीर अधिक दुर्बल हो गया। बढ़ती हुई बीमारियो के कारण स्थिति गंभीर बन गई। फिर भी चट्टान की तरह अविचल रहकर सभी परिषहो के साथ जूझ रही थी। एक दिन सती-प्रमुखा ने सब साध्वियो को आह्वान किया और बोली—सब साध्वियां! आं दो-तीन दिनां स्यू म्हारे जी सोरो कोनी। बगत पर ठीक भी हो ज्याऊ पण खमत-

खामणा तो कर्योड़ा चोखा ही है। म्हारै जीवन मे कठैइ मलीनता नही रह ज्यावै। थे म्हारै निकट रहणे वाला हो। कोई कदेइ लहर भाव आयो हुवै तो मैं हृदय स्यू खमावू हूं। थे म्हारी कित्ती लगन स्यू, तन-मन स्यू सेवा कर रह्या हो। म्हारी थानै आ ही आशीष है के थे सदा गुरुदेव री दृष्टि रे लारै चालीज्यो, दृष्टि ने आराधीज्यो। थे सब खूब वढो, चढो, कढो, और चोटां खमणी सीखो। चोटां सह्या ही जीवन मे चमक आवै। थे खूब चमको और सासण ने दिपावो। आचार, विचार, विनय और व्यवहार मे निपुण वणो, मैं गुरुदेव रा दरसण कर लेस्यूं जणा तो ठीक-नही तो म्हारी गुरुदेव रे चरणां मे घणी-घणी वन्दना मालूम करीज्यो।

चैत्र कृष्णा ६ का दिन था। वहुत लम्वे समय से आप जलोदर की भयंकर पीडा हसते-हंसते सह रही थी। आज के दिन आपकी आत उलझ गई। डॉक्टरो का निदान था हर्निया—नाभि का हर्निया। इस नई व्याधि ने रौद्र रूप-धारण कर लिया। पेट मे भयकर दर्द और वमन का प्रकोप हुआ। दवा-पानी तक लेने की स्थिति नही रही। ग्लुकोज इजेक्शन द्वारा चढ़ाया गया। पेट से करीव साढ़े छह किलो पानी भी निकाला गया पर पूर्व-स्थिति मे विशेप अन्तर नही आया। अव तक दस महीनो मे कुल सैंतीस किलो पानी निकाला जा चुका था। डॉक्टर पर डॉक्टर आने लगे। सवकी एक ही आवाज थी—'हर्निया की वीमारी वहुत भयंकर होती है। इसका ऑपरेशन के सिवाय और कोई स्थायी इलाज नही। साध्वीश्री ने स्पष्ट शब्दो मे उत्तर दिया कि मैं ऑपरेशन नही कराऊगी।

आचार्यश्री ने जव यह रोमांचकारी प्रसग सुना तो उत्तर में कहा—'जितनी व्याधिया आती हैं उससे दुगुना उनका मनोवल मुकावले के लिए खड़ा हो जाता है। तव वेचारी वीमारी स्वय परास्त हो जानी है।'

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को रात के आठ वजे सती-प्रमुखा के पेट मे भयंकर दर्द हो गया। वमन अति मात्रा मे होने लगा। फलतः रक्तचाप गिर गया। नाड़ी की गति वहुत वढ गई। स्थिति काफी गभीर एवं चिन्तनीय हो गई। डॉक्टरो ने दर्शन किए लेकिन रात्रि होने के कारण कोई उपचार न हो सका। घोर वेदना के पश्चात् पौने तीन वजे नाडी की गति विगड़ जाने से साध्वियो ने चौविहार अनशन कराया। आपने स्वीकृतिपूर्वक संकेत किया।

अनशन की सूचना मिलते ही श्रद्धालु दर्शनार्थियो का ताता लग गया। सवा तीन वजे अन्तिम सास आया और साध्वी-प्रमुखा ने स्वर्ग-प्रस्थान

कर दिया।

एक मुहूर्त्त बाद साध्वियों ने पौद्गलिक शरीर का विधिवत् व्युत्सर्जन कर दिया। तत्पश्चात् श्रावकों ने मरणोपरान्त की जाने वाली सभी क्रियाओं को विधिपूर्वक सम्पन्न किया। रजत कलशों से सुशोभित विमान में आपको बिठाया। इस महायात्रा में करीब पन्द्रह हजार व्यक्ति साथ थे। जय-जय के नारों से बीदासर गूंज रहा था। धरती और आकाश एक हो रहे थे। जन-मानस की श्रद्धा साकार होकर बोल रही थी। अध्यात्म गीतों के साथ-साथ शव-यान श्मशान-स्थल पर पहुंचा। वहां दाह-संस्कार किया गया।

१८. साध्वी-प्रमुखा की स्मृति में आचार्यप्रवर ने गद्य-पद्य रूप में जो हृदयोद्गार अभिव्यक्त किए वे इस प्रकार हैं—

'धर्म के क्षेत्र में स्त्री और पुरुष का कोई भेद नहीं होता। जो अपना जितना अधिक बलिदान देता है, वह उतना ही अधिक स्थान बना लेता है। इस दृष्टि से स्त्री-समाज ने सदा ही त्याग और बलिदान का परिचय दिया है, इसलिए धर्म-क्षेत्र में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का स्थान अग्रणी है।

हम तेरापथ-समाज को ही लें। तेरापंथ धर्म-शासन की अभिवृद्धि में साध्वियों की जो सेवाएं रही हैं, वे अनिर्वचनीय हैं। सेवा-परायणता, श्रद्धा, संघनिष्ठा और गुरु के निर्देशों का प्राणप्रण से पालन इनकी ये अपनी विशेषताएं हैं। इतना ही नहीं, तेरापंथ के विकास, विस्तार व समुचित व्यवस्थाओं में भी इनका बराबर योगदान रहा है। महासती सरदाराजी ने धर्म-संघ के लिए जो कार्य किए वे इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे। महासती जेठांजी जो कि श्री डालगणी के समय साध्वी-प्रमुखा थी के बारे में मैंने पूज्य गुरुदेव श्री कालूगणी से अनेक बार प्रशंसा के शब्द सुने थे। महासती नवलाजी, कानकंवरजी और झमकूजी भी इसी क्रम में आती हैं। साध्वी लाडांजी भी इस दृष्टि से किसी से कम नहीं रही। शिक्षा के क्षेत्र में उनकी गति नहीं के समान थी, किन्तु उनकी आचार-निष्ठा, गुरु के इंगित की आराधना, कष्ट-सहिष्णुता और रूढि-पराङ्मुखता जैसी कुछ विरल विशेषताओं ने शिक्षित-अशिक्षित सभी के दिलों में अपना एक विशेष स्थान बना लिया था।

जब मैंने उनको साध्वियों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व दिया, उस समय भी उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। उनको धूप लगती थी। ऐसा लगता था मानो उनका शरीर अधिक साथ नहीं देगा। स्वर्गीय मंत्री मुनि ने भी उस समय यही कहा था, इनका शरीर ज्यादा चलना कठिन है। किन्तु

उन्होने उस कठिन वीमारी मे भी पचीस वर्ष निकाल दिए। इस वीच उन पर और भी अनेक मारणान्तिक वीमारियो का आक्रमण हुआ, लेकिन उन्होने सवको हंसते-हंसते पार कर दिया। उनका स्वर्गवास हो गया, यह आश्चर्य का विपय नही, आश्चर्य तो आज तक वने रहने पर था।

इतनी अस्वस्थ अवस्था मे भी वह वची रही। उसके मैं दो मुख्य कारण मानता हूं, पहला कारण है कष्ट-सहिष्णुता और दूसरा है—गुरु-सेवा-परायणता। अनेक मारणान्तिक कष्टो मे भी उन्होने अपना धैर्य कभी नही छोड़ा। शरीर-वल क्षीण पड़ने पर भी मनोवल को क्षीण नही होने दिया। शारीरिक असमर्थता में भी मेरी लम्वी-लम्वी पद-यात्राओ में वरावर साथ रही। इस वार उनका स्वास्थ्य अधिक खराव था, इसलिए दक्षिण यात्रा मे साथ नहीं रह सकीं। किन्तु उनका मन वरावर यही था। स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन खराव होता गया। फिर भी यहा के एक-एक शब्द के आधार पर उन्होने इतना लम्वा समय निकाल दिया। इस अवसर पर उन्होने जो कष्ट-सहिष्णुता का परिचय दिया, उसने सारे संघ की भावनाओ को अपनी ओर मोड़ लिया। इसीलिए मैंने वगलौर मे उन्हे 'सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति' की उपाधि से सम्मानित किया। जीवन-अवस्था मे संघ की जो भावनाएं उनके प्रति थी, इस प्रकार की वीर मृत्यु से वह कही अधिक वढ गईं। जो लोग मरकर भी जिया करते हैं, उस कोटि मे साध्वी-प्रमुखा लाडांजी का नाम गौरव से लिया जा सकता है।

साध्वी-समाज के विकास मे उनका अपूर्व योग रहा। जो साध्वी-समाज पहले राजस्थानी भापा में भी नही वोल सकता था, वह आज संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, अग्रेजी आदि भापाओ मे धारा-प्रवाह वोल सकता है। इन सवके पीछे उनके उत्साह ने वहुत काम किया है। इस दृष्टि से वर्तमान साध्वी-समाज उनका सदा आभारी तो रहेगा ही, मैं आशा करता हूं कि वह उनकी विशेपताओ को अपने मे उतार कर धर्म-शासन की गौरव-वृद्धि भी करेगा।

दोहा

वीर-वृत्ति री धारिणी, वीर-जयन्ती रात।
वीर गति पाई सती, लाडां जग विख्यात ॥१॥

तुलसी चंपक री स्वसा, वदनां री तनुजात।
साध्वी-प्रमुखा स्वर्गगमन, मां वदना रे हाथ ॥२॥

साठे अरु वयांसीए, तिराणुवे सोल्लास ।
दो के छाइसे वण्यो, लाडां रो इतिहास ।।३।।

जाग उठ्यो महिला-जगत, शांति-क्रान्ति के साथ ।
रहसी लाडां रो ऋणी, जुग-जुग नारी-जात ।।४।।

साध्वी-संघ न भूलसी, लाडां रो उपकार ।
नवयुग-जागृति में थयो, नवजीवन-संचार ।।५।।

वदनां रहिज्यै दृढ़मना, मत ना कीजै मोह ।
वीतराग री वानगी, थांरे मोह न द्रोह ।।६।।

महाराष्ट्र की सीम में, मध्यप्रदेश प्रवेश ।
संघ चतुष्टय सम्मिलित, संयम तप से लैस ।।७।।

अन्य साधु-साध्विया तथा श्रावक-श्राविकाओ के द्वारा श्रद्धाजलि के रूप मे व्यक्त किए गए विचार पढे—'बूद बन गई गगा' पृष्ठ १३३-१४६ ।

१६. वि० स० २०२६ का मर्यादामहोत्सव हैदराबाद मे हुआ । वहां आचार्यप्रवर ने साध्वी-प्रमुखा लाडांजी के लिए विशेष नदेश पत्र देकर साध्वी संघमित्राजी को राजस्थान की ओर भेजा । उन्होने आचार्यश्री का आशीर्वाद लेकर प्रस्थान किया । बडे उत्साह और उमंग से पाद-विहार करती हुई सिर्फ ३३ दिनो मे सवा पांच सौ-मील की धरती पार की । शीघ्रातिशीघ्र बीदासर पहुचकर सती-प्रमुखा के हाथो मे आचार्यप्रवर का सदेश सौपने की प्रबल उत्कठा थी । पर नियति को यह मजूर नही हुआ । साध्वीश्री गंगापुर (मेवाड) के समीप पहुंची कि अकस्मात् साध्वी-प्रमुखा के स्वर्गवास की सूचना मिली । यह सवाद सुनते ही साध्वी सघमित्राजी आदि सब स्तब्ध से रह गए । मन की कल्पना मन मे ही रह गई । गगापुर मे साधु-साध्वियो[1] ने साध्वी-प्रमुखा की स्मृति सभा मनाई । दूसरे दिन सूर्योदय के साथ साध्वी सघमित्राजी ने साहस बटोरकर विहार किया । पैरो मे जो पहले ताकत थी वह नही रह पायी, फिर भी लडखड़ाते पैरो से दूरी को पारकर बीदासर पहुंची । संदेश सुनने के लिए गाव-गाव के लोग एकत्रित हुए, पर जिनके लिए वह सदेश दिया गया था वे विद्यमान नही रही । उपस्थित जन-समूह को वह सदेश सुनाया गया । वह इस प्रकार है—

१ मेवाड मे विहार करने वाले कुछ सिघाडे ।

सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति साध्वीश्री लाडांजी !

अनेक वार सादर सुख-पृच्छा एव कुशल-वाछा। तुम मानसिक स्थिति से पूर्ण स्वस्थ हो, ऐसा मैं मानता हूं, कुछ व्यक्ति शारीरिक स्थिति से अस्वस्थ एवं मानसिक स्थिति से स्वस्थ होते है, कुछ शारीरिक स्थिति से स्वस्थ पर मानसिक स्थिति से अस्वस्थ होते है, कुछ दोनो से स्वस्थ एव कुछ दोनो से अस्वस्थ होते है।

लाडांजी प्रथम भंग मे आते है। ऐसी वीमारी मे इतना मजवूत मनोवल विरले ही पाते है। ऐसी मनोवली वहन के लिए मेरे मन मे गौरव है। सारे संघ मे उनके दृढ साहस की गूज है। शरीर नश्वर है, पर्यायें पलटती रहती है। जो निश्चित है, उसके लिए चिन्ता क्या है? चिन्ता तव है जवकि हृदय दुर्वल, व्यथित एव कातर हो जाता है। वह लाडांजी मे है नही, यही निश्चिन्तता है।

तुमने वार-वार दर्शन की भावना व्यक्त की, मैंने भी वार-वार वात्सल्य की भावना दिखाई, पर क्षेत्रीय दूरी के कारण साक्षात् उपस्थित होना वहुत कठिन पडता है।

हैदरावाद महोत्सव के वाद तो मेरा स्वय का मन एक वार जल्दी आने के लिए आतुर है। मैं तुम्हारा धैर्य, तुम्हारा साहस अपनी आखो से देखना चाहता हूं, पर कव होगा कुछ कहा नही जाता। वीच मे मार्गवर्त्ती क्षेत्र इतने आशावान हैं कि उन्हे छोड़कर आना वहुत मुश्किल है। फिर भी प्रयत्न है, जैसा योग होगा।

सेवाभावीजी वार-वार चेष्टा कर रहे है किसी तरह मिलना हो जाये, पर आखिर नियति पर आश्रित है।

कोई वात नही, तुम गंगा की तरह निर्मल हो, तुम्हारी आत्मा प्रशस्त है, फिर शरीर रहे, न रहे, क्या चिन्ता है? साध्वी सघमित्रा को यहा से भेज रहे है। दक्षिण-यात्रा के तथा यहा के पूरे संवाद उनसे जान लेना।

पुनश्चः छोटी-छोटी साध्वियो ने वहुत वड़ी सेवा की है, चित्त-समाधि विशेप उपजाई है, मेरी ओर से उन सवको वधाई।

लाडाजी! तुम्हारे वहा रहने से मुझे दक्षिण-यात्रा मे वडा सहयोग मिला है। वहा की साध्वियो की सार सम्भाल अच्छी हुई है और ऋजुमना मातुश्री वदनाजी को वड़ा सहयोग (सहारा) मिला है। मैं आशा करता हूं तुम विशेप मानसिक समाधि का अनुभव करती हुई आत्म-कल्याण के पथ पर

अग्रसर रहोगी।

और विशेष लिखने का समय नहीं है, विहार की तैयारी है।

मंगलम्

—आचार्य तुलसी

सेवाभावी मुनि चंपालालजी ने साध्वी-प्रमुखा को अपना संदेश दिया था। पढे 'बूद बन गई गंगा' पृ० ८६ से ६२।

साध्वी संघमित्राजी ने साध्वी-प्रमुखा लाडाजी की पावन-स्मृति में 'बूद बन गई गगा' नामक पुस्तक लिखकर सतीवरा के बहुमुखी जीवन की झाकी प्रस्तुत की एवं आत्म-तोष किया। उनका श्रम प्रशंसनीय है। ऐतिहासिक दृष्टि से अच्छी सामग्री तैयार होने से पुस्तक पाठको के लिए अधिक उपयोगी हो गई है।

उपर्युक्त विवरण प्रायः उसके आधार से लिखा गया है।

२०. तेरापथ धर्मसंघ मे आचार्य भिक्षु से आचार्य तुलसी तक नौ आचार्य हुए। आचार्य तुलसी के उत्तराधिकारी युवाचार्य श्री महाप्रज्ञजी हैं। दोनो विभूतिया जैन-शासन व भैक्षव-शासन को अलंकृत करती हुई समग्र ससार को आध्यात्म-रश्मियां प्रदान कर रही हैं।

जयाचार्य के समय से प्रमुखा-पद का शुभारम्भ हुआ। सर्वप्रथम साध्वी-प्रमुखा सरदारांजी हुईं। साध्वी-प्रमुखा लाडांजी सातवी साध्वी-प्रमुखा थी। उनके स्वर्ग-प्रयाण के बाद दो वर्षों तक नवीन साध्वी-प्रमुखा का चयन नही हुआ। तत्पश्चात् आचार्यश्री ने साध्वी कनकप्रभाजी को साध्वी-प्रमुखा पद पर नियुक्त किया। वे आठवी साध्वी-प्रमुखा है। आठ साध्वी-प्रमुखाओ का नामोल्लेख एव कार्यकाल इस प्रकार है—

१.	साध्वीश्री	सरदाराजी (फलौदी)	सं० १९१०-१९२७
२.	,,	गुलाबाजी (बीदासर)	सं० १९२७-१९४२
३.	,,	नवलांजी (पाली)	सं० १९४२-१९५४
४.	,,	जेठाजी (चूरू)	सं० १९५४-१९८१
५.	,,	कानकवरजी (श्रीडूंगरगढ)	सं० १९८१-१९९३
६.	,,	झमकूजी (चूरू)	सं० १९९३-२००२
७.	,,	लाडांजी (लाडनूं)	सं० २००२-२०२६
८.	,,	कनकप्रभाजी (लाडनू)	सं० २०२८-वर्तमान

साध्वी-प्रमुखा लाडाजी की विद्यमानता मे आचार्यश्री द्वारा रचित २७ सोरठो मे उनकी संक्षिप्त जीवन-झांकी है। वे इस प्रकार है :—

लाडां ! संयम-लाछ, पाई सुखदायी प्रवर।
वांछित गुणमणि बाछ, आलस मत कर एक क्षण ॥१॥

कालू रो उपकार भर जीवन नहिं भूलस्यां।
लाडां रही न लार, बयांसिय दीक्षा वगत ॥२॥

अवरोधक हुई आंख, संयम पथ स्वीकारतां।
वा विघनां री बांक, लाडां निवड़ी लाभप्रद ॥३॥

मां वदना मन धार, दी अनुमति दीक्षा तणी।
ओ उपकृति रो भार, लाडां ! किणविध लांघस्यां ॥४॥

निश्चित वणी निमित्त, चुपके चंपक प्रेरणा।
पायो पंथ पवित्त, सुखकर स्मृति लाडां सती ॥५॥

मिनखां रो मंडाण, वड-बंधव मोहन गुणी।
आपां पर अहसाण, लाडां भूलांला नहीं ॥६॥

मंत्री मगन महान, प्रेरक हो प्रारंभ स्यू।
शासन में सम्मान, लह्यो उचित लाडां सती ॥७॥

पो विद पांचम प्रात, सूरज सुबरण-रयणमय।
वड-भगिनी लघु भ्रात, लाडां तुलसी गुरु-शरण ॥८॥

गुण-गण पूरित गात, कर दीक्षित तत्क्षण सुगुरु।
विस्मृत हुवै न वात, लाडां छोड्यो लाडणू ॥९॥

गढ़ सुजान गुरुवार, ग्रास प्रथम गुरु-हाथ रो।
अद्भुत ओज आहार, लाडांजी ! आपां लियो ॥१०॥

हरदम शिर वर हाथ, करुणा-निधि कालूगणी।
निजरां राख्ये नाथ, शुभ भविष्य लाडां सती ॥११॥

बाहिर करत विहार, (मै) राखण चाह्यो राज मे।
कीन्हो उचित प्रकार, समाधान लाडां सती ॥१२॥

दाखां कला-सुदक्ष, प्रकृति-भद्र सिंघाड़पति।
साथ रही शुभ लक्ष, सुजस लियो लाडां सती ॥१३॥

भेलां में सुध भाव, जव आती रहती सजग।
बांधव-भगिनी-भाव, सहज पुष्ट लाडां सती ॥१४॥

सतियां मांहि सुवास, म्हारी मनै सुणावती।
पाती अति उल्लास, आह्लादित लाडां सती ॥१५॥

सखरी देती शीख, विनय विमल व्यवहार री।
लोपी कदे न लीक, सतपथ री लाडां सती ॥१६॥

कब स्यूं रोग करुर, ओ थांरै लारे लग्यो।
पर साहस रो पूर, लाडां जिस्यो न भालियो ॥१७॥

वाह ! वाह ! सो-सो वार, सतिवर लाडां स्वीकरो।
उदाहरण इहवार, पौरुष रो प्रस्तुत कर्‌यो ॥१८॥

रंच न राग, न रोष, किण स्यूं कदे न राखणो।
निरतिचार निरदोष, सुध संजम लाडां सती ॥१९॥

ऊपर रो ऊफाण, लाडां हुवै न लाभप्रद।
आंतर समता आण, कर्म-कटक खिण में खपै ॥२०॥

आंतर-अनुसंधान, गहरी आत्म-गवेषणा।
ओ पवित्र पन्थान, शिव-सुख रो लाडां सती ॥२१॥

बहन-बंधु-संबंध, आपां कर्‌या अनेक वर।
अबके ओ अनुबन्ध, संयम-युत लाडां सती ॥२२॥

म्है हां चिकमंगलूर, तुम बीदासर वीर-भू।
देह लाडली दूर, अंतर मन नहिं आंतरो ॥२३॥

सिंहणी-साहस धार, मां वदना मन-वेदना।
सहस्ये संयम-सार उपसम है लाडां सती ॥२४॥

चम्पक म्हारै साथ, तुम वदनां री बाथ में।
अनुपम सेवा-आथ, मुश्किल स्यूं लाडां ! मिले ॥२५॥

सौम्य-मूर्ति सुखकार, मा वदनां है ऋजुमना।
निश्चित मोह निवार, लाड लडास्ये लाडली ॥२६॥

निर्मल थांरी नीति, बढ़तो निशदिन आत्मबल।
प्रगटी मुज मन प्रीति, किम निज मुख लाडां कहूं ॥२७॥

साध्वी-प्रमुखा के दिवंगत होने के चौदह महीनों बाद, आचार्यप्रवर ने उनकी स्मृति मे एक गीतिका फरमाई। वह इस प्रकार है —

लय—रोको काया री चंचलता ने……

माता वदनांजी री लाडली लाडांजी श्रमणी।
अपनी ख्यात शिखरां चाढ़ली, लाडांजी श्रमणी ।।ध्रुवपद।।

सांय सांय जलती इण दुनियां री वलती लाय स्यूं।
अपणी आत्मा नैं काढ़ली, लाडांजी श्रमणी ।।१।।

जबरी है जहरीली जग में वासना री वेलड़ी।
जड़ा मूल स्यूं उखाड़ली लाडांजी श्रमणी ।।२।।

घोर-घोर वेदना सही है समता भाव स्यूं।
आपद् धर्म री ना आड ली, ला० ।।३।।

साधना, आराधना, सज्झाय, झाण जोग स्यूं।
आंतर वृत्तियां निखार ली, ला० ।।४।।

'अग्गं 'मूलं छिन्धि' वीर वाणी रे सहारे।
चोकड़्या नैं पतली पाड़ली, ला० ।।५।।

पाप-भीरुता में पल-पल मस्त-सी वणी रही।
जाणक अनुभव-ज्योत जगाड़ली, ला० ।।६।।

जिन्दगी को लक्ष्य अपणे देव की उपासना।
सारी उलझना उजाड़ली, ला० ।।७।।

साध्वी-प्रमुखा सेवाभावी चंपक री सहोदरी।
राशि रत्नां री उपाड़ली, ला० ।।८।।

माजी री सेवा में ली विदाई विदा शहर स्यूं।
'तुलसी' जीवन-नैय्या तारली, ला० ।।९।।

८६।८।१४१ साध्वीश्री केशरजी (लाडनूं)

(संयम-पर्याय सं० १६८२-२०००)

'३१वी कुमारी कन्या'

छप्पय

केशर की क्यारी खिली भारी लगी वहार।
एक साथ में साध्वियां हुई कुमारी चार।
हुई कुमारी चार प्रथम अवसर जो गण में।
मुनि फिर शोभाचंद मिला उस मंगल क्षण में।
केशर का पुर लाडनूं फूलफगर परिवार[१]।
केशर की क्यारी खिली भारी लगी वहार॥१॥

साधिक अष्टादस हयन रही साधना-लीन।
हुई अग्रगण्या सती मिलते पावस तीन[२]।
मिलते पावस तीन आयु तो थोड़ी पाई।
वय में वार्षिक तीस चली ले बड़ी विदाई।
सिताषाढ़ की पंचमी संवत् युग्म हजार[३]।
केशर की क्यारी खिली भारी लगी वहार॥२॥

१ साध्वीश्री केशरजी लाडनूं (मारवाड़) के जेठमलजी फूलफगर (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १६७० मे हुआ।

(ख्यात)

उनकी माता का नाम मगनी वाई था।

(सा० वि०)

केशरजी बारह वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १६८२ आषाढ़ कृष्णा १० को आचार्यश्री कालूगणी के कर-कमलों से वीकानेर में भागवती दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा बडे ठाटबाट से डूंगर कॉलेज में हुई।

कुल पांच दीक्षाएं हुईं[1]—भाई १, कुमारी कन्याएं ४ :—

१ मुनिश्री शोभाचंदजी (४५०) सुजानगढ

२. साध्वीश्री केशरजी (८६६) लाडनूं

३. ,, पूनांजी (८६७) श्रीडूंगरगढ़

४. ,, रुपाजी (८६८) सरदारशहर

५. ,, गुलावांजी (८६९) भादरा।

चार कुमारी कन्याओ का एक साथ दीक्षित होने का संघ मे प्रथम अवसर था ।

(कालूगणी की ख्यात, ख्यात)

२ सं० १९९७ मे उनका सिंघाड़ा हुआ । उन्होने तीन साल विहरण कर निम्नोक्त स्थानो मे चातुर्मास किये :—

सं० १९९८	ठाणा	५	शार्दूलपुर
सं० १९९९	,,	५	नमाणा
सं० २०००	,,	५	वाव ।

(चातुर्मासिक तालिका)

३ उन्होने १८ साल संयम-पर्याय का पालन कर सं० २००० (चैत्रादि क्रम से २००१) आपाढ शुक्ला ५ गंगाशहर मे समाधि-पूर्वक पडित-मरण प्राप्त किया ।

(ख्यात)

---

१. आपाढ-कृष्ण दसमी वीकाणे स्वामी,
पांचां नैं भव जल तार किया शिवगामी ।
पड्डुगढ़ रो शोभो, पूनां, केशर क्वारी,
रूपा छाजेड, गुलाव सती भाद्रा री ।

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० १६)

८६७।८।१४२ साध्वीश्री पूनांजी (श्रीडूंगरगढ़)

(संयम-पर्याय १९८२-२०३७ चैत्रादि)

'३२वीं कुमारी कन्या'

दोहा

पूनां गिरिगढ़-वासिनी, मालू गोत्र प्रतीत ।
वय में बारह साल की, लाई भाव पुनीत ।।१।।

दसमी कृष्णाषाढ़ की, साल बयासी खास ।
दीक्षित बीकानेर में, हो पाई गुरु-पास[1] ।।२।।

संयम में रमती रही, लगभग चौवन वर्ष ।
कुछ वर्षों तक लाडनूं, स्थायी रही सहर्ष ।।३।।

प्रवचन सुनने में रसिक, सरल नम्र व्यवहार ।
उत्सुक गुरु-गुण-गान में, थी गुरु-भक्ति अपार[2] ।।४।।

अकस्मात् 'लू' लग गई, श्रोत हुए सब वन्द ।
सुनते-सुनते मंत्र पद, गई स्वर्ग सानन्द ।।५।।

दो हजार सैंतीस की, शुक्ल चतुर्थी ज्येष्ठ ।
गरु तुलसी का भाग्य से, योग मिल गया श्रेष्ठ[3] ।।६।।

१. साध्वीश्री पूनाजी श्रीडूगरगढ (स्थली) निवासी लाभूरामजी मालू (ओसवाल) की पौत्री एवं तोलारामजी की पुत्री थी। उनकी माता का नाम मट्टू बाई था। पूनांजी का जन्म सं० १९७१ वैशाख शुक्ला १५ को हुआ।

(ख्यात)

धार्मिक परिवार मे जन्म लेने से उनमें वचपन से ही सत्संकार पनपने लगे। साधु-साध्वियों के उद्‌वोधन से वैराग्य भावना उत्पन्न हो गई। उन्होने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९८२ आपाढ कृष्णा १०

को आचार्यवर कालूगणी के हाथ से बीकानेर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली पांच दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री केशरजी (८६६) के प्रकरण में कर दिया गया है।

उनकी चचेरी वहिन साध्वी सिरेकंवरजी (८६२) उनसे पूर्व सं० १९८२ कार्त्तिक शुक्ला ५ को दीक्षित हुई। उनके चाचा मुनि जीवराजजी (४८५), चाचा के वेटे भाई संपतमलजी (४८८) और चाचा की वेटी वहिन केशरजी (८७६) ने सं० १९८९ मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

२. साध्वी पूनांजी का साधनाकाल लगभग ५४ वर्षो का रहा। वे प्रकृति से सरल और विनम्र थी। धर्म संघ एवं आचार्यो के प्रति गहरी निष्ठा रखती थी। गुरुदेव का व्याख्यान सुनने तथा गुणगान करने के लिए वड़ी उत्सुक रहती और रस लेती।

(दृष्टिगत)

३. साध्वी पूनाजी वृद्धावस्था के कारण स० २०३२ से लाडनू मे स्थिरवास कर रही थी। अन्तिम समय मे अचानक 'लू' लगने के कारण वे काफी अस्वस्थ हो गई। सूचना मिलते ही साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी आदि साध्विया उनके पास पहुंच गई। नमस्कार महामत्र तथा मंगल पाठ सुनाना प्रारम्भ किया। वे ध्यानपूर्वक सुनते-सुनते कुछ ही क्षणो मे दिवगत हो गई। वह दिन था—स० २०३७ (२०३६ श्रावणादि) द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला ४, समय छह वजकर पांच मिनिट।

आचार्यप्रवर उस समय लाडनूं मे ही विराज रहे थे। दूसरे दिन उनकी स्मृति-सभा मे आचार्यप्रवर ने उनके सवध में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा—'साध्वी पूनाजी वड़ी सरल एव विनीत थी। प्राय: प्रतिदिन प्रवचन सुनने के लिए पहुच जाती थी। स्वर्गवास होने के एक दिन पूर्व भी प्रवचन सुनने के लिए आई थी। संघपति का गुणगान करने के लिए वह वहुत उत्सुक रहती थी। अस्वस्थता का समाचार मिलते ही साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी आदि साध्वियां उनके पास पहुंच गई। नमस्कार महामंत्र सुनते-सुनते वे स्वर्गवासी हुई। दिवगत आत्मा के भावी जीवन के प्रति मगल कामना।'

(विज्ञप्ति क्रमांक ४९९)

८६८।८।१४३ साध्वीश्री रूपांजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९८२, वर्तमान)

'३३वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री रूपांजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के छाजेड़ (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७२ चैत्र कृष्णा ५ को हुआ। उनके पिता का नाम प्रतापमलजी और माता का छोगां देवी था।

वैराग्य—जालमचंदजी पटावरी की मृत्यु को देखकर उन्हे संसार की नश्वरता का वोध हुआ और मन वैराग्य से भर गया।

दीक्षा—उन्होंने ११ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) में सं० १९८२ आषाढ़ कृष्णा १० को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीकानेर में दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली ५ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री केशरजी (८६६) के प्रकरण में कर दिया गया है।

उनकी छोटी वहिन साध्वी पानकंवरजी (१००१) ने सं० १९९४ में दीक्षा स्वीकार की।

शिक्षा—साध्वीश्री रूपांजी दीक्षित होने के वाद इक्कीस साल (सं० २००३ तक) प्राय: गुरु-कुल-वास मे रही। नियमित रूप से अध्ययन करते हुए संस्कृत एवं व्याकरण का ज्ञान किया।

उनके द्वारा किये गये कंठस्थ ज्ञान की सूची इस प्रकार है :—

आगम—आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन के कुछ अध्ययन, वृहत्-कल्प, भ्रमविध्वंसन।

व्याकरण—सारस्वत, कालुकौमुदी, अष्टाध्यायी।

संस्कृत—शारदीया नाममाला, हैमीनाममाला, शांत सुधारस सिन्दूर-प्रकर, भक्तामर, कल्याण मंदिर, पंचसूत्रम्, अन्ययोगव्यवछेदिका, आत्मभाव-वत्तीसी।

दर्शन—मनोनुशासनम्, जैन सिद्धांत दीपिका, भिक्षु न्याय कर्णिका, षड्दर्शनसमुच्चय।

प्रतिलिपि—उन्होने लिपिकला का अच्छा विकास किया। आवश्यक,

दशवैकालिक, आचारांग, वृहत्कल्प, रामचरित्र, भिक्षुग्रन्थरत्नाकर के कुछ भाग आदि लगभग तीन पुस्तकें (एक पुस्तक के ४००-५०० पन्ने होते हैं) लिपिवद्ध की।

विहार—साध्वीश्री ने सं० १६६६ का एक चातुर्मास चूरू में किया। सं० २००३ में आचार्यश्री ने उनका स्थायी सिंघाड़ा वना दिया। तत्पश्चात् उन्होंने दूर-दूर प्रान्तो मे विहार कर धर्म का प्रचार-प्रसार किया और कर रही हैं। लगभग ४४००० किलोमीटर की पद-यात्रा हो चुकी है।

उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है :—

सं० १६६६	ठाणा	५	चूरू
सं० २००४	,,	५	उदयपुर
सं० २००५	,,	५	चूड़ा
सं० २००६	,,	५	चोटीला
सं० २००७	,,		हांसी (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २००८	,,	५	मलेरकोटला
सं० २००९	,,	५	वांकानेर
सं० २०१०	,,	५	जामनगर
सं० २०११	,,	५	ध्रांगध्रा
सं० २०१२	,,	५	मुलुन्द (वम्वई)
सं० २०१३	,,	२५	लाडनू 'सेवा केन्द्र'
सं० २०१४	,,	५	जोधपुर
सं० २०१५	,,	५	वम्वई
सं० २०१६	,,	५	माटुगा (वम्वई)
सं० २०१७	,,	५	अहमदावाद
सं० २०१८	,,	५	भुसावल
सं० २०१९	,,	५	जवलपुर
सं० २०२०	,,	५	कांटाभाजी
सं० २०२१	,,	५	सिंघीकेला (उड़ीसा)
सं० २०२२	,,	५	केसिंगा
सं० २०२३	,,	५	गंगानगर
सं० २०२४	,,	५	जालना

सं० २०२५	ठाणा	५	घाटकोपर (बम्बई)
सं० २०२६	,,	५	वणी
सं० २०२७	,,	५	जबलपुर
सं० २०२८	,,	५	धूरी
सं० २०२९	,,	५	आमलनेर
सं० २०३०	,,	५	साकरी
स० २०३१	,,	५	हुबली
सं० २०३२	,,	५	बैंगलौर
स० २०३३	,,	५	मद्रास
सं० २०३४	,,	५	चिकमंगलूर
सं० २०३५	,,	५	जयसिंहपुर
सं० २०३६	,,	५	सूरत
सं० २०३७	,,	१०	सरदारशहर
स० २०३८	,,	६	अहमदाबाद
स० २०३९	,,	५	सूरत
सं० २०४०	,,	६	हांसी
सं० २०४१	,,	५	गंगाशहर
स० २०४२	,,	६	श्रीडूंगरगढ़ ।

(चातुर्मासिक तालिका)

तपस्या—उनके द्वारा की गई सं० २०४१ तक की तपस्या इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५	८
२०३५	३९	५	१	२	१

स्वाध्याय आदि—वे लगभग ३८ वर्षो से प्रतिदिन आधा घंटा मौन और कुछ समय ध्यान करती है।

उनके अब तक लगभग ५१ लाख गाथाओ का स्वाध्याय हो चुका है। माला एवं जाप का क्रम भी चलता है।

(परिचय पत्र)

कुशल साध्वी—साध्वीश्री रूपाजी अध्ययनशील और संस्कारी साध्वी है। वे स० २००२ तक प्राय. साध्वी-प्रमुखा झमकूजी के सान्निध्य मे विनयावनत

होकर रही। उनकी देख-रेख मे अपने जीवन का निर्माण किया। अच्छी ज्ञानाराधना की। उस समय साध्वियो के स्थान पर किसी को सुनाने-समझाने का प्रसंग आता तो प्राय: साध्वी रूपांजी का उपयोग होता था। उनके कंठ मधुर, आवाज बुलन्द और उच्चारण स्पष्ट है। व्याख्यान की अच्छी कला है। उन्हें प्राचीन राग-रागिनियां भी वहुत आती हैं।

पुरस्कार—सं० २००१ माघ शुक्ला ६ को सुजानगढ़ मे साधु-साध्वियो की गोष्ठी में आचार्यप्रवर ने साध्वीश्री को दशवैकालिक, नाममाला, कालु-कौमुदी और अष्टाध्यायी कंठस्थ करने पर तीन हजार गाथाओ से पुरस्कृत किया।

(तुलसीगणी की ख्यात)

साहित्य—साध्वीश्री रूपांजी ने साध्वी-प्रमुखा झमकूजी की जीवन-गाथा बड़े परिश्रम से लिखी। उसमे उन्होने साध्वी-प्रमुखा की वहुमुखी विशेषताओ का विश्लेषण किया। पुस्तक का नाम है—उनकी कहानी मेरी जबानी।

विशेष घटना—सं० २०१५ वम्बई में मोटर गाडी से ऐक्सीडेन्ट होने से १ महीना हॉस्पिटल में रहना पड़ा। १७ दिन २० तोले का हेंडल पेट मे रहा। फिर ऑपरेशन द्वारा उसे निकाला गया।

८६९।८।१४४ साध्वीश्री गुलाबांजी (भादरा)

(दीक्षा सं० १९८२, वर्तमान)

३४वीं कुमारी कन्या

परिचय—साध्वीश्री गुलाबांजी का जन्म भादरा (स्थली) के नाहटा (ओसवाल) गोत्र मे सं० १९७३ आश्विन शुक्ला १३ (साध्वी-विवरणिका मे तिथि ११ है) को हुआ। उनके पिता का नाम सुगनचन्दजी और माता का चन्द्रादेवी था। शैशववय मे ही वालिका गुलाबांजी की माता का वियोग हो गया फिर भी परिवार वालो की तरफ से उन्हें अत्यधिक प्यार मिला। उनका लालन-पालन विशेषत: ननिहाल (राजगढ़ के मुरलीधरजी सुराणा उनके नानाजी थे) मे हुआ।

वैराग्य—जन्मांतर संस्कार एवं भादरा मे विराजित साध्वीश्री केसरजी (६२९) 'तारानगर' की प्रेरणा से गुलाबांजी के मन मे वैराग्य भावना जगी।

दीक्षा—उन्होंने ९ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) मे सं० १९८२ आषाढ कृष्णा १० को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से बीकानेर में दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली ५ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री केशरजी (८६६) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सुखद सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के वाद एक साल गुरुकुलवास में रही। उसके वाद ११ साल साध्वीश्री गंगाजी (४४४) 'मांडा' के सिंघाड़े मे रहकर अपने जीवन का विकास किया। सं० १९९४ मे साध्वीश्री गंगाजी के दिवंगत होने पर तीन चातुर्मास साध्वीश्री पेफांजी (५३३) 'केलवा' के साथ रतनगढ़ किये।

कंठस्थ ज्ञान—उन्होने निम्नोक्त सूत्र तथा थोकड़े कंठस्थ किये—

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नंदी, वृहत्कल्प तथा भ्रम विध्वंसन।

थोकड़े—पच्चीस बोल, पाना की चरचा, गतागत, कायस्थिति, संजया, नियंठा, पांच भावो का थोकड़ा, हरखचन्दजी स्वामी की

चरचा, भिक्खुपृच्छा, गमा, पज्जुवापद आदि ।

विहार—सं० १९९७ मे साध्वी पेफांजी (५३३) 'केलवा' का स्वर्ग-वास होने पर आचार्यश्री ने साध्वी गुलावांजी का सिघाड़ा किया । उन्होने दूर-निकट प्रान्तो में विहार कर धर्म का अच्छा प्रचार-प्रसार किया और कर रही है । उनके चातुर्मास स्थल इस प्रकार है—

सं० १९९८	ठाणा ५	पुर
सं० १९९९	,, ६	भादरा
सं० २०००	,, ६	आमेट
स० २००१	,, ६	पचपदरा
सं० २००२	,, ५	हिसार
सं० २००३	,, ५	भिवानी
सं० २००४	,, ४	सूरतगढ़
स० २००५	,, ५	जावद
सं० २००६	,, ५	वाव
सं० २००७	,, ५	नाभा
सं० २००८	,, ५	फतेहगढ़
सं० २००९	,, ५	वाव
सं० २०१०	,, ५	साकरी
सं० २०११	,, ५	कुर्हा-पान
स० २०१२	,, ५	जयसिहपुर
सं० २०१३	,, ५	परभनी (हैदरावाद)
सं० २०१४	,, ५	जालना
सं० २०१५	,, ५	श्रीगंगानगर
सं० २०१६	,, ५	जगरांवा
स० २०१७	,, २८	लाडनू 'सेवाकेन्द्र'
सं० २०१८	,, ४	वाव
सं० २०१९	,, ५	धूरीमंडी
सं० २०२०	,, ५	सगरूर
सं० २०२१	,, ५	अहमदगढ
स० २०२२	,, ५	पचपदरा
सं० २०२३	,, ५	वाड़मेर

सं० २०२४	ठाणा	५	गोगुन्दा
स० २०२५	,,	५	बरवाला (घेलासाह)
सं० २०२६	,,	५	अहमदाबाद (शाहीबाग)
सं० २०२७	,,	५	फतेहगढ
सं० २०२८	,,	५	सूरतगढ
स० २०२९	,,	४	गडबोर
सं० २०३०	,,	४	नाथद्वारा
सं० २०३१	,,	५	देवगढ
सं० २०३२	,,	६	भादरा
सं० २०३३	,,		सरदारशहर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०३४	,,	५	भीलवाडा
सं० २०३५	,,	६	राणावास
स० २०३६	,,	५	राजनगर
स० २०३७	,,	५	उदयपुर
सं० २०३८	,,	५	श्रीगंगानगर
सं० २०३९	,,	५	धूरी
सं० २०४०	,,	५	बरनाला
सं० २०४१	,,	५	हांसी
स० २०४२	,,	५	भादरा।

(चातुर्मासिक तालिका)

तपस्या—सं० २०४२ तक उनके तप का विवरण इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	१३	१५
३२१७	१३९	४४	७	१	१	१	१	१	१

आयम्बिल का तेला १, चोला १, अठाई १ तथा नौ दिन १।

अढाई-सौ प्रत्याख्यान एक बार एवं दस-प्रत्याख्यान पांच बार किए।

उन्हे स० २००९ से चाय और चीनी का परित्याग है।

संस्मरण

सौहार्द का वातावरण—साध्वीश्री गुलाबाजी ने स० २००८ का

चातुर्मास फतेहगढ़ मे किया। शेपकाल मे भुज, मांडवी क्षेत्र मे गई[1]। वहां विहार करने वाली स्थानकवासी साध्वियो ने सुना कि तेरापंथी समाज की साध्विया आई हैं तो उन्हें वहुत आश्चर्य हुआ। वे साध्वियों को देखने आती तथा प्रश्न पूछती—तुम कच्छ का रण लाघ कर कैसे आई ? हम तो उसे लांघकर कही आ जा नही सकती। साध्वी गुलावांजी ने कहा—हमने एक ही दिन मे लगभग ८ कोस का लम्बा विहार कर रण को लाघ दिया।

वे साध्विया जिस स्थानक मे ठहरी हुई थी वहां साध्वी गुलावांजी का व्याख्यान होता। वे साध्वियां भी श्रद्धा पूर्वक व्याख्यान सुनती।

नानी पक्ष के आचार्य लालचंदजी साध्वी गुलावांजी के पास आये। सूक्ष्म हस्त-लिपि तथा चित्रकला देखकर आश्चर्यान्वित हो गए। जाते समय कहते गए कि आप भी कभी हमारे स्थानक मे पधारना। एक दिन श्रावको से परामर्श कर साध्वी गुलावांजी उनके स्थानक मे गई। वहा तत्त्वचर्चा भी चली, प्रश्नो के सही उत्तर सुनकर वे वहुत प्रभावित हुए। सौहार्द का वातावरण वना, इसकी पूरे कच्छ प्रान्त में अच्छी प्रतिक्रिया हुई।

फिर भी सव गांव और सव लोग समान नही होते। कच्छ प्रान्त मे विहार किया तव देशलपुर मे साध्वीश्री को एक दिन मे तीन स्थान परिवर्तन करने पडे।

बैठे-वैठे रात गुजरी

साध्वीश्री सं० २०१३ का चातुर्मास परभनी (हैदरावाद) मे करने के लिए जा रही थी। रास्ते मे एक भाई लालचंदजी गटागट साथ थे। साध्वियां संध्या के समय एक छोटे से गांव में पहुंची। वड़ी मुश्किल से छोटा-सा स्थान मिला। मालकिन को पूछकर वे वहां ठहर गई। रात को वरसात आने लगी। थोडी देर वाद घर का मालिक आया तो अंटसंट वोलने लगा—निकलो मेरी जगह से·······। साध्वियो ने समझाते हुए कहा—अभी वरसात आ रही है अत· हम कही जा नही सकती, सुवह होते ही यहां से रवाना हो जायेगी। वहुत कहने पर वह वोला—तुम रह जाओ पर मेरे वैल मैं यहीं वांधूंगा। ये वेचारे वर्षा मे कहां खड़े रहेंगे, ये वीमार हो जायें तो मेरा रोजगार का सहारा ही टूट जाए। एक तो स्थान छोटा, पास मे वैल, वैलो का मूत्र व

---

१. साध्वी गुलावांजी ही रण को लाघकर आगे के क्षेत्रो मे गई। इससे पूर्व तेरापथ की साध्वियां उन क्षेत्रो मे नही गई थी।

गोवर, फिर ऊपर से वरसात । इन सव कठिनाइयों के वीच साध्वियों ने सारी रात वैठे-वैठे गुजारी ।

इस प्रकार साधु जीवन मे स्थानादिक के लिए अनेक परिपह उत्पन्न होते है ।

(परिचय पत्र)

८७०।८।१४५ साध्वीश्री सुगनांजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८३-१९८३)

छप्पय

पाई है सुगनां सती संयम की पतवार।
सद्गुरु-कृपया कर गई भवसागर को पार।
भवसागर को पार पुत्र-पति सह हो दीक्षित।
गण-वनिका में वास किया कर दिल को विकसित।
मर्यादोत्सव 'लाडनूं' छाई नई बहार[1]।
पाई है सुगनां सती संयम की पतवार ॥१॥

दोहा

दो मासिक पर्याय में, बहुत बड़ी कर आय।
उज्ज्वलतम जीवन किया, लिख नूतन अध्याय[2] ॥२॥

१. साध्वी श्री सुगनाजी का जन्म सं० १९४८ मे राजलदेसर के छोगजी बैद के घर हुआ। माता का नाम जमनांबाई था (सा० वि०)। उनका विवाह सरदारशहर (स्थली) के फूसराजजी पटावरी (ओसवाल) के साथ किया गया। उनके छह संताने हुईं, जिनमे सबसे छोटे पुत्र का नाम मांगीलालजी था।

सुगनांजी ने तीन साल ब्रह्मचर्य व्रत की कठोर साधना कर अपने पति फूसराजजी (४५६) तथा अल्प वयस्क पुत्र मांगीलालजी (४५९) के साथ सं० १९८३ माघ शुक्ला ७ को आचार्य श्री कालूगणी द्वारा लाडनू मे संयम ग्रहण किया। उस दिन नौ दीक्षाएं हुईं[1]—भाई ४, बहिनें ५ उनके नाम इस

१. साल तंयासी लाडणू, मर्यादोत्सव सत्व।
नव दीक्षा नवनीत ज्यू, नाथ निचोड्यो तत्त्व ॥
पूसराज पटावरी, पत्नी पुत्र सहीत।
गहरी आगम धारणा, साधां रा सुविनीत ॥
(कालू० उ० ३ ढा० १६ दो० १७, १८)

प्रकार हैं—

१. मुनि श्री फूसराजजी (४५६) सरदारशहर
२. ,, सोहनलालजी (४५७) सुजानगढ़
३. ,, गणेशमलजी (४५८) गंगाशहर
४. ,, मांगीलालजी (४५९) सरदारशहर
५. साध्वी श्री सुगनांजी (८७०) ,,
६. ,, मनोरांजी (८७१) सुजानगढ
७. ,, पिस्ताजी (८७२) ऊमरा
८. ,, मोहनाजी (८७३) राजगढ
९. ,, कमलूजी (८७४) जयपुर

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वीश्री दो महीने, पांच दिन संयम का पालन कर सं० १९८३ चैत्र शुक्ला १२ को बीदासर मे दिवंगत हो गई। उन्होने थोड़े समय मे अपना कार्य सफल कर लिया।

(ख्यात)

८७१।८।१४६ साध्वीश्री मनोरांजी (सुजानगढ़)

(दीक्षा सं० १९८३, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री मनोरांजी का जन्म सुजानगढ़ के चोरड़िया (ओसवाल) परिवार मे सं० १९६७ वैशाख शुक्ला ८ को हुआ। उनके पिता का नाम गणेशमलजी और माता का जीवणीवाई था। तेरह वर्ष की अवस्था में स्थानीय आसकरणजी फूलफगर के पुत्र सोहनलालजी के साथ मनोराजी का विवाह कर दिया गया।

वैराग्य—शादी के दो साल वाद पति-पत्नी के मानस मे ऐसे संस्कार जागृत हुए कि वे भोग से त्याग-मार्ग पर अग्रसर होने के लिए उत्कंठित हो गये। साथ-साथ मनोरांजी की सास भी संयम के लिए उत्कंठित हो गयी। उस समय पूज्य कालूगणी वीकानेर मे विराज रहे थे। तीनो ने गुरुदेव के चरणो मे उपस्थित होकर अपनी भावना प्रस्तुत की। गुरु-साक्षी से पति-पत्नी ने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार कर लिया। दीक्षा के लिए प्रार्थना करने पर आचार्यवर ने तीनो को साधु-प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया। तीनो वापस सुजानगढ़ पहुंचे। कुछ ही महीनो वाद मनोरांजी की सास का आकस्मिक निधन हो गया। उनकी मृत्यु से पति-पत्नी शीघ्रातिशीघ्र दीक्षित होने के लिए लालायित हो गये।

दीक्षा—मनोरांजी ने १६ वर्ष की अवस्था (नावालिग) मे अपने पति सोहनलालजी (४५७) के साथ स० १९८३ माघ शुक्ला ७ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा लाडनूं मे दीक्षा ग्रहण की।[1] उस दिन होने वाली ९ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री सुगनांजी (८७०) के प्रकरण में कर दिया गया है।

सहवास—साध्वी श्री मनोरांजी दीक्षित होने के वाद चार महीने गुरुकुल-वास मे रही। फिर आचार्यवर ने उनको साध्वीश्री लिछमांजी (६३७) 'मोमासर' के सिंघाड़े में भेज दिया। साध्वी लिछमांजी मनोरांजी की संसार-पक्षीया बुआ थी। मनोरांजी ने उनके सान्निध्य मे रहकर आगम तथा थोकडों

---

१ भर जोवन जोड़ै सहित, सोहन दूर्ग सुजान।
(कालू० उ० ३ ढा० १६ दो० १९)

आदि का अच्छा अध्ययन किया। साध्वी लिछमांजी के दिवंगत होने के पश्चात् वे साध्वी कंकूजी (७०१) 'कट्दा' के साथ दो साल तक रही।

कंठस्थ ज्ञान—दशवैकालिक, पाना की चर्चा, तेरहद्वार, लघुदंडक, बावन बोल, कर्मप्रकृति, इक्कीसद्वार, गतागत, जाणपणे के पच्चीस बोल, हित शिक्षा के पचीस बोल तथा आराधना, चौबीसी आदि।

विहार—सं० १९९५ रतनगढ मर्यादा-महोत्सव के समय आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी मनोराजी को अग्रगण्या बना दिया। उन्होंने दूर-निकट प्रान्तो मे विहरण कर लगभग चालीस हजार किलोमीटर की पदयात्रा की। जन-जन मे अध्यात्म भावना भरने का प्रयास किया और कर रही है। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है—

स० १९९६	ठाणा ५	देवगढ
सं० १९९७	,, ५	नमाणा
सं० १९९८	,, ५	वेमाली
स० १९९९	,, ५	पहुना
सं० २०००	,, ६	छोटी खाटू
सं० २००१	,, ५	रेलमगरा
स० २००२	,, ५	बोइन्दा
स० २००३	,, ५	आपाढा
स० २००४	,, ५	सायरा
सं० २००५	,, ५	पाली
सं० २००६	,, ५	चाणोद
स० २००७	,, ५	जोवनेर
स० २००८	,, ५	वड़ी पादू
स० २००९	,, ४	कसूण
स० २०१०	,, ५	राणी
सं० २०११	,, ६	खाटू
सं० २०१२	,, ६	ईड़वा
सं० २०१३	,, ६	भादरा
सं० २०१४	,, ५	दौलतगढ़
सं० २०१५	,, ५	उज्जैन
सं० २०१६	,, ५	पेटलावद

सं० २०१७	ठाणा	राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०१८	,, ५	जगरांवा
स० २०१९	,, ५	चाणोद
सं० २०२०	,, ४	वायतू
सं० २०२१	,, २९	लाडनू (छोटांजी (७५२) 'तारानगर' का सयुक्त)
सं० २०२२	,, ४	सीसाय
स० २०२३	,, ५	समाना
सं० २०२४	,, ५	दौलतगढ
स० २०२५	,, ५	नाथद्वारा
सं० २०२६	,, ५	आसीन्द
सं० २०२७	,, ५	केलवा
सं० २०२८	,, ४	वक्काणी
सं० २०२९	,, ४	घाटकोपर (वम्वई)
स० २०३०	,, ४	उल्लासनगर
स० २०३१	,, ४	हैदरावाद
स० २०३२	,, ४	वोलारम
सं० २०३३	,, ५	औरगावाद

सं० २०३४ से सं० २०३७ तक बीदासर 'समाधिकेन्द्र' मे रही ।
सं० २०३८ चाड़वास (सा० सुन्दरजी (८४५) 'मोमासर' के साथ)
स० २०३९ सुजानगढ़ (सा० नोजांजी (७९१) 'सरदारशहर' के साथ)
सं० २०४० चाडवास (सा० सुन्दरजी (८४५) 'मोमासर' के साथ)
सं० २०४१ ,, (सा० सुन्दरजी (१०००) 'सरदारशहर के साथ)
सं० २०४२ ठाणा ५ साडवा

(चातुर्मासिक तालिका)

तपस्या—उनके स० २०४१ तक की तप सूची इस प्रकार है—

उपवास	२	३
२०७५	५३	३

तथा आयम्बिल १०९ वार, दस प्रत्याख्यान ७ वार एवं तीर्थंकरों की लडियां की ।

सेवा—साध्वी लिछमांजी (६३७) को संग्रहणी की बीमारी थी। साध्वी मनोरांजी ने उनकी अग्लान भाव से परिचर्या की।

विशेषता—साध्वीश्री स्वभाव से सरल, शांत और संयत है। एक बार आचार्यश्री ने अपने द्वारा प्रदत्त पत्र में भी इसका उल्लेख किया था। वे अपना छोटा-बडा कार्य प्रायः अपने हाथो से करती है।

आशातीत सफलता—साध्वीश्री सं० २०३५ मे बीदासर 'समाधि-केन्द्र' मे थी। वहां उनके अचानक पक्षाघात की बीमारी हो गयी। आचार्यप्रवर उस समय बीदासर में विराज रहे थे। पन्नालालजी बैगानी ने आचार्यश्री के दर्शन कर सारी स्थिति निवेदित की तब गुरुदेव ने फरमाया—'साध्वी मनोरांजी बहुत ही निर्जरार्थी साध्वी है। शरीर भी मोटा नही है स्फूर्ति भी अच्छी है, फिर उनके पक्षाघात कैसे हो गया!' फिर पूछा कि दवा किसकी चलती है? पन्नालालजी ने कहा—'सेठ सुमेरमलजी दूगड की। तत्काल आचार्यप्रवर के मुखारविन्द से शब्द निकले—'तब कोई चिन्ता की बात नही है, ठीक हो जायेगा।'

संयोग ऐसा मिला कि साध्वीश्री पाचवें दिन थोडी-थोड़ी घूमने लग गई और एक महीने मे तो काफी ठीक हो गई। आचार्यप्रवर बीदासर पधारे। साध्वीश्री ने दर्शन किये तब गुरुदेव ने फरमाया—'मनोरांजी! थांनै तो आशातीत सफलता मिली है।' साध्वीश्री ने नम्रता पूर्वक निवेदन किया—'गुरुदेव! यह सब आपका ही पुण्य प्रताप है।'

(परिचय पत्र)

८७२।८।१४७ साध्वीश्री पिस्तांजी (ऊमरा)

(दीक्षा सं० १९८३, वर्तमान)

'३५वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री पिस्तांजी हरियाणा प्रान्त के ऊमरा नामक गांव की निवासिनी थी। उनके पिता का नाम सुगनचन्दजी अग्रवाल (मित्तल गोत्रीय) और माता का भागांदेवी था। पिस्ताजी का जन्म स० १९६७ भाद्रव शुक्ला पंचमी (महापर्व संवत्सरी) को हुआ।

वैराग्य—पिस्ताजी की वड़ी वहिन का नाम चमेलीदेवी था। वे उनसे सिर्फ दो साल वड़ी थी। शादी के दो महीने वाद ही उनका देहान्त हो गया। इस घटना से पिस्तांजी का मन संसार से विरक्त हो गया। पिस्तांजी के पिता ने पुत्री चमेली के स्थान पर पिस्तांजी की शादी करना चाहा, पर पिस्तांजी इसके लिए विल्कुल इनकार हो गई। उन्होने कहा—'वडा वहनोई ससार मे पितृ-तुल्य माना जाता है, अतः मैं इस वात को किसी हालत मे भी स्वीकार नही कर सकती।'

पिस्तांजी के जीजाजी घासीरामजी सर्राफ (जो हांसी के प्रमुख व्यक्तियो मे से एक थे) ने भी उनको खूब समझाया। प्रलोभन आदि द्वारा आकृष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया। पर सारे प्रयास निष्फल गये क्योकि पिस्तांजी के वैराग्य का गहरा रंग लग चुका था।

सं० १९८१ मे साध्वीश्री संतोकाजी (७२५) 'सरदारशहर' का ऊमरा मे चातुर्मास हुआ। पिस्ताजी अधिकांश समय साध्वियो की सेवा मे लगाती। रात्रि मे साध्वियो के स्थान पर शयन करती। क्रमशः उनकी वैराग्य-भावना वढ़ती चली गई। उन्होने सयम ग्रहण करने का निर्णय कर लिया। उनके पिताजी को पता लगा तो वे वोले—'मैं किसी हालत मे भी दीक्षा की स्वीकृति नही दूगा। दीक्षा लेना तो ओसवालो का काम है, हम अग्रवाल है हमारा दीक्षा से क्या मेल!' लेकिन पिस्तांजी अपने प्रण पर अडिग थी। अपनी मनोभावना पिताजी के सम्मुख वार-वार रखने पर भी जव आज्ञा प्राप्त होने के कोई आसार नजर नही आये तव उन्होने एक महीने तक दो द्रव्यो के अतिरिक्त कुछ भी नही खाया। फिर भी परिवार वालो पर कोई प्रभाव नही

पड़ा। उसके वाद पिस्तांजी ने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि परिवार वाले जव तक गुरुदेव के दर्शन नहीं करवाएंगे और दीक्षा की अनुमति नही देंगे तव तक चौविहार उपवास रखूंगी। इस कड़ी प्रतिज्ञा के सामने भी पिताजी का दिल नही पिघला और वे घर छोडकर दूसरे गांव चले गये।

आखिर घर वालो ने सोचा—ऐसे तो यह मर जायेगी। गर्मी का भयंकर मौसम है, इसके मुह से खून भी गिरने लग गया है, अतः शीघ्र ही हमे इसको साथ लेकर गुरु-दर्शन के लिए चलना चाहिए। इस प्रकार चिंतन कर उनके ताऊजी (आशारामजी) आदि ने पिस्तांजी को साथ लेकर पूज्य कालूगणी के दर्शन किये। उस दिन पिस्तांजी के चौविहार पंचोला (पांच दिन का उपवास) था। आचार्यवर के सम्मुख सारी स्थिति प्रस्तुत करते हुए दीक्षा के लिए निवेदन किया तव गुरुदेव ने पूर्ण कृपा कर दीक्षा का आदेश देते हुए फरमाया—'आठ दीक्षा तो पहले घोषित कर दी गई है, नौवीं इसकी (पिस्तां की) दीक्षा हो जायेगी।' दीक्षा की अनुमति मिलने के वाद पिस्तांजी ने पंचोले का पारणा किया। महामना कालूगणी स्वयं गोचरी पधारे और वहिन का व्रत निपजाया। पिस्तांजी के दिल मे खुशी का पार नही रहा। परिवार सहित वे वापस ऊमरा आ गईं और दीक्षा की तैयारी करने लगी।

दीक्षा—पिस्ताजी ने १६ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९८३ माघ शुक्ला ७ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा लाडनूं मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली ९ दीक्षाओं का वर्णण साध्वीश्री सुगनांजी (८७०) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

ज्ञानार्जन—साध्वी पिस्तांजी दीक्षित होने के वाद तीन साल गुरुकुल-वास मे और १२ साल साध्वीश्री जडावांजी (५६२) 'चाडवास' के सिंघाड़े में रही। कुछ चातुर्मास अन्य सिंघाड़ों के साथ किये। उन्होंने यथाशक्य ज्ञानार्जन किया। कंठस्थ ज्ञान की सूची इस प्रकार है :—

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प, नंदी।

संस्कृत—भक्तामर, सिन्दूरप्रकरण, शांतसुधारस, शारदीया नाम-माला आदि।

थोकड़े—पच्चीस वोल, चर्चा, तेरहद्वार, लघुदंडक, वावन वोल, वासठिया, कर्मप्रकृति, हेमराजजी स्वामी के पचीस वोल,

गुणस्थान द्वार, ज्योतिष्चक्र, महादडक, संजया, नियंठा इकतीस द्वार, आदि छोटे-बडे इकतीस थोकड़े।

व्याख्यान—रामचरित्र, मुनिपत, धनजी, शालीभद्र आदि छोटे-ब्रड़े २५ व्याख्यान।

कला—साध्वीश्री ने रजोहरण, प्रमार्जनी, पुट्ठा, लेखनघर, पाटियां आदि बनाने की तथा रग-रोगन की कला मे अच्छी प्रगति की।

तपस्या—सं० २०४१ तक उन्होंने इस प्रकार तप किया—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
२५५७	२०७	९३	१३	७	२	२	५	२	१	१

सेवा—साध्वीश्री कई रुग्ण-ग्लान-वृद्ध एवं तपस्विनी साध्वियो की सेवा से लाभान्वित हुई—

(१) साध्वी जडावांजी (५९२) 'चाड़वास' अचक्षु थी। उनकी १२ साल विविध प्रकार से परिचर्या की।

(२) तपस्विनी साध्वी इन्द्रूजी (७९७), 'वीदासर' की चौमासी तथा लघु-सिंह निष्क्रीड़ित तप के समय।

(३) साध्वी पिस्तांजी (९१२) 'जमालपुर' की चौमासी तप तथा रुग्णावस्था के समय।

(४) साध्वी रुपाजी (९९४) 'लाडनू' की दोनो पैरो मे 'वाला' निकलने पर चार महीने।

(५) साध्वी सुखदेवांजी (७०२) 'लाडनूं' की बीमारी के समय।

(६) साध्वी लिछमांजी (८५४) 'श्रीडूगरगढ़' की पाडुरोग होने पर।

(७) साध्वी सुगनांजी (११०१) 'रुणियावास' की वमन एवं देव-प्रकोप होने पर।

(८) साध्वी सोहनांजी (९०१) 'सरदारशहर' की भयकर वात-प्रकोप होने पर।

इस प्रकार अन्य कई साध्वियो की भी सेवा-शुश्रूषा की।

विहार—आचार्यश्री तुलसी ने सं० २०१० के राणावास मर्यादा-महोत्सव के समय साध्वी पिस्ताजी का सिंघाड़ा बनाया। उन्होने अनेक क्षेत्रो मे विहार कर धर्म का अच्छा उपकार किया और कर रही है। हरियाणा मे

जमींदारो (चोधरियों) को सुलभबोधि बनाया, सैकड़ों व्यक्तियो को गुरु-धारणा करवाई। लगभग ५१ हजार किलोमीटर की यात्रा की।

उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है—

सं० २०११	ठाणा	५	दौलतगढ
सं० २०१२	,,	४	समदड़ी
सं० २०१३	,,	५	ऊमरा
सं० २०१४	,,	५	घोइन्दा
सं० २०१५	,,	६	चाणोद
सं० २०१६	,,	४	कटालिया
सं० २०१७	,,		राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
स० २०१८	,,	५	ऊमरा
सं० २०१९	,,	५	सिसाय
सं० २०२०	,,	५	छात्तर
सं० २०२१	,,	४	उचानामडी
सं० २०२२	,,	५	लाछुडा
सं० २०२३	,,	४	हिसार
स० २०२४	,,	४	आसाहोली
सं० २०२५	,,	२६	लाडनूं (साध्वी रायकंवरजी (८३३) चाड़वास का संयुक्त)
सं० २०२६	,,	५	कालावाली
सं० २०२७	,,	५	जेतूमडी
सं० २०२८	,,	६	समाना
सं० २०२९	,,	५	श्रीगंगानगर
स० २०३०	,,		हिसार (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
स० २०३१	,,	५	कैथल
स० २०३२	,,	४	लावा सरदारगढ़
स० २०३३	,,	५	समाना
सं० २०३४	,,	४	टोहाना
स० २०३५	,,	५	मलेरकोटला

सं० २०३६	ठाणा	५	कालावाली
सं० २०३७	,,	५	भिवानी
सं० २०३८	,,	६	केलवा
सं० २०३९	,,	६	नाथद्वारा
सं० २०४०	,,	५	गंगानगर
सं० २०४१	,,	२३	बीदासर 'समाधि केन्द्र'
सं० २०४२	,,	४	टाडगढ

(चातुर्मासिक तालिका)

संस्मरण—

साहस—स० २०२७ मे साध्वी पिस्ताजी का चातुर्मास कटालिया मे था। भाद्रव शुक्ला १ के दिन वे समीपवर्ती शेखावास (पाच मील दूर) गाव मे गईं। साथ में साध्वी पूनांजी (७५०) 'बीदासर' थी। वर्षा का समय था। लेकिन नदी मे पानी नही था और वर्षा आने की सभावना भी नही थी। वहा भाई-बहिनो को सवत्सरी के दिन उपवास तथा पौषध आदि करने की प्रेरणा दी। वापस दो बजे विहार किया। चार भाई पहुंचाने के लिए साथ आये। मौसम अनुकूल था। बाद मे आकाश मे बादल उमडे और जोरो से वर्षा शुरू हो गयी। साध्वीश्री जब नदी के समीप पहुंची तब भाइयो ने कहा—'नदी मे पानी आना शुरू हो गया है अत यथाशीघ्र उस पार पहुचने का प्रयत्न करे। इतने मे तीव्र गति से बहता हुआ इतना पानी आ गया कि साध्वी पूनाजी प्रवाह मे बह गई। भाई लोग उन्हे निकालने लगे तब साध्वी पिस्ताजी ने दृढ स्वर मे उन्हें मना कर दिया। स्वयं दाहिना पैर पकड कर साध्वी पूनांजी को किनारे ले आयी। दोनो हाथो से पकड उन्हे उलटा कर दिया जिससे सारा पानी बाहर निकल गया। आधे घटे के बाद विहार कर सकुशल अपने स्थान पर पहुच गईं। इस प्रकार उन्होने साहस का परिचय दिया।

निर्भयता—सं० २००३ मे साध्वी पिस्तांजी का चातुर्मास सिरसा के लिए घोषित हुआ। शेषकाल मे छोटे-छोटे गांवो मे घूमती हुई वे 'खेरा' नामक गांव मे पहुंची। वहा मघराजजी डागा के मकान मे ठहरी। उसी दिन रात्रि के समय दो बजे एक चोर आया। घर मे जागरण होने के कारण वह चोरी नही कर सका। दरवाजे के बाहर 'आड़' मे तीन साध्विया सोयी हुई थी। वापस लौटते समय उसने साध्वी पिस्तांजी के सिर के नीचे से कपडो की गठरी निकाली। तत्काल साध्वीश्री की नींद टूटी और उन्होने कच्छा व बनियान पहने हुए उस नौजवान को देखकर कहा—'अरे भाई! तुम कौन हो?

यहा रात्रि के समय क्यो आये हो ?' यह आवाज सुनते ही वह गठरी को लेकर दौड़ने लगा। साध्वीश्री ने कहा—'अरे भाई ! इसमे पुराने कपड़े हैं, तुम्हारे काम के नही है।' वह व्यक्ति कुछ आगे गया और गली के एक कोने में उन कपडो को विखेर कर चला गया। साध्वीश्री कुछ देर तो देखती रही, फिर एक दूसरी साध्वी को साथ लेकर उन कपडो को उठा लाई। यह उनकी निर्भीकता का उदाहरण था।

सही अनुमान—साध्वीश्री का सं० २०२३ का चातुर्मास हिसार मे हुआ। एक दिन रात्रिकालीन व्याख्यान के पश्चात् महिला के वेप मे एक पुरुप आया। साध्वी पिस्तांजी मकान के अन्दर कुछ वहिनो को सेवा करा रही थी। वह अन्दर गयी और वन्दना की मुद्रा मे खड़ी-खड़ी चारो ओर झांकने लगी। उसने साध्वीश्री से पूछा—इस हिस्से मे कौन रहता है ? साध्वीश्री ने जवाव दिया—गृहस्थ। वे सो गये क्या ? साध्वीश्री—नही, अभी तो दस वजे हैं। वह नीचे वैठी और साध्वी पिस्तांजी का हाथ पकड़ लिया। हाथ का स्पर्श होते ही साध्वीश्री ने 'यह औरत नही पुरुप है' कहते हुए 'मिच्छामि दुक्कड़' रूप प्रायश्चित्त लिया। वह वेपधारी महिला पुरुप का नाम सुनते ही अपनी सव सामग्री वहां पर छोडकर चलती वनी। तत्रस्थ वहिनो ने जोर-जोर से आवजे लगाईं। कुछ लोग इकट्ठे हो गये। वे उसके पीछे दौड़े पर वह मुसलमानो के मुहल्ले में घुस गया। पता लगाने से ज्ञात हुआ कि वह एक जासूस था। भाई लोगों ने वापस स्थान पर आकर उसका सामान संभाला तो उसकी अटेची में चार-पांच छुरे और एक पिस्तौल मिली। कुछ जहर की पुड़िया भी थी।

साध्वीश्री ने अपने अनुभव से उसे पहचान लिया, अन्यथा न जाने क्या घटना घटती।

(परिचय पत्र)

८७३।८।१४८ साध्वीश्री मोहनांजी (राजगढ़)

(दीक्षा सं० १९८३, वर्तमान)

'३६वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री मोहनांजी का जन्म किराड़ा (स्थली) के नाहटा (ओसवाल) परिवार में सं० १९७३ आषाढ़ शुक्ला १३ को हुआ। उनके पिता का नाम तनसुखदासजी और माता का कालावाई था। समयान्तर से उनका परिवार राजगढ़ में आकर वस गया।

वैराग्य—पूर्व जन्म के सत् संस्कार, धार्मिक कुल मे जन्म तथा साधु-साध्वियो के सम्पर्क से वालिका मोहनकुमारी के हृदय मे वैराग्य भावना जागृत हो गई।

दीक्षा—उन्होने साढा दस साल की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९८३ माघ शुक्ला ७ को आचार्यश्री कालूगणी के कर कमलो द्वारा लाडनू मे दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा मालमचंदजी, सूरजमलजी वोरड़ की वगीची के सम्मुख कालीजी के चौक मे हुई। उस दिन होने वाली ९ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री सुगनांजी (८७०) के प्रकरण मे कर दिया गया है। उनके परिवार की निम्नोक्त छः दीक्षाएं हुईं—

साध्वीश्री मालूजी (८७५) 'मोमासर' छोटी वहिन, दीक्षा स० १९८४
,, रतनकंवरजी (९२१) 'राजगढ़' छोटी वहिन, दीक्षा सं० १९८९
,, गौरांजी (९८९) ,, भतीजी, दीक्षा सं० १९९३
,, सिरेकंवरजी (९९६) 'सरदारशहर' वडी वहिन, दीक्षा सं० १९९४
,, हरकवरजी (१००७) ,, भानजी, दीक्षा सं० १९९४
,, लिछमांजी (१०१५) ,, भानजी, दीक्षा सं० १९९४

शिक्षा—साध्वी मोहनांजी ने दीक्षित होने के वाद छह साल गुरुकुल-वास मे रहकर विद्याध्ययन किया। वाल्यावस्था व तेज वुद्धि होने के कारण दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प आदि आगम, कई थोकड़े तथा रामचरित्र आदि अनेक व्याख्यान कठस्थ कर लिये।

कला—साध्वीश्री सिलाई, रगाई एव हस्तकला मे निपुण वनी।

उन्होने कई जैनागम एव ग्रन्थो की प्रतिलिपि की ।

अग्रगण्या—आचार्यश्री कालूगणी ने सभी दृष्टियो से योग्य समझकर १६ वर्ष की अवस्था मे उनको अग्रगण्या वना दिया । इतनी छोटी अवस्था में अग्रगण्या वनने का तेरापंथ साध्वी-समाज मे प्रथम अवसर था ।

विहार—साध्वीश्री आचार्यवर के शुभाशीर्वाद से उत्तरोत्तर अपनी क्षमता वढ़ाती गई । उन्होने दूर-दूर प्रातो की यात्राएं कर नये-नये अनुभव प्राप्त किये । हिन्दी, गुजराती, मराठी, पंजावी भापाओ पर उनका पूर्ण अधिकार है । कन्नड़ और तेलगू भापा का अभ्यास भी किया । साहस और परिश्रम के साथ धर्म का प्रचार-प्रसार कर अच्छा उपकार किया । साध्वी समाज मे लाहौर, अमृतसर, आसाम, नेपाल, भूटान, सिक्किम आदि स्थानो की यात्रा करने का उन्हे सर्व प्रथम अवसर प्राप्त हुआ । उनकी अव तक लगभग एक लाख किलोमीटर पद यात्रा हो चुकी है ।

उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है :—

सं० १९९०	ठाणा	५	चाडवास
सं० १९९१	,,	४	सिरियारी
सं० १९९२	,,	५	,,
स० १९९३	,,	५	फतेहपुर
सं० १९९४	,,	५	पहुना
सं० १९९५	,,	४	कांकरोली
सं० १९९६	,,	५	गंगापुर
सं० १९९७	,,	५	लावा सरदारगढ
सं० १९९८	,,	५	गंगानगर
स० १९९९	,,	५	कंटालिया
सं० २०००	,,	५	नोहर
सं० २००१	,,	५	जोधपुर
स० २००२	,,	५	मलेरकोटला
सं० २००३	,,	५	पट्टी
स० २००४	,,	५	लूनकरणसर
सं० २००५	,,	५	भुसावल
सं० २००६	,,	५	जालना
सं० २००७	,,	५	लातुर

सं० २००८	ठाणा	५	वोलारम
स० २००९	,,	५	दिल्ली
सं० २०१०	,,	५	लुधियाना
सं० २०११	,,	५	भीखी
सं० २०१२	,,	५	राजगढ़
सं० २०१३	,,	५	माटुगा (वम्बई)
सं० २०१४	,,	५	वम्बई
स० २०१५	,,	५	गगापुर
सं० २०१६	,,	५	भीलवाड़ा
स० २०१७	,,		राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०१८	,,	५	धुरीमंडी
सं० २०१९	,,	५	वाडमेर
स० २०२०	,,		लाडनू 'सेवाकेन्द्र' (आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास वही था)
सं० २०२१	,,	५	उदयपुर
स० २०२२	,,	५	गुलाववाग
सं० २०२३	,,	५	फारविसगज
सं० २०२४	,,	५	गौहाटी
स० २०२५	,,	५	कलकत्ता
सं० २०२६	,,	५	कलकत्ता
सं० २०२७	,,	५	कानपुर
त्र० २०२८	,,	४	आसीद
सं० २०२९	,,	५	जयसिंहपुर
स० २०३०	,,	५	चिकमंगलूर
स० २०३१	,,	५	मद्रास
स० २०३२	,,	५	कोटा
सं० २०३३	,,	५	मलेरकोटला
स० २०३४	,,	५	आमेट
स० २०३५	,,	५	उदयपुर
सं० २०३६	,,	५	इन्दीर

स० २०३७	ठाणा ५	रायपुर
स० २०३८	,, ५	काटाभाजी
स० २०३९	,, ५	केंसिगा
सं० २०४०	,, ५	सुनाम
सं० २०४१	,, ४	फूलमण्डी
सं० २०४२	,, ५	जयपुर

(चातुर्मासिक तालिका)

प्रमुख बिन्दु

(१) आसाम की राजधानी सिलाग की चालू विधान सभा में (१०८ मेम्वरों के वीच) अणुव्रत का संदेश दिया।

(२) एक साल मे आसाम क्षेत्र मे ५० विद्यार्थी सम्मेलन और ३५ महिला सम्मेलन उनके सान्निध्य मे हुए।

(३) गोहाटी मे हुए विराट् व्यापारी सम्मेलन मे १०० व्यापारियों को एक साथ व्यापारी वर्गीय अणुव्रत नियम ग्रहण करवाये।

इससे प्रभावित होकर अध्यक्षीय भाषण करते हुए असम के मुख्यमंत्री विमलप्रसाद चालियो ने कहा—जनता का सुधार सरकार के कानूनों से नहीं, इन साधु-संतो से ही हो सकता है।

संस्मरण

साध्वीश्री के जीवन की कुछ घटनाएं प्रेरणास्पद व चामत्कारिक है। श्रद्धा और साहस को वृद्धिगत करने वाली हैं—

साधु-जीवन की कसौटी—

(क) सं० २००२ मे साध्वीश्री मोहनांजी का चातुर्मास मलेरकोटला (पंजाब) मे हुआ। वहा भाद्रव शुक्ला पचमी (संवत्सरी के दिन) के दिन भारी वर्षा हुई। चारोओर पानी ही पानी भर गया। शहर मे हाथी डूबे जितना पानी हो गया। साध्वियां जिस मकान मे ठहरी हुई थी उस मकान मे चारो तरफ से पानी गिरने लगा। आहार-पानी तो दूर, सुरक्षा की भी समस्या हो गई। दो दिन-रात आलो में बैठकर बिताई। तीसरे दिन शाम को भलाडा वाले दर्शन करने आये तब साध्वियो के ठंडी रोटी से पारणा हुआ। चौथे दिन वर्षा कुछ कम हुई तव उस मकान को छोड़कर दूसरे मकान (रामजीदासजी) मे चली गई।

(ख) सं० २००३ की घटना है। साध्वीश्री ने कोटकपूरा से फरीद-कोट की ओर प्रस्थान किया। अगला गांव छह मील दूर वताया गया।

छापर का एक व्यापारी भाई (भसाली) रास्ते की सेवा में साथ हो गया। छह मील जाकर पूछा तो वताया कि अभी छह मील और दूर है। गर्मी का समय था अतः साध्विया प्यास से व्याकुल हो गई। फिर भी चली और १२ मील पहुंच कर फिर पूछा तो वताया—अभी दो मील दूर है। ज्यो-त्यो ग्राम मे पहुंची पर कही जगह नही मिली। सवके कमरे अनाज से भरे हुए थे। मुश्किल से छत पर एक छोटा-सा छपरा मिला। उसमे सामान रखा। प्यास की अधिकता से चक्कर आने लगे। साध्वी चांदकंवरजी (जोधपुर) गिर गई। पानी के अभाव मे साध्वियां छाछ लेकर आई और उससे पानी की पूर्त्ति की। यह स्थिति देखकर भसालीजी ने कहा—'मैं तो सोचता था कि साधु-साध्वियो को क्या कष्ट है, पात्र भर-भरकर वादाम की कतलियां लाते हैं और मौज उड़ाते हैं पर आज आपकी सेवा करने से पता लगा कि साधु जीवन वास्तव मे 'मौम के दांतों से लोहे के चने चवाना' जैसा कठिनतम है।'

सन्देह दूर हो गया

स० २००८ की घटना है। साध्वीश्री यादगिरी से सोलापुर जा रही थी। वीच मे 'मरी' गांव से दो रास्ते निकलते थे, एक सड़क का और दूसरा पगडण्डी का। पगडण्डी वाला रास्ता कम लम्वा था, इसलिए साध्वियो ने वही रास्ता लिया। वीच मे थाना पड़ता था। तीन साध्वियां तथा मिश्रीमलजी सुराना जव थाने के पीछे से गुजरने लगे तव खुफिया पुलिस ने थाने मे रिपोर्ट दे दी। उन दिनो कम्युनिष्टो का तीव्र वोलवाला था। पुलिस आई और मिश्रीमलजी को थाने मे ले गई। वापस आकर पुलिस ने सतियो को भी थाने मे चलने के लिए कहा। सतिया ने इनकार करते हुए कहा—'हमारे साथ जो भाई था, जिसको आप थाने मे ले गये यदि वह आकर कहे तो हम अन्दर जाने के लिए तैयार है अन्यथा नही। पुलिस मिश्रीमलजी को लेकर आई। उन्होने साध्वियो से कहा—'चलना तो होगा।' तव साध्विया उनके साथ थाने मे चली गईं।

थानेदार आखे लाल करता हुआ वोला—तुमने इतनी देर क्यो की? पुलिस के वुलाने पर क्यो नही आई?

साध्वीश्री—हम जैन साधु है, साधुओ का थाने मे क्या काम होता है अतः नही आई।

थानेदार—अच्छा! अच्छा! वडे साहव के पास चले जाइये।

साध्वियां वड़े साहव के पास गईं। वह थानेदार से वढकर शराव के

नशे में था, मुंह से बदबू आ रही थी। वह धमकी देता हुआ बोला—तुमने कितना बड़ा अपराध किया जबकि पुलिस के बुलाने पर भी नहीं आई।

साध्वीश्री—हो सकता है अपराध, पर हमने तो सोचा था कि थाना गुण्डे, बदमाशो के लिए होता है। हम तो साधु हैं इसलिए नही आई।

बड़ा साहब—आप तो मुझे वेश परिवर्तित खुफिया लग रही है।

साध्वीश्री ने साधु-चर्या बतलाते हुए समझाने का प्रयास किया पर वह समझने वाला कब। नही माना, तब साध्वीश्री ने कहा—'आपको हम लोगों से कुछ मिलने वाला तो है नही। यह हमारा भक्त भी इतना त्यागी है कि इसके शरीर पर भी पूरे कपड़े नहीं हैं। आखिर आप चाहते क्या हैं? अगर जेल मे बैठाना है तो स्थान बता दें ताकि हम बैठ जाए। पर सोच लेना कि इसका परिणाम भयंकर होगा।' इतने में थानेदार वहां आ गया और बोला—अच्छा बतलाइये आप यहां कैसे आई?

साध्वीश्री—यादगिरी से पैदल चलकर।

थानेदार—अगर हम आपको मोटर में डालकर वापस यादगिरी पहुंचा आयें तो क्या करोगी?

साध्वीश्री—पहले तो हम आपसे क्या कहे, जब मोटर मे डालोगे तब बता देंगी।

थानेदार—आप साधु है, इस बात को साबित करने हेतु यहां एक कपास की फैक्टरी है उसके मालिक से गवाही दिलवा दी जाए तो हम आपको छोड़ सकते हैं।

साध्वीश्री—हम तो राहगीर हैं, न फैक्टरी को जानते है और न उसके मालिक को। हम तो आत्म-विश्वास से कहते है कि हम साधु हैं, अगर आपको विश्वास नही है तो आप उसे बुलाकर गवाही ले सकते है। लेकिन आप मुझे एक बात बताइये कि आप थानेदार बने हैं तो आपने पढाई भी बहुत की होगी, क्या आपके अध्ययन मे भगवान् महावीर का जीवन आया है, उसमें साधुओं के चिह्नों के विषय मे भी पढा होगा, वे चिह्न हमारे में मिलते हैं या नही?

थानेदार—हा, मिलते तो हैं।

अब कुछ दिमाग ठण्डा हुआ। इतने में पीछे रहने वाली दो साध्वियां उधर मे जाने लगी तो साध्वीश्री ने अन्दर आने का संकेत किया। थानेदार हाथ का इशारा देखते ही भड़क उठा और कड़क कर बोला—बस, बस। मैं

समझ गया तुम गुण्डे हो उनको भगाना चाहती हो।

साध्वीश्री—भैया। पैदल चलने वाला भागकर कितनी दूर जायेगा, मैंने तो भागने के लिए नहीं अपितु अन्दर आने के लिए ही संकेत किया है।

साहब—आप पिछले मार्ग से क्यों आईं?

साध्वीश्री—हम पैदल यात्री हैं पिछला मार्ग कम पड़ता है इसलिए। अब हमे जाने दे, लगभग ४५ मिनिट हो गये हैं यहां खडे-खडे। इतना कहकर साध्वियां चार-पांच कदम चली कि पुलिस ने आवाज लगाई—ठहर जाओ, अभी आपको साहब बुला रहे हैं।

साध्वीश्री—क्या बात है?

साहब—झोली, नागले की ओर संकेत करते हुए बोले—'हमको शक है, इनमे औजार होने चाहिए।' साध्वीश्री ने तत्काल पात्र और पुस्तकें खोलकर दिखा दी।

तब साहब ने माफी मांगते हुए कहा—मुझे क्षमा करें, आजकल कम्युनिष्ट का जोर अधिक है इसलिए आप पर सदेह हो गया। अब आप जा सकते है।

साध्वीश्री ने यथोचित उत्तर देते हुए संदेह का निवारण कर दिया। उनकी स्मृति मे भी एक लोकोक्ति उभरने लगी—

'चालणो सडक को हुवो भलां ही फेर ही।'

आस्था का चमत्कार

सं० २०२४ की घटना है। साध्वीश्री मोहनांजी आदि साध्वियो ने ८ मई को जुलूस के साथ तेजपुर मे प्रवेश किया। असम के राज्य-नेता, वित्तमत्री, खाद्यमंत्री, विधानसभा के सदस्य, लेक्चरार और शहर के गणमान्य व्यक्तियो ने उनका भावभरा स्वागत किया।

साध्वीश्री के प्रवचनोपरान्त सभा विसर्जित हुई। दो साध्विया पानी हेतु और दो साध्विया भिक्षा हेतु चली गईं। साध्वी मोहनाजी पडाल मे ही बैठी हुई थी।

अचानक पार्श्ववर्ती थाने पर पथराव होने लगा। थाने और पडाल के बीच काफी भीड़ इकट्ठी हो गई। पुलिस हटाने का प्रयत्न करती किन्तु छात्र दौड़कर पडाल मे घुस जाते।

करणीदानजी सेठिया (सरदारशहर) ने साध्वीश्री से कहा—'आप

वच्छराजजी दूगड़ (लाडनूं) को कहे कि पुलिस और छात्रों मे हुआ झगड़ा वही निपटा दे। संकेत करने पर वच्छराजजी बोले—'अपने को राजनीति में नही पडना है।' करणीदानजी ने कहा—'छात्रो का क्या पता, कही लौटते समय पंडाल का नुकसान भी कर सकते हैं, अतः पंडाल की सजावट को उतार लेना चाहिए।' वच्छराजजी—'नही, हमारे पंडाल को कोई खतरा नही है क्योकि पंडाल मे चन्द्रगुप्त राजा के १६ स्वप्न स्वय छात्रो ने चित्रित किये हैं।'

भीड़ को बढती हुई देखकर श्रावकों ने लगी जोड़कर पानी लेने के लिए गई हुई दोनो साध्वियों (मालूजी, आनन्दकुमारीजी) को भीड के बीच से स्थान तक पहुंचा दिया।

भीड को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने लाठी-चार्ज किया, किन्तु उसका कुछ भी असर नही हुआ तब अश्रु गैस छोड दी। वच्छराजजी ने साध्वीश्री से कहा—'अब आप अन्दर पधार जाएं, अश्रु गैस से किसी को बेहोशी भी आ सकती है।' साध्वीश्री के अन्दर जाते ही बाहर आवाज आई कि पंडाल के आग लगा दी गई है एव गेट पर लगी भगवान् महावीर की मूर्ति के भी। तत्काल पास मे खडे व्यक्तियों ने उसे बुझा दिया। फिर तूलिका जलाकर पंडाल को जलाने का प्रयत्न किया। पर आग लगी नही केवल तूलिका जितना ही छेद हुआ। साध्वीश्री ने पद्मासन लगाकर 'उवसग्गहरं स्तोत्र' का २७ वार पाठ करना प्रारम्भ कर दिया। भाईयो ने अन्य साध्वियो को कमरा खाली करने के लिए कहा। साध्विया सामान उठाकर अन्दर की ओर जाने लगी। साध्वी मोहनांजी ने स्तोत्र-पाठ सम्पन्न करके कहा—'सामान क्यों उठा रही हो?' पास मे खड़े भाईयो ने कहा—'कांच के किवाड है, कही पत्थर लगा तो नुकसान हो जायेगा।' सबके चेहरे मुरझित हुए देखकर साध्वीश्री ने पूछा—'क्या बात है, आप लोग इतने उदास क्यों हो रहे हैं?' तब भाईयो ने बताया—झगडे का आरोप अपने पर आ गया है कि जुलूस के लिए मार्ग को क्यो रोका गया? क्योंकि आज सुबह ही वच्छराजजी ने पुलिस को कहा था कि आज जैन महिलाओ का जुलूस आने वाला है अतः ट्रैफिक का ध्यान रखना। इसलिए पुलिस ने दो घंटे पहले ही मार्ग बंद कर दिया। रिक्शा मे जाने वाले एक छात्र को पुलिस ने रोका कि छात्र ने पुलिस के चांटा लगा दिया। पुलिस ने छात्र को थाने मे दे दिया। इधर उपद्रव-कर्त्ता ने स्कूल जाते हुए छात्रो को भडका दिया कि तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारे

एक छात्र को पुलिस ने थाने मे दे रखा है। यह सुनते ही छात्रो ने पुस्तकें नीचे रख दी और थाने पर पथराव करना शुरू कर दिया। अब वे कहते हैं कि झगडा माताजी (साध्वियां) के आने से हुआ। इसलिए वे जहां कही नजर आये उन्हें सूट कर दिया जाए। वातावरण को विपाक्त देखकर मारवाडी भाईयो के दिल मे भय उत्पन्न हो गया कि क्या मालूम आज मारवाड़ी जाति को जिन्दा छोड़ेंगे या नही। अत. आसामी बस्ती से धीरे-धीरे मारवाडी भाई मारवाड़ियो के पास आने लगे। दो साध्वियां (रतनकुमारीजी, कनकश्रीजी) जो गोचरी गई थी उनको ताराचन्दजी वैद (चूरू) के मकान (माणक मोटर) पर ही रोक दिया गया। सागरमलजी खटेड (आचार्यश्री तुलसी के संसारपक्षीय बडे भाई) दोनो सतियो के पास थे, बहुत घबरा रहे थे। सतियो को बार-बार कहते कि आप किसी को देखो ही मत। साध्वियां रात भर वही रही।

साध्वी मोहनाजी ने भाइयो से पूछा—'बहिने कहा है? भाईयो ने कहा—'बहिनो को एक कमरे मे बिठाकर ताला लगा दिया।' हम चारोओर गश्त लगा रहे है। साध्वीश्री—बहिने सुरक्षित हैं तो हमारी चिंता मत करना, साधु जिंदा रहे तो लाख का और मरे तो सवा लाख का। आचार्यप्रवर का वह वाक्य सब याद रखो—अणहोणी होवै नही, होणहार टलै नही। उदास होने से कष्ट नही मिटेगा, कष्ट मिटेगा जाप से। अत. सब ओम् शान्ति का जाप करो। इतने मे पास मे खड़ी साध्वी मालूजी ने कहा—'देखते क्या हो, सब बोलो—'भिक्षु, भिक्षु, भिक्षु म्हारी आतमा पुकारे, भिक्षु रो म्हे साचो परचो पायो जी हो। जद-जद भीड़ पड़ी भगता मे स्वामीजी रो शरणो आडो आयो जिओ।' उपस्थित जैन-अजैन सभी के मुह से एक ही आवाज निकलने लगी—भिक्षु-भिक्षु, भिक्षु म्हारी आतमा पुकारै........।

उपद्रव-कर्त्ताओ मे से एक व्यक्ति ने पडाल मे तोड़-फोड की, दूसरे ने आग लगाना चाहा। पर वह सात बार विफल हो गया, फिर भी पडाल जलाने के निश्चय से नही हटा। आठवी बार बांस के कपड़ा लपेट कर उस पर पैट्रोल डालकर तूली लगाई पर पेट्रोल ने भी आग नही पकडी। तब उपद्रव-कर्त्ता मकान के एक तरफ जाकर छुप गया। पुलिस ने गोली चलाई जो कोने मे छिपे दोनो उपद्रव-कर्त्ताओ के लगी, वे धराशायी हो गए। लोग बातें करने लगे—देखो, माताजी मे कितनी शक्ति है जो पेट्रोल को भी पानी बना दिया और मारवाडी लोग कितने खराब है जो इतने दिन खाद्य-पदार्थो मे मिलावट करते थे अब पैट्रोल मे भी पानी मिलाना शुरू कर दिया।

वातावरण कुछ शात हुआ। कर्फ्यू लग गया, मिलिटरी आ गई। फिर भी रात मे पत्थर आते रहे। दूसरे दिन सूर्योदय से पूर्व ही दोनों साध्वियां इचरज देवी संचेती श्रीमती धर्मचंदजी संचेती और श्रीमती सोहनलालजी घोडावत आदि पांच-पांच पांव दूरी से चलकर स्थान पर पहुंच गए।

थोडी देर वाद कॉलेज के सैकडो विद्यार्थी जूते व मौजे वाहर खोलकर 'कहां है मोहनकुमारजी ! कहां है मोहनकुमारीजी !' कहते हुए अन्दर आ गये।

साध्वी मोहनाजी ने मन ही मन चितन किया हे भिक्षु स्वामी ! उपद्रव कल नही आज है, इस उपद्रव से वच जाएं तो ठीक, अन्यथा चारो आहार-पानी का त्याग है। इस प्रकार संकल्पवद्ध होकर साहस के साथ छात्रो से पूछा—आप कौन ? विद्यार्थी हैं ? छात्र—हां, हम विद्यार्थी हैं। साध्वीश्री—क्या आपने कभी जैन साधुओ को देखा है ? छात्र—नहीं देखा। साध्वीश्री ने जैन साधुओ के प्रमुख पांच नियम वतलाते हुए अहिंसा का नाम लिया कि छात्र उछल पडे और वोले—'क्या अहिंसा २ पुकार रही हो, वाहर आओ फिर दिखायेगे तुम्हे, कल कहां गई थी तुम्हारी अहिंसा जवकि गोली चली थी ?' साध्वीश्री—मेरी अहिंसा मेरे पास थी, मैंने देखा नही, सुना है कि गोली चली थी और दो आदमी मर गए। छात्र—आप कहा थी ? साध्वीश्री—मैं अन्दर थी। छात्र—क्या कर रही थी ? साध्वीश्री—अपने इष्टदेव की आराधना कर रही थी। तत्काल पास मे वैठे छात्र ने कहा—माताजी ने जव देखा ही नही तव इनका क्या दोप है। छात्र—आप मारवाडियो को क्या सिखलाती है ? ये हमे खाद्य-पदार्थो मे मिलावट कर खिलाते है। साध्वीश्री—'हमारा उपदेश सवके लिए है। हम आसाम मे मारवाडियो के नही वल्कि आसामियो के लिए आई हैं क्योकि मारवाड़ी तो हमे मारवाड (राजस्थान) मे ही मिल जाते।'

इस प्रकार लगभग आधा घण्टे वातचीत हुई। इतने मे एक आवाज आई कि कल वाली लाश अपने को मिल गई, सुनते ही सव छात्र दौड़ गए। साध्वीश्री वाहर के वरामदे मे आकर खडी हो गई। छात्र आते रहे, कोई गाली निकालता, कोई मिट्टी उछालता। कुछ श्रावको ने साध्वीश्री को मकान वदलने का आग्रह किया। साध्वीश्री ने कहा—'जैसा वच्छराजजी कहेगे वैसा कर लेगी।'

वच्छराजजी ने स्थानीय वृद्ध पुरुष श्री महादेव शर्मा से पूछा तव श्री

शर्मा (वित्त मंत्री का पिता) ने कहा—'वच्छराज वावू ! आप क्यो डरते हैं, अहिंसा के सामने हिंसा स्वयं झुकेगी ।' वच्छराजजी ने बहुत ही विवेक और चिंतनपूर्वक सारी स्थिति को सभाला । साध्वियो को तीन दिन तक मकान के अन्दर ही रहना पड़ा । तीसरे दिन छात्रो ने आकर माफी मांगी और सब उपद्रव शान्त हो गया । यह था स्वामीजी के नाम का अद्भुत चमत्कार । साध्वियो के मुख से निम्नोक्त पद्य गूजने लगा—

नाम जादू की निशानी, घटना तेजपुर की जानी ।
वणगयो पैट्रोल रो पाणी, श्रद्धा फूल खिलसी ।।
लेल्यो भिक्ष भिक्षु रो नाम, लोगां अहर्निशि अविराम ।
भिक्षु म्हारै मन रा राम, वांछित सारा फलसी ।।

स्मरण का प्रभाव

सं० २०२४ मे साध्वीश्री भूटान से वापस भारत लौट रही थी तब रास्ते मे कदली वन आया । रास्ता वडा विकट था, केवल मिट्टी विछी हुई थी । दोनो तरफ सघन जंगल और कदम-कदम पर हाथी की लीद थी । आकाश मे वादल छा रहे थे । साध्वीश्री ने कहा—'मार्ग विकट है पर मौसम सुहावना है ।' सेवा मे साथ चलने वाले मालचदजी नाहटा ने कहा—'यह मौसम हाथियो के लिए वड़ा खराव है । मारवाड मे जैसे वादल छा जाने पर ऊटो के झूंठ (मद) चढ जाती है वैसे ही यहा हाथियों के मद चढ जाता है । भारत मे सवसे ज्यादा हाथी इसी वन मे है । हाथी की आंख छोटी होती है इसलिए उसे दूर से नही दिखाई देता । पर उसका शरीर मोटा होता है जिधर मुह कर लेता है उधर से वापस जल्दी नही मुडता । सडक के दोनो ओर जो दरवाजे से दिखाई दे रहे हैं वे वनाये नही गए, हाथियो के जाने-आने से स्वयं वन गए है ।'

इस प्रकार वात करते-करते ही सामने सडक पर आकर हाथी खडा हो गया । तव सेवार्थी भाईयो ने साध्वीश्री से कहा—'भिक्षु रे म्हांरी आतमा पुकारे, का गायन करे जिससे हाथी चला जाए, अन्यथा यह हाथी इतना उन्मत्त है कि आदमी को चीर कर डाल देता है, माल से भरी ट्रको को उठाकर फेंक देता है । चौवीस-चौवीस घटो तक रास्ता नही मिलता ।' साध्वीश्री ने कहा—'हाथी के लिए क्या स्वामीजी को याद करें !' वस, इतने मे तो हाथी ने सवके सामने कदम वढा लिए सभी के दिलो मे अनेक सकल्प-विकल्प उठने लगे । एक भाई ने कहा—'दियासलाई लाओ, आग जला ले । जगली जानवर

आग के सामने नहीं ठहरता।' लेकिन कोई भाई बीडी पीने वाला नही था अतः किसी के पास दियासलाई नही थी। हाथी को सामने आता हुआ देखा तब आप सभी के मुंह से निकलने लगा—'भिक्षु ३, म्हारी आतमा पुकारे.....' गीतिका सुनते ही हाथी सडक छोडकर जंगल की ओर मुड़ गया। आधे घटे मे रास्ता मिल गया।

साध्वियां अगले गाव पहुंची तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अनेक भाई-बहिन श्रीफल, केले और दूध के लोटे लेकर स्वागत करने सामने आये। साध्वियों द्वारा 'हम इस प्रकार का अप्रासुक और सामने लाया हुआ नही लेती, समझाने पर भी वापस ले जाने को तैयार नही हुए तब सारी चीजें सेवार्थियों के काम आईं। स्थानीय लोगो ने कहा—'माताजी ! यह हाथी किसी को जिन्दा नही छोड़ता। आपकी तपस्या और आपके इष्टदेव ने ही आपकी सुरक्षा की है।'

वास्तव मे इसे भिक्षु नाम के स्मरण का प्रभाव ही समझना चाहिए।

(परिचय पत्र)

८७४।८।१४६ साध्वीश्री कमलूजी (जयपुर)

(दीक्षा सं० १६८३, वर्तमान)

'३७ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री कमलूजी का जन्म सं० १६७३ कार्त्तिक कृष्णा १५ (दीपावली) को जयपुर (राजस्थान) मे हुआ। उनके पिता का नाम मोतीलालजी, गोत्र बाठिया (ओसवाल) और माता का मनसुखीदेवी था। कमलूजी के माता-पिता धार्मिक एव बड़े श्रद्धालु थे। उन्हे अनेक थोकडे आदि कंठस्थ थे। धर्म एवं धर्मसघ के प्रति पूर्ण आस्थाशील थे। इसलिए उनके बच्चो मे भी गहरे धार्मिक-संस्कार जमते गये।

वैराग्य—कमलूजी सहजतः संस्कारिणी बालिका व प्रकृति से सरल थी। लघु-वय मे ही साधु-जीवन के प्रति उनका आकर्षण हो गया। कई बार कटोरियो को झोली मे डालकर भिक्षाचरी का अभिनय किया करती थी। अन्य खेलो मे उनकी कोई रुचि नही थी। उनके संसार-पक्षीय मामा की लडकी साध्वीश्री सुन्दरजी की दीक्षा के बाद तो उनका दीक्षा के लिए और अधिक झुकाव हो गया। उन्हे कोई पूछता—'क्या तुम दीक्षा लोगी ?' वे कहती—'हा मै दीक्षा लूगी'। कोई विनोदवश उन्हे शादी के लिए कहता तो रोने लग जाती। अपनी माता के प्रति उनका अत्यधिक स्नेह था। कही जाती तो मां के साथ-साथ जाती। एक दिन का वियोग भी असह्य था।

संकोचशील होने के कारण वे पहले तो दीक्षा की भावना व्यक्त नही कर सकी। पर जब दीक्षा की इच्छा प्रकट की तब पारिवारिक-जन उन्हे कहते—'दीक्षित होने के बाद मां कहा से आयेगी ?' वे कहती—'फिर मा की जरूरत नही रहेगी।' क्रमश. वैराग्य के बीज पल्लवित होने लगे।

दीक्षा—कमलूजी ने दस वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) मे सं० १६८३ माघ शुक्ला ७ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा लाडनू मे दीक्षा स्वीकार की।[1] उस दिन होने वाली ६ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री सुगनाजी

---

१ कमला जयपुर वासिनी, तज पूरो परिवार।

(कालू० उ० ३ ढा० १६ दो० २०)

(८७०) के प्रकरण मे कर दिया गया है ।

साध्वी कमलूजी के संसार-पक्षीय मामा की वेटी दो वहिनें—साध्वी सुन्दरजी (८०७) 'लाडनूं' एवं धनकंवरजी (८२३) 'लाडनूं' की दीक्षा सं० १९७६ तथा स० १९७८ मे हुई। उनकी तीन छोटी वहिनो—साध्वी सूरजकंवरजी (९४२) ने सं० १९८६ मे और पानकंवरजी (११२७) तथा रायकंवरजी (११३१) ने सं० १९९९ मे दीक्षा ग्रहण की ।

सहवास—साध्वीश्री कमलूजी ने दीक्षित होने के पश्चात् तीन साल गुरुकुलवास मे और फिर लगभग तेरह साल साध्वीश्री सुन्दरजी (८०७) के सिंघाड़े मे रहकर ज्ञानाभ्यास करते हुए कला के क्षेत्र मे पर्याप्त विकास किया। आचार्यश्री के उपयोग मे आने वाले वस्त्रो की सिलाई तथा पात्र आदि का रंग-रोगन वे वड़े चातुर्य से करती ।

कला—पात्र आदि पर लेखनी से नाम लिखने की तेरापंथ मे प्राचीन परंपरा है । पात्र, तासक, गिलास, प्याले आदि पर पहले मुनिजन नाम के साथ श्री-श्री आदि लिखकर चित्र-सा वना देते थे। साध्वीश्री के दिमाग में चिंतन आया कि नवीन ढंग से पात्र आदि पर जाल किया जाए। उन्होने सर्वप्रथम एक जाल का प्याला तैयार किया। जिसमे विविध चित्रकारी के साथ महीन अक्षर लिखे । वह प्याला सभी को वहुत पसंद आया । तव उन्होने तासक, गिलास, टोपसी आदि पर विविध वेल-वूंटे, फूल आदि की चित्रकारी महीन अक्षरो में की । केवल १२ दिन में पूरी तासक को अक्षरांकित चित्रो से सजा दिया। उनकी इस नई उपज और कलाकृति को देख सभी उनके हस्तकौशल की प्रशंसा करने लगे।

इसी प्रकार मुखवस्त्रिका, काष्ठ व कपड़े की पाटियां, कामी, पुट्ठा, लेखनघर आदि के निर्माण मे पूर्ण दक्षता प्राप्त की। अन्यान्य कलाओ मे भी वे सिद्ध-हस्त हुईं ।

लिपि-कौशल—साध्वीश्री लिपि-कौशल मे विकास करती हुई मोती की तरह सुन्दर प्रतिलिपि करने लगी । उन्होने अनेक ग्रन्थ लिपिवद्ध किये। जिन्हे देखकर स्वयं आचार्यप्रवर ने उनकी लिपिकला की सराहना की ।

सेवा—साध्वीश्री रुग्ण, ग्लान, शैक्ष साध्वियो की सेवा पूर्ण जिम्मेदारी एवं जागरूकता से करती है । इंजेक्शन लगाना, आपरेशन करना आदि मे भी उनका हाथ सधा हुआ है। एक वार उन्होने साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी की

दाढ़ निकाली। उस समय डाक्टर पास मे खड़ा था। उसने उनकी दक्षता देखकर कहा—'यह साध्वी ट्रेनिग लिए विना भी वहुत दक्ष है।'

व्यवस्थापिका—आचार्यश्री ने निकाय-व्यवस्था के अन्तर्गत प्रवर्तन-विभाग की सहयोगिनी के रूप मे साध्वीश्री को नियुक्त किया। उस समय आचार्यश्री ने उनको एक परिपत्र दिया जिसमे उनके करणीय कार्यों—गोचरी, वस्त्र जांचना, सिलाई, रंगाई व दवा आदि की विशेष जिम्मेदारी दी। यद्यपि वे पहले से ही उक्त कार्य करने लगी थी, फिर भी व्यवस्था की दृष्टि से यह कार्यभार सौंपा गया। वाद मे पांच साल (सं० २०२३ के मर्यादा-महोत्सव के पश्चात् सं० २०२८ के मर्यादा-महोत्सव तक) वे व्यवस्थापिका के रूप में कुशलता-पूर्वक कार्य करती रही। उनके व्यवस्था-कौशल से सभी साध्वियां प्रसन्न थी।

साध्वी-प्रमुखा लाडांजी का स्वर्गवास सं० २०२६ चैत्र शुक्ला १३ को वीदासर मे हुआ। उसके लगभग दो वर्ष वाद सं० २०२८ माघ कृष्णा १३ को गगाशहर में साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी का चयन हुआ। उस अन्त-र्कालीन अवधि में आचार्यश्री तुलसी ने साध्वियो को आज्ञा, आलोयणा देने का कार्य साध्वी कमलूजी को सौंपा।

वे सभी साध्वियो के साथ मधुर व्यवहार एवं समान वर्ताव रखती है। निकट या दूर रहने वाली साध्वी मे कोई अन्तर नही समझती। गोचरी का विभाग तथा वस्त्र आदि वितरण मे निष्पक्षता रखती हैं। छोटी-वडी सभी साध्वियो को शारीरिक व मानसिक समाधि पहुंचाने का विशेष ध्यान रखती हैं।

समर्पण भाव—साध्वीश्री का समर्पण-भाव वेजोड है। वे आचार्यश्री के चरणो मे तो सर्वात्मना समर्पित हैं ही पर साध्वी-प्रमुखा का भी पूर्ण सम्मान रखती है। साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी साध्वी कमलूजी से दीक्षा-पर्याय मे वहुत छोटी है, लेकिन साध्वी-प्रमुखा पद पर आने के वाद वे उन्हे स्वर्गीया साध्वी-प्रमुखा लाडाजी की तरह समझती है। समय-समय पर साध्वियो को साध्वी-प्रमुखा के प्रति विनम्रता व श्रद्धाभाव रखने के लिए प्रेरित करती रहती हैं। उनका मुख्य सूत्र एक ही है कि गुरुदेव की दृष्टि व इंगित के अनुरूप आचरण करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

लगभग ४४ वर्षों से वे आचार्यश्री की सेवा का लाभ उठा रही हैं। आचार्यश्री के वस्त्रादि प्रतिलेखन का कार्य करती हैं। राजकीय वस्तुओ की पूरी सार-संभाल रखती हैं। दूर-दूर यात्राओ मे भी गुरुदेव के साथ रही।

उनकी लगभग ५०-६० हजार किलोमीटर की पद-यात्रा हो चुकी है। इतनी दीर्घ अवधि तक गुरुकुलवास मे रहकर एवं गुरु-दृष्टि की आराधना करते हुए उन्होने विविध गुणो व योग्यता की अभिवृद्धि की है। धर्म-संघ के सभी साधु-साध्वियां उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

पुरस्कृत—आचार्यश्री ने साध्वीश्री की सेवाओं से प्रसन्न होकर सं० २०२८ श्रीडूंगरगढ़ मे उन्हें समुच्चय के सर्व काम व बोझ-भार से मुक्त किया।

कृतज्ञता—साध्वीश्री सुन्दरजी का वारह वर्षीय प्रवास साध्वीश्री के लिए कसौटी पूर्ण रहा। उनके कडे अनुशासन मे रहकर अपने जीवन को उत्तरोत्तर निखारा। आज भी वे साध्वी सुन्दरजी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हुई कहती हैं—'मैंने जो कुछ सीखा है वह साध्वी सुन्दरजी का ही योगदान है।'

तपः साधना आदि—साध्वीश्री प्रतिवर्ष लगभग ४० उपवास, एक-दो वेला-तेला तथा श्रावण महीने मे एकान्तर तप करती है।

उनकी स्वाध्याय मे भी विशेष अभिरुचि रहती है। जब भी समय मिलता है कुछ न कुछ पढती रहती हैं।

संस्मरण

बड़े घर जायेगी और खूब बांटेगी—बाल्यावस्था मे उनके घर एक ठकुराइन आया करती थी। उसने एक दिन बालिका को देखकर कहा—'यह बच्ची किसी बडे घर जायेगी और अपने हाथो मे खूब बांटेगी।' वह भविष्यवाणी इस प्रकार सिद्ध हुई कि वे दीक्षित होकर तेरापंथ के सार्वभौम घर मे आ गई तथा आचार्यश्री की सेवामे रहकर उनके निर्देशानुसार साधु-साध्वियो के उपयोग मे आने वाली वस्तुएं प्रायः अपने हाथों से वितरित करती हैं।

गहरे पैर जमा लिये—आचार्यश्री के सान्निध्य मे अनेक बार साध्वियो की गोष्ठी होती है। जिसमे आचार्यप्रवर कई बार साध्वीश्री को लक्ष्य कर फरमाते हैं—कमलूजी ने राज मे (यहां) रहकर अपने गहरे पैर जमा लिए हैं और इन्होने वह कहावत चरितार्थ कर दी है—'आई ही छाछ मागण नैं, वण वैठी घर की धणियाणी।'

सदा सुखी रहो—सं० २०४१ के जोधपुर चातुर्मास मे एक दिन आचार्यश्री ने साध्वीश्री को भोजन का ग्रास (निवाला) दिया। उससे दोनो हाथो मे घृत लग गया। तब उन्होने तत्काल आचार्यप्रवर से निवेदन किया—'गुरुदेव! कहावत है कि पांचो अगुलिया घी मे अर्थात् वह सर्वसुखी। भगवन्! मेरी तो दसो अंगुलियां घी मे हैं फिर मेरे तो सुख का क्या पार!' आचार्यश्री ने स्मित हास्य उडेलते हुए कहा—'बहुत अच्छा! सदा सुखी रहो।'

८७५।८।१५० साध्वीश्री मालूजी (मोमासर)

(दीक्षा सं० १९८४, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री मालूजी का जन्म सं० १९६७ आषाढ़ शुक्ला सप्तमी को किराड़ा[1] (स्थली) के नाहटा (ओसवाल) गोत्र मे हुआ। उनके पिता का नाम तनसुखदासजी और माता का कालीबाई था। १२ वर्ष की लघु-वय में मालूजी का विवाह मोमासर-निवासी जालमचंदजी पटावरी के सुपुत्र मोहनलालजी के साथ कर दिया गया।

वैराग्य—मालूजी के जेठ पांचीरामजी और जेठानी मनसुखांजी की दीक्षा उनके वैराग्य का कारण बनी। फिर साधु-साध्वियो के संपर्क से उनकी भावना बलवती हो गई। पर उनके पति मोहनलालजी दीक्षा के लिए सहमत नही हुए। जिससे दो वर्षो तक उनको अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। आखिर उनकी दृढ़ता के सामने उन्हे झुकना पड़ा।

दीक्षा—मालूजी ने १७ वर्ष की वय (नाबालिग) मे पति को छोड़कर सं० १९८४ श्रावण शुक्ला १३ को साध्वीश्री केशरजी (८७६) और सोनांजी (८७७) के साथ आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से श्रीडूंगरगढ मे दीक्षा स्वीकार की।[2]

उनके संसारपक्षीय जेठ मुनिश्री पांचीरामजी (४३७), जेठानी साध्वी श्री मनसुखांजी (८३२) सं० १९८० मे तथा देवर के पुत्र मुनि किशनलाल जी (६४३) सं० २००९ मे दीक्षित हुए। मालूजी के पैत्रिक परिवार की ६ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री मोहनांजी (८७३) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

कंठस्थ ज्ञान—विद्यालय की शिक्षा प्राप्त न होने पर भी साध्वीश्री

---

१. बाद मे उनका परिवार राजगढ आकर बस गया।

२. चोरासिय दीक्षा डूगरगढ सावण मे,
   मालू, केशर, सोनां तीनू दृढ प्रण मे।
   कार्त्तिक विद दौलतगढ रो लाल हगामी,
   (कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० २२)

ने सतत प्रयास द्वारा हजारों पद्य कंठस्थ कर लिये।

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन के १० अध्ययन, बृहत्कल्प।

थोकड़े—तेरहद्वार, लघुदंडक, बावनबोल, इक्कीसद्वार, इकतीसद्वार, हरखचंदजी की चर्चा, भ्रम विध्वंसन की हुंडी, पज्जुवापद, सासता-असासता आदि।

व्याख्यान—रामचरित्र, शालिभद्र, धनजी आदि।

स्मरण आदि—चौबीसी, आराधना, शील की नौ वाड़, २२ परिषह की ढालें, विघ्नहरण आदि अनेक गतिकाएं।

कला—रंगाई-सिलाई तथा मुखवस्त्रिका आदि की कला का अच्छा अभ्यास किया।

तपस्या—उनके द्वारा की गई सं० २०४२ तक की तपस्या इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१५
२३५१	९७	२०२	११	१४	२	२	३	१	१	१	१

२१	३१	३२
१	१	१

। आयम्बिल ११०, आयम्बिल के तेले १३१ एवं एकासन २५१ तथा दस प्रत्याख्यान २१ वार किये।

सं० २०१७ के राजनगर चातुर्मास मे आचार्यश्री की सेवा मे दो महीने बेले-बेले तप किया।

सं० १९९३ से पूज्य कालूगणी की स्वर्गवास-तिथि भाद्रव शुक्ला ६ को आजीवन उपवास करने का नियम।

सं० १९९८ से तीन विगय से अधिक खाने का त्याग।

आठ आचार्यों की स्वर्गवास-तिथि को पाच विगय का त्याग।

सेवा—सं० १९८९ मे आचार्यश्री कालूगणी का चातुर्मास लाडनूं मे था। उस वर्ष साध्वीश्री केशरजी (६२९) 'तारानगर' के साथ साध्वी मालूजी ने लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' की चाकरी की। सं० २०२० मे आचार्यश्री तुलसी का लाडनूं चातुर्मास था। उस वर्ष साध्वी श्री मोहनांजी (राजगढ़) के साथ लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' की चाकरी की।

साध्वी श्री सुवटाजी (७१४) 'राजलदेसर' को खानपुरा से लाडनूं

तक तथा साध्वीश्री सोनांजी (६७४) 'सरदारशहर' को हुडेरा से रतनगढ़ तक कन्धों पर उठाकर लाई।

आचार्यश्री कालूगणी के आदेशानुसार वस्त्र लाने के लिए साध्वियों के साथ एक दिन में कांकरोली से गंगापुर गई।

सहयोगिनी—सं० १६८६ मे साध्वीश्री मोहनांजी का सिंघाड़ा हुआ, तब से साध्वी मालूजी उनके साथ विहार कर रही है। दूर-दूर प्रान्तों की लम्बी यात्रा भी की।

(परिचय-पत्र)

८७६।८।१५१ साध्वीश्री केशरजी (श्रीडूंगरगढ़)

(दीक्षा सं० १९८४, वर्तमान)

'३८वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री केशरजी का जन्म श्रीडूंगरगढ़ (स्थली) के पुगलिया (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७१ माघ शुक्ला १४ को हुआ। उनके पिता का नाम ईशरचंदजी और माता का सोनांवाई था।

वैराग्य—एक नव-वर्षीया वालिका को विधवा अवस्था मे देखकर संसार से विरक्ति हो गई।

दीक्षा—केशरजी ने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) में सं० १९८४ श्रावण शुक्ला १३ को साध्वीश्री मालूजी (८७५) और सोनांजी (८७७) के साथ आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से श्रीडूंगरगढ़ मे संयम ग्रहण किया।

शिक्षा—उन्होंने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प, २१ थोकड़े तथा ७ व्याख्यान कंठस्थ किए।

प्रतिलिपि—लगभग ७०० पन्ने लिखे।

तपस्या—सं० २०४१ तक उनके द्वारा किया गया तप इस प्रकार है :—

उपवास	२	३
२६००	१०५	३

साधना—वे प्रतिदिन एक घंटा मौन रखती हैं।

(परिचय-पत्र)

किसी कारणवश सं० २०२२ का ३ ठाणों से उन्होने उदासर चातुर्मास किया।

(चा० ता०)

८७७।८।१५२ साध्वीश्री सोनांजी (डीडवाना)

(दीक्षा सं० १९८४, वर्तमान)

'३९वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री सोनांजी डीडवाना (मारवाड़) निवासी फतेहमल जी लोढा (ओसवाल) की पुत्री थी। उनकी माता का नाम बख्तावरबाई था। सोनांजी का जन्म सं० १९७२ आश्विन कृष्णा ८ को हुआ।

वैराग्य—जन्मान्तर संस्कार एवं डीडवाना मे विराजित साध्वीश्री नानूजी (४२२) 'खींचन' के उपदेश से उनके दिल मे वैराग्य के अकुर प्रस्फुटित हुए।

दीक्षा—उन्होने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) मे साध्वी श्री मालूजी (८७५) और केशरजी (८७६) के साथ सं० १९८४ श्रावण शुक्ला १३ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा श्रीडूंगरगढ़ मे दीक्षा स्वीकार की।

शिक्षा—साध्वीश्री काफी वर्षों तक साध्वीश्री दाखाजी (७४१) 'दिवेर' के सिंघाड़े मे रही। क्रमशः दशवैकालिक तथा रामचरित्र, धनजी आदि कई व्याख्यान कण्ठस्थ किए। ग्यारह अंग, चार मूल, चार छेद, निरयावलिका, जम्बूद्वीपपन्नति और ज्ञाताधर्म कथा आदि का वाचन किया।

कला—सिलाई-रंगाई और लिपि-कौशल का विकास किया। कई आगम तथा व्याख्यान आदि के हजारो पद्य लिपिबद्ध किए।

तपस्या—उनके द्वारा किया गया सं० २०४१ तक का तप इस प्रकार है :

उपवास	२	३	४	५	६	८
३०५१	१७२	१९	३	३	१	१

। एक बार अढ़ाई-सौ प्रत्याख्यान, तीर्थङ्करो की लड़ियां, कंठी तप तथा २५ बार दस प्रत्याख्यान किए।

सेवा—साध्वीश्री सोनांजी साध्वीश्री दाखांजी 'दिवेर' के साथ उनकी सहयोगिनी रूप मे रही। व्याख्यान, गोचरी आदि कार्य प्राय. वे ही संभालती

थीं। अंतिम वर्षों मे साध्वी दाखांजी विविध व्याधियों से ग्रस्त हो गई। अस्वस्थता के कारण इतनी दुर्वलता आ गई कि वे अपना शारीरिक कार्य भी पूरा नही कर सकती थी। उस स्थिति में साध्वी सोनांजी ने अग्लान भाव से उनकी परिचर्या की।

नवदीक्षिता तथा अन्य रुग्ण साध्वियों की भी सेवा की।

साधना—तेरह वर्षों तक प्रत्येक महीने मे एक दिन संपूर्ण मौन रखा। मौन के २५० वेले तथा मौन का कर्मचूर किया। प्रतिदिन एक घंटा मौन रखती है।

(परिचय-पत्र)

विहार—सं० २०१३ मे साध्वीश्री दाखांजी का स्वर्गवास हुआ। तत्पश्चात् आचार्यश्री ने साध्वी सोनांजी को अग्रगण्या वनाया। उन्होने दूर-दूर प्रान्तों की यात्रा कर धर्म का प्रचार-प्रसार किया और कर रही है।

उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार हैं :—

सं० २०१४	ठाणा ५	टमकोर
सं० २०१५	,, ५	भुसावल
सं० २०१६	,, ५	औरंगावाद
स० २०१७	,, ५	लातुर
सं० २०१८	,, ५	संगरूर
स० २०१९	,, ५	अहमदगढ़
सं० २०२०	,, ५	धूरीमण्डी
स० २०२१	,, ५	फूलमण्डी
सं० २०२२	,, ५	लुधियाना
सं० २०२३	,, २७	लाडनूं (साध्वी पानकंवरजी (८६४) 'पचपदरा' का संयुक्त)
सं० २०२४	,, ४	हुवली
सं० २०२५	,, ४	हासन
सं० २०२६	,, ५	हिरियुर
स० २०२७	,, ५	घाटकोपर
स० २०२८	,, ६	जसोल
सं० २०२९	,, ५	कांकरोली
सं० २०३०	,, ५	आसींद

सं० २०३१	ठाणा	५	गंगापुर
सं० २०३२	,,	४	थामला
सं० २०३३	,,	५	नाथद्वारा
सं० २०३४	,,	५	वाडमेर
सं० २०३५	,,	४	जोधपुर
सं० २०३६	,,	५	उज्जैन
सं० २०३७	,,	५	कंसूर
सं० २०३८	,,	५	डीसा
सं० २०३९	,,	५	वाव
सं० २०४०	,,	५	टिटलागढ़
सं० २०४१	,,	५	केंसिगा
सं० २०४२	,,	५	कांटावाजी

(चातुर्मासिक तालिका)

८७८।८।१५३ साध्वीश्री सजनांजी (बीकानेर)

(संयम-पर्याय १९८४-२०२४)

छप्पय

वीरवृत्ति से ले लिया 'सजनां' ने चारित्र।
वीरवृत्ति का ही दिया परिचय परम पवित्र।
परिचय परम पवित्र सुराणा गोत्र पिता का।
देशनोक में ओक धर्म की विकसित शाखा।
संस्कारों का खिंच गया उज्ज्वल रेखा-चित्र।
वीरवृत्ति से ले लिया 'सजनां' ने चारित्र॥१॥

शादी बीकानेर की अच्छा वर-घर देख।
किन्तु न मिट सकते कभी विधि के अविचल लेख।
विधि के अविचल लेख तात परलोक सिधाये।
(फिर) पति का हुआ वियोग शोक के बादल छाये।
संकट-क्षण में धर्म ही एकमात्र है मित्र।
वीरवृत्ति से ले लिया 'सजनां' ने चारित्र॥२॥

व्याकुल मन सुस्थिर हुआ पाकर विरति-प्रकाश।
मिल पाई सहयोगिनी 'मूलीबाई' खास।
मूलीबाई खास सुगुरु-चरणों में लाई।
सुन गुरु-मुख से शब्द सांत्वना सजनां पाई।
सुन्दर खाके से सही बनता सुन्दर चित्र।
वीरवृत्ति से ले लिया 'सजनां' ने चारित्र॥३॥

श्वसुरादिक के सामने प्रस्तुत किए विचार।
बाधाएं देने लगे वे सब विविध प्रकार।
वे सब विविध प्रकार खड़ा कर दिया झमेला।
सजनां ने धृतियुक्त कष्ट तो काफी झेला।
चिन्तन पूर्वक ले लिया तप का मार्ग पवित्र।
वीरवृत्ति से ले लिया 'सजनां' ने चारित्र॥४॥

मुश्किल से आज्ञा मिली, करते-करते यत्न।
श्री कालू-गुरु-चरण में पाया संयम-रत्न[1]।
पाया संयम-रत्न सुरक्षा उसकी करती।
कर गुरु-कुल में वास सुशिक्षा दिल में धरती।
विनय-विवेकादिक विमल भरती सद्गुण-इत्र[2]।
वीरवृत्ति से ले लिया 'सजनां' ने चारित्र ॥५॥

अग्रगामिनी बन दिया जनता को प्रतिबोध।
रोपी पुर-पुर ग्राम में सत्य-धर्म की पौध।
सत्य-धर्म की पौध सुगुरु का ले संदेशा।
करती रही विहार सती सोत्साह हमेशा।
मिलनसारिता से मधुर बजा सुयश-वादित्र[3]।
वीरवृत्ति से ले लिया 'सजनां' ने चारित्र ॥६॥

सोरठा

हुई कला में दक्ष, रंग-सिलाई आदि की[4]।
रखती सतत सलक्ष, परिचर्या की भावना[5] ॥७॥

करती जीवन-शोध, चढ़कर तप के सौध पर।
सुकृत-सुधा का होद, भरती जप-स्वाध्याय से[6] ॥८॥

संस्मरणों की नौध, उनके जीवन की बड़ी।
बतलाता कर शोध, घटनाएं कुछ-एक मैं[7] ॥९॥

छप्पय

घंटा भर का शेष में कर अनशन विधियुक्त।
चली गई सुरलोक में सावधान उपयुक्त।
सावधान उपयुक्त 'सायरा' धरा सुहाई।
दो हजार तेईस पौष विद तेरस आई[8]।
'इन्द्र' ने लघु लेख में उनका लिखा चरित्र[9]।
वीरवृत्ति से ले लिया 'सजनां' ने चारित्र ॥१०॥

१. साध्वीश्री सजनांजी का जन्म सं० १९५९ भाद्रव शुक्ला १४ (ख्यात मे जन्म सं० १९६३ है) को देशनोक (स्थली) के सुप्रसिद्ध श्रावक सौभागमलजी (जयाचार्य के समय समझे हुए) सुराणा (ओसवाल) की धर्म पत्नी श्रीमती जड़ावदेवी की कुक्षि से हुआ। उनका नाम धापू रखा गया। धर्मनिष्ठ माता-पिता के योग से बालिका धापू के हृदय मे सत्संस्कारों की पौध सहज ही प्रफुल्लित होने लगी। पाठशाला में पढ़ाई न करने पर भी वे विनय, विवेक व अनुभव ज्ञान का क्रमश: विकास करती गईं।

सं० १९७३ के ज्येष्ठ महीने मे उनका विवाह बीकानेर निवासी बदनमलजी बेगवाणी (ओसवाल) के पुत्र लूनकरणजी के साथ बड़ी धूमधाम से संपन्न किया गया। ससुराल में जाकर वे लज्जा, विनम्रता और मृदु व्यवहार से परिवार वालो के साथ घुलमिल गई।

व्यक्ति वर्तमान के क्षितिज को ही देखता है परन्तु भावी के संदर्भ मे छिपी हुई रेखा को दृष्टिगत नही कर सकता। कभी-कभी ऐसी अनहोनी-सी घटनाएं घट जाती हैं कि जिनकी किंचित् कल्पना भी नही होती। जिस धापू ने ११ वर्षो मे किसी का विरह नहीं देखा था उसे शादी के पश्चात् साढ़े तीन महीनों की अवधि मे पिता और पति वियोग के दारुण दु:ख का सामना करना पडा।

उनके पिता देशनोक से विदा होकर सिलांग (वहां उनका व्यापार था) जा रहे थे। रास्ते मे एक कब्रिस्तान आया। वहां बैठकर वे भोजन करने लगे, तब साथ मे रहने वाले मुनीमजी ने कहा—'यह स्थान ठीक नहीं है यहां यक्षायतन है।' सेठजी उनके कथन की उपेक्षा करते हुये बोले—'क्या इनसान से भूत बड़े होते है?' ऐसा कहकर वहा बैठकर खाना खाया और उठकर चलने लगे, एक दो कदम चले कि धमाक से नीचे गिर पड़े और मृत्यु को प्राप्त कर गए।

इधर बीकानेर मे हैजे का प्रकोप बढ़ा। उससे काफी लोग परलोक के पथिक बन गए। उसकी चपेट मे आकर धापू के पति लूनकरणजी कालकवलित हो गए।

इस विकट स्थिति से बहिन धापू का मन संसार से विरक्त हो गया और वे सयम के लिए लालायित हो गईं। पर सहायक रूप मे कोई नजर नही आ रहा था। कुछ समय बीता कि चाह को राह मिल ही गई। बीदासर की बेटी और बीकानेर की बहू मूलीबाई का उन्हे अपूर्व सहयोग

मिला। मूलीवाई ने वहिन धापू को पूज्य कालूगणी के दर्शन कराए। कालूगणी ने मूलीवाई से पूछा—'आज किसे लेकर आई हो ?' मूलीवाई ने निवेदन किया—'गुरुदेव ! एक भेंट लेकर आई हूं। यह देशनोक-निवासी सौभागमल जी सुराणा की पुत्री है और इसकी ससुराल वीकानेर के वेगवाणी परिवार मे मे है, जो स्थानकवासी संप्रदाय के अनुयायी हैं। यदि आप इसे संयम प्रदान करने की कृपा करे तो वात आगे प्रचारित करे, अन्यथा इसका ससुराल मे रहना ही मुश्किल हो जाएगा।' कालूगणी ने साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी को वहिन के स्वभाव आदि की जानकारी करने के लिए कहा। साध्वी-प्रमुखा ने तत्काल पूछताछ कर आचार्यश्री से प्रार्थना की—'वहिन ठीक लगती है।' आचार्यवर ने वहिन धापू को फरमाया—'वहां (वीकानेर मे) मुनि रंगलाल जी का चातुर्मास है। तुम उनके पास साधु-प्रतिक्रमण सीखो।' वहिन धापू ने वीकानेर आकर कुछ ही दिनों मे साधु-प्रतिक्रमण सीख लिया और फिर श्रीडूंगरगढ़ मे आचार्यवर के दर्शन कर दीक्षा के लिए विनति की। गुरुदेव ने कहा—'यदि सही आज्ञापत्र मिल जाए तो कार्त्तिक महीने मे दीक्षा देने का विचार है।' यह सुनकर वहिन हर्ष-विभोर हो गई। वहिन ने श्रीडूगरगढ के प्रतिष्ठित श्रावक ताराचंदजी पुगलिया को आज्ञापत्र तैयार करने के लिए कहा। उन्होने उसका मसविदा वनाकर वहिन को दे दिया।

वहिन पत्र लेकर वीकानेर पहुंची और सारी वात ससुराल वालो के सामने रखी तो घर मे भारी हलचल मच गई। विविध प्रयत्न करने पर भी कोई आश्वासन नही मिला। तव वहिन ने उपवास, वेले-तेले आदि तपस्या करना प्रारंभ करते हुए घर वालो को कहा—'जव तक आज्ञा नही मिलेगी तव तक पारणा नही करूगी।' घर वाले 'आज्ञा मिल जाएगी' ऐसा विश्वास दिलाकर कई वार उन्हे पारणा करवाते, पर आज्ञा नही देते। फिर वहिन ने यह सकल्प कर लिया कि जव तक आज्ञा नही मिलेगी तव तक इस घर मे भोजन नही करूंगी। चार दिन निकल गए, फिर भी किसी ने ध्यान नही दिया। मूलीवाई ने वहिन धापू से कहा—'इस प्रकार शरीर कमजोर हो जाएगा, अत. तुम मेरे घर चलकर पारणा कर लो।' तव वहा जाकर पारणा किया। वीच मे संपत्ति को लेकर भी काफी झमेला खड़ा किया गया। वहिन धापू ने कहा—'मैंने आज तक न तो एक पैसा किसी को दिया है और दूगी भी नही, जव मुझे दीक्षा की स्वीकृति मिल जाएगी तव सारी संपत्ति आपको सौंप दूगी। अन्यथा मैं भी आपके घर मे नही रहूगी और आपका धन भी

दूसरों के हाथो मे चला जाएगा ।'

आखिर परिवार वालो ने मिलकर यही निर्णय किया कि अब यह घर मे रहने वाली नही है अतः आज्ञा दे देनी चाहिए । उन्होने कहा—'अगर तुम्हे दीक्षा लेनी है तो अपने संप्रदाय (स्थानकवासी) में लो ।' बहिन ने स्पष्ट शब्दों मे कहा—'मै तो तेरापंथ मे ही दीक्षा लूंगी ।' तब उनके श्वसुर आज्ञा-पत्र लिखने के लिए तैयार हुए और बोले—'तेरापंथ मे आज्ञा-पत्र कैसे लिखा जाता है, इसकी हमे जानकारी नहीं है ।' बहिन धापू ने तत्काल श्रीडूंगरगढ से लाया हुआ आज्ञा-पत्र दे दिया । उन्होंने उसके अनुसार चार-पांच आदमियों के हस्ताक्षर करवाकर आज्ञा-पत्र लिखकर बहिन को दे दिया ।' बहिन ने गंगाशहर मे विराजित मुनिश्री पृथ्वीराजजी के दर्शन कर वह आज्ञा-पत्र दिखलाया । मुनिश्री ने उसे ठीक बतलाते हुए पूछा—'क्या तुमने अपनी संपत्ति घर वालों को दे दी ?' बहिन ने कहा—'नही ।' मुनिश्री ने उस पत्र को अपने पास मे रख लिया । मागने पर कहा—'क्या करोगी, जब दीक्षा लेने के लिए जाओ तब ले लेना ।' बहिन वापस चली आई । दूसरे दिन श्वसुर ने कपट पूर्वक पत्र मांगते हुए कहा—'एक बार वह पत्र वापस दे दो क्योकि उसमे कुछ बड़े-बड़े आदमियो के हस्ताक्षर करवाने हैं ।' धापू ने उत्तर देते हुए कहा—'पत्र तो संतो के पास मे ही रह गया ।' यह सुनकर उनकी ननद आदि परस्पर बातें करने लगी कि तेरापथी बडे चतुर होते है, इसीलिए ही तो पत्र पास मे रख लिया । किन्तु कल पत्र के आते ही सपत्ति को लेकर पत्र को फाड देना है। ये शब्द धापू के कानो में पड़ गए । फिर तो बार-बार मांगने पर भी आज्ञा-पत्र लाकर नही दिया । आखिर स्वीकृति मिलने पर सारी संपत्ति उन्हे संभला कर तथा मुनिश्री से आज्ञापत्र लेकर बहिन धापू कालूगणी की सेवा मे श्रीडूगरगढ़ पहुंची ।

(निबंध से)

उन्होने (पति वियोग के बाद) स० १९८४ कार्त्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी के कर कमलो से श्रीडूगरगढ मे दीक्षा स्वीकार की । उस दिन कुल छह दीक्षाए हुई—भाई १, बहिनें ५ ।[1] उनके नाम इस प्रकार है—

१. कार्त्तिक विद दौलतगढ रो लाल हगामी,
सजनाजी, पन्नांजी तपसण शिव-गामी ।
अमृता, सुन्दर, चूना, तीनू सुकुमारी,
छव साध्यो संयम अब सुद पख संस्कारी ।
(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० २२)

१. मुनिश्री हगामीलालजी (४६३) दौलतगढ
२. साध्वीश्री सजनांजी (८७८) बीकानेर
३. ,, पन्नांजी (८७९) देरासर
४. ,, अमृतांजी (८८०) देशनोक
५ ,, सुन्दरजी (८८१) श्रीडूगरगढ़
६ ,, चून्नांजी (८८२) लाडनू

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

दीक्षित होने के पश्चात् उनका नाम सजनांजी रखा गया ।

२ उन्हे सात साल गुरुदेव की सेवा मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहां साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी के निर्देशन मे साधुचर्या, विनय, विवेक एवं अनुभव ज्ञान का उत्तरोत्तर विकास किया। सेवा तथा प्रत्येक कार्य मे कुशलता प्राप्त की। चार साल बाद उनका 'मडलिया' बना दिया गया।

उन्होने पाच प्रकार के पच्चीस बोल, पाना की चर्चा आदि १५ थोकड़े, आराधना, चौवीसी, शील की नौ वाड तथा आचार्यो के गुणो की एव औपदेशिक सैकड़ो गीतिकाए कण्ठस्थ की। क्रमश. सपूर्ण आगम-बत्तीसी का वाचन किया।

(निबंध से)

३ स० १९९१ मे आचार्यश्री कालूगणी ने उनका सिंघाड़ा बनाया। उन्होने बत्तीस साल विहार कर धार्मिक प्रतिबोध देते हुए जन-जन मे आध्यात्मिक भावना भरी। उनकी बोली मे मधुरता, चेहरे पर मुस्कान और स्वभावगत मिलनसारिता थी, जिससे संपर्क मे आने वाले भाई-बहिन सहज ही प्रभावित हो जाते। उनके चातुर्मास स्थल इस प्रकार हैं :—

सं० १९९२	ठाणा ४	दौलतगढ
स० १९९३	,, ५	कालू
सं० १९९४	,, ५	चाणोद
सं० १९९५	,, ५	लूनकरणसर
सं० १९९६	,, ५	बडी पादू
सं० १९९७	,, ५	टोहाना
सं० १९९८	,, ५	आषाढा
सं० १९९९	,, ५	देशनोक
सं० २०००	,, ५	गोगुदा

सं० २००१	ठाणा	५	चाणोद
सं० २००२	,,	५	देशनोक
सं० २००३	,,	५	आसींद
सं० २००४	,,	५	भीलवाड़ा
सं० २००५	,,	६	नोखामण्डी
सं० २००६	,,	६	जोजावर
सं० २००७	,,	५	बरार
सं० २००८	,,	६	बीकानेर
सं० २००९	,,	५	आसींद
सं० २०१०	,,	५	जोबनेर
सं० २०११	,,	५	गंगापुर
सं० २०१२	,,	५	नाथद्वारा
सं० २०१३	,,	५	भीलवाड़ा
सं० २०१४	,,	५	देशनोक
स० २०१५	,,	५	तारानगर
सं० २०१६	,,	५	बड़ी पादू
सं० २०१७			राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २०१८	,,	५	सिसाय
सं० २०१९	,,	५	लुहारिया
स० २०२०	,,	५	भादरा
सं० २०२१	,,	५	केलवा
सं० २०२२	,,	५	दौलतगढ़
सं० २०२३	,,	५	सायरा

(चातुर्मासिक तालिका)

४. साध्वीश्री ने रंग-रोगन तथा सिलाई आदि कार्यों मे अच्छी कुशलता प्राप्त की। साधु-साध्वियों के अतिरिक्त आचार्यवर के प्रयोग मे आने वाली वस्त्र, पात्र आदि की सिलाई, रगाई भी करती।

५. साध्वीश्री सेवा-सूश्रुषा मे सदैव अग्रसर रहती। शीतकाल में जब गुरुकुलवास मे आती तब वे गुरु-उपासना मे एकचित्त हो जाती। समय पर खाना-पीना भी भूल जाती। साध्वियां पुनः पुनः कहती रहती—'दोपहर दिन

आ गया, अब तो भोजन कर लो।' वे कहती—आहार तो हम हमेशा ही करती हैं, लेकिन गुरुदेव की सेवा का ऐसा सुनहरा अवसर मुश्किल से मिलता है।

शासन-सेवा का काम पड़ता तो वे उसे आगे होकर करती। बीमार साध्वियो को अन्य साध्वियो के साथ कंधों पर उठाकर लाने का उनके चार बार काम पड़ा—

१. साध्वीश्री सुजानांजी (मोमासर) को १८ मील
२. ,, मोहनांजी (टमकोर) को १४ मील
३ ,, मानांजी (चाड़वास) को १२ मील
४. ,, तखताजी (बम्बू) को कुछ मील

६. साध्वीश्री स्वयं ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय-जाप, तपस्या मे रत रहती एवं साथ की साध्वियो को भी प्रेरित करती। उनके तप की तालिका निम्न प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६	८
१२४०	३८	३	६	४	१	१

। तप के कुल दिन १३८

जिनके ३ वर्ष, १० महीने और ३ दिन होते हैं।

(ख्यात)

गृहस्थावास मे भी उन्होने उपवास से दस दिन तक लडीवद्ध तथा स्फुटकर तपस्या वहुत की।

(निवंध से)

७. साध्वीश्री से सवधित कुछ सस्मरण इस प्रकार है—

करो सिंघाड़े की वन्दना

वि० स० १९९२ मे आचार्य श्री कालूगणी चातुर्मास-हेतु उदयपुर पधार रहे थे। ज्येष्ठ का महीना था। उस समय दौलतगढ़ के ठाकुरसाहव एव फतेहलालजी वड़ोला आदि श्रावक गुरुदेव के दर्शनार्थ आये और अपने गाव मे चातुर्मास की प्रार्थना करने लगे। आचार्यवर ने फरमाया—'मैं प्राय: सिंघाड़ों के चातुर्मास की नियुक्ति कर चुका हूं, अत इस समय मेरे पास कोई सिंघाड़ा नही है।' तव वे वोले—'प्रभुवर ! जव तक आप चातुर्मास नही फरमायेगे तव तक आपके चरणो मे ही वैठे रहेगे। आप चाहे नवदीक्षित साधु-साध्वियो को ही भेजे, हम उन चारित्रात्माओ के ही प्रतिदिन दर्शन कर

लाभान्वित हो जायेंगे। परन्तु खाली हाथ तो वापस नही लौटेंगे। इस प्रकार वे वार-वार निवेदन करने लगे।

पूज्य गुरुदेव उनकी आग्रहभरी विनति को सुनकर चिन्तन करने लगे कि किसको भेजें। इतने में साध्वीश्री सजनांजी का किसी कार्यवश वहां आना हो गया। मंत्री मुनि मगनलालजी ने आचार्यवर से निवेदन किया—'यह बीकानेर वाली साध्वी सजनांजी आ गई है, इसको दीक्षित हुए लगभग सात साल हो चुके है।' मत्री मुनि का सकेत पाकर गुरुदेव ने उनसे पूछा—'तुम्हें कौन-कौन से व्याख्यान आते है?' साध्वी सजनांजी को अन्तर रहस्य का पता नही था अत: सहज भावों से उत्तर देते हुए कह दिया—'मुझे रामचरित्र की ६० ढालें याद हैं।' तत्काल गुरुदेव ने फरमाया—'करो सिंघाड़े की वन्दना।'

यह सुनते ही साध्वीश्री का चेहरा उदास हो गया। क्योंकि वे गुरुकुल-वास मे ही रहना चाहती थीं। उन्होने निवेदन किया—'इस समय रामचरित्र की विस्मृति हो गई है और न मुझे व्याख्यान देना आता है।' गुरुदेव—'तुम्हें अंजना का व्याख्यान तो याद है ही, अतः उसका व्याख्यान दे देना। तुम्हारे साथ में जो साध्वियां भेजता हूं वे व्याख्यान का कार्य संभाल लेंगी। तुम्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही है। तुम तो इनकी निगरानी रख लेना।' साध्वीश्री ने गुरु-सेवा में ही रखने का काफी अनुनय किया पर गुरुदेव ने स्वीकृत नही किया। आखिर गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य कर उन्हे चातुर्मास के लिए जाना ही पड़ा।

गुरु-कृपा

सं० १९९१ के जोधपुर चातुर्मास की घटना है। एक दिन साध्वीश्री सजनांजी भिक्षा लेकर गुरुदेव के सम्मुख आईं। ज्योही झोली खोलकर पात्री निकालने लगी कि पात्री फूट गई। आचार्यश्री के पास में विराजित मंत्री मुनि मगनलालजी ने साध्वीश्री से कहा—'ध्यान नहीं रखती हो, पात्रियां कितनी मुश्किल से मिलती हैं।' साध्वीश्री 'तहत्' कहते हुए अपने स्थान पर चली गई। कुछ समय पश्चात् दीक्षित होने वाले भाई-बहिनों के लिए पात्रों की जूटें आईं। गुरुदेव ने उनमे से एक सुघटित संस्थान वाली पात्री हाथ मे लेकर तत्रस्थित साध्वीश्री झमकूजी को कहा—'यह पात्री साध्वी सजनांजी को दे देना क्योकि कुछ दिन पूर्व उसकी पात्री फूट गई थी।' साध्वीश्री को वह पात्री दी गई तो वे गुरु-कृपा पर फूली नही समाईं। वह पात्री लगभग चालीस वर्षो तक साध्वियो के उपयोग मे आती रही।

सहज वचन मिल गया

सं० २०२३ की घटना है। साध्वीश्री सायरा (मेवाड़) गांव में विराज रही थी। वहा गुलावचंदजी दूगड़ (साध्वी वसुमतीजी के संसार-पक्षीय वड़े भाई) कलकत्ता से चलकर साध्वीश्री के दर्शनार्थ आए। उनके संतान नही थी अत उन्होने एक लडकी को गोद लिया था। एक दिन वे साध्वीश्री की सेवा कर रहे थे कि प्रसंगवश वह वात चल पड़ी। साध्वीश्री ने कहा—'लड़के तो सारी दुनिया गोद लेती है, तुम्हारे मन मे यह क्या आई जो लड़की को गोद लिया ? वे वोले—एक भाई की लड़की गोद ली है और दूसरे भाई का लडका भी गोद ले लूंगा। साध्वीश्री के मुख से सहज शब्द निकला—'क्या तुम अभी बूढे हो गये हो ?'

गुलावचंदजी २५ दिन साध्वीश्री की सेवा कर कार्त्तिक महीने मे कलकत्ता चले गए। पौप कृष्णा १३ को साध्वीश्री सजनाजी का स्वर्गवास हो गया। सयोग ऐसा मिला कि साध्वीश्री के दिवंगत होने के सवा नौ महीने वाद ही उनके लडका हो गया।

साध्वीश्री की सहज निकली वाणी ने निम्नोक्त कहावत को चरितार्थ कर दिया—

> **जे भाखै वालक कथा, जे भाखै अणगार ।**
> **जे भाखै वर-कामिनी, झूठ न पड़ै लिगार ।।**

८. सं० २०२३ मे साध्वीश्री सजनांजी का पावस-प्रवास सायरा (मेवाड़) मे था। अन्तिम दिनो मे शरीर मे अवस्थता रहने लगी, जिससे चातुर्मास के पश्चात् भी उन्हें वही ठहरना पडा। पौप कृष्णा १३ के दिन कुछ अस्वस्थता वढी। साथ की साध्वियां उन्हे अच्छी तरह सुलाकर आवश्यक कार्य के लिए वाहर गई। एक साध्वी वहां थी। अकस्मात् साध्वीश्री सजनांजी ने उठकर गुरुदेव को विधिवत् वंदन किया और मन मे अनशन ग्रहण करके पास मे वैठी साध्वी से कहा—'घडी देखो कितने वजे हैं मैंने अनशन कर लिया है।' साध्वी सुनकर आश्चर्य-चकित रह गई। इधर पता लगते ही वाहर गई हुई साध्विया शीघ्र स्थान पर पहुंची, सभी विस्मित थी। सवा घंटा लगभग वीता कि साध्वीश्री ने पूर्ण समाधि-पूर्वक सावचेत अवस्था मे पंडित-मरण प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार स० २०२३ पौप कृष्णा १३ को दिन के सवा दस वजे सवा घंटे के सथारे से साध्वीश्री का सायरा ग्राम मे स्वर्गवास हुआ।

साध्वीश्री ने जिस वीर वृत्ति से साधुत्व स्वीकार किया था उसका उसी तरह उनतालीस वर्ष पालन कर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया।

(निबंध से)

सायरा गाव में जैन साधु-साध्वियों के स्वर्गगमन का वह प्रथम अवसर था। अतः तीन संप्रदायो (तेरापंथी, स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी) के लोगों ने बड़े उत्साह से उनकी शव-यात्रा मे भाग लिया और विधिवत् दाह-संस्कार किया।

साध्वीश्री सजनांजी के स्वर्गवास के समाचार सुरकर आचार्यश्री ने फरमाया—'साध्वी सजनांजी विशेष पढ़ी-लिखी नही थी। लेकिन आचार-विचार मे विशेप कुशल एवं गण और गणी के प्रति सर्वात्मना समर्पित थी।

(निबन्ध से)

९. साध्वीश्री सुजानांजी (९४३) तथा इन्द्रूजी (९४८) 'मोमासर' दोनो माता-पुत्री थी। वे २६ साल सं० १९९१ से २०१७ तक उनके सिंघाड़े मे विनयावनत होकर रही। आपस मे बड़ा सौहार्द और आत्मीय-भाव रहा। साध्वी इन्द्रूजी के जीवन-निर्माण मे साध्वीश्री सजनांजी का विशेप योगदान रहा। सं० २०१७ में आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी इन्द्रूजी का सिंघाड़ा बना दिया। साध्वी इन्द्रूजी साध्वी सजनांजी का बहुत उपकार मानती है और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती रहती है।

साध्वी भीखांजी (११७१) 'श्रीडूंगरगढ़' २१ वर्ष और साध्वी वसुमतीजी (१२५०) 'सरदारशहर' १२ वर्षो तक साध्वीश्री सजनांजी के साथ पूर्ण समाधिस्थ होकर रही और उनकी मनोयोग से सेवा-सुश्रूषा की।

८७९।८।१५४ साध्वीश्री पन्नांजी (देरासर)

(दीक्षा सं० १९८४, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री पन्नांजी का जन्म सं० १९६४ भाद्रव शुक्ला अष्टमी को मधेपुरा (विहार) गांव में हुआ। उनकी पैत्रिक भूमि साधासर (बीकानेर डिवीजन) थी। पिता का नाम जेठमलजी, गोत्र बोथरा (ओस-वाल) और माता का सोनीदेवी था। पन्नांजी की सगाई १३ वर्ष की अवस्था मे देरासर (बीकानेर संभाग) निवासी किस्तूरचंदजी बूचा के सुपुत्र भीम-राजजी के साथ सं० १९७९ मे की गई। लेकिन एक महीने के बाद ही मंगेतर का देहान्त हो गया। कुछ समय बाद भीमराजजी के छोटे भाई नेमी-चंदजी के साथ पन्नांजी का विवाह कर दिया गया।

वैराग्य—सुहाग रात्रि के प्रथम मिलन के समय नेमीचंदजी द्वारा कहे गए शब्दो (जो मेरी भाभी बनने वाली थी, पूज्या बनने वाली थी, वह अब पत्नी बन गई) से पन्नांजी का हृदय-परिवर्तित हो गया। उन्होने तत्काल दृढता-पूर्वक कहा—मेरा और आपका संबन्ध पूज्य ही होगा, भाई-बहिन का-सा होगा। नेमीचंदजी ने उन्हे विचलित करने के काफी प्रयास भी किए पर पन्नाजी अपने संकल्प पर अटल रही।

पन्नांजी के लघु भ्राता दुलीचंदजी बोथरा (बड़े पिता थिरपालचदजी के पुत्र) की शादी के बाद तीन माह की अल्पावधि मे ही अकाल मृत्यु हो गयी। उस दुर्घटना ने पन्नाजी का अन्तर्मन झकझोर दिया। संसार की नश्वरता देख-कर उनके हृदय मे वैराग्य-भावना जागृत हो गई। साध्वीश्री लाडांजी (६१०) 'लाडनू' साधासर पधारी तब पन्नाजी ने उनसे संपर्क कर दीक्षा-हेतु निवेदन किया। साध्वी लाडाजी ने उन्हे दीक्षा की सब गतिविधि बतलाई। तदनन्तर वे साधु-साध्वियो की सेवा एवं धर्म-ध्यान मे रत रहती हुई वैराग्य-वृद्धि करती रही। पाच साल की कठिन साधना एवं तपस्या के बाद उन्हे परिवार वालो की आज्ञा प्राप्त हुई।

दीक्षा—उन्होने २० साल की सुहागिन अवस्था मे पति को छोडकर सं० १९८४ कार्तिक कृष्णा अष्टमी को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा श्रीडूंगरगढ

मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली छह दीक्षाओ का उल्लेख साध्वीश्री सजनांजी (८७८) 'बीकानेर' के प्रकरण में कर दिया गया है।

सहवास—साध्वीश्री पन्नांजी दीक्षित होने के बाद दो साल गुरुकुल-वास मे रही। फिर लगभग ११ साल साध्वीश्री वघुजी (६६४) 'पचपदरा' के सिंघाड़े मे रहकर आगम-वाचन तथा कुछ कंठस्थ ज्ञान किया। सिलाई-रंगाई, रजोहरण, मुख-वस्त्रिका आदि बनाने का कौशल प्राप्त किया।

विहार—सं० १९९६ मे साध्वीश्री वघूजी के दिवंगत होने के बाद आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी पन्नांजी का सिंघाड़ा बना दिया। उन्होंने सं० १९९७ का चातुर्मास साध्वीश्री कुन्नणांजी (७२४) 'सरदारशहर' के साथ सरदारशहर में किया। शेष चातुर्मासो की सूची इस प्रकार है—

सं० १९९८	ठाणा	५	ऊमरा
सं० १९९९	,,	५	पुर
सं० २०००	,,	६	समदड़ी
सं० २००१	,,	६	विष्णुगढ़ (टमकोर)
सं० २००२	,,	४	टाडगढ़
सं० २००३	,,	६	आमेट
सं० २००४	,,	५	जसोल
सं० २००५	,,	५	दिवेर
सं० २००६	,,	५	कानोड़
सं० २००७	,,	४	भगवतगढ़
सं० २००८	,,	५	पचपदरा
स० २००९	,,	५	वालोतरा
सं० २०१०	,,	५	नोहर
सं० २०११	,,	३०	लाडनू 'सेवाकेन्द्र'
सं० २०१२	,,	६	बीदासर
सं० २०१३	,,	५	नोखामंडी
सं० २०१४	,,	५	कोसीवाड़ा
सं० २०१५	,,	५	केलवा
सं० २०१६	,,	५	राजनगर
सं० २०१७	,,		राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)

सं० २०१८	ठाणा ५	टोहाना
सं० २०१९	,, ६	केलवा
सं० २०२०	,, ५	टाडगढ़
सं० २०२१	,, ४	गंगापुर
सं० २०२२	,, ५	नाथद्वारा
सं० २०२३	,, ५	बेमाली
सं० २०२४	,, ५	नोखामंडी
सं० २०२५	,, १२	सरदारशहर
सं० २०२६	,, ५	रीछेड़
सं० २०२७	,, ५	कांकरोली
सं० २०२८	,, ६	विष्णुगढ़ (टमकोर)
सं० २०२९	,, ५	गंगापुर
सं० २०३०	,, ५	लावा सरदारगढ़
सं० २०३१	,, ५	आसीद
सं० २०३२	,, ४	जयपुर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २०३३	,, ५	पुर
सं० २०३४	,, ६	रीछेड़
सं० २०३५	,, ६	नाथद्वारा
सं० २०३६	,, ५	गंगाशहर
सं० २०३७	,, ४	दिवेर
सं० २०३८	,, ५	नाथद्वारा
सं० २०३९	,, ५	आसींद
सं० २०४०	,, ५	गोगुंदा
सं० २०४१	,, ५	पाली
सं० २०४२		आमेट (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)

(चातुर्मासिक तालिका)

साध्वीश्री ने जिन-जिन क्षेत्रो का स्पर्श किया उन क्षेत्रो मे उनकी त्याग-तपस्या का अपूर्व प्रभाव पड़ा। भाई-बहिनो मे त्याग-तप आदि की अच्छी अभिवृद्धि हुई।

विशिष्ट तप एवं त्याग

साध्वीश्री पन्नांजी का जीवन विशिष्ट त्याग-तपस्या एवं वैराग्य-पूर्ण है। उनके दीर्घ तप एवं प्रत्याख्यान आदि की सूची बड़ी रोमांचकारिणी है जो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को झकझोर देती है। उनके गृहस्थ जीवन एवं साधु जीवन में की गई सं० २०४२ मृगसर शुक्ला पूर्णिमा तक की तपस्या का लेखा-जोखा इस प्रकार है—

गृहस्थ वास की तपस्या

उपवास	बेला	तेला	चोला	पंचोला	छः	सात	आठ
३६१	४१	२०	११	११	१	३	२

तप के कुल दिन ६७५, जिनके १ वर्ष, १० महीने, १५ दिन होते हैं।

साध्वी जीवन की तिविहार तपस्या

उपवास	बेला	तेला	चौला	पंचोला	छह	सात	आठ
१५१६	२२४	६१	२४	२२	४	४	७

नौ	दस	ग्यारह	बारह	पन्द्रह	सोलह
२	१	१	१	१	१

। तप के कुल दिन २५४३, जिनके ७ वर्ष, २३ दिन होते हैं।

साध्वी जीवन की चौविहार तपस्या

उपवास	बेला	तेला	चोला	पंचोला	छह	सात	आठ
३७६७	१०५३	१७४	५५	२६	५	१	१

नौ
१

। तप के कुल दिन ६८१४, जिनके १८ वर्ष, ११ महीने, ४ दिन होते है।

आछ के आगार तपस्या

स्थान	तपस्या	
केलवा	१८२	(छहमासी)
कोसीवाड़ा	१२१	(चौमासी)

स्थान	तपस्या	
राजनगर	१२४	(चौमासी)
केलवा	६१	(तीनमासी)
रीछेड़	७३	(अढ़ाईमासी)
नाथद्वारा	७१	(,,)
आसीद	५१	(पौनी दो मासी)
रीछेड़	४५	(डेढ मासी)
दिवेर	४१	
सरदारगढ़	१४	
टाडगढ़	३२	
वेमाली	३०	
गंगापुर	३१	
नाथद्वारा	३०	
पुर	२६	
गोगुन्दा	२६	
सरदारगढ़	२८	
आसीन्द	२८	
गंगापुर	१३	
आसीद	१८	
आमेट	५१	

कुल दिन ११३२, जिनके ३ वर्ष, १ महीना, २२ दिन होते हैं।

आयम्बिल की तपस्या

पंचोला	तेला
३५	४२

विशेष तप

दस प्रत्याख्यान	ढाई-सौ प्रत्याख्यान	पचरंगी चौविहार	कंठी तप
३१	१	४	१

प्रतर तप	धर्मचक्र तप	कर्मचूर तप	परदेशी राजा के १२ वेले
१	१	१	चार वार

सं० २०१३ के चातुर्मास में तेले-तेले तप किया।

सं० २००६, २०१२ और २०१८ के चातुर्मास मे श्रावण एवं भाद्रव महीने मे बेले-बेले तप किया। इनकी गणना तपस्या मे शामिल है।

समग्र जीवन की कुल तपस्या (तिविहार, चौविहार, आछ के आगार) के ३१ वर्ष और ४ दिन होते है।

विशेष प्रत्याख्यान

१. वि० सं० १९९५ से गुड शक्कर खाने का त्याग।
२. ,, ,, से एक वस्त्र से अधिक ओढ़ने का त्याग।
३. ,, ,, से दो विगय उपरान्त सेवन का त्याग।
४. ,, २००७ से चौविहार एकान्तर व अभिग्रह करती है।
५. ,, ,, से मांगी औषध सेवन का जीवन पर्यन्त त्याग।
६. ,, ,, से एक विगय (घृत या दूध) उपरान्त सेवन का त्याग।
७. ,, ,, से प्रतिदिन सात द्रव्य से उपरान्त सेवन का त्याग।
८. ,, ,, से प्रतिदिन एक चौविहार पोरसी तथा दो तिविहार पोरसी करती है।
९. ,, ,, प्रतिदिन दो घंटे का ध्यान और पांच घंटे का मौन।
१०. ,, ,, दो हजार गाथाओं का स्वाध्याय। तपस्या के समय सवा लाख का जप करती है।

दीर्घ तपस्विनी

सं० २०३१ दिल्ली मे कार्त्तिक शुक्ला २ को 'षष्ठीपूर्त्ति समारोह' के अवसर पर आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी पन्नांजी को उनकी लम्बी एवं दीर्घकालीन तपस्याओ के उपलक्ष्य में 'दीर्घ तपस्विनी' विशेषण से सम्बोधित किया। दूसरी दो साध्विया और थीं—साध्वी अणचांजी (७७०) 'श्रीडूंगरगढ़' और नोजांजी (७९१) 'सरदारशहर'। उस समय साध्वीश्री पन्नांजी आसींद मे विराज रही थी।

संस्मरण

साध्वीश्री पन्नांजी के जीवन-प्रसंग उनकी तपः पूत साधना के प्रतीक हैं। उनके दृढ़तम संकल्प एवं साहस की कसौटी है।

चार विचित्र अभिग्रह

सं० २००७ मे साध्वीश्री ने अपने मन मे कुछ ऐसे संकल्प एवं अभिग्रह स्वीकार किये कि जिनकी पूर्त्ति की संभावना कल्पना-सी प्रतीत होती थी,

लेकिन उनके आत्म-विश्वास से वे यथार्थ हो गये ।

(१) साध्वीश्री ने सकल्प किया कि सं० २०११ मे लाडनू 'सेवाकेन्द्र' की सेवा का अवसर प्राप्त न हो तो मुझे आजीवन तीन द्रव्य (रोटी, पानी, छाछ) के अतिरिक्त खाने का परित्याग है ।

संयोग ऐसा मिला कि आचार्यप्रवर ने उसी वर्ष उनकी लाडनूं 'सेवा-केन्द्र' की चाकरी घोषित कर दी । तत्पश्चात् साध्वीश्री ने अपने कृत संकल्प की बात गुरुदेव से निवेदित की ।

(२) साध्वीश्री ने ऐसा अभिग्रह किया कि यदि सं० २०१७ द्विशताब्दी समारोह के अवसर पर एक साथ चार चातुर्मासिक तप न हो तो मैं अकेली चार वार चातुर्मासिक तप करूगी। प्रकृतिवश ऐसा योग मिला कि आचार्यश्री के प्रौढ प्रभाव से चार चातुर्मासिक तप के स्थान पर एक साथ छह साध्विया चातुर्मासिक तप करने वाली तैयार हो गईं —

१. अणचांजी (७७०) श्रीडूगरगढ
२ इन्द्रूजी (७६७) बीदासर
३. पन्नांजी (८७६) देरासर
४ पिस्तांजी (६१२) जमालपुर
५ भत्तूजी (६६८) सरदारशहर
६. पन्नाजी (१०५२) राजलदेसर

इनमे पाच साध्वियो को मृगसर कृष्णा १ के दिन आचार्यश्री ने अपने हाथ से पारणा कराया । साध्वी पन्नाजी (१०५२) 'राजलदेसर' पारणा किये विना ही दिवंगत हो गई । इस प्रकार एक साथ छह चातुर्मासिक तप होने का तथा एक साथ पांच साध्वियो को चातुर्मास-तप का पारणा आचार्यश्री द्वारा करने का प्रथम अवसर मिला ।

(३) साध्वीश्री ने एक छोटे-से पत्र पर—प० कु० रा० भे० चार सांकेतिक अक्षर लिखे । इन सांकेतिक अक्षरो के तात्पर्य को उनके अतिरिक्त कोई भी नही समझ सकता । इनके साथ साध्वीश्री ने उस पत्र मे यह भी लिखा था कि यदि ऐसा योग न मिला तो मैं आजीवन जो भी तपस्या करूगी वह चौविहार करूंगी ।

सं० २०३२ में साध्वी उर्मिलाकुमारीजी (१४०१) 'गगाशहर' को साध्वी पन्नाजी के साथ वन्दना करवाई (अर्थात् उनके साथ भेजा) तव साध्वी पन्नांजी ने आचार्यप्रवर से उन साकेतिक अक्षरो का हार्द निवेदन करते हुए

कहा—'गुरुदेव! मैंने आज से पचीस साल पूर्व जो अभिग्रह किया था वह आज फलित हुआ—प-परिवार की साध्वी, कु-कुमारी कन्या, रा-राज (आचार्यश्री के पास) में हो उसे, भे-भेजे।

आचार्यश्री ने मुस्कराते हुए फरमाया—'यदि हम पहले किसी साध्वी को भेज देते तो यह अभिग्रह कैसे फलता।'

इस प्रसंग को सुनकर सभी सुनने वाले आश्चर्य-चकित हो गये।

(४) चतुर्थ अभिग्रह का संकल्प अभी तक फला नहीं है। वह क्या है यह फलने पर ही वतलाया जा सकता है।

आभास—(क) सं० २००७ मे साध्वीश्री का चातुर्मास भगवतगढ में था। वहां से उन्होने आचार्यश्री के दर्शनार्थ प्रस्थान किया। वीच का रास्ता भयावह और सघन झाडियों से घिरा हुआ था। मार्ग मे एक छोटे गांव की ब्राह्मणी को रात्रि मे स्वप्न आया कि मानो साधु-वेप मे एक व्यक्ति उसे संवोधित करके कह रहा है कि कल तुम्हारे गांव मे चार मूर्तियां (साध्वियां) आयेंगी। उन्हे तुम अपने गांव मे ही रोक लेना, आगे मत जाने देना। आंखें खुलते ही वह स्वप्न के विपय मे विचार करने लगी।

सयोगवश साध्वीश्री दूसरे ही दिन उस गांव मे पहुंच गयी। उन्होने अपना सामान नीचे रख दिया और आगे के रास्ते की पूछताछ करने लगी। इतने मे वह ब्राह्मणी अपने वच्चो द्वारा सूचना पाकर वहां आई और साध्वीश्री से वही रुकने के लिए आग्रह करने लगी। इस वीच जो राहगीर उस रास्ते को पार करने के लिए साध्वीश्री के साथ चल रहे थे, वे आगे वढने लगे। साध्वीश्री ने उन्हें विलम्ब करने के लिए तथा स्वयं चलने के लिए कहा पर पथिको ने रुकने से इनकार कर दिया। वे अपनी मंजिल की ओर आगे वढ़े कि रास्ते मे शेर द्वारा धराशायी हो गये। इस संवाद को सुनकर उस ब्राह्मणी ने अपने स्वप्न की चर्चा करते हुए कहा—'मैंने इसीलिए तो आपसे रुकने के लिए कहा था। आप यदि उन पथिकों के साथ चल पड़ती तो कोई अनिष्ट हो सकता था।' दूसरे दिन स्वयं ब्राह्मणी ने साथ चलकर उस भयावह रास्ते को सकुशल पार करवाया।

लगता है कि इस चमत्कार के पीछे कोई अज्ञात शक्ति अथवा साध्वीश्री की तप. साधना का प्रभाव था।

(ख) साध्वीश्री सं० २००८ का गोगुंदा में चातुर्मास सम्पन्न कर आचार्यप्रवर के दर्शनार्थ विहार कर रही थी। रास्ते में गोगुंदा के श्रावक

अपने क्रम के अनुसार सेवा मे आ रहे थे। ऐतिहासिक कीर्त्ति-स्तम्भ के पास आने वाले दल से साध्वीश्री ने कहा—'अभी तीन-चार दिन किसी को सेवा मे आने की आवश्यकता नही है।' वह दल वापस जाने लगा तव उसे कहा—'तुम आने वालो को सूचित करने मे भूल मत करना।' नियति का योग था कि सूचित करने पर भी तीन युवक चल पड़े। रास्ते मे मोटर ऐक्सीडेंट की दुर्घटना से तीनो की मृत्यु हो गयी।

श्रावकों ने कहा—'साध्वीश्री ने मना किया था पर होनहार को कोई नही टाल सकता।' किसी ने ठीक ही कहा है—

'हर शख्स को अपनी अक्ल पर मगरूर है
पर होता वही है जो कुदरत को मंजूर है।'

वीदासर मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर साध्वी-समाज की अन्तरंग गोष्ठी मे आचार्यश्री ने उपर्युक्त घटना-प्रसंग पर फरमाया—'साध्वी पन्नाजी की तपस्या वहुत प्रभावक रही है। लगता है इन्हें कोई उपलब्धि हुई है, भले ये उसे प्रकट न करे। गोगुंदा के श्रावको को आने के लिए इन्होने मना किया, इसके पीछे पता नही कि कुछ आभास हुआ अथवा अन्य कुछ निमित्त वना।'

मर्यादा-महोत्सव के पश्चात् साध्वीश्री ने पाली चातुर्मास के लिए छापर मे आचार्यश्री से विदाई ली। उस समय गुरुदेव ने फरमाया—'स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो, अभी धर्मसंघ को तुम्हारी वहुत अपेक्षा है।' उसी समय लाडनूं से समागत श्रावको को कहा—'तपस्विनी साध्वी पन्नांजी के हाथ मे ऐसी शक्ति है कि ये कइयों की चोट मालिश द्वारा ठीक कर देती हैं। अभी वीदासर मे साध्वी इन्द्रूजी (८८४) 'राजलदेसर' के पैर की हड्डी क्रेक हो गई थी। वड़ी कठिनाई से उन्होने साधन द्वारा मार्ग तय किया। पन्नांजी ने मालिश द्वारा उन्हें खडा कर दिया।' वर्तमान मे साध्वीश्री अपनी तपःपूत साधना एवं नियम-आराधना द्वारा धर्म-सघ की गरिमा वढा रही है।

(परिचय पत्र)

दैविक चमत्कार—

साध्वीश्री पन्नांजी का २०२४ चातुर्मास नोखा मे था। वहा सवत्सरी के दिन सध्या के समय साध्वियां तथा सैकड़ो भाई-वहिन प्रतिक्रमण कर रहे थे। अकस्मात् आकाश मार्ग से चमकता हुआ प्रकाशपुज पन्नाजी के दर्शनार्थ पहुचा। लोग आश्चर्याभिभूत हो उठे। सवका ध्यान एक साथ उस

ओर उठ गया। प्रकाशपुंज ने साध्वीश्री पन्नांजी को विधिपूर्वक तीन-बार वन्दना की। देखते-देखते साध्वी पन्नांजी के वस्त्र व ललाट केसर मे मंडित हो गया। लेप इतना गीला व गहरा था कि घंटो तक नही सूखा। साध्वीश्री उस समय ध्यान कर रही थी। उन्होंने इतनी हलचल व तेज वन्दना के वावजूद भी ध्यान नहीं खोला। तत्रस्थ भाईयो ने ठिकाने मे केसर के छीटे भी देखे, उनकी सुगंधि आ रही थी। कुछ ही क्षणो वाद प्रकाशपुज वापस चला गया। अन्य समाज मे चारों ओर एक ही चर्चा थी कि तेरापंथियो के यहां देव-विमान उतरा है। सूर्योदय होने की देर थी, पूछने वाले लोगो का तांता लग गया।

इस प्रकार और भी कई चामत्कारिक घटनाएं उनके जीवन में घटित हुईं।

(श्रुतिगत)

५१ दिन का तप

दीर्घ तपस्विनी साध्वीश्री पन्नाजी ने आछ के आगार पर ५१ दिन की दीर्घ तपस्या का दिनाक १८ अगस्त को आमेट में आचार्यप्रवर के सान्निध्य मे सानन्द पारणा किया। पारणे के दिन परमाराध्य आचार्यप्रवर एव श्रद्धेय युवाचार्यश्री साध्वियो के स्थान पर पधारे और दोनो ने एक साथ दीर्घ तपस्विनी साध्वीश्री पन्नाजी को ग्रास दिया तथा आचार्यप्रवर ने साध्वीश्री को संवोधित करते हुए यह पद्य फरमाया—

पन्नां दीर्घ तपस्विनी, इक्यावन दिन साज।
युवाचार्य आचार्य कर, करे पारणो आज॥

उल्लेखनीय वात यह थी कि साध्वीश्री पन्नांजी ने सदा की भांति इस बार भी विशेष अभिग्रह स्वीकार किए थे। वे अभिग्रह इस प्रकार हैं:—

१ आचार्यश्री एव युवाचार्यश्री साध्वियो के स्थान पर पधार कर एक साथ ग्रास दें।

२ साध्वी प्रमुखाश्रीजी एक साथ २१ साध्वियो के साथ पारणे के लिए कहे।

३ सवा लाख का जप पूरा हो जाए।

४ साधु-साध्वियां साध्वी पन्नांजी के पास आकर कुछ खाएं या पीएं।

ये चारों अभिग्रह पूरे न होते तो सात दिन की तपस्या आगे वढाई जाती। ये चारो ही अभिग्रह सफल हो गए और साध्वीश्री पन्नांजी का सानन्द पारणा हो गया।

८८०।८।१५५ साध्वीश्री अमृतांजी (देशनोक)

(संयम-पर्याय सं० १९८४-१९९६)

'४०वीं कुमारी कन्या'

छप्पय

देशनोक में वास था आंचलिया परिवार।
लघु वय में साध्वी बनी अमृतां कर सुविचार[1]।
अमृतां कर सुविचार चोथ-भक्तादिक करती।
चढ़ी ऊर्ध्वतर मास भावना निर्मल भरती[2]।
साधिक बारह वर्ष में फला वृक्ष सहकार[3]।
देशनोक में वास था आंचलिया परिवार॥१॥

१. साध्वीश्री अमृतांजी देशनोक (स्थली) के हुलासमलजी आंचलिया (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १९७१ में हुआ।

(ख्यात)

उनकी माता का नाम चांदा बाई था।

(सा० वि०)

उन्होंने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १९८४ कार्त्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा श्रीडूंगरगढ़ में दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली छह दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री सजनांजी (८७८) के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. उन्होंने इस प्रकार तपस्या की :—

उपवास	२	३	४	५	८	मासखमण
१९२	१२	४	६	२	१	१

(ख्यात)

३. साध्वीश्री के शरीर में राजयक्ष्मा की बीमारी हो गई। उन्होंने

इसके लिए तपस्या प्रारम्भ की। ३१ दिन का मासखमण करके पारणा किया। फिर भी स्वस्थ नहीं हुई। आखिर वेदना मे समभाव रखती हुई सं० १९९६ फाल्गुन कृष्णा ४ को राजलदेसर मे दिवंगत हो गई।

(तुलसीगणी की ख्यात)

उनका साधनाकाल लगभग १२ वर्षों का रहा। कुल आयु २५ साल की थी।

ख्यात तथा साध्वी-विवरणिका मे उनकी स्वर्गवास-तिथि फाल्गुन कृष्णा ३ है।

८८१।८।१५६ साध्वीश्री सुन्दरजी (श्रीडूंगरगढ़)

(दीक्षा सं० १९८४, वर्तमान)

'४१वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री सुन्दरजी श्रीडूंगरगढ़ (स्थली) निवासी रामलालजी वोथरा (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १९७१ माघ शुक्ला २ को हुआ। उनकी माता का नाम भूरी वाई था।

दीक्षा—साधु-साध्वियो के उपदेश से विरक्त होकर उन्होने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९८४ कार्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा श्रीडूगरगढ़ मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली छह दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री सजनांजी (८७८) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सहवास—वे क्रमश: साध्वीश्री भूरांजी (३७८) 'लाडनू', लिछमांजी (८०१) 'मोमासर' और कमलूजी (९७५) 'नोहर' के साथ रही। सं० २०३८ से साध्वीश्री सुवोधकुमारीजी (१२५५) 'वीदासर' के साथ विहार कर रही हैं।

उन्होने आवश्यकतावश सं० २०१३ का चातुर्मास ४ ठाणो से आडसर मे किया।

(चा० ता०)

कंठस्थ ज्ञान—लगभग पांच हजार पद्यप्रमाण, थोकड़े, व्याख्यान आदि कंठस्थ किये।

वाचन—२१ सूत्रो का वाचन किया।

स्वाध्याय—लगभग १५ लाख गाथाओं का स्वाध्याय किया। चौवीस तीर्थंकरो का २४ वार तथा नौ आचार्यो का नौ वार सवा लाख जप किया। प्रतिदिन प्राय: एक हजार गाथाओ का स्वाध्याय करती हैं।

(परिचय पत्र)

८८२।८।१५७ साध्वीश्री चूनांजी (लाडनूं)

(संयम-पर्याय सं० १९८४-२००७)

'४२वीं कुमारी कन्या'

सोरठा

दूगड़ गोत्र पवित्र, चंदेरी की वासिनी ।
चूनां ने चारित्र, बाल्यावस्था में लिया[1] ॥१॥

वर्ष बीस पर तीन, लीन रही साधुत्व में ।
कर सरसब्ज जमीन, खेती निपजाई वड़ी[2] ॥२॥

१. साध्वीश्री चूनांजी लाडनूं (मारवाड़) के छगनमलजी दूगड़ (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १९७१ पौष कृष्णा ६ (सा० वि० मे १०) को हुआ।

(ख्यात)

उनकी माता का नाम सुजाणी बाई था।

(साध्वी-विवरणिका)

उन्होने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९८४ कार्त्तिक कृष्णा ८ को पूज्य कालूगणी के हाथ से श्रीडूगरगढ़ में चारित्र ग्रहण किया। उस दिन होने वाली छह दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री सजनांजी (८७८) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. उन्होने लगभग तेइस वर्ष संयम-पर्याय मे रमण कर सं० २००७ श्रावण शुक्ला १४ को राजनगर मे स्वर्ग-गमन किया।

(ख्यात)

साध्वी-विवरणिका मे स्वर्गवास-तिथि श्रावण शुक्ला ४ है।

वे साध्वीश्री खूमाजी (७००) के सिंघाड़े मे दिवंगत हुईं। उस वर्ष खूमांजी का चातुर्मास राजनगर में था।

(चा० ता०)

८८३।८।१५८ साध्वीश्री लाधूजी (गंगाशहर)

(दीक्षा सं० १९८५, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री लाधूजी श्रीडूंगरगढ़ (स्थली) निवासी ताराचंदजी मालू (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १९६५ श्रावण शुक्ला १५ को हुआ। माता का नाम हुकमां बाई था। ११ वर्ष की अवस्था मे लाधूजी का विवाह गंगाशहर-निवासी मोहलालालजी डाकलिया (ओसवाल) के साथ कर दिया गया।

वैराग्य—शादी के एक साल बाद पति वियोग होने पर लाधूजी का मन सासारिक-सुखो से विरक्त हो गया। फिर साधु-साध्वियो के संपर्क से वे दीक्षित होने के लिए तैयार हो गई।

दीक्षा—उन्होने पति वियोग के वाद २० वर्ष की अवस्था मे सं० १९८५ कार्तिक कृष्णा ७ को साध्वीश्री इन्द्रूजी (८८४), किस्तूरांजी (८८५) और सुवटांजी (८८६) के साथ आचार्यश्री कालूगणी द्वारा छापर मे दीक्षा ग्रहण की।[1] (कालूगणी की ख्यात, ख्यात)

सहवास—वे आठ साल गुरुकुलवास मे रही। फिर अग्रगण्य साध्वियो के साथ विहरण किया और कर रही हैं।

शिक्षा, कला—उन्होने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, लगभग २० थोकड़े, आराधना, चौवीसी, शील की नौ वाड, भक्तामर, रामचरित्र, शालिभद्र आदि व्याख्यान कठस्थ किये। सिलाई-रगाई आदि की कला मे प्रगति की।

तपस्या—स० २०४१ तक उन्होने निम्नोक्त तप किया—

उपवास	२	३	६
१५००	१०	३	२

(परिचय-पत्र)

१ विद सातम गगाशहरी सति लाधूजी,
राजाणै री किस्तूरांजी इन्द्रूजी।
दोनू वहिना वलि सुवटा चदेरी री
ली दीक्षा श्री कालू करुणा-दृग हेरी॥

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० २३)

८८४।८।१५९ साध्वीश्री इन्द्रूजी (राजलदेसर)

(दीक्षा सं० १९८५, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री इन्द्रूजी राजलदेसर (स्थली) निवासी चुन्नीलालजी दूगड (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १९६८ पौष शुक्ला १ (सा० वि० में सं० १९६९ माघ शुक्ला १) को हुआ। माता का नाम मक्खू देवी था। तेरह वर्ष की अवस्था में इन्द्रूजी की शादी राजलदेसर में ही महालचन्दजी डागा (कालूरामजी के पुत्र) के साथ कर दी गई।

वैराग्य—विवाह के एक साल वाद ही इन्द्रूजी के पति का देहान्त हो गया। कुछ समय वाद जयचन्दलालजी वैद की पत्नी ने उन्हे संसार की अनित्यता बतलाते हुए दीक्षा के लिए प्रेरित किया। वरावर प्रेरणा मिलने से उनके दिल मे वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हो गये।

दीक्षा—इन्द्रूजी ने पति वियोग के बाद १६ वर्ष की वय (नावालिग) में अपनी छोटी बहिन किस्तूरांजी (८८५) के साथ स० १९८५ कार्त्तिक कृष्णा ७ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से छापर मे दीक्षा ग्रहण की। साध्वीश्री लाधूजी (८८३) और सूवटांजी (८८६) की दीक्षा भी उनके साथ हुई। इनका मूल नाम इचरज बाई था।

दीक्षा से सम्वन्धित पद्य साध्वीश्री लाधूजी (८८३) 'गंगाशहर' के प्रकरण मे दे दिया गया है।

सुखद सहवास—साध्वी इन्द्रूजी दीक्षित होने के वाद आठ महीने गुरुकुल-वास मे रही। फिर साध्वीश्री संतोकांजी (८१८) 'लाडनूं' के साथ सात साल रहकर पुनः आठ महीने गुरुकुल-वास में रही। फिर ३६ साल (सं० १९९३ से २०२८ तक) साध्वीश्री केशरजी (८९२) 'रतनगढ़' के सिंघाड़े मे विहार करती रही। उनके दिवगत होने के वाद आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी किस्तूरांजी को अग्रगण्या वनाया। तव से तेरह साल उनके साथ विहरण किया। स० २०४१ से उन्ही के साथ वीदासर 'समाधिकेन्द्र' मे वास कर रही है।

कंठस्थ ज्ञान—उन्होने पच्चीस वोल, चर्चा, तेरहद्वार, वावनवोल,

लघुदण्डक, इक्कीसद्वार आदि थोकड़े कंठस्थ किये।

तपस्या—उनके तप की सूची इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५	६	८
२३१६	६५	७	२	१	१	१

। दस प्रत्याख्यान ६ वार।

यह तप सं० २०४१ तक का है।

खाद्य-संयम—सं० २००६ से कड़ाई विगय के अतिरिक्त खाने का उन्हें त्याग है।

स्वाध्याय, मौन—वे प्रतिदिन दो-सौ गाथाओ का स्वाध्याय एव एक घंटा मौन करती हैं।

(परिचय-पत्र)

८८५।८।१६० साध्वीश्री किस्तूरांजी (राजलदेसर)

(दीक्षा सं० १९८५, वर्तमान)

'४३वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री किस्तूराजी का जन्म राजलदेसर (स्थली) के डागा (ओसवाल). परिवार मे स० १९७३ माघ कृष्णा ८ को हुआ। उनके पिता का नाम चुन्नीलालजी और माता का मक्खू देवी था।

वैराग्य—वड़ी वहिन इन्द्रूजी की शादी के वारह महीनों वाद उनके पति (महालचंदजी डागा) का देहान्त हो गया। इस घटना से किस्तूरांजी के हृदय में वैराग्य की भावना पैदा हो गई।

दीक्षा—उन्होने तेरह वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे अपनी वड़ी वहिन इन्द्रूजी (८८४) के साथ आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से छापर मे दीक्षा ग्रहण की। साध्वीश्री लाधूजी (८८३) और सूवटांजी (८८६) की दीक्षा भी उनके साथ हुई। दीक्षा से संवंधित पद्य साध्वी लाधूजी के प्रकरण में दे दिया गया है।

सुखद सहवास—साध्वी किस्तूरांजी दीक्षित होने के वाद आठ महीने गुरुकुल-वास मे रही। फिर साध्वीश्री संतोकांजी (८१८) 'लाडनूं' के साथ सात साल रहकर पुनः गुरुकुल-वास मे ८ महीने रही। फिर ३६ साल (१९९३ से २०२८ तक) साध्वीश्री केशरजी (८९२) 'रतनगढ़' के साथ विहार करती रही।

विहार—सं० २०१० में साध्वीश्री केशरजी के दिवंगत होने के वाद आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी किस्तूरांजी को अग्रगामिनी वना दिया। उन्होने निम्नोक्त स्थानो मे चातुर्मास किये :—

सं० २०२९	ठाणा ५	नाथद्वारा
सं० २०३०	,, ४	झकणावद
सं० २०३१	,, ४	उज्जैन
सं० २०३२	,,	राजलदेसर (साध्वी खूमांजी (७००) 'लाडनू' के साथ)
सं० २०३३	,, ५	वाव

सं० २०३४	ठाणा	५	भुज
सं० २०३५	,,	५	गांधीधाम
सं० २०३६	,,	५	केलवा
सं० २०३७	,,	५	रेलमगरा
सं० २०३८	,,	५	गंगापुर
सं० २०३९	,,	१७	राजलदेसर
सं० २०४०	,,	६	राणी

सं० २०४१ से वीदासर 'समाधि-केन्द्र' मे वास कर रही है।

उन्होने आवश्यकतावश सं० २०१० मे ४ ठाणो से भिवानी में चातुर्मास किया।

(चातुर्मासिक तालिका)

कंठस्थ ज्ञान—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन (१९ अध्ययन), भ्रम-विध्वंसन की हुण्डी, पच्चीस वोल, तेरह द्वार, लघुदंडक, इक्कीस द्वार, गतागत, इकतीस द्वार, हरखचंदजी स्वामी की चर्चा, चौवीस तीर्थंकरों का लेखा आदि थोकड़े। रामचरित्र, शालिभद्र आदि कुछ व्याख्यान कंठस्थ किये।

वाचन—आगम-वत्तीसी आदि का वाचन किया।

प्रतिलिपि—उत्तराध्ययन आदि १३ सूत्र, जयजश, उत्तराध्ययन की जोड़ तथा कालूयशोविलास आदि कई व्याख्यान लिपिवद्ध किये।

कला—सिलाई, रंगाई, रजोहरण वनाना एव चित्रकला मे कुशलता प्राप्त की।

तपस्या—उनकी सं० २०४१ तक के तप की तालिका इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	८
१५९७	६५	५	२	१	१

स्वाध्याय, मौन—वे प्रतिदिन दो सौ गाथाओ का स्वाध्याय एवं एक घंटा मौन करती हैं।

(परिचय-पत्र)

८८६।८।१६१ साध्वीश्री सूवटांजी (लाडनूं)

(संयम-पर्याय सं० १९८५-२०३५)

'४४वीं कुमारी कन्या'

छप्पय

चंदेरी की वासिनी सती सूवटां खास।
वय में ग्यारह साल की दीक्षित गुरु के पास[1]।
दीक्षित गुरु के पास पचास वर्ष तक संयम।
पालन कर सोल्लास मरण पा गई उत्तम।
अकस्मात् नाड़ी रुकी वन्द हो गया श्वास।
चंदेरी की वासिनी सती सूवटां खास ॥१॥

दोहा

शुक्ल चौथ आषाढ़ की, प्रहर निशा अनुमान।
साध्वी नोजां साथ में, किया स्वर्ग-प्रस्थान ॥२॥

एक कर रही चाकरी, करा रही थी एक।
तीर्थभूमि में उभय ने, लिखे सुयश के लेख ॥३॥

निकली दो-दो मंडियां, देख चकित सब भ्रात।
पुर चंदेरी के लिए, थी यह नूतन वात[2] ॥४॥

१. साध्वीश्री सूवटांजी का जन्म लाडनूं (मारवाड़) के खटेड़ (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७४ द्वितीय भाद्रव शुक्ला १० को हुआ। उनके पिता का नाम जीवणमलजी और माता का सुजानी वाई था। उनकी संसारपक्षीया वड़ी वहिन साध्वीश्री चूनांजी (८१९) 'वीदासर' सं० १९७७ में दीक्षित हो गई थी।

(ख्यात)

सूवटांजी ने ११ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९८५

कार्त्तिक कृष्णा ७ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा लाडनूं मे दीक्षा ग्रहण की। उनके साथ साध्वीश्री लाधूजी (८८३), इन्द्रूजी (८८४) और किस्तूरांजी (८८५) की भी दीक्षा हुई। दीक्षा से सम्बन्धित पद्य साध्वीश्री लाधूजी के प्रकरण में दे दिया गया है।

(ख्यात)

२. साध्वीश्री लगभग पचास साल संयम का पालन कर सं० २०३५ (चैत्रादि क्रम से २०३६) आपाढ शुक्ला ४ को प्रहर रात्रि के समय अचानक लाडनूं मे दिवंगत हो गई।

(ख्यात)

सूवटांजी के दिवगत होने के एक घटे बाद साध्वी नोजांजी (१०९८) 'बीकानेर' का भी स्वर्गवास हो गया। साध्वी नोजाजी तो लाडनूं मे स्थिर-वासिनी थी। साध्वी सूवटाजी इसी वर्ष सेवा मे आने वाली साध्वी कमलश्रीजी (१२४३) 'टमकोर' के सिघाड़े मे थी। संयोग ऐसा मिला कि दोनो साध्वियो ने साथ-साथ स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया। दूसरे दिन श्रावको द्वारा दोनों साध्वियो का दाह-संस्कार किया गया। दो-दो मंडियो का एक साथ निकलना लाडनू के लिए प्रथम और नवीन बात थी।

लाडनू 'सेवाकेन्द्र' मे उस समय साध्वीश्री मालूजी (युवाचार्यश्री की वहिन) और साध्वी कमलश्रीजी 'टमकोर' थी।

८८७।८।१६२ साध्वीश्री चोथांजी (छापर)

(दीक्षा सं० १९८५ वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री चोथांजी रतनगढ़ (स्थली) निवासी सूरजमलजी गोलछा (ओसवाल) की पुत्री थी। माता का नाम संतोकी वाई था। चोथांजी का जन्म सं० १९६६ आश्विन कृष्णा ५ को हुआ। समयान्तर से उनका विवाह छापर मे झूमरमलजी सिंघी के साथ कर दिया गया।

वैराग्य—साधु-साध्वियो के उपदेश से प्रेरित होकर वे पति सहित दीक्षित होने के लिए उद्यत हो गई।

दीक्षा—चोथांजी ने १९ वर्ष की अवस्था मे अपने पति झूमरमलजी (४६७) के साथ सं० १९८५ कार्त्तिक शुक्ला १३ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से छापर में दीक्षा स्वीकार की।[1]

सहवास—वे एक साल गुरुकुलवास मे, सात साल साध्वी ज्ञानांजी (७६५) 'पीतास' के, नौ साल साध्वी दीपांजी (१०२५) 'सरदारशहर' के तथा कुछ वर्ष अन्य सिंघाडो के साथ रही। स० २०३९ से लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे स्थिरवास कर रही है।

कंठस्थ ज्ञान—उन्होने दशवैकालिक, लघुदण्डक, वावनवोल, कर्म-प्रकृति, इक्कीसद्वार, महादण्डक, वड़ीचर्चा आदि थोकड़े तथा रामचरित्र, मुनिपत, धनजी आदि व्याख्यान कठस्थ किये।

---

१. कार्त्तिक मे झूमर सपत्नीक सोल्लासी।

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० २३)

८८८।८।१६३ साध्वी फूलांजी (गोगुंदा)

(दीक्षा सं० १९८५, १९८६ में गणवाहर)

रामायण-छन्द

फूलां 'मोटाग्राम' वासिनी चोरड़िया कुल में ससुराल।
दीक्षित हुए वर्ष दो पहले उनके पतिवर चंपालाल।
साल पचासी मे फूलां ने राजकुमारी पुत्री साथ।
चरण-रत्न स्वीकार किया है पड़िहारा मे गुरु के हाथ[1] ॥१॥

लेकिन प्रकृति-चंडता अविनय उच्छृंखलता के कारण।
अटंसंट कहती सतियों को परेशान करती क्षण-क्षण।
सतियों ने उनको समझाया भरसक किये प्रयास अनेक।
तोड़ दिया संबंध संघ से उनकी गति-मति उल्टी देख ॥२॥

तनया साध्वी राजकुमारी रख पाई हिम्मत अच्छी।
तनिक न मोह किया माता से जोड़ प्रीति गण से सच्ची।
फूलां होकर गण से वाहर लगी वोलने अवगुणवाद।
कर्मो की गति बड़ी विचित्र है छा जाता जिससे उन्माद[2] ॥३॥

१. फूलांजी की ससुराल गोगुदा (मेवाड़) के चोरडिया (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही कुणावत गोत्र में था। उनका जन्म स १९५९ मे हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम दीपचंदजी, माता का प्यारावाई और पति का चंपालालजी था।

(साध्वी-विवरणिका)

फूलांजी, फूलांजी के पति चपालालजी और पुत्री राजकंवरजी तीनो ही व्यक्ति दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए, परन्तु परिवार वालो की आज्ञा न मिलने से तथा राजकंवरजी को दीक्षा का कल्प न आने के कारण फूलाजा

(पत्नी) की आज्ञा लेकर चंपालालजी (४५१) सं० १९८३ के गंगाशहर चातुर्मास मे आचार्यश्री कालूगणी द्वारा दीक्षित हो गये थे।

जब राजकंवरजी को दीक्षा का कल्प आ गया तब फूलांजी ने उनके साथ सुहागिन वय में सं० १९८५ चैत्र कृष्णा ७ को आचार्यश्री कालूगणी से पड़िहारा मे दीक्षा ग्रहण की।[1]

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. फूलांजी की प्रकृति उग्र एवं उच्छृंखल थी। संयम पालने की नीति नही थी। सतियो को बडी तकलीफ देती थी। गुरुदेव ने उन्हे समझाने का तथा निर्वाह कराने का बहुत प्रयत्न किया। आखिर जब निर्वाह नही होता देखा तब सं० १९८६ आपाढ शुक्ला १४ को दिन के तीन बजे गंगाशहर मे साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी के माध्यम से उनका गण से संबंध-विच्छेद कर दिया गया।

साध्वी राजकंवरजी की अवस्था दस वर्ष की थी फिर भी माता के प्रति बिल्कुल मोह नही किया। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा—'मुझे तो संयम पालन करना है, माता से मेरा कोई प्रयोजन नही है।' वे गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य करती हुई शासन मे दृढनिष्ठ होकर संयम का पालन करती रहीं।

फूलाजी ने अलग होकर भिक्षु-शासन तथा साधु-साध्वियो के बहुत अवगुण बोले। सीमा और लज्जा को भी छोड़ दिया।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

---

१. फूलां, मां राजकवर पुत्री पड़िहारं,

(कालू उ० ३ ढा० १६ गा० २३)

८८६।८।१६४ साध्वीश्री राजकंवरजी (गोगुन्दा)

(दीक्षा सं० १६८५, वर्तमान)

'४५वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री राजकंवरजी का जन्म गोगुंदा (मेवाड़) के चोरड़िया (ओसवाल) गोत्र में सं० १६७७ श्रावण शुक्ला ८ को हुआ। उनके पिता का नाम चंपालालजी और माता का फूलांजी था।

वैराग्य—उनके सामने वाले मकान मे किसी वहिन के पति का देहान्त हो गया। उस दुःखद घटना को देखकर वालिका राजकुमारी का दिल द्रवित हो गया। उन्होने यह निश्चय कर लिया कि मुझे शादी नही करवानी है। उस समय वे चार साल की थी। क्रमशः जन्मान्तर-संस्कार तथा साधु-साध्वियो के संपर्क से वैराग्य-भावना पनपती गई।

दीक्षा—उन्होने ६ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे अपनी माता फूलांजी (८८८) के साथ सं० १६८५ चैत्र कृष्णा ७ को आचार्यश्री कालूगणी के कर-कमलों से पडिहारा में भागवती दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा के पूर्व उनके ससार-पक्षीय मामा ने साध्वी-वेश मे उन्हे गोद में लेकर गुरुदेव के सम्मुख प्रस्तुत किया था। उनके संसारपक्षीय पिता चंपालालजी (४५१) सं० १६८३ मे दीक्षित हो गए थे।

कद ठिगना होने के कारण साध्वी राजकंवरजी वहुत छोटी लगती थी। अतः मंत्री मुनि मगनलालजी ने तीन साल तक उनकी जन्म-कुडली अपने पास मे रखी थी क्योकि पूछने वालो को तत्काल वतला दें ताकि उम्र के विषय मे उनके सदेह न रहे।

साध्वी राजकवरजी के सिर पर पहले से ही वाल नही थे। जव वे दीक्षा के लिए तैयार हुई तव श्रीचदजी गधैया (सरदारशहर) की धर्म-पत्नी ने विनोद की भाषा मे कहा—'वहिन ! तुम्हारे सिर पर वाल नही है जिससे दीक्षा नही हो सकेगी, अतः उस्तरा फिरवा लो तो वाल उग आयेगे।' वालिका ने उनके कथनानुसार उस्तरा फिरवा लिया जिससे कुछ मुलायम वाल उगने लगे। इस वात की जानकारी होने से एक दिन पूज्य कालूगणी ने

पूछा—'नानकी ! तेरे सिर पर वाल प्रारम्भ से ही नही थे या किसी रोग विशेष के कारण नष्ट हो गये है ?' बाल साध्वी ने उक्त सारी घटना सुनाई। गुरुदेव ने फरमाया—'यह दारिद्र्य बढ़ाने का शौक क्यो आ गया ? सिर पर बाल न आने से दीक्षा स्थगित नहीं हो सकती थी।'

सुखद सहवास—साध्वी राजकंवरजी दीक्षित होने के बाद दस वर्षों तक गुरुकुलवास में रही। तत्पश्चात् सं २०३६ तक प्राय: साध्वीश्री खूमांजी (७००) 'लाडनूं' के सिंघाडे में रही।[1] आवश्यकतावश सं० २०३२ का अग्रणी रूप मे ४ ठाणों से ईडवा मे चातुर्मास किया।

शिक्षा—साध्वीश्री प्रारम्भ से ही यथाशक्य अध्ययन करने लगी। फलस्वरूप उन्होंने निम्नोक्त आगम आदि कंठस्थ कर लिए।

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग, वृहत्कल्प तथा भ्रमविध्वसन।

व्याख्यान—रामचरित्र, मुनिपत आदि।

संस्कृत—सारस्वत, कालुकौमुदी, शारदीया नाममाला, भक्तामर, कल्याणमन्दिर, सिन्दूरप्रकर, शातसुधारस, शिक्षापण्णवति, कर्त्तव्यपट्-त्रिंशिका, जैनसिद्धान्तदीपिका, भिक्षुन्यायकर्णिका आदि। कई थोकड़े तथा सैकड़ो गीतिकाएं याद की।

वाचन—प्राय: आगम-बत्तीसी तथा भगवती की जोड़ का पाच बार वाचन किया। वयोवृद्धा साध्वीश्री खूमाजी की नजर न होने के कारण उनको सूत्रादिक सुनाने का काम भी पड़ता था।

प्रतिलिपि—लिपिकला सीखकर कई आगम, तात्त्विक ग्रन्थ तथा व्याख्यान आदि लिपिबद्ध किए।

तपस्या—स० २०४१ तक की उनके तप की तालिका इस प्रकार है—

उपवास	२	३	८
१०००	१५	५	१

१५ बार दस प्रत्याख्यान।

---

१. सं० १९९३ का चातुर्मास साध्वीश्री जुहारांजी (८६०) 'मोमासर' के साथ बागोर मे किया तथा सं० २०२० मे साध्वीश्री सोनांजी (६७४) 'सरदारशहर' की सेवा मे पडिहारा रही।

वे प्रतिदिन प्राय: तीन विगय का वर्जन करती हैं।

सेवा—साध्वीश्री १८ महीनो तक वयोवृद्धा साध्वी सोनांजी (६७४) "सरदारशहर' की सेवा मे रही। ८ महीने साध्वी भानुमतीजी (१२३२) 'गगाशहर' की बोन टी० वी० की बीमारी मे परिचर्या की।

साध्वीश्री सतोकांजी (८१०) 'लाडनूं' को ३५ मील साध्वी पानकंवरजी (६०२) 'सरदारशहर' को तीन मील अन्य साध्वियो के साथ उठाकर लाने का काम पडा।

साधना—वे प्रतिदिन तेरह-सौ गाथाओ का स्वाध्याय, आधा घटा ध्यान तथा ४ घटे मौन करती है।

गुरु-कृपा—आचार्यश्री कालूगणी तथा तुलसीगणी की साध्वीश्री पर अच्छी कृपा रही। समय-समय पर कल्याणक, विगयवर्जन आदि पुरस्कृत कर उन्हें प्रोत्साहित करते।

संघनिष्ठा—दीक्षा के एक साल बाद जब उनकी संसार-पक्षीया माता फूलांजी को गण से पृथक् किया गया तब बाल साध्वी ने बड़ी दृढता का परिचय दिया। माता के साथ किसी प्रकार का मोह नही किया। शासन मे अडिग रहकर गुरु-दृष्टि की आराधना करती रही।

संस्मरण

जलप्रवाह लंघन—साध्वीश्री सं २०३२ का चातुर्मास करने के लिए ईड़वा जा रही थी। एक दिन विहार के समय भीषण वर्षा के कारण रास्ते मे पानी ही पानी भर गया। पानी सात-आठ खेतो जितना चौड़ा फैल गया। कही तो घुटनो तक गहरा और कही ज्यादा-कम। आसपास का मार्ग दीखना बन्द हो गया। साध्वियां सकट की विकट घड़ियां देखकर आचार्य भिक्षु का स्मरण करने लगी। बचने की आशा भी नही रही। पर स्वामीजी के प्रताप से ऐसा संयोग मिला कि अचानक दस-बारह वर्षीय दो बालक जल-प्रवाह में आये और उन्होने सकेत करते हुए कहा—'आप इधर से निकल जाओ, एक खाई आएगी उसको लाघने के बाद रास्ता मिल जायेगा।' इतना कहकर वे चले गए, साध्वियो ने बालको के कथनानुसार रास्ता पार कर दिया और सकुशल अपने गन्तव्य स्थान पर पहुच गईं। तीन कोस के जल-प्रवाह के बीच लगभग दो हजार दो-सौ पैर चलना पड़ा।

वास्तव मे सत्य एव शील के प्रभाव से इष्ट देव अपने भक्तो के लिए स्वय सहायक बन जाते हैं।

८९०।८।१६५ साध्वीश्री नानूजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८५-२०२५)

छप्पय

नानू ने चालू किया एक वड़ा व्यवसाय।
देख-रेख से एक-सी गई वढ़ाती आय।
गई वढ़ाती आय शहर सरदार सुरंगा।
परिजन जन में स्वच्छ धर्म की वहती गंगा।
पति वियोग के वाद में लिया चरण-पर्याय।
नानू ने चालू किया एक वड़ा व्यवसाय ॥१॥

सोलह दीक्षा साथ में हो पाई हैं भव्य।
पहला तेरापंथ में था वह अवसर नव्य।
था वह अवसर नव्य पूज्य कालू वड़भागी।
भेंटें आती खूव विनति करते वैरागी।
प्रतिदिन वढ़ता जा रहा मुनि-श्रमणी-समुदाय।
नानू ने चालू किया एक वड़ा व्यवसाय ॥२॥

सपत्नीक मुनि तीन थे सतियां तेरह श्रेष्ठ।
वड़ी हुई नानू सती जो थी वय से ज्येष्ठ[१]।
जो थी वय से ज्येष्ठ साधना में हो तत्पर।
किये थोकड़े याद हुई तप में अग्रेसर।
करती नियमित रूप से ध्यान मौन स्वाध्याय[२]।
नानू ने चालू किया एक वड़ा व्यवसाय ॥३॥

सती प्रतापां साथ में रही साल तक तीस।
वीते संयम में सुखद वत्सर उनचालीस।
वत्सर उनचालीस मरण 'जसवल' में पाया।
दो हजार पच्चीस महीना मृगसर आया।
अनशन के इतिहास में जोड़ दिया अध्याय[३]।
नानू ने चालू किया एक नया व्यवसाय ॥४॥

१. साध्वीश्री नानूजी का जन्म सं० १९५७ आश्विन कृष्णा १ को सरदारशहर (स्थली) के गोठी गोत्र मे हुआ। उनके पिता का नाम बुधरमलजी और माता का गुलाबांजी था। लघुवय मे ही नानूजी का विवाह स्थानीय मेघराजजी दूगड (ओसवाल) के पुत्र मोतीलालजी के साथ कर दिया गया। पर विधि के योग से विवाह के तीन साल बाद ही उनके पति का देहान्त हो गया। नानूजी ने उस आपद्कालीन स्थिति को धैर्यता से सहन किया। संसार की अस्थिरता को समझकर अपने जीवन को धर्म मे लगाया। गृहस्थावास मे भी उन्होने एकातर तप, अढाई-सौ प्रत्याख्यान, कर्मचूर और धर्मचक्र आदि तप किया। क्रमश साधु-साध्वियो के सम्पर्क से उनके दिल मे वैराग्य का उद्भव हो गया।

(निबंध से)

उन्होने सं० १९८५ (चैत्रादि क्रम से १९८६) ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा भैरूदानजी भंसाली के बाग मे बडे उल्लासपूर्ण वातावरण मे संपन्न हुई। दीक्षा-समारोह मे लगभग दस हजार व्यक्ति उपस्थित थे। उस दिन कुल १६ दीक्षाएं हुईं, जिनमे तीन भाई (सपत्नीक) और तेरह बहिनें थी।[1] उनके नाम इस प्रकार है—

१. मुनिश्री जयचदलालजी	(४६८)	छापर
२. ,, डूगरमलजी	(४६९)	सरदारशहर
३. ,, मन्नालालजी	(४७०)	,,
४ साध्वीश्री नानूजी	(८९०)	,,
५ ,, झमकूजी	(८९१)	,,

१ सोलह दीक्षा सुद जेठ शहर सरदारै।
श्री कालू प्रौढ़ प्रताप चकित सुणणा रे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे।
डूंगर-लाधू मन्नो-भत्तू जोड़ायत,
जयचन-विरधांजी तीन सजोडै स्वायत।
नानू, झमकू, केसरजी दो सुन्दरजी,
मनहर, लिछमा, छगनांजी, पानकंवरजी।
सोहनां सोलमी एक साथ सब तारी,
सारी जनता श्री कालू री बलिहारी।
(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० २३, २४)

६.	साध्वीश्री केशरजी	(६८२)	रतनगढ़
७.	,, वृद्धांजी	(८९३)	छापर
८.	,, सुन्दरजी	(८९४)	सरदारशहर
९.	,, मनोरांजी	(८९५)	मोमासर
१०.	,, लिछमांजी	(८९६)	सरदारशहर
११.	,, सुन्दरजी	(८९७)	,,
१२.	,, लाधूजी	(८९८)	,,
१३.	,, भत्तूजी	(८९९)	,,
१४.	,, छगनांजी	(९००)	राजलदेसर
१५.	,, सोहनांजी	(९०१)	सरदारशहर
१६.	,, पानकंवरजी	(९०२)	,,

तेरापंथ में एक साथ १६ दीक्षा होने का वह सर्वप्रथम अवसर था।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वीश्री नानूजी दीक्षित होने के बाद आठ महिने मातुःश्री छोगांजी के सान्निध्य में रही। फिर साध्वीश्री केशरजी (६२९) 'तारानगर' और साध्वीश्री प्रतापांजी (७८६) 'बीदासर' के सिंघाड़े में विनम्रता पूर्वक रही। उनमें विवेक, ऋजुता, व्यवहार-कुशलता और सेवा-भावना थी। सभी साध्वियों के साथ वे मिलजुल कर रहतीं। एक बार वे साध्वी किस्तूरांजी को कन्धों पर उठाकर लाई। आचार्यप्रवर ने उन्हें दो बारी की बख्शीश की। असात-वेदनीय के उदय से सतत उदर-व्याधि रहने पर भी वे बड़ी सहिष्णुता से सहन करतीं।

(निबन्ध से)

उन्होंने साधु-चर्या में जागरूक रहकर ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय एवं तपस्या के द्वारा अपने जीवन का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। अनेक थोकड़े कण्ठस्थ किये। वे प्रतिदिन एक घंटा ध्यान करतीं और सात घंटे मौन रखतीं। स्वाध्याय का नियमित क्रम चलता। समूचे जीवन में लगभग साढ़ा सैंतीस लाख पद्यों का स्वाध्याय किया। अन्तिम चार वर्ष विशेष रूप से उसमें संलग्न रही। उन्होंने जो तप किया वह इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५
१९४१	२३८	३६	९	४

। एक बार अढाई-सौ प्रत्याख्याण और

एक वार कर्मचूर तप किया। तप के कुल दिन २५८१ जिनके ७ वर्ष, २ महीने और एक दिन होता है।

(ख्यात)

३. उनका साधनाकाल साधिक उनचालीस वर्षों का रहा। उसमे तीस साल साध्वीश्री प्रतापांजी (७८६) 'वीदासर' के सिंघाड़े मे रही। अन्त में सात घंटो के चौविहार अनशन से सं. २०२५ मृगसर कृष्णा ६ को (रात के १ बजकर २० मिनट पर) जसोल मे समाधिपूर्वक पंडित-मरण प्राप्त किया।

(ख्यात)

८६१।८।१६६ साध्वीश्री झमकूजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १६८५-१६६७)

दोहा

वास शहर सरदार में, पारख गोत्र प्रतीत।
झमकू ने गाये सरस, संयम-गीत पुनीत[1] ॥१॥

लगभग बारह वर्ष से, नैय्या पहुंची पार।
खिल पाया मानस-कमल, मिल पाया उपहार[2] ॥२॥

१. साध्वी श्री झमकूजी की ससुराल सरदारशहर (स्थली) के पारख (ओसवाल) गोत्र में और पीहर सुजानगढ़ के दुधोड़िया गोत्र में था।

(ख्यात)

उनके पति का नाम चांदमलजी था।

(साध्वी-विवरणिका)

झमकूजी ने पति वियोग के बाद सं० १६८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री नानूजी (८६०) के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात)

२. वे लगभग १२ वर्ष संयम-पर्याय में रहकर सं० १६६७ फाल्गुन शुक्ला ५ को लाडनूं में दिवंगत हुई।

(ख्यात)

उस समय लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' में साध्वी श्री ज्ञानांजी (७६५) 'पीतास' थी।

८६२।८।१६७ साध्वीश्री केशरजी (रतनगढ़)

(संयम-पर्याय सं० १६८५-२०२८)

छप्पय

'केशर' केशरवत् खिली भरकर सुरभि विशेष।
गणवन-क्यारी में मिली शोभित हुई हमेश।
शोभित हुई हमेश वास वसुगढ़ में गाया।
होने से वैराग्य संयमी-जीवन पाया।
संयम-श्री दाता मिले श्रीकालू करुणेश[1]।
'केशर' केशरवत् खिली भरकर सुरभि विशेष ॥१॥

कुशल बनी हर कार्य मे सीखा विनय-विवेक[2]।
किया सिंघाड़ा सुगुरु ने पटुता क्षमता देख।
पटुता क्षमता देख सती पुर-पुर में जाती।
धर गुरुआज्ञा शीप ज्ञान की अलख जगाती।
संवत्सर छत्तीस तक दिया धर्म-उपदेश[3]।
'केशर' केशरवत् खिली भरकर सुरभि विशेष ॥२॥

उपवासादिक तप किया विगयादिक परिहार।
ध्यान-मौन स्वाध्याय का लाभ लिया हरवार[4]।
लाभ लिया हरवार व्याधि रहती थी तन में।
विकट जलोदर रोग हुआ अतिम जीवन में।
सहती समताभाव से समझ कर्म कृत क्लेश।
'केशर' केशरवत् खिली भरकर सुरभि विशेष ॥३॥

सोरठा

किये विविध उपचार, फिर भी स्वस्थ न हो सकी।
अन्तिम समय विचार, आजीवन अनशन किया ॥४॥

आठ-वीस की साल, फाल्गुन शुक्ला सप्तमी।
सुर-शय्या सुकुमाल, पाई गंगाशहर में[5] ॥५॥

१. साध्वीश्री केशरजी रतनगढ़ (स्थली) वासी वालचंदजी वोथरा (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १६६० फाल्गुन शुक्ला ८ को हुआ।[1] माता का नाम हुलासीदेवी था। केशरजी का विवाह रतनगढ़ में ही नेमीचदजी वावेल के साथ कर दिया गया।

गृहस्थ जीवन मे रहती हुई भी वे धार्मिक अभिरुचि रखती और सहज समता भाव से अपना जीवन व्यतीत करती। कालान्तर से उनके पति का देहान्त हो गया जिससे उन्हे गहरी चोट लगी। फिर भी उन्होने धैर्य नहीं खोया और अपने जीवन को धर्माचरण मे लगा दिया। साधु-साध्वियो के सान्निध्य से विरक्ति की ओर अग्रसर हो गईं।

(निवन्ध से)

केशरजी ने पति वियोग के वाद सं० १६८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री नानूजी (८६०) के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात)

२. साध्वीश्री साधु-चर्या मे कुशल वनकर विद्या, विनय और विवेक का विकास करती रही। कला के क्षेत्र मे उन्होने अच्छी प्रगति की। रजोहरण वनाना आदि प्रत्येक कार्य मे सिद्ध-हस्त वन गई। आचार्यप्रवर के उपयोग में आने वाला रजोहरण प्राय: वे ही वनाती थी।

उनका व्यवहार कोमल और वाणी मे मधुरता थी। हर व्यक्ति के साथ तालमेल विठाने की उनमे अच्छी क्षमता थी। जव कोई साधु-साध्वियो का सिंघाड़ा आता तव वे इतनी तन-मन से भक्ति करतीं कि आगन्तुकों का दिल प्रसन्न हो जाता।

गुरु-दृष्टि की आराधना मे वे वहुत जागरूक थी। उन्हें जो भी संकेत मिलता उसे पूरा किये विना विराम नही लेती। कई वार निर्णीत क्षेत्र तक पहुंचने के लिए शरीर साथ नही देता तो भी एक-एक मील चलकर मंजिल तक पहुंच जाती।

(निवंध से)

३. स० १६६२ मे आचार्यश्री कालूगणी ने उनका सिंघाड़ा वनाया। वे ३६ साल तक विहार कर जन-जन को धार्मिक उद्‌वोधन देती रही। उनके

---

१. ख्यात मे जन्म सं० १६६२ है।

चातुर्मासो की सूची इस प्रकार है :—

सं० १९९३	ठाणा	५	पहुना[1]
सं० १९९४	,,	४	भीनासर
सं० १९९५	,,	५	बागोर
सं० १९९६	,,	४	जोवनेर
सं० १९९७	,,	५	नोखामंडी
सं० १९९८	,,	५	कांकरोली
सं० १९९९	,,	६	नोहर
सं० २०००	,,	६	चाणोद
सं० २००१	,,	६	सिसाय
सं० २००२	,,	६	लूनकरणसर
सं० २००३	,,	६	केलवा
सं० २००४	,,	६	बाव
सं० २००५	,,	६	कालू
सं० २००६	,,	६	फतेहपुर
सं० २००७	,,	६	कटालिया
सं० २००८	,,	६	बीदासर
सं० २००९	,,	६	टाडगढ़
स० २०१०	,,	४	सिसाय
सं० २०११	,,	६	राजगढ़
स० २०१२	,,	६	तारानगर
सं० २०१३	,,	६	रतनगढ़
सं० २०१४	,,	६	फतेहपुर
सं० २०१५	,,	६	व्यावर
स० २०१६	,,	२९	लाडनू 'सेवाकेन्द्र'
सं० २०१७	,,		राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०१८	,,	६	देवगढ
स० २०१९	,,	५	सरदारशहर

१. भाद्रव महीने मे पूज्य कालूगणी का शरीर अधिक अस्वस्थ हो गया। उस समय वे गुरु-सेवा में गंगापुर पहुची और कुछ दिनो तक ठहरी।

सं० २०२०	ठाणा ५	नाथद्वारा
सं० २०२१	,, ५	नोखामंडी
सं० २०२२	,, ११	सरदारशहर (सा० पानकंवरजी (६०२) 'सरदारशहर' का संयुक्त)
सं० २०२३	,, ८	राजलदेसर (सा० सुखदेवांजी (७२४) 'राजलदेसर' का संयुक्त)
सं० २०२४	,, ५	पींपाड
सं० २०२५	,, १०	जसोल (सा० परतापांजी (७८६) 'बीदासर' का संयुक्त)
सं० २०२६	,, ५	आपाढ़ा
सं० २०२७	,, ५	पचपदरा
सं० २०२८	,,	राजलदेसर (सा० खूमांजी (७००) 'लाडनूं' के साथ)

(चातुर्मासिक तालिका)

४ साध्वीश्री अपने दैनिक कार्यक्रम को नियमित रखती हुई त्याग-तपस्या, स्वाध्याय-ध्यान आदि द्वारा संयमी-जीवन में उत्तरोत्तर निखार लाती रही।

नियम :—

१. सं० २०१७ से तीन विगय के अतिरिक्त खाने का त्याग।
२ प्रतिदिन नौकारसी करना।
३. प्रतिदिन पांच घंटे मौन रखना।
४ प्रतिदिन दो सौ गाथाओं का स्वाध्याय करना।
५. प्रतिदिन पन्द्रह मिनिट ध्यान करना।

तपस्या :—

उपवास	२	३	४	६
१२७१	४६	१	३	१

तप के कुल दिन १३८४ जिनके ३ वर्ष, १० महीने और ४ दिन होते है।

(ख्यात)

५. साध्वीश्री के हार्ट और शरीर-कम्पन की व्याधि पहले से ही चल रही थी। जीवन के अंतिम दिनो मे जलोदर जैसी भयानक बीमारी और हो गई। फिर भी वे बहुत हिम्मत रखती और वेदना को समभाव से सहन करती। सं० २०२८ मे उनका चातुर्मास राजलदेसर मे था। चातुर्मास के पश्चात् वे गुरु-दर्शनार्थ गंगाशहर पहुंची। वहां बीमारी ने घेराव-सा कर लिया। विविध उपचार करने पर भी शरीर स्वस्थ नही हो सका। आखिर १७ मिनिट के अनशन से स० २०२८ फाल्गुन शुक्ला ७ को गगाशहर में स्वर्ग-गमन कर दिया।

(निबंध से)

साध्वीश्री ने जिस सिंहवृत्ति से सयम स्वीकार किया था उसी वृत्ति से निर्वहन कर अपने जीवन को तपे हुए सोने की तरह चमका दिया।

आचार्यश्री तुलसी ने उनकी स्मृति मे एक दोहा फरमाया—

रग-रग संयम में रम्यो, वो केशरिया रंग।
सचमुच केशरजी सती, जीत्यो जीवन जंग॥

(तुलसीगणी की ख्यात)

साध्वीश्री अशोकश्रीजी (१३००) 'सरदारशहर' उनकी संसारपक्षीया भानजी थी। उन्होने साध्वीश्री की गौरव-गाथा को अभिव्यक्त करते हुए एक निबंध लिखा जो जैन भारती वर्ष २८, अक १ मे प्रकाशित है।

साध्वीश्री इन्द्रूजी (८८४) एवं साध्वीश्री किस्तूरांजी (८८५) 'राजलदेसर' आदि ने उनकी अच्छी परिचर्या की एवं चित्त-समाधि मे विशेष सहयोग किया। साध्वी केशरजी के दिवगत होने के बाद आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी किस्तूरांजी का सिंघाड़ा बना दिया।

८९३।८।१६८ साध्वीश्री वृद्धांजी (छापर)

(संयम-पर्याय सं० १९८५-१९९४)

दोहा

'छापर' मालू गोत्र में, वृद्धां की ससुराल।
दीक्षित पति जयचंद सह, हो पाई खुशहाल[1] ॥१॥

सात साल कर साधना, चली गई सुरवास।
निकला है 'मोतीझरा', आयु आ गई पास[2] ॥२॥

१. साध्वीश्री वृद्धांजी की ससुराल छापर (स्थली) के मालू (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर श्रीडूंगरगढ के सेठिया गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९६५ आश्विन महीने मे हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम गोविन्दरामजी था।

(सा० वि०)

वृद्धाजी ने २१ वर्ष की अवस्था मे अपने पति जयचंदलालजी (४६८) के साथ सं० १९८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओ का वर्णन साध्वी श्री नानूजी (८९०) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२ साध्वीश्री सात साल संयम-पर्याय मे रही। अंत में मियादी बुखार होने से स० १९९४ (चैत्रादि क्रम से १९९५) ज्येष्ठ शुक्ला १ को चाड़वास मे दिवंगत हो गई।

(ख्यात)

वे उस समय साध्वीश्री जड़ावांजी (४८७) 'बोरावड़' के सिंघाड़े मे थी।

जड़ावांजी महासती साथ में, वृद्धांजी सुखकारी।

(छवील मुनि आख्यान ढा० ८ गा० १२)

८९४।८।१६६ साध्वीश्री सुन्दरजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९८५-१९८५)

१९ दिन संयम का पालन किया

दोहा

सुन्दर ने संयम लिया, सुन्दर किया विचार[1]।
हुआ दिवस उन्नीस से, उनका बेडा पार[2] ॥१॥

१. साध्वीश्री सुन्दरजी की ससुराल सरदारशहर (स्थली) के डागा (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही बोथरा गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९६४ मे हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम इन्द्रचदजी, माता का संतोकीवाई और पति का सागरमलजी था।

(सा० वि०)

सुन्दरजी ने पति वियोग के वाद २१ वर्ष की अवस्था मे स० १९८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से सरदारशहर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री नानूजी (८९९) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. सं० १९८५ आषाढ कृष्णा ९ को बीदासर मे उनका स्वर्गवास हुआ। उन्नीस दिन का सयम पालन कर अपना कल्याण कर लिया।

(ख्यात)

साध्वीविवरणिका मे स्वर्गवास-तिथि आषाढ कृष्णा १० है।

८६५।८।१७० साध्वीश्री मनोरांजी (मोमासर)

(संयम-पर्याय १९८५ वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री मनोरांजी का जन्म पड़िहारा (स्थली) के सुराणा (ओसवाल) परिवार में सं० १९६४ कात्तिक शुक्ला १५ को हुआ। उनके पिता का नाम नेमीचन्दजी और माता का दड़कीबाई था। मनोरांजी के मन में बचपन से ही वैराग्य भावना थी पर केश-लुंचन का भय-सा लग रहा था। जब वे ग्यारह वर्ष की हुई तब उनकी इच्छा न होते हुए भी पारिवारिक जन ने उनका विवाह मोमासर निवासी भोपतरामजी (रूपचंदजी के पुत्र) सेठिया के साथ कर दिया।

वैराग्य—शादी के एक साल बाद ही मनोरांजी के पति की मृत्यु हो गई। इस घटना से उनकी भावना इतनी प्रबल हुई कि वे दीक्षित होने के लिए कटिबद्ध हो गई। ससुराल वालो के सम्मुख अपने विचार रखे तो वे इनकार हो गये। कुछ वर्ष वे भावना करती रही। आखिर उन्होंने यह संकल्प कर लिया कि जब तक पूज्य कालूगणी के दर्शन न हो तब तक छाछ-रोटी के अतिरिक्त कुछ नहीं खाऊंगी। एक महीना बीत गया। आखिर उनकी दृढ़ता देखकर श्वसुर ने उनको गुरुदेव के दर्शन कराये। उस दिन उनके तेले की तपस्या थी। अनुनय करने पर आचार्यवर ने उनको साधु-प्रतिक्रमण सीखने का एवं तत्पश्चात् दीक्षा का आदेश दे दिया।

दीक्षा—मनोरांजी ने पति वियोग के बाद २१ वर्ष की अवस्था में सं० १९८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री नानूजी (८६०) के प्रकरण में कर दिया गया है।

साध्वी मनोरांजी दीक्षित होने के पश्चात् एक साल साध्वीश्री सुन्दरजी (८०७) 'लाडनूं' के साथ रही। फिर एक साल गुरुदेव की सेवा में रही। उसके बाद एक वर्ष साध्वीश्री जड़ावाजी (४८७) 'बोरावड़' के सिंघाड़े में रही। तत्पश्चात् ५० वर्षो तक (सं० १९८९ से सं० २०३९ तक) साध्वीश्री हुलासांजी (७५९) 'सिरसा' के सिंघाड़े में रही।

सं० २०४० से बीदासर 'समाधि केन्द्र' में स्थायीवास कर रही है।

८६७।८।१७२ साध्वीश्री सुन्दरजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८५-२००९)

छप्पय

हंसते-खिलते कर दिया जीवन का बलिदान।
सती कुशालां की तरह सुन्दर सती महान्।
सुन्दर सती महान् वीररस भरी कहानी।
सुन लो देकर ध्यान समय पर दी कुर्बानी।
प्रमुख शहर सरदार में उनका वास-स्थान।
हंसते-खिलते कर दिया जीवन का बलिदान॥१॥

दूगड़ कुल की नंदना 'अगर' पिता का नाम।
रमण सदासुख सेठिया सुख-सुविधा आराम।
सुख-सुविधा आराम रंग में भंग पड़ा है।
पति पहुचे परधाम विरति का घन उमड़ा है।
गुरु-करुणा से कर लिया संयम-रस का पान।
हंसते-खिलते कर दिया जीवन का बलिदान॥२॥

एक साल का मिल गया सुखकर गुरुकुल-वास।
आठ साल तक फिर रही सती मनोरां पास।
[illegible]ती मनोरां पास साधना का रस चखती।
[illegible]-आज्ञा पर दृष्टि रात-दिन पूरी रखती।
[illegible]-कुशलता सीखती करती ज्ञान व ध्यान।
[illegible]-खिलते कर दिया जीवन का बलिदान॥३॥

[illegible] बनी हर कार्य में शीतल शांत स्वभाव।
[illegible]रिता मधुरता निर्मल दिल दरियाव।
दिल दरियाव भरा साहस नस-नस में।
[illegible]ममता-भाव इन्द्रियां रखती वश में।
प्रत्याख्यान [illegible] गाती मधुरी तान।
[illegible]ते कर दिया जीवन का बलिदान॥४॥

८९६।८।१७१ साध्वीश्री लिछमांजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८५-२०२०)

दोहा

लिछमां के युग पक्ष का, वास शहर सरदार।
पंच महाव्रत सुगुरु से, लिए वहीं पर धार[1] ॥१॥

पालन करती भाव से, रही वर्ष पैंतीस।
स्वर्ग 'लाडनूं' से गई, साल आ गई बीस[2] ॥२॥

१. साध्वीश्री लिछमाजी की ससुराल सरदारशहर (स्थली) के गधैया (ओसवाल) गोत्र में और पीहर वहीं चंडालिया गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९६४ मे हुआ। (सा० वि० मे १९६५ श्रावण कृष्णा १० है)।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम लालचंदजी, माता का तख्तांबाई और पति का रामलालजी था।

(सा० वि०)

लिछमांजी ने पति वियोग के बाद सं० १९८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री नानूजी (८९०) के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. वे पैंतीस साल संयम का पालन कर सं० २०२० आषाढ़ शुक्ला ३ को लाडनूं में दिवंगत हुईं।

(ख्यात)

उस समय लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे साध्वीश्री छोटाजी (७५२) 'तारानगर' और मनोरांजी (८२६) 'सुजानगढ़' थी।

(चा० ता०)

८९७।८।१७२ साध्वीश्री सुन्दरजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८५-२००९)

छप्पय

हंसते-खिलते कर दिया जीवन का बलिदान।
सती कुशालां की तरह सुन्दर सती महान्।
सुन्दर सती महान् वीररस भरी कहानी।
सुन लो देकर ध्यान समय पर दी कुर्बानी।
प्रमुख शहर सरदार में उनका वास-स्थान।
हंसते-खिलते कर दिया जीवन का बलिदान।।१।।

दूगड़ कुल की नंदना 'अगर' पिता का नाम।
रमण सदासुख सेठिया सुख-सुविधा आराम।
सुख-सुविधा आराम रंग में भंग पड़ा है।
पति पहुंचे परधाम विरति का घन उमड़ा है।
गुरु-करुणा से कर लिया संयम-रस का पान[1]।
हंसते-खिलते कर दिया जीवन का बलिदान।।२।।

एक साल का मिल गया सुखकर गुरुकुल-वास।
आठ साल तक फिर रही सती मनोरां पास।
सती मनोरां पास साधना का रस चखती।
गुरु-आज्ञा पर दृष्टि रात-दिन पूरी रखती।
कला-कुशलता सीखती करती ज्ञान व ध्यान।
हंसते-खिलते कर दिया जीवन का बलिदान।।३।।

निपुण बनी हर कार्य में शीतल शांत स्वभाव।
मिलनसारिता मधुरता निर्मल दिल दरियाव।
निर्मल दिल दरियाव भरा साहस नस-नस में।
मन में समता-भाव इन्द्रियां रखती वश मे।
तप-जप प्रत्याख्यान की गाती मधुरी तान[2]।
हंसते-खिलते कर दिया जीवन का बलिदान।।४।।

अग्रगामिनी बन किया विहरण सोलह साल[१]।
ग्रसित कर गया अन्त में उन्हें अचानक काल।
उन्हें अचानक काल डसा फणधर ने आकर।
प्राण दिया है त्याग वीरता बड़ी दिखाकर।
तंत्र-मंत्र बूंटी-जड़ी ली अनशन को मान।
हंसते-खिलते कर दिया जीवन का बलिदान ॥५॥

सोरठा

दो हजार नौ साल, ग्यारस शुक्ला ज्येष्ठ को।
स्मृतिगत सती कुशाल, उस घटना से हो गई[४] ॥६॥
श्रमणी तीजां आदि, थी उनकी सहयोगिनी।
प्रतिदिन चित्त-समाधि, उनको उपजाती रही[५] ॥७॥

१. साध्वीश्री सुन्दरजी की ससुराल सरदारशहर (स्थली) के सेठिया (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही दूगड गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९६६ कार्त्तिक शुक्ला २ को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम अगरचदजी, माता का मघू बाई और पति का सदासुखजी था।

(साध्वी-विवरणिका)

सुन्दरजी की १६ वर्ष की अवस्था में शादी हुई। उसके चार साल बाद उनके पति का देहावसान हो गया। इस दुर्घटना से सुन्दरजी की भावना में एक नया मोड़ आया और उन्होंने संसार की अनित्यता को समझकर संयम ग्रहण करने का निश्चय कर लिया।

तत्पश्चात् २० साल की अवस्था मे सं० १९८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से सरदारशहर में संयम ग्रहण किया। उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री नानूजी (८९०) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वीश्री दीक्षित होने के बाद एक साल आचार्यश्री कालूगणी की सेवा में रहीं। फिर आठ साल साध्वीश्री मनोरांजी (९७९) 'भिवानी'

के सिंघाड़े मे रहकर विनय, विवेक एवं ज्ञान-ध्यान करती रहीं। उन्होने हस्तकला की अच्छी प्रगति की। कलापूर्ण रजोहरण आदि बनाने पर आचार्यश्री ने उन्हे कई बार पुरस्कृत किया था।

वे गुरु-दृष्टि की आराधना मे निपुण थी। व्यवहार कुशलता, मिलनसारिता, साहस और सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति थी। यथाशक्य स्वाध्याय-जप, त्याग-तपस्या द्वारा अपने जीवन को पवित्र बनाती रही। उनके तप की तालिका इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५
८४१	४७	६	४	२

तथा एक बार अढाई-सौ प्रत्याख्यान किये।

(परिचय-पत्र)

३. स० १९९३ में साध्वीश्री मनोराजी के दिवंगत होने पर आचार्यश्री तुलसी ने उनका सिंघाड़ा बनाया। वे सोलह साल विहरण करती हुई जन-जन को धार्मिक बोध देती रही। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार हैं :—

सं० १९९४	ठाणा ४	नोहर
सं० १९९५	,, ४	भगवतगढ
सं० १९९६	,, ५	छातर
सं० १९९७	,, ५	लूनकरणसर
सं० १९९८	,, ५	देवगढ
सं० १९९९	,, ५	काकरोली
सं० २०००	,, ५	भगवतगढ़
सं० २००१	,, ५	बोरज
सं० २००२	,, ५	रीछेड़
सं० २००३	,, ५	लावा सरदारगढ़
सं० २००४	,, ५	चाणोद
सं० २००५	,, ५	खेरवा
सं० २००६	,, ५	रावलिया बड़ी
सं० २००७	,, ५	मोसालिया
सं० २००८	,, ५	उदासर

सं० २००६   ठाणा ५   पुर

(चातुर्मासिक तालिका)

४. आचार्यश्री ने साध्वीश्री सुन्दरजी का सं० २०१० का चातुर्मास गोगुंदा फरमाया। चातुर्मास के पूर्व वे बड़ी रावलियां में विराज रही थी। ज्येष्ठ शुक्ला १० को रात्रि में सोते समय अचानक एक सांप ने उनके दाहिने हाथ मे डंक लगा दिया। वे जगी और पास मे सोयी हुई साध्वियो को जगाकर बोली—'संभवत' मुझे किसी जहरीले जन्तु ने काट दिया है, पर घबराने की जरूरत नही है, मुझे आराधना तथा चौवसी आदि की गीतिकाएं सुनाओ।'

साध्वियो ने हिम्मत के साथ उक्त गीतिकाएं सुनानी प्रारंभ की। धीरे-धीरे रात्रि व्यतीत हुई। सुबह होते ही बात सारे गांव में फैल गई। डाक्टर, वैद्य आदि आये पर साध्वी सुन्दरजी ने न तो किसी प्रकार की दवा ली और न तंत्र-मंत्र का प्रयोग करवाया। आने वाले सभी उनकी दृढ़ता व आत्म-साहस को देखकर आश्चर्य मे डुबकिया लगाने लगे। साध्वीश्री समचित्त से वेदना को सहती हुई निर्मल भावो मे निमग्न हो गई। शरीर मे क्रमशः जहर फैलता ही गया। सवा सात बजे अन्तिम घड़ियां देखकर साध्वीश्री जड़ावांजी (८४४) 'गंगाशहर' ने उन्हें पूछकर आजीवन अनशन करा दिया। उस उपलक्ष मे अनेक जैन-अजैन लोगो ने उपवास किया। सवा दो बजे ७ घंटो के अनशन से इस नश्वर शरीर को छोड़कर उन्होंने स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया।

इस प्रकार सं० २००६ (चैत्रादि क्रम से २०१०) ज्येष्ठ शुक्ला १० को वड़ी रावलिया मे साध्वीश्री ने समाधि-पूर्वक मरण प्राप्त किया।

(परिचय-पत्र)

तेरापथ धर्म-संघ की सर्वप्रथम साध्वीश्री कुशलांजी अहि के डसने से दिवंगत हुई थी।[1] उसके वाद साध्वी सुन्दरजी विषधर के काटने से स्वर्गस्थ

१. पवर चरण सुध पालतांजी, कुशलांजी ने विचार।
दीर्घपृष्ठ गुदोच मे जी, ते डसियो तिणवार।
खिम्यावत धिन सतियां अवतार ॥ध्रुव०॥
जंत्र-मंत्र-झाड़ा भणी जा, वछ्यो नही तिणवार।
सुध परिणामे महासतीजी, पोहती परलोक मझार ॥खिम्या''''॥

(भिक्खु जश रसायण ढा० ५१ गा० १,२)

हुई और उनकी तरह ही हंसते-हंसते अपने प्राणों का वलिदान कर दिया।

५. साध्वीश्री तीजांजी (१०२०) 'सरदारशहर' अनेक वर्षों तक उनके साथ रही। उन्होने तथा साथ की अन्य सभी साध्वियों ने साध्वी सुन्दरजी को शेप तक वहुत सहयोग दिया।

साध्वीश्री तीजांजी ने साध्वी सुन्दरजी की स्मृति मे एक गीतिका वनाई। उसमें उनकी अन्तिम समय की संक्षिप्त झांकी प्रस्तुत की।

सं० २०१० का चातुर्मास तीजांजी ने ५ ठाणो से गोगुंदा में किया। फिर मर्यादा-महोत्सव के समय आचार्यश्री तुलसी ने उनका स्थायी सिंघाड़ा कर दिया।

८६८।८।१७३ साध्वीश्री लाधूजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९८५, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री लाधूजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के बांठिया (ओसवाल) परिवार मे सं० १९६९ चैत्र शुक्ला पंचमी को हुआ। उनके पिता का नाम नथमलजी और माता का गोरां बाई था। दादीजी की सत् प्रेरणा से लाधूजी के हृदय मे वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हो गए। लेकिन उनके पिता उन्हें दीक्षा देने के लिए तैयार नही हुए। उन्होने कहा—'अभी तो नहीं, शादी होने के बाद तुम दीक्षा ले सकती हो।'

लाधूजी तेरह साल की हुई तब उनके पिताजी ने स्थानीय करणीदान जी दफ्तरी के सुपुत्र डालचंदजी (डूंगरमलजी) के साथ उनका विवाह कर दिया।

वैराग्य—लाधूजी के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि उन्हे ऐसा संयोग मिला कि जिनके साथ उनका विवाह हुआ उनके मन मे पहले से ही दीक्षा की तीव्र अभिलाषा थी, किन्तु वे अपनी माताजी के आग्रह को नही टाल सके। अतः उन्हे शादी करनी पड़ी। व्यक्ति का दृढ़ संकल्प अवश्य फलित होता है, यह धारणा विवाह के बाद आन्तरिक भावना का भेद खुलने पर यथार्थ हो गई। दोनों को अत्यन्त हर्षानुभूति हुई और वे समय की प्रतीक्षा करने लगे।

दीक्षा की प्रबल उत्कंठा होने पर भी परिवार वालो की अनुमति नही मिली जिससे उन्हे चार साल तक गृहस्थवास मे रहना पड़ा। आखिर उनके दृढ निश्चय के आगे सबको झुकना पड़ा और सहर्ष दीक्षा की स्वीकृति प्रदान कर दी गई।

दीक्षा—लाधूजी ने १६ वर्ष की अवस्था (नाबालिग) मे अपने पति डूगरमलजी के साथ सं० १९८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी के कर-कमलो से सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री नानूजी (८९०) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

उनकी संसारपक्षीया छोटी बहिन साध्वीश्री संतोकांजी (९२०)

'सरदारशहर' ने सं० १९८८ मे और देवरानी साध्वीश्री पानकंवरजी (९५३) 'सरदारशहर' ने सं० १९९१ मे दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

शांत सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के बाद २३ साल गुरु-कुलवास मे रही। फिर २१ साल साध्वीश्री सोनांजी (६७४) 'सरदारशहर' के साथ रही। साध्वीश्री सोनांजी के दिवंगत होने के बाद सं० २०२८ पड़िहारा में आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी लाधूजी के सिंघाड़े की नियुक्ति की, किंतु साध्वी सतोकांजी की अस्वस्थता के कारण उन्हे २ साल रतनगढ़, २ साल राजलदेसर और २ साल सरदारशहर 'चिकित्सा-केन्द्र' मे रहना पडा।

तत्पश्चात् पैर की हड्डी ब्रेक होने के कारण आचार्यप्रवर ने उन्हें बीदासर समाधि-केन्द्र मे भेज दिया। वहां वे छह साल से स्थायी वास कर रही है।

शिक्षा—उन्होने क्रमशः हजारो पद्य कंठस्थ कर लिये।

आगम—दशवैकालिक, नंदी।

थोकड़े—चार प्रकार के पच्चीस बोल, पाना की चरचा, तेरहद्वार, लघुदंडक, बावनबोल, इक्कीसद्वार, कर्मप्रकृति, गतागत, संजया, गुणस्थान-द्वार, हेमराजजी स्वामी के पच्चीस बोल, हरखचंदजी स्वामी की चर्चा, गमा, सात सौ गाथाओ की लड़ियां, भ्रमविध्वंसन की हुंडी आदि।

व्याख्यान—रामचरित्र, मुनिपत, शालिभद्र आदि।

स्तुति-प्रधान—चौबीसी, आराधना, शील की नौ बाड़, साधु-वंदना, स्वामी भीखणजी का स्मरण एवं विघ्न हरण आदि गीतिकाएं।

वाचन—आगम-बत्तीसी का चार बार तथा अन्य ग्रन्थों के ५१ हजार पृष्ठो का वाचन किया।

तपस्या—उनके सं० २०४१ तक के तप का विवरण इस प्रकार है:—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९
३०२१	७१	९	५	२	१	१	१	१

। अढ़ाई-सौ प्रत्याख्यान १ बार, दस प्रत्याख्यान २१ बार, आयम्बिल ८१, आयम्बिल के तेले २५।

कला—साध्वीश्री सोनांजी के सान्निध्य मे रहने से साध्वी लाधूजी को मां का सा प्यार और वात्सल्य मिला। उनकी सत्प्रेरणा से उन्होने सिलाई-

रंगाई आदि में पूर्ण कुशलता प्राप्त की।

साधना—साध्वीश्री प्रतिदिन एक हजार गाथाओं का स्वाध्याय, दो घंटे मौन और एक घंटे ध्यान करती है।

२१ वर्षों से प्रतिवर्ष नमस्कार महामंत्र या चौबीस तीर्थंकरों का सवा लाख का जाप करती है।

दस साल तक शीतकाल में एक पछेवड़ी से अधिक वस्त्र ओढ़ने के काम में नहीं लिया।

सेवा—साध्वीश्री में शासन-निष्ठा, विनय-शीलता एवं सेवा-भावना का विशेष गुण है। उन्होंने तपस्विनी साध्वी प्यारांजी (७७८) 'पुर' की प्रथम तथा दूसरी लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप आदि में अच्छी परिचर्या की। वयोवृद्धा साध्वी सोनांजी (६७४) 'सरदारशहर' की २१ वर्षों तक सेवा की। अन्य रुग्ण, नवदीक्षित साध्वियों की सेवा का भी काम पड़ा।

पुरस्कृत—आचार्यश्री ने सेवादि कार्य के उपलक्ष मे उन्हें कई बार सावधिक वारी के कार्य तथा कल्याणक (परठना) आदि की बख्शीश की।

संस्मरण

सं० १९९४ में आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास बीकानेर में था। साध्वी लाधूजी गुरुकुल-वास मे थी। एक दिन सन्ध्या के समय वे गांव के बाहर शौचार्थ गई। वहां एक मुर्दे की जलती हुई राख दिखाई दी जिससे उनके शरीर मे उपद्रव हो गया। वे भिक्षु-भिक्षु कहती हुई बेहोश हो गई। साथ की साध्वियां उन्हें लेकर स्थान पर आई। वहां साध्वी-प्रमुखा झमकूजी ने रात के १२ बजे तक उन्हें सात वार विघ्न हरण की ढाल सुनाई जिससे उपद्रव कुछ शांत हुआ। उसके बाद तीन दिन तक आयम्बिल करवाये जिससे वे पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गई।

यह था तपस्वी मुनियों के स्मरण एव तप का प्रभाव।

(परिचय-पत्र)

८९१।८।१७४ साध्वीश्री भत्तूजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८५-२०३७)

छप्पय

भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर।
मूर्त्तरूप वैराग्य की भक्तिभरी तस्वीर।
भक्तिभरी तस्वीर नीर निर्झर सम निर्मल।
शीतल शांत समीर धीर धरणी सम अविचल।
यशस्विनी की ख्याति का दीर्घ द्रौपदी-चीर।
भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर ॥१॥

उभयपक्ष परिवार का वास शहर सरदार।
दूगड़, बोरड़ गोत्र में जुड़े स्नेहमय तार।
जुड़े स्नेहमय तार समय सर्वोत्तम आया।
हुआ विरति-विस्तार रमण सह संयम पाया।
शरण मिली गुरु-चरण की जाग उठी तकदीर।
भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर ॥२॥

साल पचासी ज्येष्ठ की श्रेष्ठ चांदनी चौथ।
सोलह दीक्षा साथ में हुआ बडा उद्योत।
हुआ बड़ा उद्योत संघ में भत्तू आई[१]।
कर गुरुकुल में वास सुगुरु की सेवा पाई।
पीती शिक्षा-साधना का पौष्टिक गोक्षीर।
भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर ॥३॥

पुस्तक-विद्या से अधिक पाया अनुभव-ज्ञान।
सीखा विनय-विवेक सह सेवा-मंत्र महान।
सेवा-मंत्र महान संघ में निष्ठा भारी।
पूर्ण समर्पण-भाव बड़ी गुरु से इकतारी।
समता-क्षमता सरलता मृदुता-धैर्य-कुटीर।
भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर ॥४॥

अग्रगामिनी पद दिया करके गुरु ने गौर।
सभी दिशाओं में सती घूमी चारों ओर।
घूमी चारों ओर दीर्घ यात्रा कर पाई।
जन-जन में अध्यात्म-भाव गहरे भर पाई।
खुश उनके व्यक्तित्व से सभी गरीब-अमीर[३]।
भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर ॥५॥

दोहा

संस्मरणों की सरसतम, लम्बी सूची एक।
उनमें से कुछ एक का, करता हूं उल्लेख[४] ॥६॥

छप्पय

केन्द्रित किया विराग में चिंतन और दिमाग।
विगय कड़ाई मुख्यतः वस्तु सेलड़ी-त्याग।
वस्तु सेलड़ी-त्याग द्रव्य तेरह दिन भर में।
चौथ-छठ-भक्तादि मास तक तप ऊपर में।
तप दस-प्रत्याख्यान की खींची बड़ी लकीर[५]।
भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर ॥७॥

दोहा

घोर व्याधि के समय भी, रहती बन चट्टान।
तप-जप-औषध से निरुज, बनती सती सुजान[६] ॥८॥

कर्मशील श्रमशील थी, हस्तकला में छेक।
पाई है प्रतिलिपि-कला, लिखकर ग्रंथ अनेक[७] ॥९॥

शासन-सेवा के लिए, रहती थी सन्नद्ध।
पालन गुरु-आदेश का, करती हो कटिबद्ध[८] ॥१०॥

छप्पय

यात्राओं में सुगुरु की रही प्रायशः साथ।
प्रोत्साहित करते उन्हें समय-समय गणनाथ।
समय-समय गणनाथ गुणी का गण में आदर।

सती स्वयं को धन्य मानती गुरु-सेवा कर।
सावधान हर कार्य में रहती बन गम्भीर[९]।
भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर ॥११॥

दोहा

दीक्षा गुरु-आदेश से, दे पाई है एक।
सती नाम पद्मावती, लिखे ख्यात में लेख[१०] ॥१२॥

छप्पय

सती नगीना आदि का मेल मिला अनुकूल।
तालमेल अच्छा रहा खिले रसीले फूल।
खिले रसीले फूल सभी का फूला सीना।
शिक्षा दे अनमोल स्वर्ण में जड़ा नगीना।
जीवन के आधार वे वाक्य बने अक्सीर[११]।
भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर ॥१३॥

सेवा 'सेवा-केन्द्र' की करने को सोल्लास।
सुखदेवां सह आ गई चंदेरी में खास।
चंदेरी में खास आश ले गुरु-सेवा की।
हुई न पूरी प्यास निहारी कुछ दिन झांकी।
चली ब्रेन हेमरेज से सहसा छोड़ शरीर।
भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर ॥१४॥

मिला भाग्य सौभाग्य से गुरु का शुभ संयोग।
मंगलमय दीपक जले सब ही फले प्रयोग।
सबही फले प्रयोग सभा स्मृति में हो पाई।
गद्य-पद्य रच सद्य सुगुरु ने गरिमा गाई।
धन्या-पुण्या पा गई भव-सागर का तीर।
भाग्यवती भत्तू सती सचमुच एक नजीर ॥१५॥

दोहा

सती नगीना ने लिखा, सुन्दर एक निबंध।
खींचा चम्बक रूप से, भत्तू-चित्र अमंद[१२] ॥१६॥

१. साध्वीश्री भत्तूजी का जन्म वि. सं. १९७२ चैत्र शुक्ला चतुर्थी को सरदारशहर (बीकानेर संभाग) के एक धर्म-निष्ठ परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम शोभाचंदजी दूगड़ (ओसवाल) और माता का चुन्नी देवी था। चार भाइयों के बीच एक ही लाडली बहिन होने से उनका पालन-पोषण बड़े लाड-प्यार से हुआ। जन्म-जात संस्कारों से उनमें बाल्यकाल से ही शांति, धृति एवं विवेक की झलक दिखाई देने लगी। वे जब तेरह साल की हुई तब तत्कालीन परम्परा के अनुसार वि. सं. १९८५ ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थी को सरदारशहर-निवासी मन्नालालजी बोरड़ के साथ उनका पाणिग्रहण कर दिया गया।

बोरड़-परिवार एक सम्पन्न परिवार था। जिसमें सभी प्रकार की सुख-सुविधा उन्हें प्राप्त हुई, किन्तु पूर्व संस्कार या चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से विवाह के तीन महीनों बाद ही उनकी भावना सांसारिक-सुखों से विरक्त हो गई। वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित होने लगे। साथ-साथ उनके पति मन्नालालजी भी दीक्षा के लिए तैयार हो गये। उन्होंने अपनी विचार-धारा प्रकट की तो पारिवारिक लोग सहमत नहीं हुए एवं ममता का अंचल बिछाने लगे। पर उनके दृढ़ निश्चय के सामने सबको झुकना पड़ा। अन्ततोगत्वा श्रद्धेय कालूगणी के चरणों में उपस्थित हुए। आचार्यवर ने दम्पती की भावना एवं क्षमता को तोलकर दीक्षा की स्वीकृति प्रदान कर दी। दम्पती का मानस उल्लास से भर गया। उन्होंने सभी प्रकार की तैयारी कर ली।

(पुस्तक से)

भत्तूजी ने अपने पति मन्नालालजी (४७०) के साथ सं० १९८५ (चैत्रादि १९८६) ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी के कर-कमलों से सरदारशहर में भागवती दीक्षा स्वीकार की। उस समय भत्तूजी की अवस्था १४ साल की और मन्नालालजी की १७ साल की थी।

(ख्यात)

उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री नानूजी (८९०) 'सरदारशहर' के प्रकरण में कर दिया गया है।

२. साध्वीश्री भत्तूजी को दीक्षित होने के बाद ११ साल गुरु-सेवा में रहने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। गुरुकुल-वास व्यक्तित्व-निर्माण की एक प्रयोगशाला है। सौभाग्यशाली व्यक्ति को ही उसका लाभ मिल सकता है। साध्वी भत्तूजी पूज्यपाद गुरुदेव की सेवा में रहकर साध्वी-प्रमुखा झमकूजी के

सान्निध्य मे अपना जीवन-निर्माण करने लगी।

आचार-विचार में निपुण वनकर उन्होने विनय, विवेक, अनुभव-ज्ञान, हस्त-कौशल, चातुर्य, स्फूर्ति, ऋजुता, मृदुता, समता, सहनशीलता, व्यवहार-कुशलता आदि विशेषताओ को प्राप्त किया। शासन के प्रति निष्ठाभाव, गुरु के प्रति अविच्छिन्न भक्ति उनके नस-नस मे रम गई। सेवा-भावना उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी। वे हर समय गुरु-चरणो मे इस प्रकार समर्पित रहती कि मानो अपना सर्वस्व ही न्योछावर कर दिया हो। गुरुकुल-वास मे लम्वे समय तक रहकर आचार्यवर की असीम कृपा एवं वात्सल्य से वे एक सुयोग्य साध्वी की श्रेणी मे समाविष्ट हो गईं।

३ साध्वीश्री की योग्यता एवं क्षमता को देखकर आचार्यश्री तुलसी ने सं० १९९६ मे उनका सिंघाड़ा बना दिया। साध्वीश्री ने राजस्थान के अतिरिक्त महाराष्ट्र, आन्ध्र, तमिलनाडू, कर्णाटक, गुजरात, कच्छ, मध्यप्रदेश, वगाल, विहार, यू० पी०, पंजाव, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश आदि प्रांतो में विहार किया। उनकी कुल यात्रा लगभग ६० हजार किलोमीटर की हो गई। उनका साहस और आत्म-निर्भरता वड़ी जवरदस्त थी। उनकी मधुर वाणी, मिलनसारिता एवं त्याग-विराग-प्रधान जीवन का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता था। वे जहां भी गईं वहा गुरुदेव के आशीर्वाद से उन्होने अच्छी ख्याति प्राप्त की। धर्म का प्रचार-प्रसार कर जन-जन को उद्‌वोधित किया। और शासन की महती प्रभावना की। उनके चातुर्मास-प्रवासो की तालिका इस प्रकार है :—

सं० १९९७	ठाणा	५	नोहर
सं० १९९८	,,	५	राजनगर
सं० १९९९	,,	५	सूरतगढ़
सं० २०००	,,	५	वीदासर
सं० २००१	,,	५	नाथद्वारा
सं० २००२	,,	५	गोगुन्दा
सं० २००३	,,	५	फतेहगढ़
सं० २००४	,,	५	फलौदी
सं० २००५	,,	५	पालनपुर
सं० २००६	,,	५	हांसी

सं० २००७	ठाणा	४	धूलिया
सं० २००८	,,	५	साकरी
सं० २००९	,,	५	धरनगांव
सं० २०१०	,,	५	शाहदा
सं० २०११	,,	५	जोजावर
सं० २०१२	,,	६	नोहारा
सं० २०१३	,,	५	बालोतरा
सं० २०१४	,,	५	नाभा
सं० २०१५	,,	४	सीतापुर
सं० २०१६	,,	४	जौनपुर
सं० २०१७	,,	५	सैंथिया
सं० २०१८	,,	५	बालोतरा
सं० २०१९	,,	५	,,
सं० २०२०	,,	४	जसोल
सं० २०२१	,,	५	,,
सं० २०२२	,,	५	अहमदाबाद
सं० २०२३	,,	५	चिकमंगलूर
सं० २०२४	,,	५	मद्रास (साहुकारपेट)
सं० २०२५	,,		मद्रास (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २०२६	,,	५	तिंडीवनम्
सं० २०२७	,,	५	कुंभकोणम्
सं० २०२८	,,	५	मद्रास (साहुकारपेट)
सं० २०२९	,,	५	तिरुवण्णामलै
सं० २०३०	,,	५	सिंधनूर
सं० २०३१	,,	५	औरंगाबाद
सं० २०३२	,,	५	टाडगढ़
सं० २०३३	,,	५	लुधियाना
सं० २०३४	,,	१७	सरदारशहर 'स्वास्थ्य-केन्द्र'
सं० २०३५	,,	५	दिल्ली (नया बाजार)
सं० २०३६	,,	५	अमृतसर

स० २०३७ ठाणा लाडनू 'सेवाकेन्द्र'[1]

(चातुर्मासिक-तालिका)

४. साध्वीश्री के जीवन-सस्मरण इतने हृदयग्राही और प्रेरक हैं कि मानव के दिल को झकझोर देते है। कुछ मधुर प्रसंग प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

निरभिमानता

अधिकार और सम्मान पाना एक बात है और पचाना एक बात। यदि व्यक्ति मे पचाने की क्षमता न हो तो अहंकार उभर आता है। आचार्यश्री द्वारा सम्मान मिलने पर भी साध्वीश्री ने निरभिमानता की मशाल प्रस्तुत की।

वि० सं० २००७(चैत्रादि)आषाढ़ महीने मे महाराष्ट्र-यात्रा के अन्तर्गत साध्वीश्री के साथ की साध्वी धनकवरजी (११५४) 'सरदारशहर' ने चौविहार अनशन किया। शासन की महान् प्रभावना हुई। दिवंगत होने से पूर्व उन्होने कहा—'कुछ महीने आपको चार साध्वियो से रहना पडेगा।' पर उस समय पांच होने वाली बात असभव थी। आस-पास मे कोई दूसरा सिंघाड़ा नही था।

धूलिया चातुर्मास मे सहसा आदेश मिला—'वैरागिन पद्मावतीजी की दीक्षा धूलिया मे साध्वी भत्तूजी के पास होगी।' तेरापथ धर्मसघ के संविधानुसार दीक्षा प्राय आचार्य के द्वारा ही होती है। अन्यत्र दीक्षा का आदेश विशेष कृपा का पुरस्कार ही समझना चाहिए। सूचना मिलते ही साध्वीश्री भत्तूजी को १०३ डिग्री बुखार हो गया[2]। उन्होने कहा—'गुरुदेव ने यह कार्य मुझे क्यो सौपा ? मैं इसके योग्य नही हूं।'

उस समय उनके चेहरे पर अह की एक रेखा तक नही उभरी। वे प्रसंगवश कहा करती—'गुरु-कृपा मानकर न फूलना चाहिए और न बेपरवाह रहना चाहिए। बल्कि विशेष जागरूक रहने की अपेक्षा है।

भिक्षा-विवेक

साध्वीश्री गोचरी पूर्ण सजगता से करती एव कल्पाकल्प का पूरा खयाल रखती। भोजन आदि आवश्यक वस्तुओ का संवरण करना उनका सहज-

---

१. उस वर्ष आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास लाडनू (जैन विश्व भारती) मे था।

२ मानो दीक्षा देने की चिंता से शरीर मे गरमाहट आ गई।

स्वभाव बन गया था। साथ की साध्वियो में से कोई कभी एक घर से अधिक आहारादि ले आती तो वे उन्हें कड़ा उलाहना देती हुई कहतीं—'हम साधु है, साधना के लिए खाना है न कि खाने के लिए जीना है। कुछ संयम रखना चाहिए। हमारे जैसी जरूरत है वैसी गृहस्थ (दाता) के भी होती है। भिक्षा लेने मे सावधानी रखने से जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। दाता की भावना बढी-चढी रहती है।'

एक वार आचार्यश्री ने साधु-साध्वियों की भरी परिपद् मे फरमाया—'देखो, भत्तूजी कितने उपयोग से काम चलाती है। सोलह महीने लगातार बालोतरा मे रहने पर भी जनता की भावना-भक्ति ज्यों की त्यों बनी हुई है। लोग कहते हैं—'१६ साल भी रहना पडे तो इनका हमारे पर कोई भार नही है।'

अद्भुत-साहस

चिदम्बरम् तमिलनाडु का एक प्रसिद्ध तीर्थ-क्षेत्र है। पहली वार जब साध्वीश्री वहा पहुंची तो नव-निर्मित छत्रम् (रहने का स्थान) मे ठहरना हुआ। छत्रम् सडक पर था। किन्तु आस-पास मे जैनो का घर नही था। केवल स्थानीय लोग थे। वहां के श्रावको ने रात को एक आदमी के वाहर सोने की व्यवस्था की। साध्वीश्री ने साफ इनकार कर दिया—'हमे आदमी की जरूरत नही है।' रात को करीब साढ़े दस बजे चार-पाच आदमी आये और द्वार खोलने का आग्रह करने लगे। साध्वियो ने द्वार नही खोला। उनका आवेश बढ गया वे जोर-जोर से चिल्लाने लगे। कभी आगे, कभी पिछले द्वार से और कभी ऊपर की छत से नीचे उतरने का प्रयास किया, पर सब निष्फल। सुबह ५ बजे तक उनका प्रयास चलता रहा। भीतर साध्वीश्री द्वारा 'जय भिक्षु, जय तुलसी' की ध्वनि गूजती रही। दरवाजा लोहावरण बन गया। वे निराश होकर लौट गये। यह साध्वीश्री के अपूर्व-साहस का प्रभाव था।

निर्भय

महाराष्ट्र की यात्रा के समय साध्वीश्री एक दिन सड़क के रास्ते से विहार करती हुई जा रही थी। दो साध्विया कुछ आगे, तीन पीछे। बीच मे महाराष्ट्रीय तेरापंथी सभा के मंत्री भैरूलालजी कुचेरिया चल रहे थे। एक सामने से आने वाला अश्वारोही वालक मुह बधा हुआ देखकर घवराता हुआ भागा। 'वे चोर आ रहे है'—पुकारता जा रहा था। उसकी चिल्लाहट सुन-

कर बैलगाडी पर आने वाला ५, ७ व्यक्तियो का दल सावधान हो गया। हाथो मे बड़ी-बड़ी गीली लकडिया लेकर वे लोग कटिबद्ध खडे हो गये। भैरूलालजी आगे बढे, स्थिति को सम्भालते हुए उन्हे साधुचर्या से अवगत कराया। सुनते ही वे गद्‌गद् हो गये। आखे डबडवा गईं और कापते स्वर मे बोले— 'यदि तुम नही होते तो आज हम साधु-हत्या का पातक शिर पर चढा लेते। 'आव देखते न ताव' इन लकडियो से इनके शिर फोड़ डालते। हम महात्माओ के खून के प्यासे बने हुए थे।'

साध्वियो के पहुंचते ही सडक पर खड़े वे व्यक्ति प्रणाम कर क्षमा मागने लगे। उक्त घटना से साध्वी भत्तूजी का हृदय तनिक भी प्रकपित नहीं हुआ।

समभाव

साध्वीश्री ने स० २०१२ का लोहारा (खानदेश) गाव मे चातुर्मास (पाच महीनो का) किया। वहां ओसवालो के एक-दो घर थे। साधुओ का सपर्क कम होने के कारण वे लोग भिक्षा-वृत्ति से पूरे परिचित नही थे। ग्रामवासियो की भक्ति देखकर गुरुदेव ने चातुर्मास फरमा दिया। साध्वी भत्तूजी पन्द्रह-सौ मील की यात्रा कर जब वहा पहुची तब उनकी सहयोगिनी साध्वियां गांव का रंग-ढग देखकर घबरा गईं। उन्होने कहा—'आचार्यवर ने यह कहां चातुर्मास फरमा दिया! साध्वी भत्तूजी ने कहा—'हमने घूम-घूमकर बड़े-बड़े क्षेत्रो मे काफी चातुर्मास किये है, इसलिए यहा विश्राम के लिए छोटा ग्राम दिया है। गाव मे कीचड बहुत है, जिससे हमारे पैरो की गर्मी दूर हो जायेगी।' जब आहार पानी भी पूरा नही मिलता तो साध्वीश्री कहती— 'चलो हमारे सहज ही तपस्या हो जायेगी। कुछ साध्वियो ने एकातर उपवास चालू कर दिया और कुछ ने ज्वार की रोटी से ही काम चलाया। रहने के लिए सिर्फ एक छोटी-सी दुकान थी, उसकी छत भी चूने वाली थी। फिर भी साध्वी भत्तूजी बिल्कुल नही घबराईं। वे साध्वियो को कहती—'इन सब पर ध्यान मत दो, बल्कि यहा के लोगो की भक्ति-भरी भावना को देखो।'

उक्त प्रसग से साध्वीश्री की कष्ट-सहिष्णुता और समभावना स्पष्ट अवगत हो रही है।

दो महीनो बाद चाड़वास के चौथमलजी दूगड़ सपरिवार साध्वीश्री के दर्शनार्थ वहां पहुंचे। कई दिनो तक सेवा मे रहे। उनके द्वारा गाव के लोगो को गोचरी की गति-विधि की जानकारी हुई।

आत्मबल

सं० २०३६ मे साध्वीश्री का चातुर्मास अमृतसर (पंजाव) मे था। आचार्यप्रवर उस वर्ष का चातुर्मास लुधियाना मे सपन्न कर अमृतसर पधारे। साध्वी भत्तूजी वहां पर थी। एक दिन वे एकाएक १७ सीढियो से नीचे गिर गई। जिससे उनकी रीढ़ की हड्डी के निम्न भाग का जोड़ कुछ नीचे खिसक गया। उपचार करने से वे खड़ी तो हो गयी किन्तु दर्द पूरा नही मिटा। आचार्यश्री का वहां से विहार हो गया। कुछ दिन वाद वे विहार करने के लिए तैयार हुईं, डाक्टर ने एक सप्ताह और ठहरने को कहा। साध्वियों ने भी आग्रह किया पर उन्होने सवके आग्रह को ठुकरा दिया। साध्वी नगीनांजी ने कहा—'आप इतनी जल्दी कर रही हैं इसके पीछे राज क्या है? कौन-सा आकर्षण आपको खीच रहा है?'

साध्वीश्री ने कहा—'मुझे इस वर्ष चाकरी (लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' की) करनी है।' नगीनांजी ने फिर कहा—'यह तो गुरुदेव के आदेश पर निर्भर है। आपके चोट लगी हुई है। चाकरी अगले वर्ष भी हो सकती है, क्या फर्क पड़ता है!' उन्होने डटकर जवाव दिया—'तुम्हे मालूम नही, इस साल चाकरी करने में कई फायदे हैं। पहली वात—आचार्यप्रवर का चातुर्मास होगा, उनकी सेवा का लाभ मिलेगा। दूसरी वात—साध्वी सुखदेवाजी (जो साध्वी भत्तूजी की संसार-पक्षीय ननद लगती थी) से मिलना हो जायेगा। तीसरी वात—शिर पर भार है वह उतर जायेगा।' (लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' की चाकरी प्रत्येक सिंघाड़े को अनिवार्य करनी पड़ती है)।

आखिर उनकी भावना के अनुरूप ही हुआ। अर्थात् आचार्यप्रवर ने २०३७ की लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' की चाकरी साध्वी भत्तूजी और सुखदेवांजी की घोषित की और वे निश्चित अवधि (फाल्गुन कृष्णा ४) के पूर्व लाडनूं पहुंच गईं।

यह था साध्वीश्री के आत्मिक वल और दृढ़ संकल्प का परिणाम।

आत्म-विश्वास

सं० २०११ के जोजावर चातुर्मास मे साध्वीश्री ने कहा—'चातुर्मास संपन्न होते ही हमें वम्वई चलना है।' सभी साध्वियो ने मुस्कराते हुए कहा—'मेवाड़ मारवाड़ के सभी साधु-साध्वियों को आचार्यप्रवर ने रोक दिया तब आपको कैसे वुलाया जायेगा?' उन्होंने कहा—'तुम्हें मेरी वात पर भरोसा नहीं होता, फिर देख लेना।' आखिर वैसा ही हुआ कि पूरे मेवाड़, मारवाड़

से केवल साध्वी भत्तूजी को ही वम्बई पहुंचने का आदेश मिला। वे सं० २०११ के मर्यादा-महोत्सव के अवसर पर आचार्यश्री की सेवा मे बंबई पहुंच गई।

इससे यह सिद्ध होता है कि जिस वात का आदमी को अटल विश्वास होता है वह प्रायः फलित हो जाता है।

५. साध्वीश्री का जीवन वैराग्य-रस-पूरित था। साधना साकार वोल रही थी। खाद्य-संयम अनूठा था। रसनेन्द्रिय का निग्रह कर उन्होने विविध प्रत्याख्यान-किये :—

१. सं० १९९५ से आजीवन सेलड़ी की वस्तु तथा कड़ाई-विगय न लेना। उस समय उनकी अवस्था २३ वर्ष की थी।

२. सं० २००७ से आजीवन प्रतिवर्ष २ महीने छह विगय वर्जन करना।

३. सं० २००७ से आजीवन प्रतिवर्ष १० महीने पांच विगय वर्जन करना।

४. सं० २००७ से प्रतिदिन १३ द्रव्यो से अधिक न खाना।

५. सं० २००७ से आजीवन वर्ष भर मे दो महीनों से अधिक मांगी हुई औषध तथा ५ इंजेक्शन से अधिक न लेना।

६. सं० २०११ से आजीवन निर्धारित ५२ द्रव्यो के अतिरिक्त न लेना। जिसमे भी दो साल मे १ द्रव्य कम करते जाना।

७. भड़भूजे की सेकी हुई वस्तु तथा वादाम, किसमिस, काजू आदि न खाना।

साध्वीश्री नियमो का पालन वडी निष्ठा से करती। उन्होंने सं० २००३ का कच्छ प्रदेश के अन्तर्गत फतेहगढ़ मे चातुर्मास किया।[1] उन्हे सेलड़ी वस्तु का परित्याग था। वहा ऐसा प्रचलन था कि गुड के विना कोई सब्जी नही वनाई जाती थी। अतः उन्होने प्राय: फुलके के साथ सब्जी की जगह पापड़ खाकर समूचा चातुर्मास संपन्न किया।

यह उनकी आतरिक वैराग्य-वृत्ति एवं दृढ़ता का द्योतक था।

साध्वीश्री तप का उपक्रम भी सतत चलाती रहती। उन्होने उपवास से ११ दिन तक लडीवद्ध तप तथा ऊपर मे मासखमण की तपस्या की। वारह

---

१. सं० १९५४ मे साध्वी अणचांजी (५१६) 'श्रीडूंगरगढ़' कच्छ प्रांत मे गई थी। उसके लगभग ५० साल वाद साध्वियो मे साध्वी भत्तूजी का सिंघाड़ा वहा गया।

महीने एकांतर और ५१ वार दस-प्रत्याख्यान किये। उनके तप की समग्र सूची इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
६७२	६५	५२	१३	५	२	२	२	२	२

२२	२३	२७	३०
२	२	२	१

(निबंध से)

६. साध्वीश्री गुरु-आस्था और अपने मनोबल से अनेक भीषण बीमारियो को भी निर्मूल कर देती थी।

(क) सं० २०१३ के बालोतरा चातुर्मास मे साध्वीश्री के पैर मे 'कीड़ीनगरा'[1] की भयंकर वीमारी पैदा हो गई, जो भीतर ही भीतर पैर को खोखला बना देती है। आखिर पैर को कटवाना ही पड़ता है। चिकित्सकों ने ऑपरेशन का दिन निश्चित कर दिया। आचार्यप्रवर ने समदड़ी चातुर्मास वाली साध्वियों को निर्धारित दिन तक वहां पहुचने तथा आवश्यकतानुसार वहा रहने का आदेश दे दिया। साध्वीश्री ने आत्म-विश्वास के साथ गुरुदेव के प्रति असीम श्रद्धा भाव से दूसरा प्रयोग चालू किया—तपस्या, ध्यान, स्वाध्याय और जप। फलत: बिना किसी ऑपरेशन के सामान्य उपचारों से बीमारी का उन्मूलन हो गया। यह एक आश्चर्यकारिणी घटना थी।

(ख) वि० सं० २०११ से उनके उदर में नारियल जितनी बड़ी ग्रन्थि वन चुकी थी जिसका प्रकंपन भी बड़ी बेचैनी पैदा कर देता था। डाक्टर लोग आश्चर्य-चकित रह जाते थे कि ये कैसे चलती है ? आयुर्वेदिकों ने कहा—'गुड के साथ दवा लेने से यह गांठ निर्मूल हो सकती है। पर सेलड़ी की वस्तु का परित्याग होने से उन्हे यह मान्य नही हुआ।' उन्होंने कहा—'प्राणो से वडा प्रण होता है। प्रण के मूल्य मे प्राण देना पड़े तो कोई चिन्ता की वात नही।' वे अपने आत्म-वल से आखिर तक ग्रन्थि का भार

१. अंगुली-पूर्व या पैर की तली पर होने वाला एक प्रकार का शोथयुक्त दीर्घ स्थायी रोग। इसकी सूजन मे चिकनाहट एवं एक समानता होती है जो सम्पूर्ण हड्डी को प्रभावित करती है। किन्तु पीव पड़ने के लक्षण नही दीखते। प्राय: उस स्थान से काले-काले दाने निकलते है।

उठाए निर्विघ्न विहरण करती रहीं।

७ साध्वीश्री कार्य-शील और श्रम-निष्ठ थी। प्रत्येक कार्य पूर्ण तन्मयता एवं सजगता से करती। अपना कार्य दूसरे पर डालकर निश्चित बैठना उन्हे बिलकुल पसन्द नही था। वे आराम को हराम मानकर कुछ न कुछ कार्य आगे से आगे चालू रखती थीं। सिलाई, रंगाई, इंजेक्शन लगाना, आदि कला में निष्णात थी। लिपि-कार्य मे कुशल बनकर उन्होने हजारों पद्य लिपिबद्ध किये।

८. साध्वीश्री रोगी, ग्लान, वृद्ध एवं नवदीक्षित साध्वियों की सेवा बड़ी अग्लान-भाव से करती।

साध्वी सूरजकंवरजी (६६४) 'राजगढ़' को बीदासर तक उठाकर लाया गया था, उसमें साध्वी अणचांजी (७७०) 'श्रीडूंगरगढ़' तो मुख्य थी ही, साध्वी भत्तूजी ने भी उसमें भाग लिया। आचार्यप्रवर ने उन्हे पांच बारी की बख्शीश की।

साध्वी सूरजकंवरजी (११६०) 'शार्दूलपुर' उनके सिंघाड़े में लगभग बीस साल रही। वे अधिकांशतः अस्वस्थ रहती। साध्वी भत्तूजी ने उनकी मनोयोग पूर्वक परिचर्या की।

आचार्यप्रवर किसी कारणवश सं० २०२० का पचपदरा मे चातुर्मास घोषित नही कर सके। आषाढ़ का महीना आ गया। तब श्रावक लोग अपने पुराने पोथी-पन्ने लेकर आचार्यप्रवर के चरणो मे उपस्थित हुए। उन्होने अपने गांव की चातुर्मास-सूची प्रस्तुत करते हुए निवेदन किया—'गुरुदेव! हमारा क्षेत्र कभी भी खाली नही रहा, अतः आपको चातुर्मास फरमाना ही होगा।' विनम्रता पूर्वक आग्रह करने लगे। तब आचार्यप्रवर ने फरमाया—'मेरे पास मे कोई सिंघाडे की व्यवस्था नही है। साध्वी भत्तूजी वहां है, यदि वे व्यवस्था कर सके तो चातुर्मास हो सकता है।'

भाइयो द्वारा संकेत मिलते ही साध्वी भत्तूजी ने आचार्यश्री के आदेश को क्रियान्वित कर दिया। फलस्वरूप अपने साथ की साध्वी नगीनांजी (१२१४) 'टाडगढ' और पुष्पावतीजी (१३०८) 'बाव' तथा साध्वी टमकूजी (८५६) 'लाडनूं' के साथ की साध्वी महतावांजी (१०५७) 'सरदारशहर' इन तीन साध्वियो का चातुर्मास पचपदरा हुआ। भत्तूजी ने ४ ठाणों से जसोल चातुर्मास किया। उनमें एक तो स्वयं, दूसरी साध्वी पद्मा-

वतीजी (१२२१) 'शाहदा', तीसरी साध्वी गुलाबाजी[1] (६८५) 'रीणी', चौथी साध्वी सूरजकंवरजी (११६०) 'शार्दूलपुर' थी। उनमे गुलाबांजी तो वृद्ध और सूरजकंवरजी इतनी अस्वस्थ थीं कि वे गांव के बाहर शौचार्थ भी नहीं जा सकती थी। पर साध्वी भत्तूजी ने दोनों साध्वियों की बडी उमंग से परिचर्या की। क्षेत्र को अच्छी तरह संभाला।

इस प्रकार वे संघीय-सेवा के लिए अपनी सुविधाओं को भी गौण कर देती थीं।

(पुस्तक से)

९. साध्वीश्री की हार्दिक गुरु-भक्ति को देखकर आचार्यप्रवर ने अपनी सभी सुदूर यात्राओ मे प्राय उन्हें साथ रखा। उनकी कार्यशीलता, निर्भयता, सेवा-परायणता एवं समर्पण-वृत्ति का समय-समय पर उल्लेख भी किया।

वि० सं० २०११, २०१२ की महाराष्ट्र एवं मध्यप्रदेश की यात्रा सम्पन्न कर आचार्यश्री सरदारशहर पधारे। वहां मंत्री मुनि व अन्य साधु-साध्वियों के बीच आचार्यप्रवर ने फरमाया—'भत्तूजी की सेवा-भावना ने साध्वी-प्रमुखा जेठाजी की याद दिला दी है। यह अनुकरणीय है।'

"भत्तूजी को कही भेजता हूं तो मुझे चिन्तन नही करना पड़ता। उन पर मुझे पूर्ण विश्वास है। वे संतो की तरह विचर सकती है।" (वि० सं० २०१५, लखनऊ)

"भत्तूजी में अच्छा विवेक है। सतियो मे अच्छे संस्कार भरती हैं। दक्षिण मे अच्छा काम किया, जहां भी रहती है लोग धापते ही नही। शोभा अच्छी है।" (वि० सं० २०३२, लाडनू)

सं० २०१७ मे द्विशताब्दी समारोह के अवसर पर आचार्यप्रवर ने तेरापंथ के विशिष्ट सेवानिष्ठ साधु-साध्वियो की गणना की, उनमें एक साध्वी भत्तूजी का भी नामाल्लेख किया।

(निबंध से)

१०. साध्वीश्री ने आचार्यप्रवर के आदेशानुसार सं० २००७ कार्तिक कृष्णा ७ को धूलिया मे साध्वी पद्मावतीजी (१२२१) 'शाहदा' को दीक्षित किया।

उसी दिन आचार्यप्रवर ने हांसी मे १ भाई और ५ बहिनो को दीक्षा

---

१. जो सुखदेवांजी (१००२) 'सरदारशहर' के सिंघाड़े मे थी।

प्रदान की।

(ख्यात)

११. साध्वीश्री भत्तूजी की सहयोगिनी साध्वियां—नगीनांजी (१२१४) टाडगढ़, पद्मावतीजी (१२३१) शाहदा, पुष्पावतीजी (१३०८) 'वाव' जो क्रमशः ३१, ३०, १८ वर्ष लगभग उनके साथ रही थी। उन्होंने साध्वीश्री की अंत तक एकीभूत होकर सेवा की। उन्हें साध्वीश्री के जीवन से अनेक बातें सीखने को मिली।

एक दिन सहयोगिनी साध्वियों के आग्रह से साध्वीश्री ने कुछ शिक्षाएं दी जो इस प्रकार हैं—

(१) गुरु-आज्ञा को प्राण से भी अधिक महत्त्व देना चाहिए।

(२) उपालंभ एवं प्रशंसा मे सम रहने का अभ्यास करना चाहिए, अन्यथा उसका मूल्य नही होता।

(३) नाम और यश की लिप्सा आती है तो साधना का पलिमंथु है।

(४) गुरु के सामने अधिक बोलना अच्छा नही होता, गुरु सर्वेसर्वा होते हैं।

(५) आचार-कुशल व्यक्ति सबको प्रिय लगता है।

(६) परिश्रम करने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

(७) परस्पर का व्यवहार अच्छा बना रहे, इससे शासन की महिमा है।

१२. साध्वीश्री अमित उत्साह से साध्वी सुखदेवांजी (१००२) 'सरदारशहर' सहित लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' में आकर वृद्ध साध्वियों की सेवा में संलग्न हुईं। ज्येष्ठ महीने मे आचार्यप्रवर पावस-प्रवास हेतु वहा पधार गये। साध्वीश्री सेवाकेन्द्र की सेवा के साथ आचार्यप्रवर की उपासना पाकर आनन्द-पुलकित हो उठी। पर उन्हें गुरु-सेवा का केवल एक महीने तक ही लाभ मिला।

वि० सं० २०३७ (चैत्रादि) आषाढ शुक्ला १ को रात के लगभग साढ़े बारह बजे सभवत ब्रेन हेमरेज हो जाने के कारण साध्वीश्री बेहोश हो गयी। महाश्रमणी सध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी आदि साध्विया तत्काल उनके पास पहुंच गईं। आषाढ़ शुक्ला द्वितीया (दिनांक १४ जुलाई, १९८०) को प्रातःकाल श्रद्धास्पद आचार्यप्रवर, युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ आदि साध्वीश्री के पास पधार गये। गुरुदेव ने मंगल पाठ सुनाया। डॉक्टर भी पहुंच गये। किंतु उपचार से कोई लाभ नही हुआ। अन्तिम समय तक साध्वीश्री बेहोश रहीं

और दो वजकर वीस मिनिट पर प्राणान्त हो गया। उसी दिन अन्तिम संस्कार कर दिया गया।

दूसरे दिन जैन विश्व भारती मे 'सुधर्मा-सभा' के बीच स्वर्गीया साध्वी श्री की स्मृति सभा हुई। उसमे अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए आचार्यप्रवर ने फरमाया—'साध्वी भत्तूजी एक मंजी-मंजाई, तपी-तपाई, जमी-जमाई साध्वी थी। उनके जीवन से साध्वियो को प्रेरणा लेनी चाहिए। वे ज्यादा पढ़ी-लिखी नही थी। पूज्य कालूगणी के द्वारा उन्हें दीक्षा प्रदान की गई। मैंने उन्हें अग्रगण्या वनाया। साध्वी भत्तूजी ने वहुत अच्छा काम किया। उनकी वृत्तिया वहुत अच्छी थी। साध्वी-जीवन के लायक उनकी वृत्तियां थी। उनको देखकर हर व्यक्ति के मन मे आता था कि साध्वी-जीवन हो तो ऐसा हो। त्याग और वैराग्य उनके जीवन में साकार था। एक शव्द मे कहूं तो साध्वी-जीवन उनके जीवन मे उतरा हुआ था। उन्होने काफी विहार किया। अनेक क्षेत्रो मे विचरी। जिस क्षेत्र मे भी गई, उस क्षेत्र मे उन्होने शासन की छाप छोडी। साध्वी भत्तूजी यशस्विनी थी। लोग उन्हे याद करते थे। उनके हाथ से एक दीक्षा भी हो गई। जीवन मे किसी-किसी को ही यह अवसर मिलता है। खानदेश की साध्वी पद्‌मावती यहां खड़ी है। मेरे आदेश से इसकी दीक्षा खानदेश मे उन्ही के द्वारा हुई। उनकी सवसे वड़ी विशेपता यह थी कि जहां भी वे गईं, लोगो मे संघीय-भावना भरी। व्यक्तिगत कोई भावना नही, संघीय-भावना। संघ सर्वोपरि है, गणी-गण सवसे आगे है। अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा उनकी कोई नही होती थी। इतने वर्पों से अग्रगण्या थी, किन्तु उनके मन मे कोई अहकार नही था। उनके मन मे यह नही आता था कि मै अग्रगण्या हूं, इसलिए यह काम कैसे करूं, गोचरी कैसे करूं, छोटे-मोटे काम कैसे करूं! यह भावना भत्तूजी मे कभी नही आई। छोटा-वड़ा हर कार्य वे प्रसन्नतापूर्वक करती। भत्तूजी कष्ट-सहिष्णु थीं। छोटी-मोटी वीमारियो को वे गिनती ही नही थी। साध्वी भत्तूजी भाग्यशालिनी थी, जिन्हे इतना सुन्दर अवसर मिला। उनके भावी-जीवन के प्रति हम मगल कामना करते हैं।' आचार्यप्रवर ने अत्यन्त कृपा करके उनके संवंध में निम्नोक्त पद्य फरमाये—

भक्तिश्री उपनाम सती भत्तूजी सुघड सयाणी,
सेवाकेन्द्र लाडनू में सैंतीसे मोजां माणी,

विनयवती वैराग्यवती जागृत विवेक जश पायो,
सुद आषाढ़ दूज दोपहरे काल अचानक आयो ।।१।।

वर्ष इकावन निरतिचार संयम-पर्याय निभाई,
गण-गणपति प्रति पूर्ण समर्पण कमी न राई-पाई,
जठे गई अपणे लाघव स्यूं शासन-छाप जमाई,
कभी न भूले भत्तूजी ने 'तमिलनाड' का भाई ।।२।।

छोटी-बड़ी बीमारयां ने तो ठोकर दे ठुकराती,
हाड-पांसली टूटी तो भी श्रद्धा स्यूं संध जाती,
तीव्र तपोबल सवल मनोवल सेवाभाव सभाती,
सहज खाद्य-संयम पर इचरज धाप-धाप गम खाती ।।३।।

वड़ो भाग्य सौभाग्य दिवंगत गुरुकुल-वास विचाले,
साध्वी-प्रमुखा युवाचार्य आचार्य स्वयं संभाले,
जमालपुरवासी पिस्तांजी रै संथारो चालै,
'तुलसी' महाविदेह की तुलना आज लाडनूं भालै ।।४।।

इस अवसर पर महाश्रमणी साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी, साध्वी सुखदेवांजी, साध्वी नगीनाजी, पद्मावतीजी एवं श्री मन्नालालजी बोरड़ ने भी साध्वीश्री भत्तूजी को अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की। कार्यक्रम के अन्त में चतुर्विध संघ द्वारा चार लोगस्स का ध्यान किया गया।

(विज्ञप्ति संख्या ५०२)

साध्वी नगीनाजी ने साध्वीश्री भत्तूजी के जीवन-संदर्भ मे एक निवन्ध लिखा। उसमे उनके द्वारा साध्वीश्री की बहुमुखी विशेषताओं पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। 'स्वर्गीया साध्वीश्री भत्तूजी' नामक प्रकाशित लघु पुस्तक मे साध्वीश्री के जीवन से संवन्धित प्राय· सामग्री संकलित है।

९००।८।१७५ साध्वीश्री छगनांजी (राजलदेसर)

(दीक्षा सं० १९८५, वर्तमान)

परिचय—साध्वी श्री छगनांजी सरदारशहर (स्थली) निवासी सम्पतरामजी लूनिया (ओसवाल) की पुत्री थी। माता का नाम थानीवाई था। छगनांजी का जन्म सं० १९७१ फागुन शुक्ला २ को हुआ। १३ वें वर्ष के प्रवेश मे उनका विवाह राजलदेसर निवासी आसकरणजी वैद के पौत्र भीमराजजी के सुपुत्र सोहनलालजी के साथ कर दिया गया।

वैराग्य—शादी के दस महीने पश्चात् छगनांजी के पति का देहान्त हो गया। उस दुःखद घटना के तीन दिन वाद सास की, एक महीने वाद मां की तथा छोटी सास और देवर की मृत्यु हो गई जिससे छगनांजी का मन उचटा-उचटा रहने लगा। उस समय उनके पिताजी ने उन्हें छापर में पूज्य कालूगणी के दर्शन कराये। गुरुदेव तथा साधु-साध्वियों के उपदेश से उनके मन में वैराग्य-भावना जागृत हो गई।

दीक्षा—छगनांजी ने पति-वियोग के वाद १४ वर्ष की वय (नाबालिग) में अपनी छोटी वहिन पानकंवरजी (९०२) 'सरदारशहर' के साथ सं० १९८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को सरदारशहर मे आचार्यश्री कालूगणी द्वारा दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओं का वर्णन साध्वी श्री नानूजी (८९०) के प्रकरण में कर दिया गया है।

सहवास—दीक्षित होने के बाद वे चार साल गुरुकुलवास में और फिर साध्वी श्री कमलूजी (८४०) 'राजलदेसर' के सिंघाड़े मे रही। सं० २००७ मे आचार्यश्री ने साध्वी पानकंवरजी (९०२) का सिंघाड़ा बनाया तब से उनके साथ विहार कर रही है।

शिक्षा—उन्होने दशवैकालिक (पांच अध्ययन) तथा वृहत्कल्प सूत्र कंठस्थ किया। सिलाई-रंगाई, रजोहरण बनाना आदि कला सीखी।

तपस्या—उन्होने सं० २०४१ तक इस प्रकार तप किया :—

उपवास	२	३	४
१२४७	१८	२	२

९०१।८।१७६ साध्वीश्री सोहनांजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८५-२०१२)

'४६ वीं कुमारी कन्या'

सोरठा

था आंचलिया गोत्र, जन्म शहर सरदार में।
पढ़ा संयमी स्तोत्र, सती सोहनां ने सरस[1] ॥१॥

उसमें हो लयलीन, रही साल छव्वीस तक।
मिलते पावस तीन, अग्रगामिनी रूप में[2] ॥२॥

हुआ उपद्रव घोर, भीषण वायु-प्रकोप से।
चला न उसका जोर, तप-प्रयोग के सामने ॥३॥

निर्जल दिन दस-च्यार, तप अनशन के हो गये।
नाव लगाई पार, गुरु के पुण्य प्रभाव से ॥४॥

की सेवा उन्मुक्त, पिस्तां श्रमणी ने तदा।
परामर्श उपयुक्त, मिला समय पर 'मान' का ॥५॥

बारह की शुभ साल, दूज फुलरिया आ गई।
चरमोत्सव सुविशाल, दौलतगढ़ में हो गया[3] ॥६॥

१. साध्वीश्री सोहनांजी सरदारशहर (स्थली) के भैरुंदानजी आंचलिया (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १९७२ आश्विन कृष्णा १३ को हुआ।

(ख्यात)

उनकी माता का नाम कानीबाई था।

(साध्वी-विवरणिका)

सोहनांजी ने १४ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १९८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी के द्वारा सरदारशहर में दीक्षा ग्रहण

की। उस दिन होने वाली १६ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री नानूजी (८६०) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात)

इनकी छोटी वहन साध्वी मोहनांजी (६२४) ने सं० १६८८ में दीक्षा ग्रहण की।

२ उन्होने लगभग साढ़े छब्बीस वर्ष सयम की आराधना की। चातुर्मासिक-तालिका मे उनके सिंघाड़वध रूप मे तीन चातुर्मास मिलते हैं :—

सं० १६६३	ठाणा ५	सिसोदा
सं० १६६४	,, ५	टोहाना
सं० १६६५	,, ५	पहुना

(चा० ता०)

३ सं० २०१२ के भीलवाडा मर्यादा-महोत्सव के समय आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी पिस्ताजी (८७२) 'ऊमरा' का चातुर्मास ऊमरा (हरियाणा) के लिए घोषित किया। साध्वी पिस्तांजी ने आचार्यश्री के पास से अपने गंतव्य की ओर विहार किया। रास्ते मे दौलतगढ (मेवाड) पहुंची। वहां उनके साथ की साध्वी सोहनांजी रोगाक्रांत हो गईं। वायु-प्रकोप, चित्त-विभ्रम के कारण दिमाग असतुलित हो गया। उन्हे किसी प्रकार की सुध-वुध नही रही। कभी-कभी इतना आवेग वढ जाता कि उन्हे नियत्रण मे रखना अत्यंत मुश्किल हो जाता। कई वार उन्हे कमरे मे लोह-शृंखला से वांधकर रखना पड़ता। कोई भी उपाय कामयाव नही होता। ऐसी स्थिति देखकर पिस्तांजी आदि साध्वियां चिंतित हो गईं। वे सोचने लगी कि अव क्या करना चाहिए! अन्य कई साध्वियो के सिंघाडे भी विकट परिस्थिति देखकर वहां रुके।

आचार्यश्री उन दिनो विजयनगर मे थे। कासीद द्वारा संवाद मिलने पर आचार्यप्रवर ने सेवा मे समागत सरदारशहर के श्रावक मानमलजी (मानव मित्र) आचलिया को सारी स्थिति वतलाई और फरमाया—ऐसी स्थिति मे साध्वी सोहनाजी को स्थानीय श्रावको, गृहस्थो को एवं तुम वहा जाते हो तो तुम्हे भी संभालना पड सकता है।

मानमलजी आचार्यश्री की दृष्टि को समझकर साध्वियो के दर्शनार्थ दौलतगढ़ पहुंचे। रास्ते मे काफी कठिनाई हुई। लगभग १६ मील पैदल चलना पडा। फिर भी सघ-सेवा को महत्त्व देते हुए वहा पहुचे और

साध्वियों से सारी स्थिति की जानकारी प्राप्त की।

साध्वीश्री पिस्तांजी ने पूछा—'आचार्यश्री ने इनके लिए क्या फरमाया है ?' मानमलजी ने आचार्यश्री के उपर्युक्त शब्द (गृहस्थों को संभालना भी पड़ सकता है) सुनाये। साध्वी श्री ने कहा—'स्थिति दिन-दिन गंभीर होती जा रही है, अतः वैसा करने में क्या आपत्ति है ?'

मानमलजी बोले—'मैं आचार्यश्री के शब्दो को इस अर्थ मे लेता हूं दिवंगत होने के बाद भी गृहस्थों को संभालना पड़ सकता है। अतः मेरा निवेदन है कि जब साध्वी सोहनांजी ने तीन दिनों से भोजन-पानी कुछ भी नही लिया है तो लगता है कि तपस्या की गर्मी से इनका वायु-वेग भी दूर हो जायेगा। आप धैर्य-पूर्वक स्थिति को संभालें और इन्हे सहयोग दें।' साध्वियो ने वैसा ही किया। क्रमशः दस दिन निकल गये। उन्हे होश आया और सजगता पूर्वक अनशन कराने के लिए कहा। उनकी आंतरिक भावना समझकर साध्वी कुन्नणांजी (७२४) 'सरदारशहर' ने उन्हें अनशन करा दिया। चार दिनो बाद अनशन सानंद सम्पन्न हो गया। लोगो ने बड़े उत्साह से उनका चरमोत्सव मनाया।

(मानमलजी के कथनानुसार)

इस प्रकार साध्वीश्री सोहनांजी ने १४ दिन के चौविहार-तप-अनशन से सं० २०१२ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को दौलतगढ मे अपना कार्य सिद्ध कर लिया।

(ख्यात)

साध्वीश्री पिस्तांजी आदि ने उन्हें पूर्णरूपेण सहयोग दिया।

मानमलजी ने वापस बड़ू गांव मे आचार्यश्री के दर्शन कर सारी स्थिति निवेदित की तब आचार्यप्रवर बहुत प्रसन्न हुए और मानमलजी के सत्प्रयास की सराहना की।

९०२।८।१७७ साध्वीश्री पानकंवरजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९८५, वर्तमान)

'४७वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री पानकंवरजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के लूनिया (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७४ भाद्रव शुक्ला द्वितीया को हुआ। उनके पिता का नाम संपतरामजी और माता का थानी वाई था।

वैराग्य—वालिका पानकुमारी जव एक साल की और उनकी वड़ी वहिन छगनांजी चार साल की थी, तव दोनो (छगनांजी और पानकंवरजी) की सगाई राजलदेसर-निवासी आसकरणजी वैद के पौत्र भीमराजजी व वुद्धमलजी के पुत्रों के साथ क्रमशः कर दी गई।

छगनांजी की शादी के पश्चात् उनके पति (सोहनलालजी) का देहान्त हो गया। उसके एक महीने वाद पानकवरजी की मां की मृत्यु हो गई। इन दोनो घटनाओ को देखकर वालिका पानकुमारी का मन सांसारिक सुखों से विरक्त हो गया और वे विवाह के लिए इनकार हो गई। स० १९८५ के छापर चातुर्मास मे उन्होने अपने पिताजी के साथ पूज्य कालूगणी के दर्शन कर दीक्षा के लिए प्रार्थना की तव गुरुदेव ने साधु-प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया।

श्वसुर पक्ष वालो को जव इसकी सूचना मिली तव उनके श्वसुर वुद्धमलजी तहसीलदार, थानेदार तथा काजीजी आदि को साथ लेकर सरदार-शहर पहुंचे। श्वसुरजी ने कमरे में अकेली वालिका को बुलाकर कहा—'वेटी ! तुम जो चाहो वह मांग लो, पर हम दीक्षा नही लेने देंगे।' वालिका ने जवाव दिया—'आप मुझे यह लिखकर दे दे कि मैं जव तक, जीवित रहूंगी तव तक आपके पुत्र की मृत्यु नही होगी।' वे वोले—'ऐसा लिखकर कैसे दिया जा सकता है !' आखिर वालिका की दृढ़ भावना देखकर सभी ने सहर्ष दीक्षा की अनुमति प्रदान कर दी।

दीक्षा—पानकवरजी ने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सगाई छोड़कर अपनी वड़ी वहिन छगनाजी (९७०) 'राजलदेसर' के साथ सं० १९८५ ज्येष्ठ शुक्ला ४ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे

संयम ग्रहण किया। उस दिन होने वाली सोलह दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री नानूंजी (८६०) के प्रकरण में कर दिया गया है।

सुखद-सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के वाद चार साल गुरु-कुल-वास में रहीं। फिर आचार्यश्री कालूगणी ने उनको साध्वीश्री कमलूजी (८४०) 'राजलदेसर' के सिंघाड़े मे भेज दिया। लगभग १८ साल उनके साथ रहकर साध्वी पानकंवरजी ने अपने जीवन का निर्माण किया।

शिक्षा—उन्होंने विद्याध्ययन करते हुए चार सूत्र-दशवैकालिक; उत्तराध्ययन, आचारांग, वृहत्कल्प तथा भ्रमविध्वंसन कंठस्थ किया। कुछ व्याख्यान आदि सीखे। प्रायः आगम-वत्तीसी का वाचन किया।

लिपि-कला—लिपिकला का अभ्यास कर उन्होने कई सूत्र तथा व्याख्यान आदि लिपिवद्ध किये (लगभग दो पुस्तकें)।

विहार—सं० २००७ में आचार्यश्री तुलसी ने उनका सिंघाड़ा कर दिया। उन्होंने धर्म-प्रचार करते हुए अनेक क्षेत्रों में विहरण किया और कर रही हैं। चातुर्मास-स्थानो की सूची इस प्रकार हैं—

सं० २००८	ठाणा	५	ब्यावर (नयाशहर)
सं० २००९	,,	६	नोहर
सं० २०१०	,,	५	अहमदगढ़
सं० २०११	,,	४	राणावास स्टेशन
सं० २०१२	,,	५	डीडवाना
सं० २०१३	,,	५	समदड़ी
सं० २०१४	,,	५	राजनगर
सं० २०१५	,,	५	वोइन्दा
सं० २०१६	,,	७	सुजानगढ़
सं० २०१७	,,		राजनगर (आचार्यश्री की सेवा में)
सं० २०१८	,,	४	सांडवा
सं० २०१९	,,	५	रतनगढ़
सं० २०२०	,,	५	आसींद
सं० २०२१	,,	४	गंगानगर
सं० २०२२	,,	११	सरदारशहर (केसरजी (८९२) 'रतनगढ़' का संयुक्त)

सं० २०२३	ठाणा	४	भादरा
सं० २०२४	,,	५	गांधीधाम
सं० २०२५	,,	५	भुज
सं० २०२६	,,	५	वाव
सं० २०२७	,,	५	सूरत
स० २०२८	,,	५	दौलतगढ
सं० २०२९	,,	५	थामला
स० २०३०	,,	५	टोहाना
सं० २०३१	,,	४	लावा सरदारगढ़
सं० २०३२	,,	५	वीकानेर
सं० २०३३	,,	४	गंगापुर
सं० २०३४	,,	४	कालावाली
सं० २०३५	,,	४	पीलीवगा
सं० २०३६	,,	५	भीलवाड़ा
सं० २०३७	,,	५	राजनगर
स० २०३८	,,	५	कालांवाली
सं० २०३९	,,		सरदारशहर 'स्वास्थ्य केन्द्र'
सं० २०४०	,,	५	छोटी खाटू
सं० २०४१	,,	५	खीवाड़ा
सं० २०४२	,,	५	आपाढ़ा

(चातुर्मासिक तालिका)

तपस्या—स० २०४१ तक उनके तप की तालिका इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८
१३०८	५१	५८	२	२	१	१	१

साधना—वे सं० २०१७ से प्रतिदिन ५ घंटे मौन, एक घंटे से तीन घंटो तक ध्यान और वारह-सौ गाथाओ का स्वाध्याय करती हैं।

संस्मरण

तप का सफल प्रयोग—साध्वीश्री पानकंवरजी ने सं० २०१० का चातुर्मास अहमदगढ़ मे किया। चातुर्मास के पूर्व ज्येष्ठ शुक्ला ५ के दिन धुरी से विहार कर वे पसोड ग्राम मे पहुंची। वहां जो स्थान मिला वह टूटा-फूटा

था और उसमे चूहो के अनेक बिल थे। रात्रि के लगभग चार बजे बिल मे से निकलकर जहरीले जन्तु (सांप) ने साध्वीश्री के पैर के अंगूठे को काट दिया। उस समय वर्षा हो रही थी जो दिन के दो बजे तक नही रुकी। अतः दस घंटे तक कोई उपचार नही हो सका। जिस समय सर्प ने काटा उसी समय साध्वी पानकंवरजी ने साध्वियो को कह दिया कि मुझे किसी विषैले जन्तु ने काटा है। साध्वी छगनांजी ने तत्काल उनके पैर को दो-तीन स्थानों से कस कर बांध दिया। साध्वी रामकंवरजी (११५५) 'सरदारशहर' ने अंगूठे पर हुए फफोले को चीरकर जहर निकाला। दो बजे बाद एक सर्प-चिकित्सक सिक्ख साध्वियों के पास आया। उसने देखते ही कहा—'सर्प ने डंक लगाया है।' फिर उसके कथनानुसार चीरा देकर तीन बार जहरीला खून निकाला। घाव मे दवा भरी पर पैर ठीक नही हुआ। झाड़ा लगाने व मंत्रित सूत्र पहनने के लिए कहा तो साध्वीश्री इनकार हो गई। तीन दिन वहां ठहर कर चातुर्मास-हेतु अहमदगढ़ की ओर विहार कर दिया। रास्ते मे आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को वर्षा व ऊमस के कारण शरीर मे रहा हुआ अवशेष जहर बाहर निकल आया। हथेलियां, पगथलिया और मुख को छोड़कर शेष शरीर मे फफोले हो गए। उस वेदना के कारण अत्यन्त बेचैनी रहती और रात्रि मे नीद नही आती। साध्वीश्री अहमदगढ़ पहुंची। समय बीतता गया। श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन साध्वीश्री के मन मे चिंतन आया कि मैं आज उपवास करूं। उपवास के दिन रात मे थोड़ी नीद आई। दूसरे दिन बेला किया, घाव सूखने लगे। तीसरे दिन तेला किया, व्रण मे से टिकियां निकलने लगी। कुछ ही दिनो मे वे स्वस्थ बन गई।

यह था तप का अचूक प्रभाव, जिससे सर्प का विष भी दूर हो गया।

स्मरण का प्रभाव—(क) साध्वीश्री सं० २०१० मे सोजतरोड़ से विहार कर जाणुदा की ओर जा रही थी। ऐक्सीडेंट हो जाने के कारण उनके पैर मे दर्द था, अतः वे रास्ते मे छोटे-छोटे विहार करती हुई एक प्याऊ में ठहरी। जाणुदा के श्रावक केशरीमलजी, उनकी मां और धनराजजी आदि सेवा मे थे जो प्याऊ के समीप वृक्ष के नीचे ठहरे। पैर मे अधिक पीड़ा होने के कारण साध्वीश्री को रात मे नीद नहीं आ रही थी। भाई लोग भी बैठे थे। लगभग बारह बजे दूर से चक्राकार रूप में घूमता हुआ आग का पुला-सा दिखाई दिया। भाइयो ने साध्वीश्री से कहा—'आप जागती है या नीद मे?'

साध्वीश्री—'डरो मत, मैं जागती हूं।' उन्होने उवसग्गहरं स्तोत्र तथा भिक्षु स्वामी के नाम का जप करना प्रारम्भ कर दिया। वह प्रेतात्मा आधे घंटे तक साध्वियो के सम्मुख आगे-पीछे घूमती रही। फिर उपद्रव शात हो गया।

कुछ ही क्षणों वाद ऊंटो की नोलें सुनाई देने लगी, जो डाकुओ के आने का संकेत करती थी। साध्वीश्री ने कहा—'निर्भय रहो, आचार्य भिक्षु का स्मरण करो।' सभी जप मे तन्मय हो गये। फलस्वरूप आने वाले डाकू लोग प्याऊ का सीधा रास्ता छोड़कर अन्य मार्ग से चले गए। किसी प्रकार का सकट नही हुआ।

(ख) सं २०१० के शेषकाल मे साध्वीश्री पानकवरजी जाणुदा में थी। वहां वे स्वास्थ्य-लाभ के लिए घूमने के लिए प्रायः गांव के वाहर जाती। एक दिन कुछ दूर चली गईं। साथ मे साध्वीश्री छगनांजी थी। दोनो साध्वियां जव गांव से चली तव उनके पीछे एक कुत्ता हो गया। प्रतिदिन घूमने के स्थान 'धोले कुए' तक आकर वह रुक गया। साध्वियां कुछ आगे वढ़ीं कि उन्हें झाड़ियो के वीच में से एक जानवर आता हुआ दिखाई दिया। साध्वी पानकवरजी सोचने लगी कि यह क्या जानवर है! इतने मे तिरछा चलता-चलता वह सामने आ गया। साध्वी पानकंवरजी ने साध्वी छगनांजी से कहा—'यह हिंसक प्राणी शेर है, आप शीघ्र पीछे लौट जाओ।' साध्वी छगनांजी वोली—'ऐसा नही होगा, मरेंगी तो दोनों साथ मे ही।' दोनो साध्वियां सागारी अनशन कर ध्यानस्थ खड़ी हो गईं। मन ही मन भिक्षु स्वामी का जप करने लगी। चन्द क्षणो के वाद आंख खोल कर देखती है तो वह मूर्ति की तरह सामने खड़ा साध्वियो की ओर देख रहा है, पर आगे नही वढ रहा है। तव साध्वियां 'अव यह नही आयेगा' यह सोचकर धीरे-धीरे पुनः उसी 'धोले कुएं' के पास वापस लौट आयी। वहा रहने वाले भाई से पूछा—'क्या यहां शेर आता है?' उसने कहा—'हां, उसने कई व्यक्तियो तथा गाय, भैंस आदि को मार भी दिया है। परन्तु वह इस समय नही आता है, आज कैसे आ गया!' यह कहता हुआ वास पर लपेटे कपड़े को जलाने लगा। साध्वीश्री ने कहा—'हम सुरक्षित आ गईं। अव किसी वात का डर नही है। साध्वियां जव 'धोले कुएं' से गाव की ओर आती है तव वह कुत्ता (जो पहले साथ मे आकर वहां रुक गया था) साथ हो जाता है और जंगल की ओर मुख करती है तो वही खड़ा रह जाता है। इससे ऐसा लगा कि इस कुत्ते को भी कितना

अन्तर्ज्ञान है और कुछ संकेत कर रहा है ।

उक्त दोनो घटनाओं को इष्टदेव के स्मरण का चमत्कार ही समझना चाहिए, जिससे किसी प्रकार का अनिष्ट नही हुआ ।

(परिचय-पत्र)

९०३।८।१७८ साध्वीश्री रायकंवरजी (लाडनूं)

(दीक्षा सं० १९८६, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री रायकंवरजी राजलदेसर-निवासी हंसराजजी वैद (जयचंदलालजी के पुत्र) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १९६७ आश्विन शुक्ला २ को हुआ। माता का नाम सूवटी वाई था। सं० १९८० मे लाडनूं के भूतोड़िया परिवार में रायकंवरजी की शादी की गई।

वैराग्य—विवाह के दो साल वाद पति का देहान्त हो गया। इस घटना से उनका मन संसार से विरक्त हो गया और वे दीक्षा के लिए तैयार हो गई। पर चार साल तक ससुराल वालों ने दीक्षा की स्वीकृति नही दी। दीक्षार्थिनी वहिन ने कई प्रकार के प्रत्याख्यान किये और कुछ दिनों तक छाछ-रोटी के अतिरिक्त कुछ नही खाया। आखिर उनकी दृढ़ता देखकर पारिवारिक जन ने दीक्षा की आज्ञा दे दी।

दीक्षा—रायकंवरजी ने पति-वियोग के वाद सं० १९८६ श्रावण शुक्ला सप्तमी को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा लाडनूं में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के समय लाडनूं के ठाकुर वालसिंहजी आये तथा वाहर के लगभग दो हजार यात्री उपस्थित हुए। कुल जनसंख्या लगभग छह हजार थी।

शिक्षा—साध्वीश्री कुछ साल गुरुकुलवास मे, दस वर्ष साध्वीश्री कुन्नणांजी (७२४) 'सरदारशहर', १२ साल साध्वीश्री मघुजी (५९३) 'रीड़ी' के साथ मे तथा सं० २०१३ से साध्वीश्री छोटांजी (७५२) 'रीणी' के सिघाड़े मे रही। सं० २०३१ से साध्वी राजकंवरजी (९४६) 'नोहर' के सिंघाड़े में विहरण किया। वृद्धावस्था के कारण सं० २०४१ मे राजलदेसर मे स्थायीवास कर रही है।

उन्होने दशवैकालिक, कई थोकड़े तथा रामचरित्र, शालिभद्र आदि व्याख्यान कठस्थ किये।

तप-स्वाध्याय—

उपवास	२	३	४	५	६
लगभग २५००	७०	२०	५	५	२

सात से ग्यारह दिन का तप एक-एक वार किया।

स्वाध्याय, ध्यान, मौन का यथाशक्य क्रम चलता है।

(परिचय-पत्र)

९०४।८।१७९ साध्वीश्री कंचनकंवरजी (राजनगर)

(दीक्षा सं० १९८६, वर्तमान)

'४८ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री कचनकंवरजी का जन्म राजनगर के पोरवाल परिवार मे सं० १९७१ पौष शुक्ला १२ को हुआ। उनके पिता का नाम मगनलालजी और माता का घुमर बाई था। बालिका तीन साल की हुई तब उनकी माता का वियोग हो गया। पिता की देखरेख मे उनका लालन-पालन हुआ।

वैराग्य—जब वे ग्यारह साल की हुई तब पूर्व सस्कारो के कारण उनके मन मे वैराग्य का बीज अकुरित हो गया। साध्वीश्री सोहनांजी (७६९) 'राजनगर' (जो उनकी चचेरी बहिन थी) की विशेष प्रेरणा से बालिका की भावना बलवती हो गई। लेकिन परिवार वालों ने दो वर्षो तक दीक्षा की अनुमति नहीं दी। कई प्रकार के कष्ट भी दिये। आखिर उनकी दृढ़ता देखकर सभी सहमत हो गये।

दीक्षा—कंचनकंवरजी ने १५ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) मे सं० १९८६ माघ शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी के कर-कमलों से सुजानगढ मे दीक्षा ग्रहण की। सिंघीजी के नोहरे के विशाल प्रागण मे दीक्षा-समारोह हुआ।

दीक्षार्थिनी बहिन कंचन जब धवल वस्त्र पहनकर पूज्य कालूगणी के चरणो मे उपस्थित हुई तब उनके पिताजी ने उनके शिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'बेटी! खुशी-खुशी रहना।' गुरुदेव ने फरमाया—'मगनलालजी! अब कचन तुम्हारी नही, हमारी हो गई है।' दीक्षा-सस्कार सानद सम्पन्न हुआ। इसी बीच मगनलालजी ने अपनी जेब से मुट्ठी भर अचित्त बादाम और किसमिस निकालकर गुरुदेव की गोद मे रख दिए। पार्श्वस्थित मत्री मुनि मगनलालजी ने कहा—'मगनलालजी! क्या कर रहे हो?' वे बोले—'मै गुरुदेव की खोल भर रहा हू।' उनकी इस सरलता से उपस्थित जनता हंसने लगी।

शांत सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के बाद १६ वर्षो तक

साध्वीश्री मूलांजी (७४०) 'दिवेर' के सिंघाड़े मे शांत सुखद सहवास करती रही। उनके सहयोग से अपने संयमी-जीवन को विकसित किया। सेवा, विनम्रता आदि द्वारा अग्रगण्या साध्वी को पूर्णरूपेण सहयोग देती रही। मधुरता, सरलता एवं श्रमशीलता आदि विशेष गुण प्राप्त किये।

कंठस्थ ज्ञान—उनके द्वारा किये गये कंठस्थ ज्ञान की सूची इस प्रकार है—दशवैकालिक, वृहत्कल्प, तेरहद्वार, लघुदण्डक, ज्योतिष्चक्र, कालू तत्त्व-शतक, भक्तामर, सिन्दूरप्रकर, शांत सुधारस, शारदीया नाममाला, रामचरित्र आदि।

प्रतिलिपि—उत्तराध्ययन की जोड, पाण्डुचरित्र, रामचरित्र, दीपजश आदि लिपिवद्ध किये।

विहार—सं० २००२ मे साध्वीश्री मूलांजी के दिवगत होने के पश्चात् आचार्यश्री तुलसी ने साध्वीश्री कंचनकंवरजी को अग्रगण्या वना दिया। उन्होने ग्रामानुग्राम विहरण कर धर्म-प्रचार किया और कर रही हैं। सत्तर साल की अवस्था के वावजूद भी वे एक युवा साध्वी की तरह कार्यशील हैं। उनके चातुर्मास-स्थलो की सूचो इस प्रकार है :—

स० २००३	ठाणा	४	भीलवाड़ा
सं० २००४	,,	५	केलवा
सं० २००५	,,	५	ऊमरा
सं० २००६	,,	५	रायपुर
सं० २००७	,,	५	वाढमेर
स० २००८	,,	५	वाव
स० २००९	,,	५	जोधपुर
स० २०१०	,,	५	वणोल
सं० २०११	,,	४	ऊमरा
सं० २०१२	,,	४	सिसाय
सं० २०१३	,,	५	लावा सरदारगढ़
स० २०१४	,,	५	रीछेड़
स० २०१५	,,	४	उदयपुर
सं० २०१६	,,	४	गोगुन्दा
स० २०१७	,,		राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)

सेवा—साध्वीश्री की सेवा-भावना और कार्यशीलता अनुकरणीय है। एक वार साध्वीश्री प्रतापांजी (६५२) 'सिसोदा' रास्ते मे अकस्मात् वीमार हो गईं तव रतनपुरा से व्यावर तक उनको कंधों पर उठाकर लाया गया। जिसमे साध्वीश्री कंचनकुमारीजी का विशेप सहयोग रहा।

संस्मरण

सांप अदृश्य हो गया

साध्वीश्री ने २००४ का चातुर्मास केलवा में किया। एक दिन रात्रि के समय वे गहरी नीद मे सो रही थी। दोनों तरफ सहवर्तिनी साध्वियां सोयी हुई थी। अचानक एक सर्प साध्वीश्री के वक्षस्थल पर आकर वैठ गया। साध्वीश्री की आंखें खुलीं, कुछ गीलापन महसूस होते ही उन्होंने हाथ का झटका दिया कि वह भुजंग पास में सोयी हुई साध्वियो को वचाते हुए सीधा कमरे मे जाकर वैठ.गया। साध्वीश्री ने उस समय अभय और साहस का परिचय दिया। गहरी निष्ठा से 'ओम् भिक्षु २' का स्मरण चालू कर दिया। साथ की सभी साध्वियां भी जग गईं और जाप में लयलीन हो गईं।

वहां पर सोने वाली वहिन गंगा वाई द्वारा सूचित करने पर श्रावक अम्वालालजी आदि चार-पांच व्यक्ति मिलकर आये। संडासी से उसे पकड़ने लगे कि वह देखते-देखते आंखों से ओझल हो गया। सभी को ऐसा लगा कि कोई देव माया है। स्वामीजी की स्मृति-मात्र से वह उपद्रव शांत हो गया।

सिह ने मुह मोड़ लिया

साध्वीश्री ने सं० २०१७ का चातुर्मास आचार्यश्री तुलसी की सेवा में राजनगर किया। तत्पश्चात् वे आमेट होती हुई कुन्दवा व पालड़ी के वीच विहार कर रही थी। एक दिन रास्ते में चलते समय एक सिंह सामने आ गया। उस भयानक आकृति को देखकर सभी साध्वियां "ओम् भिक्षु २" की रटन लगाने लगी। देखते-देखते सिंह ने उस रास्ते को छोड़कर दूसरी ओर मुह मोड़ लिया। इसे एक भिक्षु नाम के जप का जादू-भरा प्रभाव ही समझना चाहिए, अन्यथा एक हिंसक जानवर अपने सामने आये हुए भक्षक को कैसे छोड़ सकता था।

सत्य का परिणाम

साध्वीश्री ने सं० २०३८ का चातुर्मास रामामंडी (पजाव) मे किया। शेपकाल मे वे मानसामंडी पहुंची और पन्द्रह दिन का प्रवास किया। वहां

के नवीन श्रावक सोमलालजी को अकारण ही गोली-कांड मे पकड़ लिया गया। साध्वियां गोचरी करती हुई उनके घर पर गई। सारा परिवार रुदन कर रहा था। साध्वियों ने उन सबको सान्त्वना देते हुए कहा—'आप लोग धैर्य रखें, यदि सत्य साथ मे है तो घबराने की कोई बात नहीं। "ओम् भिक्षु" का जाप करो। गुरुदेव के प्रताप से आपकी आपत्ति दूर होगी और वे सुरक्षित वापस आ जायेंगे, ऐसा विश्वास है।'

परिवार के लोग बड़े-बड़े आफिसरो से मिले। किन्तु उन्होंने साफ कह दिया कि चाहे कितना ही सत्यवादी क्यो न हो, ऐसे काण्ड में पकड़ा गया व्यक्ति छह महीने तक छूट नही सकता। सब हताश हो गये, परन्तु आत्मश्रद्धा और भक्ति का परिणाम कुछ और ही होता है। संयोग ऐसा मिला कि नौवें दिन वही व्यक्ति आकर जेल में खडा हो गया जिसने गोली चलाई थी, वह कहने लगा—'भूतपूर्व प्रधान को मारने वाला और गोली चलाने वाला मैं ही हूं। इस सोमलाल का कोई हाथ नही है। इसको क्यो पकड़ रखा है? मैंने तो अपने पिताजी का बदला लिया है।' जेलर ने सोमलाल को तत्काल जेल से मुक्त कर दिया। वह सानंद अपने घर आ गया।

इस प्रकार छह महीने कैद में रहने वाला श्रावक नौवें दिन अपने घर आ गया। इससे पूरी मानसामंडी मे जैन धर्म की बहुत प्रभावना हुई। साध्वियां जिस रास्ते से जाती सब लोगो के शिर श्रद्धा से स्वतः झुक जाते। सोमलाल के लिए सभी कहने लगे कि यह श्रावक प्रामाणिक और सत्यनिष्ठ है। जेल से छूटते ही सोमलालजी ने आचार्यप्रवर के दिल्ली में दर्शन किये और सारी हकीकत सुनाई।

यह घटना प्रमाणित करती है कि अन्ततोगत्वा सत्य का परिणाम सुंदर ही होता है।

(परिचय-पत्र)

९०५।८।१८० साध्वीश्री चंपाजी (राजगढ़)

(दीक्षा सं० १९८६, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री चंपाजी का जन्म सं० १९६८ पौष शुक्ला १२ (साध्वी विवरणिका में सं० १९६९ पौष शुक्ला पूर्णिमा) को श्रीडूंगरगढ़ (स्थली) के दूगड़ (ओसवाल) परिवार मे हुआ। उनके पिता का नाम संतोपचंदजी और माता का वखतूवाई था। १२ वर्ष की अल्पायु मे चंपाजी का विवाह राजगढ़-निवासी खीवकरणजी सुराणा के पुत्र सोहनलालजी के साथ कर दिया गया।

वैराग्य—शादी के कुछ ही समय वाद चंपाजी के श्वसुर खीवकरणजी का ४२ वर्ष की आयु मे देहान्त हो गया। परिजन-जन मोहाकुल होकर करुण-विलाप करने लगे। उस दारुण दृश्य को देखकर चंपाजी का मन वैराग्य-रस से ओत:प्रोत हो गया। पारिवारिक जन की आज्ञा प्राप्त कर वे दीक्षा के लिए उद्यत हो गईं।

दीक्षा—उन्होने १८ वर्ष की अवस्था मे पति को छोड़कर सं० १९८६ ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को साध्वीश्री गणेशांजी (९०६) के साथ आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीकानेर में दीक्षा ग्रहण की[1]। दीक्षा-समारोह रामपुरियाजी के मंदिर के सामने हुआ। जुलूस में राजकीय लवाजमा (हाथी, सिपाही आदि) भी था। दोनों दीक्षार्थिनी सुहागिन वहिनों को देखकर अन्यमती लोग अत्यधिक प्रभावित हुए।

(ख्यात)

सुखद सहवास—साध्वीश्री को दीक्षित होने के वाद सात साल (जिसमे चार साल गुरु-कुल-वास मे) लगातार साध्वी-प्रमुखा कानकवरजी के सान्निध्य मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होने सेवा, शिक्षा एवं कला मे क्रमश: विकास किया। तत्पश्चात् वे साध्वीश्री छगनाजी (७३५) 'वोरावड़' के सिंघाड़े मे उनके स्वर्गवास तक रही। स० २०२५ मे साध्वी पानकंवरजी (११४९) 'श्रीडूगरगढ़' का सिंघाड़ा हुआ तव से उनके साथ विहार कर रही

---

(१) चम्पा रु गणेशां जेठ दया गुरुवर री।

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० २५)

१. गणेशाजी का जन्म लाडनूं (मारवाड) के कुचेरिया (ओसवाल) परिवार मे स० १९७३ आश्विन शुक्ला १० को हुआ। उनके पिता का नाम खीवकरणजी और माता का झमकूदेवी था। सं० १९८५ मे बारह साल की छोटी उम्र मे ही गणेशाजी का विवाह स्थानीय तोलारामजी (गोपतरामजी के पुत्र) भूतोडिया के साथ कर दिया गया।

विवाह के दो साल बाद साधु-साध्वियों द्वारा उद्बोधन मिलने से उनका मन ससार से विरक्त हो गया। तव उन्होंने पति को छोड़कर १४ वर्ष की वय (नावालिग) मे सं० १९८६ ज्येष्ठ शुक्ला ५ को साध्वीश्री चंपाजी (९०५) के साथ अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के हाथ से बीकानेर मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

उनके भाई मोतीलालजी (५०५) सं० १९९१ जोधपुर मे दीक्षित हुए। पर साधुव्रत न निभा पाने के कारण सं० २००० गंगाशहर मे गण से पृथक् होकर गृहस्थावास मे चले गये।

वे धर्म-सघ के प्रति अनुकूल है। समय-समय पर आचार्यश्री एवं साधु-साध्वियो की सेवा करते रहते हैं।

२ गणेशाजी दीक्षित होने के बाद लगभग १२ साल साध्वीश्री ज्ञानाजी (७६५) 'पीतास' के साथ विनयानत होकर रही। संयम-चर्या का पालन करती हुई यथाशक्य ज्ञान-ध्यान का विकास करने लगी। उनके शांत स्वभाव और सहयोग से साध्वीश्री ज्ञानांजी मानसिक समाधि एवं प्रसन्नता का अनुभव करती।

३. स० १९९९ मे साध्वीश्री ज्ञानांजी का चातुर्मास सरदारशहर में था। साध्वी गणेशांजी उनके साथ मे ही थी। वहां कर्म-संयोग से भावो मे दुर्वलता लाकर उन्होने एक बडी भूल कर दी। जिससे मृगसर कृष्णा १ के दिन आचार्यश्री तुलसी के आदेशानुसार साध्वीश्री ज्ञानांजी ने उनका संघ से संवंध विच्छेद कर दिया।

गण से बहिष्कृत करते ही गणेशांजी ने अपने आपको संभाल लिया। चिंतन मे इतना परिवर्तन आया कि उन्हे अपने द्वारा की गई स्खलना पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। आत्मालोचन तथा आत्म-निन्दा कर अपनी भावी दिशा को मोड़ लिया। उसी दिन से तप-जप आदि अनुष्ठान मे अपने जीवन को लगा दिया। आचार्यश्री के दर्शन कर पुनः संघ में सम्मिलित करने के लिए

अनेक बार निवेदन किया। कविता द्वारा अपनी गलती स्वीकार करते हुए वापस गुरु-शरण मे लेने के लिए भाव-भरी प्रार्थना की। पढिये कुछ पद्य—

इन्दव-छन्द

के अवतारी के ब्रह्मा है ईश्वर के शशि सूरज है किरणालो।
इच्छित पूरण कल्पतरु करै पुष्ट सुधा सम बोध्य विशालो।
दौख्यहरू अरु सौख्यकरू भ्रम दूर करू ज्यू मणी चमकालो।
लाखन बात की एक प्रभू अब आप उतारस्यो आतम-आलो ॥१॥

हे करुणारस! धीरज-सागर! आगर बुद्धि को भाग्य विशालो।
निर्मल कांचन कांति अनोपम वैन ज्यू श्रावण को वरसालो।
बालक इच्छित मात पुरै जिम है तुलसी गण को रिखपालो।
लाखन बात की एक प्रभू अब आप ही काटस्यो आतम-कालो ॥२॥

पूरव संचित कर्म उदय कर नीच मती किया कर्म करालो।
जिन-आण भंजी कुल-काण तजी घट बीच लगाय दी पावक झालो।
दुःख लियो निज हाथ उठाकर सुक्ख अनोपम को कर टालो।
लाखन बात की एक प्रभू अब आप जड़ो दुर्गति के तालो ॥३॥

दृग् मींच पड़ी अंध कूप विषै म्है अनुपम संयम के जड़ तालो।
इह परलोक की लाज तजी घर भाज अजोग कियो मुह कालो।
रत्न गमाय के सोच कियो तब नेत्र मे आंसू पड़ै दगचालो।
लाखन बात की एक प्रभू अंध कूप से बाहिर आप निकालो ॥४॥

दुष्ट पापिष्ठ अयोग्य अन्याइ ते खूब भर्माय करी मति काली।
बारह वर्ष अभ्यास स्यू संचित सम्पत्ति पावक माहि प्रजाली।
अनशन उनोदरी भिक्षा रस-त्याग संलीनता कायकलेश रसाली।
ए षट आचर प्राण हरुं पग एक भरूं नहीं सोच संभाली ॥५॥
है अद्भुत छटा गणिराज की और मिलै नहि लोक मे भाली।
तू दिल रंजन भव दुख भंजन अंजन ज्यू कर व्याधि निकाली।
लाखन बात की एक प्रभु द्यो चारित्र-रत्न अमूल्य विशाली।
नाथ! कृपा घटऽभ्यंतर थी तप पावक स्यू लेऊं आत्म उजाली ॥६॥

हा हा कुमति बसी घट भीतर दुष्ट पापीष्ठ तणी पढ़ पाटी।
आपद साथ संकेत कियो अरु सम्पत्ति की जड़ मूल से काटी।

छोड़ गणी गण चक्री ना भोज्य ज्यू बूच आई जिम खावत बाटी ।
व्याधि असाध्य को पार सुमार ना आप हरो गणनाथ! ओचाटी ।।७।।

हा हा विवेक विचार गयो कठे खोई लछी वर्ष बारह की खाटी ।
एक न सोची अनेक न सोची मैं भूल गई कर आयोड़ी आंटी ।
सोवत जागत आनन्द मान न जानती बाकी है दुःख घाटी ।
व्याधि असाध्य को पार सुमार ना आप हरो गणईश! ओचाटी ।।८।।

पूरब बैर सम्बन्ध विचार के रत्न हरयो कर कोड कलापो ।
जहर नैं अमृत जाण पियो अरु ताण अचानक लियो संतापो ।
हे गण-ईश्वर जहर हरो जग के तुम मात अनैं प्रभु बापो ।
(अब) म्हे तुलसीगणि चरण पड़ी करुणा कर द्यो गण भिक्षु के छापो ।।९।।

आप दयाल कृपाल गणाधिप भव दु:ख संकट मूल थी कापो ।
आप बिना नहिं आपद भंजन जो करूं लाखन कोड़ विलापो ।
झूमर-नन्दन नर-सुर-वन्दन चारित्र-रत्न दे काट द्यो पापो ।
म्हे तुलसीगणि शरण पड़ी करुणा कर द्यो गण भिक्षु को छापो ।।१०।।

श्रावण भाद्रव वार पड़ै लोह नाव नदी तणो काम है बांको ।
ज्यू त्यू ही पार करो तुलसीगणि है विश्वास खरो प्रभु थांको ।
सोच विचार करूं म्हे कठा लग राज गमाय थई महा रांको ।
चारित्र-रत्न देवो करुणा कर आप सदा करो राज इला को ।।११।।

मनोहर-छन्द

भाग्य को विशाल पुज बुद्धि को अपार गुझ,
नर सुर करै एक आपरी सराहना ।
तन मन पूजो भव्य देव है न दूजो और,
शाश्वता मिलेगा सुख फरक है न पावना ।
धन से निधन होय आस एक खास कर,
राम नाम जेम ध्याऊं तुलसी की ध्यावना ।
आतम कहै है झट तुलसी को नाम रट,
ओ चिंतामणी करै थारी सिद्ध सब कामना ।।१२।।

इस प्रकार कुल सोलह छन्द तथा एक निबन्ध उनके द्वारा लिखा हुआ मिलता है ।

गणेशांजी कौटम्बिक-जन के सहयोग से कई महीनो तक गुरुदेव की सेवा मे रही। परन्तु दिल मे न जंचने के कारण आचार्यश्री ने उनका अनुनय स्वीकार नहीं किया।

गणेशांजी ने पूर्वापर चिंतन कर तपः साधना द्वारा अपना आत्म-कल्याण करना निश्चित कर लिया। वे अपने पिता खीवकरणजी के घर पर रहकर तप का उपक्रम चलाती रहीं। गण से पृथक् होने के बाद ११ महीने और १० दिन (३४० दिन) जीवित रही। इस अवधि मे उन्होने २१६ दिन का तप किया जिसमे १५४ दिन तो जल भी नहीं लिया। तप की कुल सूची इस प्रकार है—

उपवास	२	३	६		११		१३	३२
२८	६०	३	१	(चौविहार)	१	(चौविहार)	१	१ ।

उक्त बत्तीस दिन की तपस्या का पारणा करके उन्होने उपवास किया। उपवास के पारणे के बाद उन्हे बुखार आया और आठ दिन के बाद देहान्त हो गया। वह दिन था—सं० २००० कार्त्तिक कृष्णा अष्टमी, बृहस्पतिवार। स्थान—लाडनू।

गणेशाजी ने अपनी भूल को भूल समझा और अपने जीवन को तप की कड़ी कसौटी पर कसकर अपना कल्याण कर लिया।

कसौटी के क्षण

अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे गणेशांजी को विकट परिषह सहना पड़ा। खीवकरणजी पर यह लाछन लगाया गया कि वे उन्हे भूखा मार रहे हैं और उन्हे बन्धन मे रख रहे है। इस बात पर और अधिक जोर दिया गया कि गणेशाजी आत्म-हत्या पर तुली हुई हैं। दरखास्त देकर अदालत ठिकाना लाडनू से उनके बयान कराये गये। उस समय गणेशांजी ने कहा—'मैं अपनी खुशी से तपस्या करती हूं। श्री खीवराजजी कुचेरिया और तोलारामजी भूतोड़िया से मेरा कोई सबध नही है। मैं उन्हे भाई के बराबर देखती हू। तपस्या मैं अपनी आत्म-शुद्धि के लिए करती हूं। आत्म-हत्या करना मैं पाप समझती हूं। तपस्या करना जैन धर्म का अमूल्य उपदेश है। मै डॉक्टर से जांच नही कराना चाहती क्योकि पुरुष को छूने का मुझे त्याग है।

इन बयानो से भी भूतोडियो का आग्रह नही हटा। उनके द्वारा चेष्टा किए जाने पर पुलिस सुपरिटेन्डेन्ट मि० वरकत अली गणेशांजी के संबंध मे जाच करने और उनके बयान लेने के लिए लाडनूं भेजे गए। बयान के समय श्री हाथीमलजी वैगानी, जयचन्दलालजी भूतोड़िया, धनराजजी वैद, मोतीलालजी वरमेचा, तुलसीरामजी खटेड़ और थानेदारजी (ठिकाना लाडनू) हाजिर थे। बयान तोलारामजी भूतोड़िया की उपस्थिति मे खींवराजजी के घर पर लिए गए। इन बयानो के समय श्री गणेशांजी ने कहा—'मैं तपस्या न किसी पर दोप मंढ़ने के लिए करती हूं, न आत्म-हत्या के लिए। यह तपस्या मेरी आत्मशुद्धि के लिए है। मेरी मति पलट गई थी और मेरी गलती के कारण मेरे गुरु महाराज ने मुझे गण से अलग कर दिया। पाठकों की जानकारी के लिए पूरे बयान नीचे दिए जा रहे हैं—

सुपरिटेन्डेन्ट—आप किसकी लड़की है, जाति क्या है, उम्र कितनी है, क्या करती है ?

गणेशांजी—पिता का नाम खीवराजजी, जाति ओसवाल, उम्र २७ वर्प की है। मेरा पेशा है—आत्म-सुधार करना।

सुपरि०—मैं बयान लेने आया हूं जो पूछू जवाव देना। सवाल का जवाव देने मे शर्म नही करना।

सुपरि०—शादी हुए कितने वर्प हुए तथा किससे हुई ?

गणेशा—मेरी शादी को १५-१६ साल हुए है और तोलारामजी के साथ हुई।

सुपरि०—तो आप साध्वी कव से हुई ?

गणेशा—शादी होने के दो साल वाद तेरापंथी जैन संप्रदाय मे साध्वी हो गई थी।

सुपरि०—जव से साध्वी हुई तव से अव तक साध्वी का वेप छोड़ा तो नही।

गणेशां—मैं उस वक्त से लेकर अव तक साध्वी के रूप मे हूं। मैंने वेप नही छोड़ा।

सुपरि०—क्या आपके गुरु महाराज ने आपकी गलती से आपको निकाल दिया था ?

गणेशा—हां, हमारे वड़े पूजनीय महाराज ने मुझको साधुपने से खारिज कर दिया था।

सुपरि०—आपकी यह गलती किस जगह हुई ?

गणेशां—यह गलती सरदारशहर मे हुई थी।

सुपरि०—तो निकाल देने के बाद आप कहा रही थी ?

गणेशां—मैं डेढ महीने तक तो सरदारशहर मे अपने ननिहाल वालो के पास थी[1]। बाद मे मैं माघ महीने तक पूज्य महाराज की सेवा मे रही। इसके बाद डूंगरगढ मे घरवालों के पास रहती थी।

सुपरि०—तब यहां कब आई ?

गणेशा—गत श्रावण कृष्णा ७ को मैं लाडनू चली आई और तब से खीवराजजी के मकान मे रहती हूं।

सुपरि०—डूगरगढ से आप अपनी इच्छा से आई या जबरदस्ती लाई गई ?

गणेशां—मैं अपनी खुशी से लाडनूं आई और खुशी से खीवराजजी के मकान मे रहती हूं।

सुपरि०—खीवराजजी कोई तकलीफ तो नही देते हैं ?

गणेशां—खीवराजजी मुझे कोई तकलीफ नहीं देते हैं तथा उनका मुझ पर कोई अधिकार नहीं है। जहां मेरी खुशी हो वहां रह सकती हूं। मैं आजाद हूं, जो काम करती हूं अपनी इच्छा से करती हूं, किसी के दबाव से नही।

सुपरि०—अभी कितने दिन से तपस्या कर रही हो ?

गणेशां—मुझे तपस्या करते हुए आज ३१ दिन हो गए हैं।

सुपरि०—बताओ तो, जब से पूज्यजी महाराज ने निकाल दिया तब से आज तक कितनी तपस्या की है ?

गणेशां—मुझे जब से पूज्य महाराज ने नाराज होकर निकाला है तब से आज तक २१८ दिन की तपस्या की है। इन दिनो में से करीब १५३ दिन तक मैंने बिना पानी के तपस्या की है। अब मैंने जो ३१ रोज की तपस्या की है उसमे कभी-कभी पानी पीया है तथा आज भी पानी पीया है।

सुपरि०—अब तपस्या कब तक जारी रखने का इरादा है ?

गणेशां—तपस्या कब तक जारी रखूंगी यह इरादा मेरे मन मे किया

---

१. सुजानगढ़-निवासी श्री लिखमीचन्दजी, तिलोकचन्दजी (डूगरवाल) जो वहां पहले से सेवा मे आये हुए थे।

हुआ है।

सुपरि०—मेरे पास यह शिकायत है कि खींवराजजी तुमको मजबूर करते हैं कि उपवास करके जान दे दो।

गणेशां—मुझे खींवराजजी तथा कोई सख्त तपस्या करके जान देने को नहीं कहते हैं, बल्कि खींवराजजी मुझे दिन में एक-दो बार यही कहते हैं कि खाना खा लो, पारणा कर लो।

सुपरि०—कल-परसो या दो-चार रोज बाद तो पारणा कर लोगी?

गणेशां—कल तक मेरी प्रतिज्ञा की हुई है, बाद में मेरी इच्छा पर निर्भर है।

सुपरि०—क्या आप इस वक्त साध्वी हैं?

गणेशां—मैं इस वक्त अपने आपको साध्वी तो नही समझती पर साध्वी होने की कोशिश कर रही हूं। पूज्य महाराज मुझ पर कृपा करके मुझे साधुपना दे देवें तो अच्छी बात है। अगर पूज्य महाराज ने दुबारा कबूल नही किया तो मैं इसी तरह तपस्या करके आत्म-कल्याण करूंगी।

सुपरिटेंडेंट साहब के जरिये तोलारामजी ने कहा—'मेरा कहना यह है कि तपस्या करके आत्महत्या न करें।

गणेशां—आत्महत्या की दृष्टि से तपस्या करना पाप समझती हूं। दूसरों को इलजाम देने की दृष्टि से भी तपस्या करना मैं पाप समझती हूं।

सुपरि०—तोलारामजी से तुम्हारा कोई रिश्ता है?

गणेशां—साध्वी होने के बाद मैं दुनिया में किसी को अपना रिश्तेदार नहीं समझती हूं, सब मेरे भाई हैं।

सुपरि—मैं यह पूछना चाहता हूं कि तेरापंथ धर्म के गुरु महाराज एक साधु अथवा साध्वी को एक बार निकाल कर वापस लेते हैं या नही?

गणेशां—तेरापंथ धर्मसंघ मे अगर किसी साधु या साध्वी को इस वेष से खारिज कर दिया जाये तो दुबारा उस वेष मे लिया जा सकता है।

सुपरि०—क्या आप लेडी डॉक्टर से जांच करवाना चाहती हैं या नहीं?

गणेशां—मैं किसी लेडी डॉक्टर से जांच नही करवाना चाहती, मुझे कोई बीमारी नही है। अन्न नहीं खाने से कमजोरी जरूर है।

सुपरि०—तुम खींवराजजी के सिवाय किसी और के घर रह सकती हो या नही?

गणेशां—मैं वही रहना चाहती हूं, जहां अपना धर्म पालन अच्छी तरह कर सकूं।

उपरोक्त बयान तोलारामजी के रू-बरू लिये गये और उन पर उनके हस्ताक्षर भी लिये गये थे।

(मोतीलालजी बच्छराजजी कुचेरिया द्वारा प्राप्त कागजात के आधार से)

गणेशांजी ने अपनी भावनाओं को कितना निर्मल बनाया यह उपरोक्त बयानों से साफ प्रकट है। भूल बडे-बड़े व्यक्तियो से भी हो सकती है। गणेशांजी से भी भूल हो गई थी पर उन्होने उसे सरलता से मंजूर किया और बाद मे तपस्या रूपी अंकुश द्वारा अपनी आत्मा को फिर से वश मे कर लिया। पुनः धर्मसंघ मे आकर गुरुदेव की छत्रछाया मे संयम-रत्न पाने की उत्कट भावना बनी। यह उनके अन्तर्मुखी वैराग्य एवं आत्मार्थिता का ज्वलंत प्रतीक है। इससे उन्होने न केवल अपने को ही अपितु ज्ञाति-न्याति सबको ही उज्ज्वल कर दिया। समुद्र की उत्ताल तरंगो में गिर जाने पर भी जो विवेक-विकल नही होता, अपने साहस को समेट कर रख लेता है और तैर कर किनारे पहुंच जाता है, वह पुरुषार्थी व्यक्तियों की गणना मे समाविष्ट हो जाता है।

६०७।८।१८२ साध्वीश्री बालूजी (टमकोर)

(संयम-पर्याय सं० १६८७-२०२८)

छप्पय

मां बालू ने ले लिया संयम का आधार।
धर्म-संघ को दे दिया पुत्र-रत्न श्रीकार।
पुत्र-रत्न श्रीकार नाम से 'नक्र-विभूषण'।
युवाचार्य महाप्रज्ञ नाम फिर हुआ विलक्षण।
चढ़ा जौहरी नजर में बढ़ा मोल अनपार।
मां बालू ने ले लिया संयम का आधार॥१॥

वासी पुर टमकोर के चोरड़िया परिवार।
जननी ने सुत साथ में की दीक्षा स्वीकार।
की दीक्षा स्वीकार भाग्य-तरुवर लहराया।
नन्दन-वन उपमान भिक्षु का शासन पाया[१]।
सतत साधना-रत हुई बालू सती उदार[२]।
मां बालू ने ले लिया संयम का आधार॥२॥

मौलिक शिक्षा सूत्र को लिया हृदय में धार।
लक्ष्य बिन्दु से वस्तुतः जोड़ लिया है तार।
जोड़ लिया है तार ज्ञान कुछ सीखा तात्त्विक।
ध्यान मौन स्वाध्याय-आय में रहती प्रायिक।
त्याग-तपस्या का किया यथाशक्य विस्तार[३]।
मां बालू ने ले लिया संयम का आधार॥३॥

गण-गणि से निष्ठा अचल अनुशासन पर ध्यान[४]।
सर्वाधिक आचार्य है सर्वाधिक तत्स्थान।
सर्वाधिक तत्स्थान गहन था चिन्तन उनका[५]।
गुण-ग्राहिणी दृष्टि[६] अतुल साहस था मन का[६]।
घोर व्याधि के समय भी तनिक न चिंता-भार[७]।
मां बालू ने ले लिया संयम का आधार॥४॥

तन चेतन की भिन्नता समझी है साकार।
उस ही चिन्तन में लगी दूर किया ममकार।
दूर किया ममकार आन्तरिक स्फुरणा भारी।
वन सहिष्णुता-मूर्ति आरती वड़ी उतारी।
समता में रम जप रही महामंत्र ओंकार।
मां वालू ने ले लिया संयम का आधार ।।५।।

आठ-वीस की साल का श्रावण मास प्रधान।
किया अमावस-रात्रि में सुरपुर मे प्रस्थान।
सुरपुर में प्रस्थान सुयश धरती पर फैला।
उमड़ी भीड़ अतीव चला पानी का रेला।
जन-जन मुख से उठ रही जय-जय की धुकार[८]।
मां वालू ने ले लिया संयम का आधार ।।६।।

दोहा

श्रमणी मालू आदि ने, दिया वहुत सहयोग।
की परिचर्या पूर्णतः, रख करके उपयोग[९] ।।७।।

धन्या पुण्या थी वड़ी, वालू सती धुरीण।
मिला योग अनुकूल सव, सुन्दर सर्वांगीण ।।८।।

है 'विदेह की साधिका' नामक पुस्तक एक।
वालू श्रमणी के लिखे, उसमें स्तुतिमय लेख[१०] ।।९।।

१. साध्वीश्री वालूजी का जन्म स० १९४४ श्रावण कृष्णा १२ को खीयासर नामक ग्राम मे हीरालालजी वछावत के घर हुआ। वाद मे उनका पैत्रिक परिवार सरदारशहर मे रहने लगा। वालूजी का विवाह टमकोर (विष्णुगढ) 'ढूढाड़' के तोलारामजी चोरडिया के साथ कर दिया गया। उनके तीन सताने हुईं—दो पुत्रियां (मालू वाई, प्यारां वाई) और एक पुत्र (नथमलजी)। वालक अढाई महीने का हुआ तव तोलारामजी का देहान्त हो गया। वालूजी ने उस वियोग को धैर्यता से सहा और घर की स्थिति को संभाल कर रखा।

साधु-साध्वियो के संपर्क से माता बालूजी और पुत्र नथमलजी के दिल मे वैराग्य-भावना जगी। फिर कुछ दिन साधना कर सं० १९८७ माघ शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से सरदारशहर मे दीक्षा स्वीकार की।[1] दीक्षा भैरुदानजी भंसाली के बाग मे हुई। उनमे तीन भाई और छह बहिनें थीं। उनके नाम इस प्रकार है—

१. मुनिश्री चौथमलजी	(४७३)	सरदारशहर
२. ,, खेतसीदासजी	(४७४)	श्रीडूंगरगढ
३. ,, नथमलजी	(४७५)	टमकोर
४. साध्वीश्री बालूजी	(९०७)	टमकोर
५. ,, आसांजी	(९०८)	लाडनू
६ ,, लिछमांजी	(९०९)	सरदारशहर
७. ,, छगनाजी	(९१०)	नोहर
८. ,, मनोराजी	(९११)	सरदारशहर
९. ,, पिस्तांजी	(९१२)	जमालपुर

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

माता बालूजी ने एक होनहार पुत्र-रत्न को जन्म दिया। उसमे सत्संस्कार भरे। फिर पुत्र के साथ दीक्षित होकर स्वय साध्वी बनी और उसे तेरापंथ धर्म-संघ कों समर्पित किया, जो आगे जाकर पूज्यपाद कालूगणी के नेतृत्व मे एवं मुनि तुलसी की देख-रेख में अपने जीवन का निर्माण करते हुए महान् योग्यता प्राप्त कर विद्वत्ता के शिखर पर चढे। सं० २०३५ माघ शुक्ला सप्तमी को राजलदेसर मे आचार्यश्री तुलसी ने उन्हे अपने उत्तराधिकारी के रूप मे नियुक्त किया। वे मुनि नथमलजी 'युवाचार्य महाप्रज्ञ' नाम से विभूपित हुए।

यद्यपि साध्वीश्री बालूजी उनके निर्वाचन समय तक विद्यमान नहीं रही। फिर भी उन्होने भिक्षु-शासन को जो पुत्र-रत्न की भेट समर्पित की उसके लिए धर्म-सघ सदैव उनका आभारी रहेगा।

साध्वीश्री बालूजी की संसार-पक्षीया पुत्री मालूजी (१०९४) 'चूरू' ने सं० १९९८ मे और जेठूतरी कमलश्रीजी (१२४३) 'टमकोर' ने सं० २००६

---

१. नत्थू टमकोरी माता साथ सुहायो,
भैक्षव-शासन मे भारी नाम कमायो।
(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० २६)

मे दीक्षा स्वीकार की ।

२. साध्वीश्री वालूजी दीक्षित होने के वाद एक साल साध्वीश्री फूलांजी (७३२) 'रीणी' के और नौ साल साध्वीश्री वघूजी (६६४) 'पचपदरा' के सिंघाडे मे रही । स० १९९७ मे साध्वीश्री वघूजी के दिवंगत होने के वाद आचार्यश्री तुलसी ने उनके सिंघाडे की साध्वीश्री पन्नांजी (८७९) 'देरासर' को अग्रगण्या वनाया । साध्वीश्री वालूजी उनके साथ पन्द्रह वर्षो तक विहार करती रही । साध्वी पन्नांजी के साथ उनका घनिष्ठ आत्मीय-भाव था । सं० २०१३ मे साध्वीश्री मालूजी (१०९४) का सिंघाड़ा होने पर वे अन्त तक उनके साथ रही ।

३. साध्वीश्री वालूजी ने अपना जीवन साधना-विकास मे लगाया । 'समयं गोयम मापमायए' (एक क्षण भी प्रमाद करो) आगम वाक्य को सार्थक वनाया ।

वे अधिक पढ़ी-लिखी नही थी, फिर भी उन्हे अक्षर ज्ञान था । आन्तरिक रुचि के कारण परिश्रम कर उन्होने पन्द्रह थोकड़े, दस व्याख्यान और लगभग सौ ढाले कठस्थ की । त्याग-तपस्या के प्रति भी उनका वहुत झुकाव था । उन्होने अपने चालीस वर्षीय संयमी-जीवन मे निम्न प्रकार नियम, तप और स्वाध्याय आदि द्वारा अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाया ।

नियम

(१) जीवन भर नवकारसी करना ।

(२) दिन के चार प्रहरो मे प्रतिदिन दो पोरसी करना ।

(३) एक दिन मे एक विगय से अधिक खाने का त्याग ।

(४) अन्तिम पांच वर्षों मे सेलड़ी की वस्तु का त्याग तथा सात द्रव्यों से अधिक न लेना ।

तपस्या

उपवास	२	३	४	५	६	७	१०
१०४१	६७	२५	२१	१५	३	७	१

। तप के कुल दिन १४४०, जिनके ४ वर्ष, १८ दिन होते है । उन्होने लगभग पांच हजार एकासन और ५०१ आयम्बिल किए ।

तपस्या के साथ उनके ध्यान, स्वाध्याय और मौन का भी नियमित क्रम चलता था ।

वे सं० २००१ से प्रतिदिन एक घंटा ध्यान, एक हजार गाथाओं का स्वाध्याय और आठ घंटे प्रतिदिन मौन करती थी।

४. संघ एवं संघ-पति के प्रति साध्वीश्री की गहरी निष्ठा थी। वे हर कार्य मे गुरु की दृष्टि देखती। अपने स्वार्थ को कभी स्थान नहीं देतीं। आचार्यश्री के आदेशानुसार मुनिश्री नथमलजी सं० २०२७ के वैशाख महीने मे साध्वीश्री को सेवा कराने के लिए गंगाशहर पधारे।

एक महीना पूर्ण होने पर गांव के लोगों ने आग्रह भरे शब्दो मे साध्वी बालूजी से कहा कि आप निवेदन करें तो मुनिश्री यहां और ठहर सकते हैं। साध्वीश्री ने स्पष्ट जवाब देते हुए कहा—'मैं प्रार्थना नही करूंगी।' बल्कि उन्होने मुनिश्री से कहा—'आपको विहार करना है, लोग चढे हुए को भी हंसते है और पैदल चलने वालों को भी हसते हैं। मेरे शरीर का क्या भरोसा है! पांच दिन मे भी काम सिद्ध हो सकता है और एक-दो महीने भी निकल सकते है।'

लोगो ने फिर साध्वीश्री से कहा—'हम आचार्यश्री के दर्शनार्थ जा रहे हैं। मुनिश्री के चातुर्मास के लिए निवेदन करेंगे।' उत्तर मे साध्वीश्री ने कहा—'गुरुदेव का शरीर कमजोर है अतः मुनिश्री गुरु-सेवा मे ही चातुर्मास करे। पहले गुरु का और पीछे माता का संबंध है।'

एक दिन मुनिश्री ने साध्वीश्री से कहा—'यहां ४४ दिन हो जायेंगे, काफी सेवा हो गई।' उन्होने तत्काल उत्तर दिया—'यह कृपा गुरुदेव की है, आपकी नही। गुण तो गाने वाले के ही गाये जायेंगे। आप तो गुरुदेव के पीछे ही है।'

एक दिन मुनिश्री नथमलजी को शिक्षा के स्वरो मे कहा—'एक बात को विशेष ध्यान राखणो है, आचार्यश्री की इच्छा हुवै वो ही काम करणो है। आपणै तो बै ही है, गुरुदेव को करो जितो ही थोड़ो है।'

इस प्रकार उनकी सहज वाणी मे आचार्यश्री के प्रति निष्ठा बोलती थी।

साध्वीश्री बालूजी ने मुनिश्री नथमलजी के साथ आचार्यश्री तुलसी को अन्तिम पत्र दिया। उसमे उनकी गुरुदेव के प्रति हार्दिक आस्था तथा भक्ति प्रस्फुटित हो रही थी। पत्र निम्न प्रकार है :—

परमपूज्य, तेरापंथ रा प्राण, महान् क्रान्तिकारी, युगप्रधान आचार्यश्री श्री श्री श्री १००८ श्री श्री श्री तुलसी गणपति के चरणां मे साध्वी बालूजी,

मालूजी आदि सभी साध्वियां री सविधि वन्दना मालूम हुवै। श्रीजी के तनु रतन का सुखसाता रा समाचार सुणकर घणो हर्ष आयो।

आपरो रायपुर रो चातुर्मास वहुत सघर्षमय हुयो। म्हां लोगा के हृदय मे भी घणी उथल-पुथल रही। ओम् भिक्षु रो जाप करतां करतां दिन विताया। 'स्वामीजी धधकती आग स्यूं हाथ पकड़ कर निकाल दिया' आ म्हारी सही धारणा है। आप सकुशल अठै पधार्‌या, ओ संघ रो सौभाग्य हो।

ईं वार आपरै तनु रतन मे घणी असाता रही। आपने घणो कष्ट सहणो पड्‌यो। होनहार री वात है। आप जिसा पुण्यवानां रे तकलीफ क्यूं हुवै। परन्तु विधि री लीला विचित्र है।

रायपुर रे वाद म्हांनै ए समाचार मिल्या के आप महोत्सव वाद अठै पधारकर वीकानेर चोखला मे स्थिरवास वाला वूढा संत-सत्यां नै दरसन दिरास्यो। पर म्हां के अन्तराय को जोग हो। दरसन हो सक्या नही। अव तो आप चौमासे रे वाद ईं चोखले में पधारने की कृपा करास्यो।

आप मुनिश्री नथमलजी ने सेवा करावण नै अठै भेज्या, वे अठै पधा-र्‌या। मनै घणी-घणी सेवा कराई, म्हारै चित्त मे घणी समाधि उपजाई। आत्मा भिन्न है और शरीर भिन्न है, ईं वात ने रग-रग मे जमा दी। म्हारे शरीर मे घणी असाता रही। सारो शरीर रोग स्यूं आक्रांत हो गयो परन्तु चित्त-समाधि मे तनिक भी अन्तर नही आयो। पेली भी मैं समता री साधना करती परन्तु आपरा वचन सुणकर तथा मुनिश्री री सेवा स्यू चित्त-समाधि वर्धमान रही। आज भी वा वर्धमान है। हरदम आपरो सहारो है। आपरो तथा ओम् भिक्षु रो जाप कर-करके जी रही हूं। मरणै रो मनै तनिक भी भय नही है। म्हारी सारी इच्छावा नष्ट हो गई है। केवल आपरे दरसना री तीव्र भूख है वा आप ही मिटा सकोला। म्हारो शरीर घणो टिक सकेला इसी संभावना नही है। आपरै नाम री माला फेरूं हूं। वी स्यू मनै घणो सवल मिले है।

आपरी कृपा स्यू मुनि नथमलजी मनै घणी-घणी सेवा करवाई। आपरी घणी वातां सुणाई। म्हारै मन मे घणी प्रसन्नता हुई। एक महीने स्यू ज्यादा म्है वांनै रोकणा नहीं चाहती। पधारतां ही म्है वाने अर्ज कर दी कि जद भी आचार्यश्री रो हुकम आ जासी म्है आपने विदाई दे देस्यू। आप म्हारां पर किरपा करा कर धापती सेवा कराई। मन घणो संतुष्ट हुवो।

मालूजी आदि सारा सतियां म्हारी बहुत सेवा करै है। छोटा-मोटा सारा सतियां रात दिन म्हारो ध्यान राखै है। कदेइ-कदेइ रात-रात भर बैठा रेवै। म्हारे कारण वांनै घणो कष्ट उठाणो पड़े है। मैं असहाय हूं, वारी अगिलाण भाव री सेवा देखकर म्हारै मन मे घणी बार आवै के इसी सेवा भिक्षु-शासन मे ही हो सके है दूसरी जग्यां नहीं हो सके। आप मालक हो सब कुछ आप करावो हो। आपरी म्हैं जनम-जनम तक आभारी हूं। आप करोड दिवाली राज करीज्यो। म्हां जिसा नै संयम रो साझ दीज्यो।

अठै रा सारा सतियां श्रीचरणां मे वारंवार वन्दना मालूम करावै है। ये सब आपरा दरसनां रै लिए उत्सुक है। समय रै अभाव मे पढ़ाई कम हुवै है परन्तु स्वाध्याय चालू है। क्षेत्र घणो सुखदाई है, अठै रा भाया-वायां घणा विनीत है। सेवा घणी बजावै है। आप रा पूरा-पूरा भक्त है। वचनां रा आराधक है।

भगवन् ! आप सूरज ज्यूं तपज्यो, आपरो प्रकाश सर्वत्र फैले, आहीज आशा है।

गंगाशहर म्है हां आप रा आज्ञाकारी

आषाढ़ कृष्णा ३, सं २०२७ सारा सतियां

५ साध्वीश्री विशेषतः व्यक्ति के गुणो को पकड़ती थी। एक बार मुनि नथमलजी ने उनके साथ रहने वाली सतियो की प्रकृति के विषय मे पूछा—'अमुक कैसी है ?' उन्होने बिना संवारे सीधा उत्तर दिया—'मिनख न्याऊ कोनी, यदि स्वयं की आत्मा ठीक हुवै तो।'

इस एक छोटे से वाक्य द्वारा उन्होने अपने जीवन का अनुभव खोलकर रख दिया। उनकी दृष्टि गुण-ग्रहण की रहती थी। वे हर वस्तु मे गुण देखती थी। दो मिनट के बाद फिर कहा—'सतियो की तो बात ही क्या ? यह घड़ी जड़ है, फिर भी इसका मेरे ऊपर बहुत उपकार है।' मुनि श्रीचंद जी ने प्रश्न किया—'इसका क्या उपकार है ?'

उन्होने उत्तर दिया—'इसी के सहारे मैं त्याग-प्रत्याख्यान करती हूं। घड़ी है इसलिए मिनिट भी खाली नही जाती। अभी एक घंटे का चौविहार त्याग किया है। घंटा पूरा होने पर पानी पीकर फिर त्याग कर देती हूं। यदि घडी न हो तो एक घटे के स्थान पर सवा घंटा बीत जाए तो भी पता

न चले। सवा घंटा चला जाने से पन्द्रह मिनिट तो त्याग के विना ख़ाली ही गये।

इससे यह सारांश निकलता है जिस व्यक्ति मे गुणो के प्रति ऐसी दृष्टि वन जाती है वह व्यवहार में कभी असफल नही रहता।

६. घटना पचपदरा की है। अर्धरात्रि का समय था, सव साध्वियां सोयी हुई थी। एक सर्प आया और साध्वीश्री वालूजी के दोनो पैरों में लिपट गया। वे जग गईं और उन्हे ज्ञात भी हो गया कि सांप पैरो मे लिपट वैठा है। वे डरी नही, वैसी की वैसी स्थिति मे सोयी रही। न तो पैरो को हिलाया और न शोर मचाया। पास मे सोयी साध्वी वग्घूजी से कहा—'साध्वीश्री! मेरे पैरो को सर्प ने जकड़ लिया है।' उस समय साध्वीश्री वग्घूजी और वालूजी दोनो नवकार-मत्र का जप करने लगी। कुछ ही क्षणो मे देखते-देखते सर्प उतरने लगा। साध्वीश्री ने हाथ से पकड़कर उसे दूर रख दिया। यह घटना साध्वीश्री के अतुल साहस का वोध कराती है।

७ साध्वीश्री ने वार्धक्य वय एवं रोगादिक के कारण स० २०२२ से शेप तक उदासर, वीकानेर तथा गंगाशहर मे प्रवास किया। घोर वीमारियों के साथ जूंझती हुई समता व सहिष्णुता का महान् परिचय दिया।

वेदना के समय उनकी सहिष्णुता वेजोड थी। एक वार उनकी हथेली मे एक फोड़ा (सतपुड़ा) हुआ। वह इतना फैल गया कि उसने आधे हाथ को अपनी परिधि मे ले लिया। वहुत लम्वा ऑपरेशन हुआ। उसे देखकर डॉक्टर अग्रवाल ने कहा—'मैंने ऐसा व्यक्ति नही देखा जो ऐसी स्थिति मे पत्थर की तरह वैठा रहे और उफ तक न करे।'

उनके गले मे कुछ महीनो से कैंसर हो गया। असह्य वेदना थी, फिर भी उनके मुख से कभी उफ तक नही निकला। वीमारी होना एक वात है और उसमे आर्त्तध्यान न करना वहुत वड़ी वात है। वे कहतीं—'मेरे वेदनीय कर्म का उदय है, मुझे ही भोगना पडेगा। मुझे कोई दवा मत दो और मेरी चिन्ता मत करो।'

८ आखिरी दिनो मे उन्होने 'आत्मान्य: पुद्गलश्चान्य:' (आत्मा भिन्न और शरीर भिन्न) का मंत्र अपने जीवन मे उतार कर अधिकांश समय महामंत्र व भिक्षु स्वामी के जाप मे लगाया। आखिर सं० २०२८ श्रावण कृष्णा १५ को रात्रि के लगभग ४ वजे गंगाशहर मे अत्यत समाधि-पूर्वक

मरण प्राप्त किया। श्रावण शुक्ला १ को उनकी शवयात्रा का शानदार जुलूस निकाला गया। लगभग पांच-सात हजार व्यक्तियों ने उसमें भाग लिया। मधुर गीतों व जयघोषों के साथ श्मशान भूमि में पहुंच कर उनके शरीर की अंतिम क्रिया संपन्न की गई।

आचार्यश्री ने साध्वीश्री के स्वर्गवास होने पर निम्नोक्त उद्गार व्यक्त किये तथा एक सोरठा फरमाया—

"साध्वीश्री वालूजी अधिक पढ़ीलिखी नहीं थीं पर अपनी आत्म-साधना में बहुत सजग थी। उनके जीवन में संयम था, इसलिए वे पंडिता भी थी। इन वर्षों में उनकी वृत्ति और भी विलक्षण बन गई थी। उन्होंने आत्मा भिन्न है और शरीर भिन्न है इस तत्त्व को गहराई से समझा था। गत कुछ वर्षों से वे काफी अस्वस्थ थी। उस अवस्था में भी उन्होंने बहुत ऊंचे मनोबल का परिचय दिया और अन्त तक गहरी मानसिक समाधि में रही। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने हमें एक ऐसे बालक (मुनि नथमल) को दिया है जो अपनी प्रज्ञा और प्रतिभा से शासन की अच्छी सेवा कर रहा है।

मुनि नथमलजी सचमुच भाग्यशाली हैं जो अपनी माता के ऋण से मुक्त हो गये। अभी कुछ दिनों पूर्व ही गंगाशहर जाकर उनके मन में समाधि उपजाकर आये हैं।"

सोरठा

मुनि नयमल री मात, वालू श्रमणी बलवती।
समझी सहज सुजात, तन चेतन री भिन्नता॥

(तुलसीगणी की ख्यात)

९. साध्वीश्री मालूजी आदि[1] ने साध्वीश्री वालूजी को प्रारंभ से अंत तक रुग्णावस्था में बहुत सहयोग दिया। अंतिम दिनों में जो उनकी परिचर्या

---

(१) १. साध्वीश्री मालूजी (१०९४) चूरू।
२. साध्वीश्री सुप्रभाजी (१२८२) श्रीडूंगरगढ़।
३. साध्वीश्री स्वयंप्रभाजी (१३०५) सरदारशहर।
४. साध्वीश्री कीर्तिश्रीजी (१३२३) तारानगर।
५. साध्वीश्री मणिप्रभाजी (१३३८) छापर।

की वह शब्दातीत थी। कर्म-निर्जरा की दृष्टि एवं आत्मीय-भावना के विना ऐसी सेवा होना मुश्किल है। साध्वीश्री वालूजी वड़ी भाग्यशालिनी थी, जिससे उन्हे सभी तरह से अनुकूल योग मिला।

१०. साध्वीश्री वालूजी के संवंध मे लिखी गई 'विदेह की साधिका साध्वीश्री वालूजी' नामक पुस्तक प्रकाशित है। उसमें उनके जीवन की विविध विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। उपर्युक्त अधिकांश विवरण उसी पुस्तक के आधार से लिखा गया है।

९०८।८।१८३ साध्वीश्री आसांजी (लाडनूं)

(संयम-पर्याय सं० १९८७-२०२७)

गीतक छंद

लाडनूं की वासिनी थी गोत्र कुल का वांठिया[1]।
सती 'आसां' ने विशद चारित्र भावों से लिया[2]।
तप-जपादिक क्रिया करती रही है वहु वर्ष तक।
सफल जीवन को वनाया लगाया यश का तिलक[3] ॥१॥

१. साध्वीश्री आसांजी की ससुराल लाडनूं (मारवाड़) के वांठिया (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही वोथरा गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९५५ (सा० वि० मे सं० १९५४) में हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम रामलालजी, माता का मुखीवाई और पति का केवलचंदजी था।

(साध्वी-विवरणिका)

आसाजी ने पति वियोग के वाद सं० १९८७ माघ शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली ९ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री वालूजी (९०७) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. उन्होने निम्नोक्त तप किया :—

उपवास	२	३
६७३	७२	२

(सा० वि०)

३. सं० २०२७ कार्तिक कृष्णा १२ को लाडनूं में उनका स्वर्गवास हुआ।

(ख्यात)

उस वर्ष लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' में साध्वीश्री मंजूश्रीजी (९६१) 'सरदारशहर' और इन्द्रूजी (१०४५) 'लाडनूं' थीं।

९०९।८।१८४ साध्वीश्री लिछमांजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८७-२०२६)

लिछमां के दोनों पक्षों का पुर सरदारशहर में वास।
और वहां पर दीक्षित होकर पाया भैक्षव गण-आवास[1]।
उनचालीस वर्ष तक तप-जप आदिक कर पाई सोल्लास[2]।
हुआ हृदय-गति-रोध अचानक जिससे किया स्वर्ग में वास[3] ॥१॥

१. साध्वीश्री लिछमांजी की ससुराल सरदारशहर (स्थली) के बरडिया (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही दूगड़ गोत्र मे था । उनका जन्म सं० १९६१ मे हुआ ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम नथमलजी, माता का सुगनांजी और पति का वृद्धिचंदजी था ।

(साध्वी-विवरणिका)

लिछमांजी ने पति वियोग के वाद सं० १९८७ माघ शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की । उस दिन होने वाली ९ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री वालूजी (९०७) के प्रकरण मे कर दिया गया है ।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. उन्होने अपने जीवन में इस प्रकार तप किया :—

उपवास	२	३	४	५	६
१५२९	५७	४	९	४	१

। तप के कुल दिन १७१७, जिनके ४ वर्ष, ९ महीने और ७ दिन होते हैं ।

(ख्यात)

३. सं० २०२६ (चैत्रादि क्रम से २०२७) ज्येष्ठ शुक्ला १३ को समदड़ी और सीलोर के वीच आकस्मिक हृदयगति रुक जाने के कारण उनका स्वर्गवास हो गया ।

(ख्यात)

६१०।८।१८५ साध्वीश्री छगनांजी (नोहर)

(दीक्षा सं० १९८७, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री छगनांजी का जन्म सं० १९६१ चैत्र कृष्णा ३ को अबोहरमंडी मे हुआ। उनके पिता का नाम नारायणदासजी और माता का जीवणी देवी था। छगनाजी का विवाह नोहर (स्थली) निवासी धनराजजी बरड़िया (ओसवाल) के पुत्र शोभाचंदजी के साथ कर दिया गया। समयान्तर से उनका देहान्त हो गया।

दीक्षा—छगनांजी ने पति वियोग के वाद सं० १९८७ माघ शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली ९ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री वालूजी (९०७) के प्रकरण में कर दिया गया है।

साध्वीश्री तीस साल क्रमशः साध्वीश्री जड़ावांजी (६५७) 'राजलदेसर', साध्वीश्री दरियावांजी (६६१) 'किशनगढ़', साध्वीश्री मनोरांजी (८०९) 'चूरू' के साथ रही।

वृद्धावस्था के कारण सं० २०३१ से लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे स्थिरवास कर रही हैं।

६११।८।१८६ साध्वीश्री मनोरांजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय १९८७-२०४१)

दोहा

वनेचन्दजी बरड़िया, नोहर-वासी तात।
श्वसुर शहर सरदार के, दूगड कुल विख्यात ॥१॥

चरण मनोरां ने लिया, पति-वितोग के बाद।
आकर गुरु की शरण में, चखा साधना-स्वाद[1] ॥२॥

रामायण छन्द

साथ रही भूरां श्रमणी के लिछमां, कमला सह कुछ साल।
सकुशल संयम-यात्रा करती भरती ज्ञान-सुधा सुविशाल[2]।
सूत्र थोकड़े व्याख्यानादिक सीख लिये कर सतताभ्यास।
ध्यान-जाप-स्वाध्याय नियमतः करती रहती भर उल्लास[3] ॥३॥

प्रकृति-भद्रता पापभीरुता गण-गणि के प्रति निष्ठाभाव।
यथाशक्य तप में रस लेती रखकर अन्तर्मुखी झुकाव[4]।
व्याधिग्रस्त होने के कारण किया लाडनूं में स्थिरवास।
रह पाई लम्बे अर्से तक भरकर समता भाव प्रकाश ॥४॥

तप की हुई भावना आखिर अष्टान्हिक तप प्रमुख किया।
मरण समाधिपूर्ण बेले में पाकर सुरपुर पथ लिया।
साल एक-चालीस फाल्गुनी शुक्ल तृतीया आई है।
चंदेरी की पुण्य धरा पर चरमोत्सव-छवि छाई है[5] ॥५॥

१ साध्वीश्री मनोरांजी का जन्म नोहर (स्थली) के वरडिया (ओसवाल) परिवार मे सं० १९६८ आश्विन शुक्ला ३ को हुआ (क्वचिद् आश्विन कृष्णा ७ है)। उनके पिता का नाम वनेचन्दजी और माता का मौला देवी था। मनोराजी का विवाह सरदारशहर-निवासी आसकरणजी दूगड़

(मोमासर वाले) के सुपुत्र बालचन्दजी के साथ कर दिया गया। समयान्तर से पति का देहावसान हो गया।

मनोराजी ने पति वियोग के बाद १६ साल की अवस्था मे सं० १९८७ माघ शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली ९ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री बालूजी (९०७) के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

उनकी छोटी बहिन साध्वीश्री कमलूजी (९७५) 'नोहर' ने सं० १९९२ मे दीक्षा स्वीकार की।

(उनकी ख्यात)

२. साध्वीश्री मनोरांजी दीक्षित होने के बाद साध्वीश्री भूरांजी (३७८) 'लाडनूं' के सिंघाडे मे दस साल (सं० १९९७) तक रही। सं० १९९८ का चातुर्मास साध्वीश्री वृद्धांजी (५७७) 'बोरज' के साथ सुजानगढ मे किया। सं० १९९९ से शारीरिक अस्वस्थता (लकवा आदि बीमारी) के कारण लाडनूं मे स्थायी वास कर दिया। बीच मे तीन चातुर्मास[1] साध्वी लिछमाजी (८०१) 'मोमासर' के और तीन चातुर्मास[2] साध्वी कमलूजी (९७५) 'नोहर' के साथ किये।

(परिचय-पत्र)

३. साध्वीश्री ने सतत प्रयास करते हुए निम्नोक्त सूत्र, थोकड़े, व्याख्यान आदि कंठस्थ किये :—दशवैकालिक, पच्चीस बोल, पाना की चरचा, तेरहद्वार, लघुदण्डक, बावनबोल, इक्कीसद्वार, इकतीसद्वार, कर्म-प्रकृति, संजया, गमा, महादण्डक, सेर्‌यां, हरखचन्दजी स्वामी री चरचा, हेमराजजी स्वामी के २५ बोल, पच्चीस बोल की चर्चा, गुणस्थानद्वार, लडियां (७०० गाथाओ की), भ्रमविध्वंसन की हुंडी, झीणी चर्चा, भिक्खु-पृच्छा, सासता-असासता आदि। रामचरित्र, धनजी, शालिभद्र, आराधना, चौबीसी, शील की नौ बाड, छोटी-बड़ी साधु वन्दना, जयाचार्य का ध्यान, २३ परिषह की ढालें, भक्तामर, स्मरणात्मक गीतिकाएं आदि।

(परिचय-पत्र)

४. साध्वीश्री प्रकृति से भद्र, पापभीरू और संघ-संघपति के प्रति

---

१. सं० २००६ मोमासर, २००७ नोहर, २०१२ छापर।

२. सं० २०१८ रतनगढ, सं० २०२६ चूरू, २०२७ चूरू।

समर्पित थी। स्वाध्याय आदि मे विशेप रुचि रखती थी। उन्होंने अपने जीवन मे लाखो गाथाओं का स्वाध्याय किया। यथाशक्य उपवासादिक भी करती थी। तप की तालिका इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५
७६४	१६	२	२	१

। कुल दिन ८२१, जिनके २ वर्ष, ३ महीने और ११ दिन होते है।

(परिचय पत्र)

५. साध्वीश्री लगभग ३८ साल लाडनू 'सेवाकेन्द्र' मे पूर्ण समाधि-पूर्वक रही। अन्तिम दिनो मे अधिक अस्वस्थ रहने लगी। तव उन्होने संलेखना-तप करने का चिन्तन किया। आठ दिन की तपस्या की फिर चौविहार वेला किया। उसी दिन रात के ११ बजे आयुष्य पूर्ण कर दिया। वह दिन था—सं० २०४१ फाल्गुन शुक्ला ३। स्थान लाडनूं 'सेवाकेन्द्र'।

उस समय लाडनू 'सेवाकेन्द्र' मे साध्वीश्री कंचनकंवरजी (६०४) 'राजनगर' और भीखाजी (१०८३) 'लाडनू' थी। सभी साध्वियो ने साध्वी मनोरांजी के समाधि-मरण मे अच्छा सहयोग किया।

साध्वी मनोरांजी के तपस्या के समय आचार्यश्री तुलसी एवं साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी द्वारा जो सदेश प्राप्त हुए वे इस प्रकार हैं—

"साध्वी मनोहराजी नोहर के सन्तोपचन्दजी वरड़िया की संसारपक्षीया वहिन है। वह वर्पो से लाडनू मे स्थिरवासिनी है। पापभीरु है और वहुत अच्छी साध्वी है, धर्मसघ की समर्पित साध्वी है। अव वह तपस्या मे लगी हुई है। हमने सुना है अव उसे अन्न की रुचि नही है। शरीर पर शोथ आ गया है। ऐसी स्थिति मे तपस्या को वढ़ाया जाय और सेवाकेन्द्र की साध्वियां उसको इस काम मे खूव अच्छा सहयोग दे। उत्तरोत्तर तपस्या को वढाएं और मन को समाधिस्थ रखें, अन्तिम संथारे की भावना रखे। पर सथारा विना सोचे-समझे नही, पूरे चिन्तन और होशोहवास से होने की चीज है।"

पाली —आचार्य तुलसी
१८ फरवरी, ८५

"साध्वीश्री आप इन वर्पों से वहुत अस्वस्थ रहती हो। अस्वस्थता की स्थिति मे शरीर और आत्मा की भिन्नता का वोध देने वाला भेद विज्ञान

आपके जीवन का महान् मन्त्र वन सकता है । आप पल-पल आत्मा की अविनश्वरता का चिन्तन करती हुई समभाव से वेदना सहन करो, यह महान् कर्म निर्जरा का अवसर है ।

—कनकप्रभा

साध्वीश्री के दिवंगत होने के पश्चात् उनके संबंध में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए आचार्यप्रवर ने कहा—साध्वी मनोहरांजी नोहर की वेटी थी और सरदारशहर में दूगड़ो के घर व्याही थी । महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष संतोषचन्दजी वरडिया की वहिन थी । वहुत वर्षो तक उन्होने साधु-पर्याय का पालन किया । वे प्रकृति की सरल और भद्र थी । शारीरिक अस्वस्थता के कारण मैंने उन्हे लाडनू 'सेवाकेन्द्र' में रखा । अन्तिम समय मे उन्होने आठ की तपस्या की और फिर वेले की तपस्या मे उन्होने समाधि-मरण को प्राप्त किया ।

(विज्ञप्ति संख्या ७२१)

६१२।८।१८७ साध्वीश्री पिस्तांजी (जमालपुर)

(संयम-पर्याय सं० १६८७-२०३७)

'४६वीं कुमारी कन्या'

लय—पल-पल बीती जाए……

पिस्तां ने रिश्ता जोड़ा, संयम-जीवन से सर्वोत्तम। संयम……
फिर प्रबल पराक्रम फोड़ा, कर अनशन का पूरा कोरम।
कर……॥ध्रु०॥

हे हरियाणा में पुर 'जमालपुर' अग्रवाल कुल गाया।
हे अविवाहित वय में पिस्तां ने, प्रभु का पथ अपनाया।
पिस्तां……॥१॥

साल सतासी माघ मास की, दसमी शुक्ला आई।
अद्भुत छवि सरदारशहर में, चरणोत्सव की छाई[1] ॥२॥

वर्ष पचास साधना में रम, फूली और फली है।
तप-जप में जम विरति-सुधा का, चखा स्वाद असली है[2] ॥३॥

'स्वास्थ्य-केन्द्र' सरदारशहर में, एक साल रह पाई।
'सेवाकेन्द्र' लाडनूं में फिर, स्थायी अलख जगाई[3] ॥४॥

शेष दिनों में लगन लगी है, तप-अनशन से उनकी।
कुछ दिन तप कर गुरु-चरणों में, रखी भावना मन की ॥५॥

आग्रह देख विशेष सुगुरु ने, करा दिया संथारा।
खिली सती की कलियां-कलियां, छूटा हर्ष-फुंवारा ॥६॥

वर्धमान भावों से बढ़ती, चढ़ती गई गगन में।
फली भावना सबकी सब ही, रही न कुछ भी मन में ॥७॥

दिन बाईस तपस्या अनशन पन्द्रह दिन का आया।
चौविहार चौबीस दिवस का कीर्तिमान बन पाया ॥८॥

तुलसी युग में तुलसी कर मे, काम नया हो पाया।
तुलसी गुरु की जन्मभूमि पर नव इतिहास बनाया ॥९॥

लाभ लिया सतियों ने पूरा, दी कुछ मुझे दलाली।
सुगुरु-दृष्टि पीयूष-वृष्टि से, फैली नूतन लाली ॥१०॥

दो हजार सैंतीस साल की, श्रावण एकम आई।
पिस्तां ने सैंतीस दिनों से, ली है बड़ी विदाई ॥११॥

भाग्यवती थी भाग्य योग से, योग मिला गुरुवर का।
शिखर चढ़ा है काम धाम तो पाया साध्य-शिखर का ॥१२॥

तुलसी गणी ने स्मृति में उनकी, भारी गरिमा गाई।
वीर-वृत्ति से धर्म-संघ में सती अमर हो पाई ॥१३॥

१. साध्वीश्री पिस्तांजी का जन्म सं० १९७१ आषाढ शुक्ला पंचमी को हरियाणा प्रान्त के अन्तर्गत जमालपुर ग्राम मे हुआ। वे जाति से अग्रवाल थीं। उनके पिता का नाम समनलालजी और माता का चंपा बाई था।

(ख्यात, सा० वि०)

साधु-साध्वियो के उपदेशो से प्रभावित होकर पिस्तांजी ने १५ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १९८७ माघ शुक्ला १० को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली ९ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री वालूजी (९०७) 'टमकोर' के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात)

२ साध्वीश्री पिस्तांजी प्रकृति से सरल थी। साधुचर्या मे रत होकर तप-स्वाध्याय द्वारा अपनी आत्मा को भावित करती हुई लगभग पचास साल संयम का रसास्वादन करती रही। उन्होंने इस प्रकार तपस्या की—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	३३
५३६	१२६	३०	१४	१	२	२	१	१

तथा

चौमासी
——— (आछ के आगार से)।[1]
 १

२१ वार दस प्रत्याख्यान और एक वार अढ़ाई-सौ प्रत्याख्यान किए।
(परिचय-पत्र)

३. अस्वस्थ होने के कारण साध्वीश्री ने एक साल सरदारशहर 'स्वास्थ्यकेन्द्र' मे रहकर चिकित्सा करवाई पर कोई सुधार नही हुआ। फिर सं० २०३५ से लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे स्थायी वास कर दिया। परम समाधि-पूर्वक अपनी संयम-यात्रा सफल करती रही।

४ आचार्यश्री तुलसी सं० २०३७ का चातुर्मास करने के लिए लाडनूं (जैन विश्व भारती) पधारे। आचार्यप्रवर के पदार्पण के कुछ ही दिनो वाद साध्वीश्री की एकाएक तप व अनशन करने की प्रवल भावना हो गई। उन्होने आचार्यप्रवर एवं साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी के सम्मुख अपनी भावना प्रस्तुत की और संकेत पाकर ज्येष्ठ शुक्ला ६ को तपस्या चालू कर दी। उसी दिन से वे अनशन की मांग करती रही। क्रमशः तेईसवे दिन वर्धमान भावो से अत्याग्रह किया तव आचार्यप्रवर ने आषाढ़ शुक्ला २ को आजीवन तिविहार एवं आषाढ़ शुक्ला पंचमी को चौविहार अनशन करा दिया।

साध्वीश्री पूर्ण समाधिस्थ होकर समता-भाव मे रमण करने लगी। साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी तथा 'सेवाकेन्द्र' की साध्वियों ने आध्यात्मिक पद्यादिक् सुना कर उन्हे अच्छा सहयोग दिया। आचार्यप्रवर के आदेशानुसार मै (मुनि नवरत्न) भी उन्हे कई वार तपस्वी साधु-साध्वियो की गीतिकाएं सुनाने गया।

आखिर सं० २०३७ श्रावण कृष्णा १ सोमवार को सुवह छह वजकर ४१ मिनिट पर अनशन सानंद सम्पन्न हो गया।

साध्वीश्री वड़ी भाग्यशालिनी थी। जिससे उन्हे आचार्यप्रवर द्वारा अनशन ग्रहण कर पंडित-मरण प्राप्त करने का सौभाग्य मिला।

उनके संलेखना-तप तथा अनशन की तिथियो का क्रम इस प्रकार है—

---

१. यह चौमासी तप उन्होने सं० २०१७ राजनगर मे द्विशताब्दी समारोह के अवसर पर आचार्यश्री की सेवा में किया था।

ज्येष्ठ शुक्ला ६, दिनांक २२ जून १६८० को तिविहार तप चालू।

ज्येष्ठ कृष्णा १४ आषाढ़ कृष्णा ३ तक, दिनांक २७ जून से १ जुलाई तक चौविहार तप।

आषाढ कृष्णा ४ से ६ तक, दिनांक २ से जुलाई ४ जुलाई तक तिविहार तप।

आषाढ़ कृष्णा ७ से आषाढ शुक्ला १ तक, दिनांक ५ जुलाई से १३ जुलाई तक पुनः चौविहार तप।

आषाढ़ शुक्ला २ से ४ तक, १४ जुलाई से १६ जुलाई तक तिविहार अनशन।[1]

आषाढ शुक्ला ५ से श्रावण कृष्णा १ तक, दिनांक १७ जुलाई से २८ जुलाई तक चौविहार अनशन।

साध्वीश्री ने सलेखना-तप के अन्तिम ६ दिन चौविहार तथा अनशन के १५ दिन चौविहार, कुल २४ दिन का चौविहार तप-अनशन कर भैक्षव-शासन मे सर्वप्रथम कीर्तिमान कायम कर दिया।

साध्वी-प्रमुखा जेठांजी ने २२ दिन का चौविहार तप किया। साध्वी रतनवतीजी (१२३६) 'श्रीडूंगरगढ़' के तप-अनशन सहित २२ दिन चौविहार हुए। पर साध्वी पिस्तांजी सबसे आगे बढ गई।

आचार्यश्री तुलसी के युग मे होने वाले अनेक कीर्तिमानो मे साध्वी पिस्तांजी ने एक और नई कड़ी जोड़ दी।

५ आचार्यप्रवर ने साध्वी पिस्तांजी के संबंध में गद्य-पद्य द्वारा अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए उनकी वीरवृत्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा की। पढ़िये आचार्यप्रवर के शब्दो में—

'यह अच्छा क्रम है कि शासन मे छोटा-बड़ा कोई साधु-साध्वी दिवंगत हो और अपना काम सिद्ध करे, उसका गुणगान करे और उसके आदर्शों को जनता के समक्ष रखें। इसी दृष्टि से आज हमने यह स्मृति-सभा रखी है। साध्वी पिस्तांजी ने भी हमारे धर्म-संघ की अच्छी सेवा की है। अस्वस्थ होने पर वे कुछ समय तक 'चिकित्सा-केन्द्र' सरदारशहर मे रही। एक वर्ष तक चिकित्सा हुई, किन्तु चिकित्सा कारगर नही हुई। फिर उन्होने निवेदन किया

---

१. आचार्यप्रवर ने तिविहार अनशन कराया पर उन्होने चौविहार ही रखा।

कि चला नही जाता है। मैंने कहा कि चला नही जाता है तो 'सेवाकेन्द्र' की श्रेणी मे आ जाओ। लाडनूं 'सेवाकेन्द्र मे उन्हें रख दिया। भ्रमण करते-करते हम लोग भी यहां पहुंच गए। इस वार पता नही उनको क्या हुआ? उन्होने साध्वी-प्रमुखाजी से कहा कि महासतियांजी महाराज! अब मेरी खाने-पीने की इच्छा नही है। यह शरीर मेरा वैरी हो गया है। इतना इलाज कराया पर ठीक नही हुआ। अब मैं तपस्या करके इस शरीर को कुछ दिखाना चाहती हू। साध्वी-प्रमुखाजी ने सोचा, ये ऐसे ही बात करती होगी। पर पिस्तांजी ने तो तपस्या शुरू कर दी और जिस दिन तपस्या शुरू की, उसी दिन उन्होने अनशन की माग की, सथारे की मांग की। किन्तु हमने संथारे के बारे मे नही सोचा। एक-एक दिन तपस्या करते-करते बाईस दिन बीत गए। मैं वहां दो-तीन बार गया। तेइसवे दिन गया तो वे लेटी हुई थी। हमारी चर्चा हुई, जब मैं उठने लगा तब पैर तो वे पकड नही सकती थी, पर ऐसे आग्रह से रोक लिया कि आने नही दिया। उन्होने कहा कि आज तो संथारा पचखाए बिना जाने नही दूगी। खड़ी हो गई। बार-बार प्रार्थना करने लगी। मैंने युवाचार्यजी एवं साध्वी-प्रमुखाजी से परामर्श किया। जब मुझे विश्वास हो गया कि संथारा पार होने वाला है तो तत्काल मैंने उनको यावज्जीवन तिविहार सथारा पचखा दिया। पर उन्होने कहा कि अभी चौविहार बाकी है। उस दिन हम वापस आ गए। उसके बाद १७ जुलाई को उन्होने चौविहार संथारा स्वीकार किया। साध्वियो ने उनकी बहुत अच्छी सेवा की। साध्वी-प्रमुखाजी स्वय प्रतिदिन उनके पास जाती थी। एक साधारण-सी दीखने वाली साध्वी ने असाधारण कार्य कर दिखाया। दिवंगत आत्मा के भावी जीवन के प्रति शुभकामना।'

श्रद्धास्पद आचार्यप्रवर ने स्वर्गीया साध्वीश्री के सम्बन्ध मे कुछ पद्य भी फरमाये—

साध्वी पिस्तां ने खड़ा किया नव कीर्तिमान।
चौबीस दिवस का चौविहार अनशन प्रधान।।

वर तपोयोग से धर्म-संघ की बढ़ी शान।
ज० वि० भा० लाडनू 'सेवाकेन्द्र' बना महान्।।

सैंतीसे अंतिम सल्लेखन सैंतीस दिवस।
तेरह तिविहार शेष निरजल निःशेष स्ववश।।

आचार्य, युवा, साध्वी-प्रमुखा का योग रहा।
सतियों का निशदिन सेवा भाव प्रवाह वहा॥

साधारण-सी साध्वी ने साहस खूब किया।
अत्यन्त समाधि-भाव से सचमुच सुयश लिया॥

गुरु-चरण समर्पित एकांतिक आंखों देखा।
तो अंत समय तक हुई न विचलित रुं रेखा॥

सुद नवमी जेठ मास से सावन विद एकम।
सचमुच अनशन का समय रहा भारी भरकम॥

दुनिया जाने मौत नाम से क्यों घवराती।
'तुलसी' पिस्तां से मौत थरकूका थी खाती॥

हरियाणा पंजाव के ज्ञाति-नाति लोक।
की जीभर समुपासना निज दायित्व विलोक[1]॥

(विज्ञप्ति क्रमांक ५०५)

---

१. साध्वी पिस्तांजी के संसार-पक्षीय भाई रामचन्द्रजी जैन (जो सरदार-शहर में दूगड़ विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे) आदि पारिवारिक जन अनशन के समय सेवा मे उपस्थित थे।

६१३।८।१८८ साध्वीश्री सिरेकंवरजी (राजलदेसर)

(संयम-पर्याय सं० १९८७-१९९३)

छप्पय

सिरेकंवर ने ले लिया पति सह चरण सहर्ष।
खिलते यौवन में बडा दिखा दिया आदर्श।
दिखा दिया आदर्श समृद्ध उभय परिवारी।
धन परिजन की वृद्धि धर्म में आस्था भारी।
मिला प्राकृतिक योग शुभ खिला भाग्य उत्कर्ष।
सिरेकंवर ने ले लिया पति सह चरण सहर्ष॥१॥

ब्रह्मचर्य की साधना की दम्पति ने गुप्त।
ज्योति जली अध्यात्म की शक्ति जगी है सुप्त।
शक्ति जगी है सुप्त विजय-विजया सम जोड़ी।
पाकर अन्तर बोध स्वजन से ममता छोडी।
चढ़ते भावों से किया सयम-श्री का स्पर्श[1]।
सिरेकंवर ने ले लिया पति सह चरण सहर्ष॥२॥

दोहा

रहती गुरुकुल-वास में, भर दिल में उल्लास।
ज्ञान-ध्यान तप आदि कर, भरती सरस सुवास[1]॥३॥

अकस्मात् हैजा हुआ, 'सेरुणा[2]' के पास।
नश्वर तन को छोड़कर, किया स्वर्ग में वास॥४॥

ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी, नवति-तीन की साल।
लक्ष्य पूर्ण करके चली, फली मनोरथ-माल॥५॥

की छह वार्षिक साधना, भावों से अनवद्य।
स्मृति में श्री गुरुदेव ने, जोड़ सुनाया पद्य[3]॥६॥

१. साध्वीश्री सिरेकवरजी का जन्म श्रीडूंगरगढ़ के बींजराजजी पुगलिया की धर्मपत्नी प्रतापीदेवी की कुक्षि से सं० १९६८ में हुआ। यथासमय उनका विवाह राजलदेसर (स्थली) निवासी बींजराजजी बैद (ओसवाल) के सुपुत्र अमोलकचंदजी के साथ कर दिया गया।

दोनों परिवार सभी दृष्टियों से संपन्न, धार्मिक और धर्म-संघ के प्रति पूर्ण श्रद्धाशील थे। सभी प्रकार की अनुकूल सामग्री प्राप्त होने पर भी दम्पति के दिल में वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित हो गये। उन्होंने विवाहित होने के दिन से ही गुप्त रूप से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर विजय सेठ-विजया सेठानी का उदाहरण प्रस्तुत किया। फिर दीक्षा के लिए कटिबद्ध हो गए।

सिरेकंवरजी ने १९ वर्ष की अवस्था में अपने पति अमोलकचंदजी (४७८) के साथ सं० १९८७ ज्येष्ठ शुक्ला १३ के दिन माता-पिता, भाई-भाभी, सास-ससुर देवर, जेठ प्रमुख भरे-पूरे परिवार को छोड़कर पूर्ण वैराग्य से आचार्यश्री कालूगणी के कर कमलों से राजलदेसर में दीक्षा स्वीकार की[1]।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वीश्री सिरेकंवरजी को दीक्षित होने के बाद गुरुकुलवास में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे साधु-चर्या में रत होकर ज्ञान-ध्यान, तप-जप आदि द्वारा अपने जीवन को विकसित करती रही। उन्होंने इस प्रकार तप किया—

उपवास	२	४	५	७
७७	३	१	१	१

(ख्यात)

३. सं १९९३ वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) को आचार्यश्री तुलसी श्रीडूंगरगढ़ पधारे। साध्वी सिरेकंवरजी गुरुदेव की सेवा में ही थी। २१ दिन विराजकर आचार्यश्री ने ज्येष्ठ कृष्णा ८ को वहां से विहार किया। हेमासर, लखासर होते हुए ज्येष्ठ कृष्णा ११ को जसेरू पधारे। वहां से संध्या के

---

१. राजलदेसर में दर्शाने नै उद्धारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे॥
बींजराजजी बैद रो, नन्दन नाम अमोल।
सिरेकुंवर पत्नी सहित, संजम लै दृढ़ कोल॥

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० २६ दो० २७)

समय साध्वी-प्रमुखा झमकूजी आदि ने सेरुणा ग्राम की तरफ विहार किया। साध्वी सिरेकंवरजी उनके साथ थी। गांव एक मील दूर रहा तव अचानक सिरेकंवरजी का दिल घवराने लगा और वे वही अचेत हो गई। तव अन्य साध्वियां उन्हें उठाकर 'सेरुणा' ले आई। गर्मी के कारण उन्हे हैजा हो गया। दस्त और वमन होने लगे। यथाप्राप्त उपचार किया गया पर स्वास्थ्य-सुधार नही हुआ। रात के सवा नौ वजे उन्होने आयुष्य पूर्ण कर दिया।

इस प्रकार लगभग छह वर्ष संयम का पालन कर सं० १९९३ (चैत्रादि क्रम से १९९४) ज्येष्ठ कृष्णा ११ को सेरुणा मे पच्चीस वर्ष की उम्र मे साध्वीश्री दिवंगत हो गई। उनके संसार-पक्षीय पिता वीजराजजी सेवा मे ही थे। उन्होने सुवह होते ही उनके शरीर की संस्कार-क्रिया सपन्न की।

आचार्यश्री तुलसी उसी दिन सेरुणा पधार गए। उन्होने साध्वीश्री के संवंध मे एक सोरठा फरमाया—

सिरेकंवर श्रीकार, संजम पद साध्यो सखर।
अल्प वर्ष अवधार, काम सिराडै चाढ़ियो॥

(तुलसीगणी की ख्यात)

६१४।८।१८६ साध्वीश्री जड़ावांजी (शार्दूलपुर)

(संयम-पर्याय सं० १६८८-२००१)

छप्पय

भाई-सुत के साथ में दीक्षित सती जड़ाव।
साधिक तेरह साल से पार लगाई नाव।
पार लगाई नाव गोत्र 'कोलू' था उनका।
गाया 'पुर शार्दूल' वास दोनों परिजन का।
संयम के प्रति हो गया गहरा एकीभाव।
भाई-सुत के साथ में दीक्षित सती जड़ाव ॥१॥

साल अठासी की प्रमुख कार्त्तिक शुक्ला दूज।
बारह दीक्षा की हुई बीदासर में गूंज।
बीदासर में गूंज सुगुरु की सुखद शरण में।
आई सती जड़ाव परम सुख पाई गण में[1]।
करती तप-जप साधना रखती समता भाव[2]।
भाई-सुत के साथ में दीक्षित सती जड़ाव ॥२॥

सोरठा

अनशन कर सविवेक, स्वर्ग ईड़वा से गई।
दो हजार की एक, कृष्ण अष्टमी पौष की[3] ॥३॥

१. साध्वीश्री जड़ावांजी का जन्म 'मोरकां' गांव के 'गीया' (ओसवाल) गोत्र मे सं० १६५६ मे हुआ। उनके पिता का नाम जीतमलजी और माता गंगाजी था। जड़ावांजी का विवाह लीखवा (पिलानी और लुहारू के बीच) नामक गांव मे हुआ। उनके पति का नाम धनराजजी और गोत्र कोलू था। जड़ावांजी के एक पुत्र हुआ, जिनका नाम बुद्धमल रखा गया। बालक बुद्ध जब छह महीने के हुए तब उनके पिता का देहान्त हो गया। जड़ाव देवी के देवर, जेठ आदि कोई नही थे, अतः दुकान तथा खेती-बाड़ी के कार्य को

वंद कर वे अपने पीहर शार्दूलपुर आ गईं। पीहर वाले मूलतः 'मोरकां' के थे, वहां से आकर वे राजगढ़ मे वसे और फिर शार्दूलपुर मे अपना मकान वना लिया।

शार्दूलपुर मे आने के वाद साधु-साध्वियो के मार्मिक उपदेशो द्वारा जड़ावांजी की दीक्षा लेने की भावना हो गई। साथ मे उनके पुत्र वुद्धमलजी भी तैयार हो गये। जडावाजी के तीन भाइयो मे सवसे छोटे भाई दुलीचंदजी थे, जो वंगाल मे व्यापारिक कार्य किया करते थे। वे देश मे आये तव उनकी भी विराग-भावना हो गई। इस प्रकार सहज ही तीनो व्यक्तियो का योग मिल गया।

जडावांजी ने पति वियोग के वाद अपने भाई दुलीचंदजी (४७९) तथा पुत्र वुद्धमलजी (४८२) के साथ सं० १९८८ कार्त्तिक शुक्ला द्वितीया को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीदासर मे दीक्षा स्वीकार की।[1] दीक्षा वैरी वाले कुए के समीप हनुमानमलजी के मदिर के सामने हुई। उस दिन कुल वारह दीक्षाएं हुई—४ भाई, आठ वहिने। उनके नाम इस प्रकार है—

१. मुनिश्री दुलीचदजी (४७९) शार्दूलपुर
२. ,, शुभकरणजी (४८०) तारानगर
३. ,, रामलालजी (४८१) ,,
४. ,, वुद्धमलजी (४८२) शार्दूलपुर
५. साध्वीश्री जड़ावाजी (९१४) ,,
६. ,, सुन्दरजी (९१५) भीनासर
७. ,, लिछमांजी (९१६) सरदारशहर
८ ,, मुखांजी (९१७) फतेहपुर
९ ,, चोथाजी (९१८) गगाशहर
१०. ,, नोजांजी (९१९) श्रीडूंगरगढ़

---

१. उगणीसैं इट्ठासिए, वीदासर चउमास।
वारह दीक्षा दीपती, दीन्ही कार्त्तिक मास॥
मुनि दूलीचंद, वुद्धमल मामा-भाणेजा,
शुभकरण, रामजी तारानगर सहेजा।
वुघ-मा-जडाव, लिछमां, मक्खू, सुन्दरजी,
चोथां, नोजां, सतोकां, रतनकवरजी।
(कालू० उ० ३ ढा० १६ दो० २८ गा० २९)

११. साध्वीश्री संतोकांजी (६२०) सरदारशहर
१२. ,, रतनकंवरजी (६२१) राजगढ़।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वीश्री ने संयम-चर्या में रत होकर यथाशक्य तप-जप स्वाध्याय आदि का लाभ लिया। उनके तप की तालिका इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६	८
६८५	६६	२	६	५	२	१

(ख्यात)

३. उन्होने दो प्रहर के अनशन से सं० २००१ पौष कृष्णा अष्टमी को ईड़वा मे स्वर्ग-गमन कर दिया। उनका साधना-काल ११ वर्षो का रहा।

(ख्यात)

९१५।८।१९० साध्वीश्री सुन्दरजी (भीनासर)

(संयम-पर्याय सं० १९८८-२०२५)

छप्पय

'सुन्दर' माता-बहिन से मिल पाई साराम।
आकर गण-उद्यान में खिल पाई हरयाम।
खिल पाई हरयाम वास पुर भीनासर मे।
मालू गोत्र ललाम विरति आई अन्दर में।
संयम-श्री पाई परम गुरु-पद मे अभिराम[१]।
'सुंदर' माता-वहिन से मिल पाई साराम॥१॥

चांद सती के साथ में करती रही विहार।
जीवन भर भरती रही सुकृत-सुधा सुखकार।
सुकृत-सुधा सुखकार हवा ली तप की ताजी[२]।
संथारा कर शेष बड़ी जीती है बाजी।
चौविहार सतरह दिवस किया कठिनतम काम।
'सुदर' माता-बहिन से मिल पाई साराम॥२॥

दोहा

श्वासादिक की व्याधि से, पीड़ित हुआ शरीर।
फिर भी अनशन कर जवर, दी है वड़ी नजीर॥३॥

एकम शुक्ला माघ की, थी पचीस की साल।
स्वर्ग सिधाई 'नाल' से, सुयश चढ़ाकर भाल[३]॥४॥

१. साध्वीश्री सुन्दरजी की ससुराल भीनासर (स्थली) के मालू (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही वांठिया गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९५९ आषाढ़ कृष्णा २ (साध्वी-विवरणिका मे कृष्णा ९) को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम मनसुखदासजी,[1] माता का लक्ष्मी देवी और पति का ताराचंदजी (पद्मचंदजी के पुत्र) था।

(साध्वी-विवरणिका)

सुन्दरजी ने पति वियोग के वाद सं० १९८८ कार्त्तिक शुक्ला २ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीदासर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १२ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री जड़ावाजी (९१४) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

साध्वी सुन्दरजी की माता साध्वीश्री मूलाजी (७८९) तथा छोटी बहिन साध्वीश्री चांदकंवरजी (७९०) स० १९७४ मे दीक्षित हो गई थी। उसके १४ साल वाद सुंदरजी भी साध्वी वन गई।

२. साध्वी सुंदरजी साध्वीश्री चांदकवरजी के सिघाड़े मे विहार करती हुई तप-स्वाध्याय आदि द्वारा संयमी-जीवन को कृतार्थ करने लगी। उन्होने जो तपस्या की वह इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५
१७९६	१००	९	५	१

। तप के कुल दिन २०४८, जिनके ५ वर्ष, ८ महीने और ८ दिन होते है।

(ख्यात)

३. साध्वीश्री चांदकंवरजी सं० २०२५ का चातुर्मास गंगाशहर मे संपन्न कर 'नाल' पहुंची। साध्वी सुन्दरजी उनके साथ में ही थी। वे कई दिनो से श्वास आदि वीमारी से ग्रस्त थी। क्रमश: रोग वढ़ता ही गया और उसने उग्र रूप ले लिया। फिर भी साध्वीश्री की हिम्मत वहुत थी। वेदना को वड़े समभाव से सहती। आखिर उनकी भावना इस नश्वर को छोड़ने की हो गई। उन्होने अनशन के लिए आग्रह किया तव साध्वी चांदकंवरजी ने उन्हें आजीवन चौविहार अनशन करा दिया। कुछ दिनो तक वह गुप्त रूप से चलता रहा। साध्वीश्री के भावों की श्रेणी उत्तरोत्तर वढ़ती रही। वीर-रस भरे अध्यात्म पद्यो का श्रवण कर आत्म-समाधि में ओत:प्रोत हो गई। १७ दिनों के चौविहार अनशन से स० २०२५ माघ शुक्ला १-२ (शामिल) को दिन के ग्यारह वजे 'नाल' ग्राम मे दिवंगत हो गई।

(ख्यात)

---

१. मूलांजी के दीक्षित होने के वाद मनसुखदासजी ने दूसरी शादी की, पत्नी का नाम लक्ष्मीदेवी था।

६१८।८।१६१ साध्वीश्री लिछमांजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९८८, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री लिछमांजी का जन्म लूनकरणसर (स्थली) के दूगड़ (ओसवाल) गोत्र मे सं० १९६३ कार्त्तिक शुक्ला १४ को हुआ। उनके पिता का नाम वालचंदजी और माता का भूमां वाई था। १२ वर्ष की लघुवय में ही लिछमांजी का विवाह सरदारशहर के प्रतापमलजी हीगड़ के पुत्र रामलालजी के साथ कर दिया गया।

वैराग्य—विवाह के १० महीने वाद ही लिछमांजी के पति का देहान्त हो गया, जिससे उन्हें संसार की नश्वरता का अनुभव हुआ और अपना जीवन धर्म-ध्यान में लगा दिया। गृहस्थवास में रहते हुए भी उन्होने उपवास से १६ दिन तक लड़ीवद्ध तप तथा दो वार धर्मचक्र तप किया। कुछ वर्षो वाद साधु-साध्वियो के सम्पर्क से वैराग्य की लौ प्रज्वलित हो गई। अपनी भावना पारिवारिक जन के सम्मुख रखी तव उनके श्वसुर प्रतापमलजी ने कहा—'घर वैठे ही दीक्षा की अनुमति दिला देंगे।' फिर श्रीचदजी गधैया (सरदारशहर) के माध्यम से निवेदन कराने पर गुरुदेव ने घर वैठे ही दीक्षा की स्वीकृति प्रदान कर दी।

दीक्षा—लिछमांजी ने पति वियोग के वाद सं० १९८८ कार्त्तिक शुक्ला २ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीदासर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जड़ावांजी (६१४) के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात, साध्वी-विवरणिका)

उनके संसारपक्षीय भाई मुनि सोहनलालजी (४८६) 'लूनकरणसर' ने सं० १९८९ मे दीक्षा ग्रहण की।

तपस्या—साध्वी लिछमांजी ने सं० २०४१ भाद्रव शुक्ला १५ तक जो तप किया उसकी तालिका इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	७	८
१३८७	४१	६	१७	३	३

स्थिरवास—वे वृद्धावस्था एवं वीमारी के कारण स० २०३९ से लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे स्थिरवास कर रही है।

(परिचय-पत्र)

६१७।८।१६२ साध्वी मुखांजी (फतेहपुर)

(दीक्षा सं० १९८८, २००४ गणबाहर)

रामायण छन्द

था फतेहपुर ग्राम, वोहरा गोत्र श्वसुर का कहलाया।
पति को छोड़ मुखां ने दीक्षित होकर संयम-मणि पाया[1]।
पर कुछ वर्षो वाद शिथिलता साधु-क्रिया में आई है।
तोड़ दिया संवंध संघ से अन्तर छवि मुरझाई है[2] ॥१॥

१. मुखांजी की ससुराल फतेहपुर (ढूढाड़) के वोहरा (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर रामगढ के छाजेड़ गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९६३ फाल्गुन शुक्ला १ को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम हजारीमलजी, माता का सुन्दरवाई और पति का जीवराजजी था।

(साध्वी-विवरणिका)

मुखांजी ने पति को छोड़कर सं० १९८८ कार्तिक शुक्ला २ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा बीदासर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जड़ावांजी (६१४) के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. वे प्राय: गुरुकुलवास मे रही। सं० १९९७ का एक चातुर्मास ६ ठाणो से रामगढ मे किया।

कुछ वर्षो वाद आचार-विचार मे शिथिलता आ गई, जिससे सं० २००४ प्रथम श्रावण शुक्ला १० को रतनगढ़ मे साध्वी-प्रमुखा लाडांजी के माध्यम से उनका गण से संवध-विच्छेद कर दिया गया। वे उस समय आचार्यश्री की सेवा मे थी।

(ख्यात)

९१८।८।१९३ साध्वीश्री चोथांजी (गंगाशहर)

(दीक्षा सं० १९८८, २०२५)

दोहा

चोथां 'गंगाशहर' की,[1] गोत्र नाहटा ज्ञेय ।
आई गण की शरण में, करके निश्चित ध्येय ॥१॥

साल अठासी में लिया, गुरु-सम्मुख चारित्र[1] ।
रख ऊर्ध्वगत भावना, पालन किया पवित्र ॥२॥

अकस्मात् अन्तिम समय, हुआ हृदय गति-रोध[2] ।
पाया 'नगर फतेह' में, पंडित-मरण समोद ॥३॥

१. साध्वीश्री चोथाजी की ससुराल गंगाशहर (स्थली) के नाहटा (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर गजरूपदेसर के मालू गोत्र मे था । उनका जन्म स० १९६६ (सा० वि० मे १९६५ कार्त्तिक शुक्ला ३) मे हुआ ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम जीवनमलजी, माता का मूखीबाई और पति का तिलोकचंदजी (गजराजजी के पुत्र) था ।

(सा० वि०)

चोथांजी ने पति वियोग के वाद स० १९८८ कार्त्तिक शुक्ला २ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीदासर मे दीक्षा ग्रहण की । उस दिन होने वाली १२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जडावाजी (९१४) के प्रकरण मे कर दिया गया गया है ।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. उन्होने लगभग सैंतीस साल संयम-पर्याय का पालन किया । अंत में आकस्मिक हृदय-गति रुक जाने के कारण सं० २०२५ वैशाख कृष्णा १२ को रात्रि के ९ वजे फतेहनगर (मेवाड़) मे स्वर्ग-गमन कर दिया । वे उस समय साध्वीश्री चपाजी (९७३) 'राजलदेसर' के सिंघाड़े मे थीं ।

(ख्यात)

फतेहनगर मे तेरापथ की साध्वियो के दिवंगत होने का वह पहला ही अवसर था । लोगो ने विशाल जुलूस के साथ उनकी शवयात्रा निकाल कर अन्तिम सस्कार किया ।

६१६।८।१६४ साध्वीश्री नोजांजी (श्रीडूंगरगढ़)

(दीक्षा सं० १६८८, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री नोजाजी का जन्म पुनरासर के वोथरा परिवार में सं० १६६५ फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को हुआ। उनके पिता का नाम कुन्नणमल जी और माता का जमनावाई था। नोजांजी का विवाह श्रीडूंगरगढ़ (स्थली) के हुलासमलजी (रुघलालजी के पुत्र) गांधी (ओसवाल) के साथ कर दिया गया।

वैराग्य—साधु-साध्वियो द्वारा प्रतिवोध पाकर वे दीक्षा के लिए तैयार हो गईं।

दीक्षा—उन्होने पति को छोडकर सं० १६८८ कार्त्तिक शुक्ला २ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीदासर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जडावांजी (६१४) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सहवास—साध्वीश्री नोजांजी ३० साल साध्वीश्री पन्नांजी (८७६) 'देरासर' के सिंघाड़े मे रही। दो वर्ष वीदासर मे रही। सं० २०३४ से लाडनूं 'सेवा-केन्द्र' मे स्थिरवास कर रही है।

सं० २०२१ मे उन्होने ३ ठाणो से 'वावलास' चातुर्मास किया।

तपस्या—उनके द्वारा की गई सं० २०४१ तक की तपस्या इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५	६	८	६
१३८२	५३	१६	४	४	१	१	१

स्वाध्यायादिक—उन्होने ३२ आगमो का वाचन, लाखों गाथाओ का स्वाध्याय तथा जप किया। वर्तमान मे यथाशक्य ध्यान, मौन, स्वाध्याय का क्रम चलता है।

(परिचय-पत्र)

६२०।८।१६५ साध्वीश्री संतोकांजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १६८८, वर्तमान)

'५०वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री संतोकांजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के वांठिया (ओसवाल) परिवार मे स० १६७७ आपाढ़ शुक्ला १३ को हुआ (ख्यात तथा साध्वी-विवरणिका मे सं० १६७६ है)। उनके पिता का नाम नथमलजी और माता का गौरां देवी था।

वैराग्य—वालिका सतोषकुमारी की दादीजी की आंखों मे ज्योति कम थी, अतः संतोषकुमारी उन्हे तीनो समय धार्मिक स्थान पर साधु-दर्शन और व्याख्यान सुनाने के लिए ले जाया करती थी। वहां साधु-साध्वियो के संपर्क से वालिका के हृदय मे धार्मिक-संस्कार जाग गये। फिर दादीजी की प्रवल प्रेरणा से ६-१० वर्ष की अवस्था मे ही पच्चीस बोल आदि कई थोकड़े कंठस्थ कर लिये। धीरे-धीरे वैराग्य-भावना वढने लगी। उस समय उनके पिताजी का अचानक देहांत हो गया। इस घटना से उनकी वैराग्य-भावना और भी अधिक वढ़ गई। वे अपनी वडी वहिन लाधूजी के साथ दीक्षा लेने के लिए उद्यत हो गईं। अपनी विचारधारा अभिभावक जन के सम्मुख भी रख दी। पर पिताजी की मृत्यु को दो महीने ही हुए थे अत. परिवार वालो ने मोहवश दीक्षा की अनुमति नही दी। आखिर दीक्षा की तीव्र अभिलापा देखकर घर वालो ने दीक्षा की स्वीकृति दे दी।

दीक्षा—सतोकांजी ने ११ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) में सं० १६८८ कात्तिक शुक्ला २ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा वीदासर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जडावांजी (६१४) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

उनकी संसारपक्षीया वहिन साध्वीश्री लाधूजी (८६८) तथा वहनोई मुनिश्री डूंगरमलजी (४६६) 'सरदारशहर' स० १६८५ मे दीक्षित हो गये थे।

सुखद सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के वाद २१ साल गुरुकुल-वास मे और २१ साल साध्वीश्री सोनांजी (६७४) 'सरदारशहर' के सिंघाड़े

में रही। फिर गठिया वाय होने के कारण सं० २०२६ से साध्वीश्री लाधूजी (८६८) के साथ दो साल रतनगढ़, दो साल राजलदेसर और दो साल सरदारशहर 'चिकित्सा-केन्द्र' मे रही। तत्पश्चात् आचार्यश्री के आदेशानुसार बीदासर समाधिकेन्द्र मे आकर स्थायी प्रवास कर रही है। वहां लगभग छह साल हो गये है।

शिक्षा—गुरुदेव की सेवा में लम्बे समय तक रहने से उन्हें अध्ययन का अच्छा अवसर मिल गया। सतत प्रयत्न द्वारा उन्होंने हजारों पद्य कंठस्थ कर लिये।

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, प्रथम आचारांग।

थोकड़े—तीन प्रकार के पच्चीस बोल, पाना की चरचा, तेरहद्वार, लघुदंडक, बावनबोल, इक्कीसद्वार, कर्मप्रकृति, पच्चीस बोल की लड़ियां, जैन तत्त्व प्रवेश।

व्याकरण, कोश आदि—कालू कौमुदी, अष्टाध्यायी, धातु-पाठ, धातु-कोष, अभिधानचिंतामणि (कोश), षड्दर्शन-समुच्चय, अन्य-योगव्यवच्छेदिका, जैनसिद्धांत-दीपिका, भिक्षु-न्याय-कर्णिका, भक्तामर, कल्याणमन्दिर, सिन्दूरप्रकर, शांतसुधारस, कर्त्तव्य-षट्त्रिंशिका, शिक्षाषण्णवति।

व्याख्यान—रामचरित्र, शालिभद्र आदि।

स्मरणात्मक—चौबीसी, आराधना तथा स्मृतिप्रधान गीतिकाएं आदि।

कला—साध्वीश्री ने सात टोकसियां जाल की और दो गिलास के ढक्कन बनाये। उन पर बारीक अक्षर लिखे। लिपिकला का विकास कर तात्त्विक, संस्कृत और आख्यान आदि के कई ग्रन्थ लिपिबद्ध किये।

साधना—वे प्रतिदिन एक हजार गाथाओं का स्वाध्याय, दो घंटे मौन और एक घंटा ध्यान करती है।

इक्कीस वर्षों से निरन्तर नमस्कार महामन्त्र या चौबीस तीर्थंकरों के नाम का सवा लाख का जप करती है।

वाचन—उन्होने चार बार आगम-बत्तीसी का वाचन किया। वर्तमान में भी सूत्रो के वाचन का क्रम चलता है। आचार्यश्री के पास भिक्षुशब्दानु-शासन बृहद् व्याकरण आदि कई ग्रन्थ पढ़े। अन्य साहित्य के हजारों पृष्ठो का वाचन किया।

तपस्या—उनके द्वारा की गई सं० २०४१ तक की तपस्या इस प्रकार

है :—

उपवास	२	३	४	५	८
१०५१	२१	३	२	१	१

। तथा इक्कीस वार दस-प्रत्याख्यान किये ।

पुरस्कृत—सं० २००१ माघ शुक्ला ६ को सुजानगढ़ मे साधु-साध्वियो की गोष्ठी मे आचार्यप्रवर ने साध्वीश्री को दशवैकालिक, नाममाला, कालूकौमुदी और अष्टाध्यायी कंठस्थ कर पाने पर तीन हजार गाथाओ से पुरस्कृत किया ।

(तुलसीगणी की ख्यात)

समय-समय पर उत्साह वढाने के लिए कल्याणक (परठना) आदि भी पुरस्कृत किये ।

संस्मरण

गुरु-वात्सल्य—आचार्यश्री कालूगणी ने सं० १९९१ का मर्यादा-महोत्सव सुधरी मे किया । साध्वी संतोकांजी गुरु-सेवा मे ही थी । एक दिन सायं प्रतिक्रमण करने के वाद दशवैकालिक सूत्र याद करने के लिए वे सीढ़ियो मे जाकर वैठ गईं । सवसे ऊपर वाली सीढी पर वैठकर याद करते-करते उन्हें नीद का ऐसा झोका आया कि वे नीचे गिर गयी । लगभग २०, २१ सीढ़ियां थी, उनसे गिरते ही उनके मुह से तीन वार 'कालूगणी-कालूगणी' निकला । गिरने की आवाज सुनते ही पास मे वैठी हुई साध्वीश्री झमकूजी तथा सोनाजी आदि साध्वियां उनके समीप आ गयी । गिरने से रजोहरण की डंडी के तीन टुकडे हो गये । दोनो घुटनो मे चोट लगी जिससे घाव हो गया और खून गिरने लगा । साध्वियो ने उन्हें उठाया और सार-संभाल की ।

सूर्योदय के पश्चात् साध्वियो के साथ साध्वी संतोकाजी गुरु-दर्शन के लिए गई, तव गुरुदेव ने उन्हे निकट वुलाकर पूछा—'नानकी ! कहां लगी है ? कैसे गिर गयी ?' उन्होने सारी वात वतलाई तब आचार्यवर ने फरमाया—'अव सीढियो पर वैठकर कभी याद मत करना ।' साध्वीश्री झमकूजी को कहा—'नानकी को होमियोपैथिक दवा दें और घाव पर मलहम लगाये ।'

इस प्रकार गुरुदेव का वात्सल्य मिलने से साध्वीश्री का रोम-रोम खिल गया ।

स्मरण का प्रभाव—स० २०२१ पड़िहारा की घटना है । साध्वीश्री

संतोकांजी और लाधूजी शौचार्थ गयी। वापस लौटते समय एक घर में पॉलिस लाने के लिए गयीं। वहां कारीगर काम कर रहे थे। उन्हें पूछकर पॉलिस का डब्बा लेने के लिए कमरे में गयी। तब किसी कारीगर ने एकाएक सुलगते हुए कोयलों को लाकर उस डिब्बे पर रख दिये। पेट्रोल होने से पॉलिस का डब्बा जोर से ऊपर उठा और आग की लपटें निकलने लगी। साध्वीश्री ने ऊंचे स्वर से 'ओम् भिक्षु-२' का उच्चारण चालू किया। तीन बार स्मरण करते ही डब्बा व लपटें न जाने कहां गायब हो गईं, इसका पता ही नही चला। साध्वियों पर केवल दो-चार छींटे ही पड़े। उस समय कारीगर धनजी ने कहा—'यह गुरुदेव के स्मरण का ही प्रभाव है जिससे आप और हम बच गये, अन्यथा तीनों जल जाते।' इस चमत्कार से प्रभावित होकर कारीगर ने साध्वीश्री सोनाजी के पास जाकर गुरु-धारणा कर ली और बोला—'अब से मेरे गुरु आचार्यश्री तुलसी हैं।'

स्वस्थ व्यवस्था—साध्वीश्री संतोकांजी के गठिया वाय की बीमारी होने के कारण हाथ-पैर मे दर्द और संधि-संधि में सूजन आ गई, जिससे चलना-फिरना भी कठिन हो गया। आचार्यश्री ने रोगोपचार के लिए उनकी स्वस्थ व्यवस्था की। सुखपाल एवं साधन द्वारा रतनगढ़ तथा सरदारशहर जाने का आदेश दिया।[1] साध्वियो को सेवा में रखकर सभी तरह से सहयोग दिया गया। रतनगढ में वैद्यजी धनाधीशजी तथा सरदारशहर मे डाक्टर बांठिया का लम्बे समय तक इलाज चला, पर असातवेदनीय के उदय से वे स्वस्थ नहीं हो सकी। तब आचार्यप्रवर ने उन्हें बीदासर 'समाधिकेन्द्र' में जाने का आदेश दिया। वे सं० २०३५ से बीदासर 'समाधिकेन्द्र' मे पूर्ण समाधि-पूर्वक स्थायीवास कर रही है। साध्वी लाधूजी (८९८) 'सरदारशहर' तथा रतनकंवरजी (११८०) 'चूरू' सभी प्रकार से सेवा सुश्रूषा करती हैं।

इस प्रकार सेवा की व्यवस्था भिक्षु-शासन में होती है और आचार्यश्री वात्सल्य भाव से करवाते हैं।

(परिचय-पत्र)

---

१. आठ साध्वियो ने कंधों पर उठाकर साध्वी संतोकांजी को रतनगढ़ पहुंचाया। दो साध्वियां बीदासर से मा:तुश्री वदनांजी के पास से आईं—साध्वी राजीमतीजी (१२२२) 'रतनगढ़', प्रकाशवतीजी (१२५९) 'सिसाय', दो छापर और दो पडिहारा से। दो सहयोगिनी साध्विया—लाधूजी तथा इंदूमतीजी (१२७५) 'सरदारशहर' थीं।

६२१।८।१६६ साध्वीश्री रतनकंवरजी (राजगढ़)

(दीक्षा सं० १६८८, वर्तमान)

'५१वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री रतनकंवरजी का जन्म राजगढ़ (स्थली) के नाहटा (ओसवाल) गोत्र मे सं० १६७६ कार्त्तिक शुक्ला ५ को हुआ।

दीक्षा—उन्होने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १६८८ कार्त्तिक शुक्ला २ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा बीदासर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री जड़ावांजी (६१४) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

उनके परिवार की दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री मोहनाजी (८७३) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

६२२।८।१६७ साध्वीश्री गणेशांजी (लाडनूं)

(संयम-पर्याय सं० १६८८-२०३४)

छप्पय

सती गणेशां पा गई भवसागर का तीर।
वीर-वृत्ति की कर गई प्रस्तुत बड़ी नजीर।
प्रस्तुत बड़ी नजीर सेठजी की वे पोती।
गढ़ सुजान में वास सेठिया गोत्र वपौती।
रूपचंदजी से हुए श्रावक-रत्न सधीर।
सती गणेशां पा गई भवसागर का तीर ॥१॥

लघुवय में पुर 'लाडनूं' उनका हुआ विवाह।
वंशज वोरड़ गोत्र में आई है सोत्साह।
आई है सोत्साह दम्पती सुख से जीते।
सुविधा मिली समग्र वर्ष तो कितनें बीते।
अकस्मात् पतझड़ हुआ टूट गया सहतीर।
सती गणेशां पा गई भवसागर का तीर ॥२॥

पति ने परभव-पथ लिया छाया भारी शोक।
पर साहसयुत धैर्य धर रखा हृदय को रोक।
रखा हृदय को रोक विरति की उमड़ी धारा।
लिया 'ऋद्ध-सुत' गोद हुआ खुश परिजन सारा।
सौंपी सारी संपदा कर चिंतन गम्भीर।
सती गणेशां पा गई भवसागर का तीर ॥३॥

दोहा

ले आज्ञा राजी-खुशी, अट्ठासी की साल।
सती गणेशां ने लिया, सयम-रत्न विशाल[1] ॥४॥

किया बाद में श्वसुर ने, लालच वश उत्पात।
अटल न्याय आखिर हुआ, लिखी ख्यात में बात[2] ॥५॥

सती गणेशां रम गई संयम में सोल्लास।
करती विनय-विवेक युत ज्ञान-ध्यान अभ्यास।
ज्ञान-ध्यान अभ्यास वढाती अपनी क्षमता।
ऋजुता मृदुता-भाव हस्तगत कला-कुशलता।
कृपा मिली गुरुदेव की खिली बड़ी तकदीर[३]।
सती गणेशां पा गई भवसागर का तीर॥६॥

तुलसी गुरुवर ने दिया उन्हें अग्रणी स्थान।
विहरण कर पुर-ग्राम में देती मधु व्याख्यान।
देती मधु व्याख्यान काम करती थी अच्छा[४]।
कर विशेप स्वाध्याय सुकृत-रस भरती सच्चा।
लेती आत्मिक-शुद्धि हित तप- औषध अक्सीर[५]।
सती गणेशां पा गई भवसागर का तीर॥७॥

शारीरिक अस्वस्थता होने से दो साल।
रही रतनगढ़ में सती रखती भाव रसाल।
रखती भाव रसाल दवा तो अधिक न लेती।
करती योगाभ्यास धैर्य का परिचय देती।
थी सहिष्णुता कष्ट में पर न कभी दिलगीर।
सती गणेशां पा गई भवसागर का तीर॥८॥

निकट देख अन्तिम समय गाकर गुरु-गुण-गान।
आत्मालोचन-स्नान कर ध्याया निर्मल ध्यान।
ध्याया निर्मल ध्यान किया आजीवन अनशन।
दो हजार चौतीस पौप सित सातम पावन।
चली गई सुरलोक में तत्क्षण छोड़ शरीर[६]।
सती गणेशां पा गई भवसागर का तीर॥९॥

मिला उन्हे सहवर्तिनी सतियों का सहयोग।
जिससे उनके हो गये इच्छित सभी प्रयोग।
इच्छित सभी प्रयोग सुगुरु ने महिमा गाई।
साध्वीश्री 'चारित्र' निवन्ध एक लिख पाई।
जिसमें उनके सुयश की वोल रही तस्वीर[७]।
सती गणेशा पा गई भवसागर का तीर॥१०॥

१. साध्वीश्री गणेशांजी का जन्म सुजानगढ (स्थली) के सेठिया परिवार में सं० १६५३ श्रावण शुक्ला १५ को हुआ। हणूतमलजी सेठिया (जो सेठजी के नाम से संबोधित किये जाते थे[1]) उनके संसार-पक्षीय दादाजी थे, जिन्होंने सुजानगढ़ और लाडनूं के बीच जसवंतगढ गांव बसाया था। उनको जोधपुर-नरेश ने सेठजी (नगर सेठ) के पद से सम्मानित किया था। गणेशांजी के पिता का नाम दौलतरामजी और माता का संतोषदेवी था। तेरापंथ-धर्मसंघ के अनन्य भक्त, श्रावक-रत्न रूपचंदजी सेठिया गणेशांजी के बाबाजी (दौलतरामजी के बड़े भाई) थे।

इस प्रकार धार्मिक परिवार मे जन्म लेने से बालिका गणेशां के बचपन से ही सत्संकारो के अंकुर प्रस्फुटित होने लगे। जब वे दो साल की हुई, तब उनके पिता का देहांत हो गया। बालिका माता के लाड-प्यार से पली पुसी। तत्कालीन परम्परा के अनुसार गणेशांजी दस साल की हुई तब उनका विवाह लाडनूं निवासी मालमचंदजी बोरड़ के सुपुत्र जयचंदलालजी के साथ कर दिया गया। दोनो परिवार धनाढ्य और संपन्न थे, अतः उन्हें सभी प्रकार की भौतिक सुख-सुविधाओं का सहज ही सयोग मिल गया। आनन्द पूर्वक दाम्पत्य-जीवन के १६ वर्ष बीत गये। पर प्रकृति का शाश्वत नियम है कि पौद्गलिक सुख क्षण-भंगुर होते हैं। संयोग के बाद वियोग के बादल मंडराते रहते हैं।

गणेशांजी की अवस्था जब उनतीस साल की हुई तब उनके पति का आकस्मिक निधन हो गया। उस विरह वेदना से उनका मन व्यथित हो गया। साथ-साथ सामाजिक बंधनो एवं पारिवारिक सीमाओ से वह और अधिक संकुचित हो गया। आखिर अपने आत्म-साहस को बटोर कर वे धर्म-ध्यान मे संलग्न हुईं और आतरिक वैराग्य-वृत्ति बढ़ाती गईं। पूर्णरूपेण तैयारी कर लेने के पश्चात् उन्होने अपनी भावना घर वालों के सामने रखी किन्तु ससुराल वालों के सामने एक समस्या थी कि दीक्षा की स्वीकृति कैसे दी जाए, क्योंकि गणेशाजी के कोई संतान नही थी। गणेशांजी के जेठ सूरजमलजी ने कहा—'दीक्षा के पहले तुम किसी को गोद लेकर उसे अपनी संपत्ति का अधिकारी बना दो, ताकि हमें कोई यह नहीं कहे कि धन के प्रलोभन से अपनी अनुज-वधू को दीक्षित कर दिया। ऐसा करने के बाद हमारी

---

१. सेठजी सुजानगढ़ स्यू हो।

(मघवा सुजश ढा० २६ गा० ५)

ओर से सहज स्वीकृति है ।'

यह सुनकर गणेशांजी ने इच्छा न होते हुए भी ऋद्धकरणजी वोरड़ के पुत्र चम्पालालजी को गोद लेकर सारी सम्पत्ति और घर का भार उन्हे सभला दिया । कौटुम्बिक भोज आदि की सारी रस्मे पूरी कर ली गईं । आज्ञापत्र भी चंपालालजी की माता (गणेशाजी) के नाम से लिख दिया । कुकुम-पत्रिका आदि मे भी चंपालालजी का नाम लिख दिया । इस प्रकार सव कार्य व्यवस्थित होने के वाद सहर्ष सभी पारिवारिक जनों की लिखित एवं मौखिक आज्ञा मिलने पर आचार्यश्री कालूगणी ने दीक्षा-स्वीकृति प्रदान की ।

तत्पश्चात् गणेशांजी ने ३५ वर्ष की अवस्था मे सं० १९८८ माघ कृष्णा १० को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा लाडनू मे दीक्षा ग्रहण की । गुरुदेव ने उनके साथ ऋद्धकरणजी वोरड़ की पुत्री रतनकंवरजी (९२३) को भी दीक्षा प्रदान की ।[1]

२. गणेशाजी के दीक्षित होने के पश्चात् उनके श्वसुर मालमचन्दजी तथा जेठ सूरजमलजी के विचारो मे फर्क आ गया । उन्होने सोचा—'जयचदलाल की वहू ने तो साधुपना ले लिया और चपालाल को उनके गोद रखा था उसकी कोर्ट मे अभी तक रजिस्ट्री नही करायी है, वह टिकाऊ नही है अत॰ जयचन्दलाल की वहू का लाख रुपयो का जेवर व अन्य संपत्ति हाथ मे आ सकती है, ऐसा निर्णय कर उन्होने चपालालजी को घर से निकाल दिया । वे अपने पिता ऋद्धकरणजी के घर चले गये । उन्होने एक वसीयतनामा (गोद का कागज) जोधपुर सव-रजिस्ट्रार के सामने रजिस्ट्री करने के लिए पेश किया । उसकी गवाही के लिए गणेशांजी के नाम से समन जारी कर दिया । इधर सूरजमलजी ने चपालालजी पर तथा गोद-नामा के कागद पर जिन-जिन व्यक्तियो की साक्षी थी, उन सव पर फौजदारी मुकदमा कर दिया । उसमे यह लिखा गया कि गोद का कागद वनावटी है, अतः उसको वनाने

---

१. चोथां, नोजां, सतोकां, रतनकवरजी ।
मा० कृष्ण गणेशां, रतनकंवर चदेरी,
सुद पख भगवानो, पूनम गंगासेरी ।
वा सती मोहना तीनू श्रमण विदारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे ।
(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० २९)

वाले तथा सहायक व्यक्तियों को भी कड़ी सजा मिलनी चाहिए।

वाद मे समन जारी करने का हुक्म जोधपुर से बीकानेर हाईकोर्ट मे आ गया। वहां से वह सरदारशहर तहसील मे आया। उस समय वहां के तहसीलदार वृद्धिचंदजी पंचोली थे। वे तेरापंथ के विधि-विधानों के जानकार थे। उन्होने ऐसा लिखकर उसे वापस लौटा दिया कि तेरापंथी साधु-साध्वियां अपने नियमानुसार न तो समन ले सकते हैं और न अदालत में जाकर गवाही दे सकते हैं।

फिर भी चंपालालजी की प्रेरणा से वार-वार समन जारी करने का आदेश आता रहा पर बीकानेर रियासत मे गणेशांजी के हाजिर न होने से समन वापस जाता रहा।

पूज्य कालूगणी ने उस विग्रह के वातावरण मे साध्वी गणेशांजी को अन्य साध्वियो के साथ सीकर जिले मे भेज दिया और नाम भी गणेशांजी की जगह गोमांजी रख दिया।

वाद में तेरापंथ समाज के वरिष्ठ श्रावको ने बीकानेर-नरेश गंगासिंहजी के सम्मुख उक्त संदर्भ मे एक निवेदन पत्र प्रस्तुत किया तथा मुलाकात भी की। आखिर प्रयत्न सफल हुआ और सरकार ने मुकदमा खारिज कर दिया।[1]

(का.गणी की ख्यात)

३. साध्वीश्री ने दीक्षित होने के पश्चात् साधुचर्या मे कुशलता प्राप्त की। यथाशक्य ज्ञानाभ्यास किया। वे प्रकृति से शांत, ऋजुमना और विनयवती थी। शासन एवं शासनपति के प्रति उनकी पूर्ण निष्ठा थी। आचार्यश्री कालूगणी के अनुग्रह से अपनी क्षमता वढ़ाती गईं।

(निवंध से)

४. सं० १९९३ के मर्यादा-महोत्सव पर आचार्यश्री तुलसी ने उनको अग्रगण्या बनाया। उन्होने अनेक वर्षो तक पुर-पुर मे विहरण कर जन-जन मे धार्मिक संस्कार भरे। उनका व्याख्यान मधुर और व्यवहार मृदु था। सत्तर साल की अवस्था मे भी वे रात्रि के समय प्रवचन में रामचरित्र का वाचन करती। स्वपर कल्याण मे तत्पर रहती हुई ७८ वर्ष की अवस्था तक विहार करती रही। उनके चातुर्मासो की सूची इस प्रकार है :—

१ विस्तृत जानकारी के लिए पढ़िये—कालूगणी की ख्यात, अन्तर पत्र २७-२८।

सं० १९९४	ठाणा	४	कटालिया
सं० १९९५	,,	५	जोजावर
सं० १९९६	,,	५	लाछुडा
सं० १९९७	,,	५	आसीद
सं० १९९८	,,	५	नाथद्वारा
सं० १९९९	,,	५	लूनकरनसर
सं० २०००	,,	५	देवगढ
सं० २००१	,,	५	वहावलनगर
सं० २००२	,,	५	गंगापुर
सं० २००३	,,	५	फूलमंडी
सं० २००४	,,	५	साडवा
स० २००५	,,	५	सिरियारी
सं० २००६	,,	५	गडबोर
सं० २००७	,,	५	कोरणा
सं० २००८	,,	४	आडसर
स० २००९	,,	५	तोषाम
सं० २०१०	,,	६	कोसीवाड़ा
स० २०११	,,	५	टोहाना
सं० २०१२	,,	६	सुजानगढ़
स० २०१३	,,	५	रतलाम
स० २०१४	,,	५	उज्जैन
सं० २०१५	,,	५	ऊमरा
सं० २०१६	,,	५	विष्णुगढ (टमकोर)
सं० २०१७	,,		राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
स० २०१८	,,	५	पहुना
म० २०१९	,,	५	रीछेड़
सं० २०२०	,,	६	थामला
सं० २०२१	,,	५	चाणोद
स० २०२२	,,	५	पीपाड़
सं० २०२३	,,	५	लावा सरदारगढ़

सं० २०२४	ठाणा	६	जोजावर
सं० २०२५	,,	६	दौलतगढ़
सं० २०२६	,,	६	वागोर
सं० २०२७	,,	६	दिवेर
सं० २०२८	,,	६	चूरू
सं० २०२९	,,		,, (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०३०	,,	६	छोटी खाटू
सं० २०३१	,,	६	,,
सं० २०३२	,,		बीदासर (मातुःश्री वदनांजी के साथ)
सं० २०३३	,,	६	रतनगढ़
सं० २०३४	,,	७	,,

(चातुर्मासिक तालिका)

५. साध्वीश्री की स्वाध्याय के प्रति विशेष रुचि थी। प्रतिदिन हजारो-हजारों गाथाओं का पुनरावर्तन करतीं। रात्रि में जब कभी उठतीं तब प्रायः स्मरण, जाप, ध्यान में लग जाती। ज्ञान कंठस्थ करने का अन्तिम वर्षों तक प्रयास करती रहीं। वैराग्य-वृत्ति मे रमण करते हुए साध्वीश्री ने जो तप किया उसकी तालिका इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	६	८	दस प्रत्याख्यान
२३७५	६३	३	१	१	१	४१ वार

आयम्बिल के तेले
——————— तथा तीर्थंकरो की लड़ियां की।
१३

(निबंध से)

६. अस्वस्थ होने के कारण साध्वीश्री ने अंतिम दो साल रतनगढ़ मे स्थिरवास किया। घोर वेदना में भी उनकी कष्ट-सहिष्णुता सराहनीय थी। शारीरिक शक्ति क्षीण होने पर भी मनोवल ऊंचा था। साहस, धैर्य और समता से रोगों का सामना करती रही। अधिक दवा न लेकर योगासन (सर्वांग आसन आदि) का अभ्यास करती। अंतिम दिनों मे आचार्यप्रवर का पत्र

साधुओं द्वारा उन्हें मिला तो वे हर्ष-विभोर हो गई[1]। उसे बार-बार पढ़ा और कहा'-म्हारै तो गुरुदेव का शब्द मकरध्वज री मात्रा स्यूं बढ़कर है।' बोलने की शक्ति न होते हुए भी अपने भावो को प्रकट करते हुए कहा-'शासन जयवंतो है, शासन नंदनवन है, गुरुदेव घणी-घणी कृपा कराई, चारित्र रो दान देकर म्हारै जिसी री जीवन नौका तारी। गुरुदेव! आप शासन रा नाथ हो। स्वास्थ्य रो घणो-घणो जतन जापतो रखावै। साध्वी-प्रमुखाश्रीजी छोटी अवस्था मे घणा पुण्यवान् है, दीपता है। म्हारै जिसां वूढ़ां की, ग्लानां की घणी-घणी सारणा-वारणा करावै है।' साध्वी रतनकुमारीजी (६२३) के लिए उन्होने कहा—'शासण की घणी-घणी सेवा करज्यो। साधुपणो चोखो पालज्यो।'

उन्होने जीवन के अंतिम क्षण निकट समझ कर पौष कृष्णा ६ को रात्रि के समय उदात्त स्वर से बोलकर उपवास का प्रत्याख्यान किया और आत्मालोचन व क्षमायाचना कर आत्म-समाधि मे लीन हो गई। दूसरे दिन संथारे सहित आयुष्य पूर्ण कर दिया।

इस प्रकार सं० २०३४ पौष कृष्णा ७ को रतनगढ़ मे वे दिवगत हो गई। उनका संयम-पर्याय लगभग ४६ साल का रहा।

(निवन्ध से)

७. साध्वीश्री रतनकुमारीजी दस वर्षों तक उनके सिंघाड़े मे रही। अन्तिम समय भी उनके पास थी। उन्होने तथा साध्वीश्री चारित्रश्रीजी (१३२८) 'सुजानगढ' आदि उनके सिंघाडे की सभी साध्वियो ने उनकी अच्छी परिचर्या करते हुए उन्हें पूर्णरूपेण सहयोग दिया।

---

(१) शिष्या गणेशांजी (लाडनूं)! मैंने सुना है कि इधर मे तुम्हारा शरीर अधिक अस्वस्थ है। क्या किया जाए। यह शरीर ऐसा ही है। क्षण-भंगुर है। वेदनीय कर्म के उदय से असाता हो जाती है पर मानसिक समाधि अधिक रहनी चाहिए। मनोवल से वेदना को सहन करके सहिष्णुता का परिचय देना चाहिए। तुम्हारी उभयथा स्वास्थ्य की कामना। पुनः पुनः सुखपृच्छा।

सं० २०३३ माघ शुक्ला १३, —आचार्य तुलसी

पडिहारा (पत्र संख्या ४११)

आचार्यश्री तुलसी ने उनकी स्मृति मे निम्नोक्त उद्गार व्यक्त किये :—

'साध्वी गणेशांजी पूज्य कालूगणी के हाथो से दीक्षित थी। वह बहुत ऋजुमना, सरल तथा भद्र प्रकृति की थी। ७५ वर्ष की अवस्था तक योगासन करती रहीं। जहां भी जाती धर्म-संघ की अच्छी प्रभावना करतीं। शासन एवं शासनपति के प्रति पूर्णतः समर्पित रही। उनका मनोवल मजवूत था। अस्वस्थता के कारण पिछले दो वर्षों से रतनगढ़ में थी। सहयोगिनी साध्वियों ने अच्छी सेवा की और अन्त मे अनशनपूर्वक समाधि-मरण को प्राप्त किया। यह धर्मसंघ के लिए गौरव की वात है। दिवंगत आत्मा के प्रति शुभकामना।

साध्वीश्री चारित्रश्रीजी ने एक संक्षिप्त निवन्ध लिखकर उनकी जीवन-झांकी प्रस्तुत की। उसके तथा कालूगणी की ख्यात के आधार से उपर्युक्त विवरण लिखा गया है।

९२३।८।१९८ साध्वीश्री रतनकंवरजी (लाडनूं)

(दीक्षा सं० १९८८, वर्तमान)

'५२ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री रतनकंवरजी का जन्म सं० १९७७ मृगसर कृष्णा द्वितीया[1] को लाडनू (मारवाड़) में हुआ। उनके पिता का नाम ऋद्धकरणजी बोरड़ (ओसवाल) और माता का झमकूदेवी था। नौ भाई बहनो मे रतनकंवरजी का आठवां स्थान था।

वैराग्य—पूर्वजन्म के संस्कारों तथा साधु-साध्वियो के उपदेश से प्रेरित होकर दीक्षा की भावना हो गई।

दीक्षा—रतनकंवरजी ने ११ वर्ष की अविवाहित अवस्था (नावालिग) मे सगाई एवं भाई-भाभी आदि परिवार को छोड़कर सं० १९८८ माघ कृष्णा १० को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा लाडनू मे दीक्षा ग्रहण की। साध्वीश्री गणेशांजी (९२२) की दीक्षा भी उनके साथ मे हुई।

सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के बाद ५ साल (सं० १९९३ तक) पूज्य कालूगणी की सेवा में रही। तत्पश्चात् १० साल (सं० २००३ तक) साध्वीश्री गणेशांजी (९२२) के साथ उनकी विशेष सहयोगिनी रूप मे रही। फिर पाच साल स० २००४ से सं० २००९ तक आचार्यश्री तुलसी की सेवा में रही। पाठ्यक्रमानुसार अध्ययन कर योग्यतर की परीक्षा में उत्तीर्ण हुई।

विहार—सं० २००९ फाल्गुन शुक्ला १४ को आचार्यश्री तुलसी ने साध्वीश्री रतनकंवरजी का सिंघाड़ा बना दिया। उन्होने दूर-निकट क्षेत्रो मे विहरण कर धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है—

सं० २०१०	ठाणा ५	गंगानगर
सं० २०११	,, ५	बाव
स० २०१२	,, ५	जामनगर
सं० २०१३	,, ५	राजकोट

---

१. ख्यात मे जन्म सं० १९७६ मृगसर शुक्ला २ है।

सं० २०१४	ठाणा	५	उदयपुर
सं० २०१५	,,	५	जामनगर
सं० २०१६	,,	५	ध्रांगध्रा
सं० २०१७	,,	५	लुधियाना
सं० २०१८	,,	४	चाणोद
सं० २०१९	,,	५	फूलमंडी
सं० २०२०	,,	५	भटिन्डा
सं० २०२१	,,	४	देवगढ
सं० २०२२	,,	५	सूरत
सं० २०२३	,,	५	मैरिन ड्राइव (बम्बई)
सं० २०२४	,,	५	भुसावल
सं० २०२५	,,	५	सूरत
सं० २०२६	,,	५	अजमेर
सं० २०२७	,,	५	बाडमेर
सं० २०२८	,,	४	गंगापुर
सं० २०२९	,,	४	लावा सरदारगढ
सं० २०३०	,,	४	भीलवाडा
सं० २०३१	,,	२७	लाडनूं (सोहनांजी (९७७) 'लाडनूं का संयुक्त)
सं० २०३२	,,	४	सरदारपुरा
सं० २०३३	,,	४	आमेट
सं० २०३४	,,	४	वायतू
सं० २०३५	,,	४	वाव
सं० २०३६	,,	५	बीकानेर
सं० २०३७	,,	५	लूनकरणसर
सं० २०३८	,,	४	फूलमण्डी
सं० २०३९	,,	४	दिवेर
सं० २०४०	,,	४	ब्यावर (नयाशहर)
सं० २०४१	,,	४	आदर्शनगर (जयपुर)
सं० २०४२	,,	५	सरदारपुरा

(चातुर्मासिक तालिका)

घटना प्रसंग

१ साध्वीश्री रतनकंवरजी ने सं० २०१३ का चातुर्मास राजकोट (गुजरात) मे किया। वहां साध्वी कानकवरजी (१०८५) 'लाडनूं' के घोडा-गाडी से भयंकर एक्सीडेंट हो गया, जिससे उनके काफी चोट लगी, १८ घंटे तक वे वेहोशी की अवस्था मे रही। वहां उपस्थित लोगो ने उन्हें अस्पताल ले जाने की सलाह दी, परन्तु साध्वी रतनकंवरजी उन्हें अपने कन्धो पर उठाकर स्वयं डाक्टर के पास ले गयीं। उनके कथनानुसार हाथो से टांके लगाये और उनकी पूर्ण सजगता से सेवा-सुश्रूषा की। एक महीने की अवधि में उनकी हालत में काफी सुधार आ गया जवकि उनके वचने की उम्मीद भी नही थी।

वहां के सेठ दुर्लभजी वीराणी का भी अनुकूल सहयोग रहा। तेरापंथ की सेवा-प्रणाली का स्थानीय लोगों पर अच्छा प्रभाव रहा।

२. सं० २०१५ मे उनका चातुर्मास जामनगर (सौराष्ट्र) मे था। जामनगर मे वेड़ी-वन्दर है वहां पर साध्वीश्री वेड़ीनाका देखने के लिए गईं। रास्ते में भारी वर्षा के कारण वे सेना के एक ब्रिगेडियर के वंगले मे ठहरने के लिए गईं। वहां पर जैसे ही साध्वीश्री पहुंची तो तैनात सैनिकों ने उन्हे रोका और कहा—यहां राष्ट्रपति भी विना अनुमति के प्रवेश नही कर सकते, आप अन्दर कैसे आ गईं? साध्वीश्री ने सारी वात वताई परन्तु फिर भी वे नही माने और अपने वॉस ब्रिग्रेडियर को वुलाया। जव ब्रिगेडियर ने पूरी वात सुनी ता वह साध्वीश्री के सम्मुख नतमस्तक हो गया और प्रशसा करने लगा।

३. सं० २०२६ का चातुर्मास सूरत मे था। उस वर्ष अधिक वर्षा होने के कारण ताप्ती नदी में वाढ़ आ गई। पानी का प्रवाह इतना फैला कि शहर मे २०-२२ फुट तक पानी आ गया। किंतु जहा साध्वियां ठहरी हुई थी (दीपचंद निवास स्थान), उस मकान की दीवारों के पास अधिक पानी नही आया। साध्वियों के सामने से पानी का प्रवाह आता और चला जाता। ऐसा प्रतीत होता मानो कोई अदृश्य शक्ति तीव्र पानी के वेग को आगे वढने से रोक रही है। लोगो ने इसे एक चमत्कार समझा।

४. साध्वीश्री सं० २०३५ का चातुर्मास वाव मे सम्पन्न कर गुरु-दर्शनार्थ वीकानेर की तरफ जा रही थी। रास्ते में रांधनपुर आया। वहा से विहार कर गांव के वाहर पहुंची कि रास्ते में नदी आ गई। ऐड़ी से कुछ

ऊपर तक पानी वह रहा था। ज्योंही नदी मे पैर रखे कि पानी कुछ वढ़ने लगा। नदी के मध्य भाग तक पानी घुटनो से ऊपर तक आ गया और देखते-देखते कटि प्रदेश तक पहुंच गया। गुरुदेव का नाम लेकर साध्वियो ने बड़े साहस से नदी पार की। तट पर आते ही पानी और ऊपर तक आ गया। आदमी की तो वात ही क्या! हाथी भी उसमें से नही निकल सकता था। सूचना मिली कि वांध टूट गया है जिससे नदी मे एक साथ इतना पानी वढ़ गया है। साध्वियां सकुशल तट पर पहुंच गई। इसे भी एक चमत्कार माना जा सकता है।

५. साध्वीश्री गुजरात प्रान्त मे विहार करती हुई द्वारका पहुंची। वहां समुद्र तट पर स्थित गायकवाड़ वड़ौदा दरवार के भव्य भवन में २५ दिन ठहरीं। वहां के जाने-माने जगत्प्रसिद्ध संत प्रेमभिक्षु रणछोड़राजजी आदि द्वारा शंकराचार्य की गद्दी पर सामूहिक प्रवचन का आयोजन किया गया। साध्वीश्री ने भी उसमें भाग लिया। व्याख्यान के अन्तर्गत उन्होंने जैन-साधुओं की चर्या, तेरापंथ धर्म-संघ की गति-विधि तथा आचार्यश्री तुलसी द्वारा संचालित कार्यक्रमो का विश्लेषण किया। उसे सुनकर जल्लू भाई बैरिष्टर आदि सभी विद्वान् वहुत प्रभावित हुए। जल्लू भाई ने कहा—हम आपके वहुत-वहुत आभारी हैं। भगवान् महावीर के वाद आप ही यहां पधारी हैं। हजारों वर्षों के इतिहास में कोई भी जैन साधु-साध्वी यहां नहीं आये। एक वार संतवालजी नाम के जैन साधु पधारे थे परन्तु वे भी ओखा प्रदेश तक ही, द्वारका तक नही पधारे। आचार्यश्री तुलसी और उनका धर्मसंघ कितना शिष्ट व संयमी है, यह आज हम लोगों ने आपसे जाना। साध्वीश्री द्वारका से रवाना होकर वापस अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच गई।

इस प्रकार आचार्यश्री का शुभाशीर्वाद पाकर साधु-साध्वी-वृंद दूरवर्ती क्षेत्रो मे पहुंचकर सत्य धर्म की ज्योति जलाते हुए जैन-शासन की प्रभावना करते हैं।

(परिचय-पत्र)

६२४।८।१६६ साध्वीश्री मोहनांजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८८-२००५)

'५३ वीं कुमारी कन्या'

गीतक-छन्द

'मोहनां' भैरू-सुता सरदारशहर-निवासिनी।
गोत्र आंचलिया, हुई है महाव्रत-अभ्यासिनी[1]।
अग्रगण्या रूप में सुविहार कुछ वत्सर किया।
साल सतरह साधना का स्वाद तन्मय हो लिया[2] ॥१॥

तरुण वय में आमरण अनशन किया गुरु-पास में।
शौर्य भर कर भावना से चढ़ी ऊर्ध्वावास में।
पांच की शुभ साल दसमी माघ शुक्ला आ गई।
चार दिन का पाल अनशन मरण-पंडित पा गई[1] ॥२॥

१. साध्वीश्री मोहनांजी सरदारशहर (स्थली) निवासी भैरूंदानजी आंचलिया (ओसवाल) की पुत्री थी।

(ख्यात)

उनका जन्म सं० १९७५ कार्त्तिक कृष्णा १३ को हुआ। उनकी माता का नाम कानीबाई था।

(सा० वि०)

मोहनांजी ने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) मे सं० १९८८ माघ शुक्ला ५ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से छापर मे दीक्षा स्वीकार की। उनके साथ मुनि भगवानचंदजी (४८३) शार्दूलपुर' और पूनमचंदजी (४८४) 'गंगाशहर' की दीक्षा भी हुई[1]। दीक्षा-महोत्सव पर बाहर के लगभग

---

१. सुद पख भगवानो, पूनम गंगासेरी।
वा सती मोहना तीनूं श्रमण विदारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे ॥
(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० २९)

तीन हजार यात्री उपस्थित थे।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

इनकी बड़ी बहिन साध्वी सोहनांजी (६०१) ने सं० १६८५ में दीक्षा ग्रहण की थी।

२. आचार्यश्री तुलसी ने सं० १६६७ में उन्हे अग्रगण्या बनाया। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार हैं :—

सं० १६६८	ठाणा	५	पीपाड़
सं० १६६६	,,	५	भीलवाड़ा
सं० २०००	,,	५	फानोट़
सं० २००१	,,	५	तारानगर
सं० २००२	,,	६	रतननगर
सं० २००३	,,	५	ईंटवा
सं० २००४	,,	५	टमकोर
स० २००५	,,	६	उदासर

(चातुर्मासिक तालिका)

३. साध्वीश्री मोहनांजी ने सं० २००५ माघ कृष्णा १४ के दिन राजलदेसर मे चौविहार संलेखना-तप चालू किया। सातवें दिन माघ शुक्ला ६ को आचार्यश्री तुलसी उन्हें दर्शन देने के लिए साध्वियों के स्थान पर पधारे। उनके विशेष आग्रह पर आचार्यप्रवर ने उन्हे चौविहार अनशन करा दिया। माघ शुक्ला १० को सुबह छह बजकर २३ मिनट पर उन्होंने समाधि-पूर्वक पंडित-मरण प्राप्त कर लिया। भावो की श्रेणी उत्तरोत्तर वर्धमान रही। तीस साल की स्वल्पायु में १७ साल संयम-पर्याय का पालन किया।

(ख्यात, तुलसीगणी की ख्यात)

आचार्यश्री ने साध्वीश्री के संबंध मे निम्नोक्त सोरठा फरमाया —

बालक वय अवधार, मन मजबूती हद करी।
चौविहार संथार, काज सुधार्‌यो 'मोहनी'॥

(सेठिया-संग्रह)

६२५।८।२०० साध्वीश्री सुवटांजी (बीदासर)

(दीक्षा सं० १६८८, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री सुवटाजी का जन्म बीदासर (स्थली) के सेखाणी (ओसवाल) परिवार मे स० १६६४ आश्विन शुक्ला १० (दशहरा) को हुआ। उनके पिता का नाम भीवराजजी और माता का हुलासी बाई था। स्थानीय अनोपचंदजी बैंगानी के सुपुत्र नेमीचंदजी के साथ सुवटांजी का विवाह कर दिया गया। सात साल बाद उनके पति का देहावसान हो गया।

दीक्षा—साधु-साध्वियो द्वारा प्रतिबोध पाकर सुवटांजी ने २४ साल की अवस्था मे स० १६८८ फाल्गुन शुक्ला २ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा बीदासर मे दीक्षा ग्रहण की[1]।

सहवास—दीक्षित होने के वाद वे एक साल गुरु-सेवा मे रही। तत्पश्चात् २० साल साध्वीश्री भीखांजी (७८३) 'बीदासर' (जो उनकी संसारपक्षीया जेठूती थी) के साथ, ६ साल साध्वीश्री सोहनांजी (१११५) 'छापर' के साथ तथा कई वर्ष अन्य सिघाडो मे रही। वृद्धावस्था के कारण सं० २०३६ से लाडनू 'सेवाकेन्द्र' मे स्थिरवास कर रही हैं।

कंठस्थ ज्ञान—उन्होने लगभग १५ थोकड़े, आराधना, चौवीसी, झीणी चर्चा की कुछ ढाले, औपदेशिक आदि १०० गीतिकाएं कंटस्थ कीं।

तपस्या—स० २०४२ तक उनकी तपस्या की सूची इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६
१६५१	४२	७	२	१	१

। एक वार अढ़ाई-सौ प्रत्याख्यान, पन्द्रह वार दसप्रत्याख्यान तथा २१ आयम्बिल किये।

उन्हे प्रत्येक महीने की शुक्ला १३, कृष्णा ११ तथा शुक्ला ६ को छह विगय खाने का त्याग है।

उन्होने ऐलोपैथिक दवा कभी नही ली। केवल एक केपसूल विशेष कारण मे साध्वियो के आग्रह करने पर लिया।

---

१. सुवटां तिण पुर री फागुण विद बीदाणे,

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० ३०)

स्वाध्याय-मौन आदि—साध्वीश्री ने छह लाख नमस्कार महामंत्र का तथा तीन लाख ५१ हजार ओम् अ०-भी०-रा०-शि०-को०-नमः का जाप किया। वे प्रतिदिन तीन सौ गाथाओं का स्वाध्याय करती हैं। जप का क्रम भी चलता है।

एक दिन से दस दिन तक क्रमशः मौन साधना तथा मौन की पचरंगी की।

सेवा—मातुःश्री वदनांजी, साध्वीश्री कानकंवरजी, साध्वीश्री मोहनांजी (टमकोर) तथा साध्वीश्री संतोकांजी (सरदारशहर) इन चार साध्वियों को अस्वस्थता के कारण उठाकर लाया गया। साध्वीश्री सुवटांजी ने उसमें सहयोग किया अतः आचार्यप्रवर ने उन्हें १० बारी की बख्शीश करवाई।

(परिचय-पत्र)

९२६।८।२०१ साध्वीश्री भत्तूजी (भादरा)

(दीक्षा सं० १९८८, वर्तमान)

'५४ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री भत्तूजी का जन्म भादरा (स्थली) के 'नाहटा (ओसवाल) गोत्र में स० १९७५ के आश्विन महीने में हुआ। उनके पिता का नाम लूनकरणजी और माता का सुखदेवी था।

दीक्षा—भत्तूजी ने चौदह साल की अविवाहित वय (नाबालिग) मे सं० १९८८ ज्येष्ठ कृष्णा ३ को साध्वीश्री पानकंवरजी (९२७) 'राजगढ़' और रायकंवरजी (९२८) 'राजलदेसर' के साथ आचार्यश्री कालूगणी द्वारा राजगढ़ में दीक्षा ग्रहण की।[1] दीक्षा-महोत्सव पर बाहर के लगभग दो हजार व्यक्ति उपस्थित हुए।

---

१. अरु जेठ मास नृपगढ़ निम्नोक्त प्रमाणै।
भत्तूजी, पानकंवरजी, रायकंवरजी,

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० ३०)

९२७।८।२०२ साध्वीश्री पानकंवरजी (राजगढ़)

(संयम-पर्याय सं० १९८८-१९९७)

'५५ वीं कुमारी कन्या'

दोहा

गोत्र पुगलिया स्वजन का, विदित राजगढ़ ग्राम।
रामलाल की नंदना, पानकुमारी नाम ॥१॥

लघु वय में ही ले लिया, संयम का आस्वाद[1]।
प्रायः गुरुकुल-वास में, रह पाई साल्हाद ॥२॥

व्यथित हुई क्षय-रोग से, निकट आ गया काल।
गई स्वर्ग की गोद में, नवति-सात की साल[2] ॥३॥

१. साध्वी श्री पानकंवरजी राजगढ़ (स्थली) निवासी रामलालजी पुगलिया (ओसवाल) की पुत्री थी। उनका जन्म सं० १९७५ पौष शुक्ला १५ को हुआ। माता का नाम सुगनीबाई था।

पानकंवरजी को बाल्यावस्था में ही धार्मिक-संस्कार मिले और वैराग्य-भावना उत्पन्न हो गई। उनके परिवार की दो दीक्षाएं सं० १९७९ में हो चुकी थीं—साध्वी जतनकंवरजी (८२८) और बालूजी (८२९)।

(परिचय-पत्र)

पानकंवरजी ने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में साध्वीश्री भत्तूजी (९२६) और रायकंवरजी (९२८) के साथ सं० १९८८ ज्येष्ठ कृष्णा ३ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा राजगढ़ मे दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

उनकी छोटी बहिन साध्वी सूरजकंवरजी (९६४) ने सं० १९९१ में दीक्षा स्वीकार की।

२. साध्वी पानकंवरजी दीक्षित होने के बाद प्रायः गुरुकुल-वास में रहीं। आवश्यकतावश आचार्यवर ने एक-दो बार अलग भेजा। पढ़ने में

६२८।८।२०३ साध्वीश्री रायकंवरजी (राजलदेसर)

(दीक्षा सं० १९८८, वर्तमान)

'५६वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री रायकंवरजी का जन्म राजलदेसर (स्थली) के डागा (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७६ वैशाख कृष्णा द्वितीया को हुआ। उनके पिता का नाम कोडामलजी और माता का केशरदेवी था। दस भाई बहिनों में रायकंवरजी का छठा स्थान था। उनका मूल नाम था—इचरज। माता-पिता का उन्हें अत्यंत स्नेह मिला।

धर्मनिष्ठ परिवार मे जन्म लेने से वालिका को सहज ही धार्मिक-संस्कार मिले। वालिका जव सात साल की हुई तव तत्कालीन प्रथा के अनुसार उनकी सगाई मोमासर-निवासी महालचदजी कुहाड़ के पुत्र झूमरमलजी के साथ कर दी गई। सगाई के लगभग छह साल वीत चुके। दोनो पक्ष धूमधाम से विवाह की तैयारिया करने लगे। विवाह के केवल १५ दिन ही अवशेप रहे।

विधि की लीला विचित्र होती है जिससे स्थिति मे आमूलचूल परिवर्तन आ जाता है। वालिका रायकुमारी की जिस लड़के के साथ सगाई की गई थी वह अचानक काल कवलित हो गया। रंग मे भंग देखकर दोनों परिवार शोक-संतप्त हो गये। उस नश्वर नृत्य को देखकर वालिका की चिंतन-धारा वदली और वैराग्य की धारा वह चली। उन्होने अपने मन में दीक्षा लेने का निर्णय कर लिया। पारिवारिक-जनों ने वालिका से कहा—'कुमारी कन्या के सौ वर होते हैं अतः तुम्हारी शादी दूसरे लडके के साथ कर देंगे।' वालिका ने जवाव दिया—'मैंने तो संयम को वर वना लिया है। मुझे तो दीक्षा ही लेनी है।' यह सुनकर उनके भाई पूनमचंदजी वोले—'हम हरगिज दीक्षा की अनुमति नही देंगे। एक वार तुम विवाह कर लो, फिर दीक्षा ले लेना।' वालिका ने कहा—'यदि कोई ऐसी गारण्टी लिखकर दे दे कि तुम कभी विधवा नही वनोगी तो मैं विवाह कर सकती हूं।' उनका यह निर्भीक उत्तर सुनकर सभी विस्मित-से रह गये। फिर भी परिवार वाले

साध्वी रायकंवरजी के परिवार की दीक्षाएं निम्न प्रकार हुई—

१. साध्वीश्री राजांजी (८००) मामी, दीक्षा सं० १६७६
२. ,, लिछमांजी (८०१) मौसी, दीक्षा सं० १६७६
३. ,, सुजानांजी (६४३) मामी, दीक्षा सं० १६६०
४. ,, इन्द्रूजी (६४८) मामा की वेटी वहिन, दीक्षा सं० १६६०
५. मुनि नवरत्नमल (५२३) मामा के वेटे भाई, दीक्षा सं० १६६४
६. साध्वीश्री तीजांजी (१०६५) मामा की वेटी वहिन, दीक्षा सं० १६६६
७. ,, कानकंवरजी (११४३) सगी वहिन, दीक्षा सं० २०००
८. ,, संघप्रभाजी (१४३३) पौत्री (सोहनलालजी के पुत्र श्रीचंदजी की पुत्री); दीक्षा सं० २०३२।

सुखद सान्निध्य—साध्वीश्री रायकंवरजी दीक्षित होने के वाद दो साल गुरुकुलवास में रही। फिर तीन साल साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी की सेवा मे राजलदेसर रही। साध्वी-प्रमुखा का वात्सल्य पाकर वे अपने जीवन का निर्माण करने लगीं।

सं० १६६३ मे साध्वी-प्रमुखा के दिवंगत होने के पश्चात् आचार्यश्री तुलसी ने साध्वीश्री छगनांजी (जो लगभग २७ साल साध्वी-प्रमुखा की पर्युपासना मे रही थी) का सिंघाड़ा वनाया। तव से १२ साल तक साध्वीश्री रायकंवरजी उनके साथ रहकर ज्ञान, कला आदि का विकास करती रहीं।

कंठस्थ ज्ञान—साध्वीश्री ने निरतर अभ्यास करते-करते पांच सूत्र—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, सूत्रकृतांग, वृहत्कल्प, नंदी तथा कई थोकड़े और व्याख्यान आदि के लगभग २०-२५ हजार पद्य कंठस्थ कर लिये।

वाचन—आगम-वत्तीसी का दो वार वाचन किया। अन्य साहित्य के हजारो पृष्ठ पढे।

कला—सिलाई, रंगाई, चित्रकला, टोकसियो पर सूक्ष्म अक्षरों से नामाङ्कन आदि कला में अच्छी प्रगति की।

प्रतिलिपि—लिपिकौशल प्राप्त कर चार आगम तथा अन्य ग्रंथों की लगभग एक लाख गाथाओ की प्रतिलिपि की।

तपस्या—उनके द्वारा की गई सं० २०४१ तक की तपस्या इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	८
५८१	१८	३	२	१

। आयम्बिल ३१, एकासन १०१।

सं० २०२२ से तीन विगय के अतिरिक्त लेने का तथा चाय का आजीवन परित्याग।

स्वाध्यायादि—साध्वीश्री प्रतिदिन सैकड़ों पद्यों का स्वाध्याय, एक घंटा जप और एक घंटा मौन करती है। बीस वर्षों से प्रत्येक महीने में एक दिन पूर्ण मौन रखती है।

सेवा—साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी की तीन साल सेवा की।

तपस्विनी साध्वी सुखदेवांजी (७८४) 'राजलदेसर' की सेवा में एक साल रही।

साध्वीश्री संतोकांजी की रुग्णावस्था के समय छह महीने परिचर्या की।

लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' की चाकरी में दो वार रही—साध्वीश्री छगनांजी के साथ तथा अग्रगण्या रूप में।

विहार—सं० २००५ राजलदेसर मे मर्यादामहोत्सव के अवसर पर आचार्यप्रवर ने साध्वी रायकंवरजी को अग्रगण्या वनाया। उन्होने गुरुदेव के आदेशानुसार दूर-दूर प्रान्तो मे विहार किया। अव तक लगभग पैंतीस हजार किलोमीटर की यात्रा हो चुकी है। साध्वीश्री वड़े उत्साह और पूर्ण परिश्रम के साथ धार्मिक प्रचार करती हैं। मधुर वाणी एवं प्रेरक उपदेशों द्वारा हजारों व्यक्तियो को समझाकर व्यसन-मुक्त किये और अणुव्रती वनाए। हजारों को सम्यक्त्व दीक्षा दी तथा सुलभ-वोधि वनाये। साध्वीश्री वृद्धावस्था होने पर भी देशाटन करने की प्रवल भावना रखती है और वड़े उमंग से कार्य करती हैं। उनके चातुर्मासो की सूची इस प्रकार है—

सं० २००६	ठाणा ५	लावा सरदारगढ़
सं० २००७	,, ६	राजलदेसर
सं० २००८	,, ५	जयपुर
सं० २००९	,, ४	धुरीमंडी
सं० २०१०	,, ५	इन्दौर
सं० २०११	,, ५	जवलपुर

सं० २०१२	ठाणा	५	टिटलागढ़
सं० २०१३	,,	५	कांटाभाजी
सं० २०१४	,,	५	रायपुर (म० प्र०)
सं० २०१५	,,	५	आमेट
सं० २०१६	,,	५	नाथद्वारा
सं० २०१७	,,	५	जयपुर
सं० २०१८	,,	४	शार्दूलपुर
सं० २०१९	,,	५	फतेहपुर
सं० २०२०	,,	६	रतनगढ़
सं० २०२१	,,	७	राजलदेसर (सा० सुखदेवांजी (७८४) 'राजलदेसर' का संयुक्त)
सं० २०२२	,,	५	केरावा
सं० २०२३	,,	४	वणोल
सं० २०२४	,,	५	बबकाणी
सं० २०२५	,,	५	पेटलावद
सं० २०२६	,,	५	झकणावद
सं० २०२७	,,	६	पहूना
सं० २०२८	,,		लाडनूं 'सेवाकेन्द्र'[1]
सं० २०२९	,,	४	सुनाम
सं० २०३०	,,	४	नाभा
सं० २०३१	,,	५	सूरत
सं० २०३२	,,	५	घाटकोपर (बम्बई)
सं० २०३३	,,	५	उदयपुर
सं० २०३४	,,	५	जगरावां
सं० २०३५	,,	५	संगरूर
सं० २०३६	,,	५	श्रीगंगानगर
सं० २०३७	,,	५	फिलौर
सं० २०३८	,,	५	वाराणसी (बनारस)
सं० २०३९	,,	५	सैंथिया
सं० २०४०	,,	६	कूचविहार

१. उस वर्ष आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास लाडनूं मे ही था।

सं० २०४१ ठाणा ५ अररियाकोट
सं० २०४२ „ ५ मिर्जापुर

(चातुर्मासिक तालिका)

विग्रह निवारण—साध्वीश्री ने अथक प्रयास कर कई स्थानों में पारस्परिक कलह निवारण किया।

(१) कूचविहार में नौ वर्षों से तेरापंथी श्रावकों के सामाजिक मत-भेद था वह समाप्त हो गया।

(२) कांटाभांजी में देरानी-जेठानी में १० वर्षों से भारी मन मुटाव था वह मिट गया।

(३) सं० २०१५ में साध्वीश्री कुंवाथल विराज रही थी। उस चोखले के २२ गांवों मे लगभग २० वर्षों से विग्रह चल रहा था (पारस्परिक व्यवहार वंद था)। साध्वीश्री की प्रवल प्रेरणा से सभी ने परस्पर क्षमा याचना की।

मुख्य बिंदु—(१) वलागीर (उड़ीसा) के महाराजा से अणुव्रत संबंधी वार्तालाप तथा राजमहल मे रात्रि प्रवास किया।

(२) कालाहाडी (उड़ीसा) के महाराव को उद्‌वोधन दिया।

(३) उत्तर प्रदेश के P.A.C. के सेनानायक पद्मनसिंह से अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान विषयक वार्तालाप।

(४) अनेक विद्यालयो मे सार्वजनिक सभाओं मे प्रवचन का कार्यक्रम। श्रावक सम्मेलन, महिला सम्मेलन आदि विविध आयोजन हुए।

प्रोत्साहित—आचार्यश्री ने समय-समय पर साध्वीश्री को तीन संदेश और ६ पत्र देकर उनके कार्य की सराहना की। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ तथा साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी ने पत्रो द्वारा उन्हें प्रोत्साहित किया।

उल्लेखनीय घटनाएं

समभाव—सं० १९८८ इन्दौर की घटना है। साध्वी रायकवरजी साध्वीश्री छगनांजी (७३५) 'वोरावड़' के साथ मे थी। वहा एक दिन साध्वी रायकंवरजी साध्वीश्री चंपाजी (६०५) 'राजगढ़' के साथ शौचार्थ गई। उस रास्ते मे मुसलमानो की वस्ती थी। एकाएक १२-१३ साल का एक लड़का आया। उसने पानी से भरा लोटा साध्वीश्री के पैरो मे फेका और अंट-संट बोलता हुआ पत्थर फेकने लगा। साध्वीश्री ने ऊंचे स्वर से उसे ललकारते हुए

कहा—अरे ! साधुओं के साथ जो ऐसा व्यवहार करता है, उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। फिर भी उस लड़के ने अपनी उद्दंडता नहीं छोड़ी, जोर-जोर से गालियां देने लगा। साध्वियां शांत भाव से अपने स्थान पर लौट आयीं।

दूसरे दिन जब साध्वियां उसी रस्ते से शौचार्थ जा रही थी तब सूचना मिली कि वह लड़का कल ही नाली में गिरकर मर गया। तत्काल सभी मुसलमान भाई और उस लड़के के माता-पिता साध्वीश्री के पास आकर क्षमा मांगते हुए बोले—'माताजी ! हम सब प्रतिज्ञा करते हैं कि हम आपको कभी कुछ नहीं कहेंगे। आप हमें किसी प्रकार का अभिशाप मत देना।' साध्वीश्री ने कहा—'भाइयो ! हम न तो किसी को अभिशाप देती है और न किसी का अनिष्ट करती है। पर जो व्यक्ति दूसरों का अनिष्ट करता है वह स्वयं उसका परिणाम भोगता है। हमारा किसी पर द्वेष-भाव नहीं है। हम सबके प्रति समभाव रखती हैं।'

जप-औषध—(क) सं० २०११ मे साध्वीश्री रायकंवरजी की सहवर्त्तिनी साध्वी मदनश्रीजी (१२४४) 'बीदासर' भीषण उपद्रव से आक्रान्त हो गयीं। साध्वी रायकंवरजी ने श्रद्धाभाव से 'मुणिन्द मोरा' गीतिका का सतत स्मरण चालू कर दिया। इसका इतना प्रभाव हुआ कि तीन महीनों का भयंकर उपसर्ग सदा-सदा के लिए समाप्त हो गया।

(ख) एक बार साध्वी चंपाजी (६०५) 'राजगढ़' उपद्रव ग्रस्त हो गई। तब साध्वी रायकंवरजी ने अत्यन्त निष्ठा से 'ओम् अ० भी० रा० शि० को नमः' जप करना प्रारंभ कर दिया। फलस्वरूप बिना किसी औषधोपचार के वे पूर्णतः स्वस्थ हो गई।

(परिचय-पत्र)

६२६।८।२०४ साध्वीश्री पारवतांजी (लाडनूं)

(संयम-पर्याय सं० १९८९-२०३३)

छप्पय

पारवतां पुत्री सहित लाई भाव प्रधान।
आई गण-उद्यान में लता बनी फलवान।
लता बनी फलवान लाडनूं-वासी परिजन।
विदित बोथरा गोत्र उभय ने किया सुचितन।
साध्वी बन गुरु-शरण का आश्रय लिया महान्।
पारवतां पुत्री सहित लाई भाव प्रधान॥१॥

दोहा

नवमी कार्त्तिक मास की, साल नवासी भव्य।
प्रमुख शहर सरदार में, रंग खिल गया नव्य॥२॥

तेरह दीक्षा साथ में, श्री कालू गुरु-हाथ।
महिमा तेरापंथ की, बढ़ती है दिन-रात[1]॥३॥

छप्पय

मिला उन्हें सौभाग्य से सुखकर गुरुकुलवास।
सेवा काम व गोचरी करती वे सोल्लास।
करतीं वे सोल्लास कुशलता बहुविध पाई।
समता-क्षमताभ्यास साधना-ज्योति जलाई[2]।
यथाशक्य तप-जप किया सह स्वाध्याय व ध्यान[3]।
पारवतां पुत्री सहित लाई भाव प्रधान॥४॥

सोरठा

जब से बहिर्विहार, किस्तूरां करने लगी।
तब से साहस धार, पारवतां भी साथ में॥५॥

दूर-दूर बहु प्रान्त, देखे चय वार्धक्य में।
शांत दान्त अभ्रांत, रही पूर्ण सहयोगिनी॥६॥

छप्पय

नगर अहमदावाद में प्रकृति गई है रूठ।
चोट भयंकर लग गई गईं हड्डियां टूट।
गई हड्डियां टूट घटी दुर्घटना भारी।
देख भयंकर रूप कांपते है नर-नारी।
(पर) सती घोरतम वेदना सहती सीना तान[५]।
पारवतां पुत्री सहित लाई भाव प्रधान ॥७॥

सोरठा

हो न सका सुविहार, उन्हें वहीं रुकना पड़ा।
चले विविध उपचार, पर न हुआ है फायदा ॥८॥

करती सती विशेष, ध्यान-मौन जप नियमतः।
गुरुवर के संदेश, मिलते प्रोत्साहन भरे ॥९॥

छप्पय

अन्त समय संलेखना-अनशन सह सोत्साह।
दिखा गई है पार्वती आत्मिक शक्ति अथाह।
आत्मिक शक्ति अथाह दिवस चौवन तक जूंझी।
करती सिंहनिनाद सिंहनी बनकर गूंजी।
देख-दृश्य विस्मित हुए बड़े-बड़े इनसान।
पारवतां पुत्री सहित लाई भाव प्रधान ॥१०॥

दो हजार-तेंतीस का धन तेरस दिन खास।
प्राप्त किया पंडित-मरण फैला दिव्य प्रकाश।
फैला दिव्य प्रकाश कलश पर कलश चढ़ाया।
जनता मिली अपार परम चरमोत्सव छाया।
भारी संघ-प्रभावना मुख-मुख पर स्तुति-गान[६]।
पारवतां पुत्री सहित लाई भाव प्रधान ॥११॥

दोहा

तुलसी प्रभुवर ने दिये, समय-समय संदेश।
स्मृति में फरमाया सरस, सुन्दर पद्य विशेष[७] ॥१२॥

'किस्तूरां' श्रमणी प्रमुख, सब सतियां सोल्लास।
परिचर्या कर पा गई, सुयश और शाबास[८] ॥१३॥

१. साध्वीश्री पारवतांजी का जन्म सं० १६६० माघ कृष्णा १२ (सा० वि० मे शुक्ला १२) को नागौर जिले के 'अलाय' नामक कस्बे मे हुआ। उनके पिता का नाम मेघराजजी चोरडिया (ओसवाल) और माता का किसना देवी था। उनका परिवार भरापूरा था और वे मूलतः स्थानकवासी थे। बालिका पारवतां बचपन से विनम्र थी। जब वे दस साल की हुई तब उनका 'तीतरी' निवासी मूलचंदजी बोथरा (ओसवाल) के पुत्र आसकरणजी के साथ विवाह कर दिया गया। ससुराल वाले तेरापथी थे। पारवतांजी के एक देवर और दो ननद थी। छोटे से परिवार मे जाकर वे सुखपूर्वक जीवन बिताने लगीं। एक साल बाद उन्होने तेरापंथ की गुरु-धारणा कर ली।

कुछ समय बाद उनका परिवार तीतरी से 'लाडनूं' में आकर बस गया। वहां सं० १९७९ माघ शुक्ला ६ को पारवताजी की कुक्षि से एक पुत्री का जन्म हुआ। जिसका नाम भवरी रखा गया (बाद मे किस्तूरांजी कर दिया गया)। स० १९८३ मे उन्होने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम ऋद्धकरण रखा गया। माता ने अपनी दोनों सतानो का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से किया। पारवतांजी अशिक्षित होने पर भी गृह-कार्य मे दक्ष थी। मधुर व्यवहार से उन्होने घर के प्रत्येक सदस्य को प्रभावित कर लिया था। छोटे-बड़े सभी कार्य मे उनका परामर्श लेते और उन्हे सम्मान की दृष्टि से देखते। गृह-जीवन मे कुशल बनने के साथ वे धर्म-ध्यान मे भी निष्णात हुईं। साधु-साध्वियो का संपर्क कर कुछ तात्त्विक ज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

उनके पति आसकरणजी कलकत्ता मे रहते थे। होली खेलने से उन्हें बुखार हो गया और उसने निमोनिया का रूप ले लिया। लगभग ४, ५ महीनें व्याधि-ग्रस्त रहने के बाद उनका देहान्त हो गया। उस समय उनकी पुत्री किस्तूरांजी पांच साल की और पुत्र ऋद्धकरणजी एक साल के थे। विधि का विधान बड़ा विचित्र होता है जिससे आकस्मिक और अकल्पित घटना घटित हो जाती हैं। पारवतांजी की आंखो के सामने अधेरा-सा छा गया। पर उन्होने साहस बटोर कर अपने मन को आश्वस्त किया और धार्मिक अनुष्ठान

मे लगाया। वे अपने जीवन को सादगी एवं संतोष-वृत्ति से व्यतीत करने लगी।

सं० १९८८ मे अचानक उनके पेट मे भयंकर पीड़ा हुई। विविध उपचार किये पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ। दर्द की व्यथा से उनका दिल आकुल हो उठा। उन्होंने मन ही मन चिंतन किया—'यदि मेरी उदर-व्यथा मिट जाए तो मैं दीक्षा ग्रहण कर लूं।' संकल्प-शक्ति बड़ी जबरदस्त होती है। संयोग ऐसा मिला कि उनके पेट का दर्द बिल्कुल शांत हो गया।

एक दिन वे अपनी पुत्री और पुत्र के साथ खेत मे जाकर गुआर की फलियां तोड़ रही थी। बात ही बात मे उन्होंने कहा—'मैं अब दीक्षा लूंगी।' उनका पुत्र बोला—'मैं तो दीक्षा नही लूंगा।' पर पुत्री बोली—'मैं आपके साथ दीक्षा लूंगी।' उन्हें घर वालो ने बहुत कुछ समझाया पर वे अटल रही और माता के साथ दीक्षित होने के लिए तत्पर हो गई।

(निबंध से)

तत्पश्चात् अपने पांच वर्षीय पुत्र को छोड़कर पारिवारिक जन की सहर्ष अनुमति से पारवतांजी ने अपनी दस वर्षीया पुत्री किस्तूरांजी (६३६) के साथ सं० १९८९ कार्तिक कृष्णा ९ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से सरदारशहर में दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा-समारोह बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। दीक्षा भैरूदानजी भंसाली के बाग मे विशाल जनता के बीच सम्पन्न हुई।

उस दिन कुल १३ दीक्षाएं हुई[1]—पांच भाई, आठ बहिनें उनके नाम क्रमश: इस प्रकार है :—

---

१. अब नव्यासिय पावस सरदारशहर जी।
तेरह जण संयम जीवराज धुर जाणो,
संपत, केशर तस सुत, दुहिता पहचाणो।
तारो, सोहन सुर, गज्जू हरस वधारे,
तीजे उल्लासे दीक्षा-व्रत स्वीकारे॥
पारवतां मां किस्तूरां लघु-वय बेटी,
सुगनांजी अरु नाथां भव-भ्रमना मेटी।
लिछमां, रामूजी, मोमासरी मनोरां,

(कालू उ० ३ ढा० १६ गा० ३०, ३१)

१. मुनिश्री जीवराजजी (४८५) श्रीडूंगरगढ़
२. ,, सोहनलालजी (४८६) लूनकरणसर
३. ,, ताराचंदजी (४८७) श्रीडूंगरगढ
४. ,, सम्पतमलजी (४८८) ,,
५. ,, गजराजजी (४८९) लूनकरणसर
६. साध्वीश्री पारवताजी (९२९) लाडनूं
७. ,, सुगनांजी (९३०) श्रीडूंगरगढ
८. ,, नाथांजी (९३१) सरदारशहर
९ ,, लिछमांजी (९३२) सिरसा
१०. ,, रामूजी (९३३) नोहर
११. ,, मनोरांजी (९३४) मोमासर
१२. ,, केशरजी (९३५) श्रीडूंगरगढ़
१३. ,, किस्तूरांजी (९३६) लाडनूं

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वीश्री पारवताजी दीक्षित होने के पश्चात् अपनी पुत्री साध्वी किस्तूराजी सहित लगभग २१ साल गुरुकुल-वास मे रही । आचार्य प्रवर एव साध्वी-प्रमुखाजी के तत्त्वावधान मे रहकर साधु-चर्या मे निपुण बनी और सेवा, काम, गोचरी आदि मे अच्छी क्षमता प्राप्त की । अध्ययन से भी बढ़कर उन्होने सेवा को अधिक महत्त्व दिया और वृद्ध, ग्लान साध्वियो की सेवा कर उसे साकार किया । वे प्रत्येक कार्य बड़ी लगन एवं निष्ठा से करती थीं । सेवा-भावना के साथ त्याग, तपस्या और समता की साधना मे सलग्न होकर वे अपने जीवन मे निखार लाने लगी ।

(निबध से)

३ साध्वीश्री स्वाध्याय, ध्यान, जप और तपस्या मे ओतःप्रोत होकर अपने संयमी-जीवन को सोने की तरह चमकाती रही ।

स्वाध्याय—सं० १९८९ से प्रतिदिन पांच-सौ गाथाओ का स्वाध्याय ।

सं० २०३० से शेष तक प्रतिदिन दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन की १ माला, विघ्नहरण की ढाल, भिक्षु गुण वर्णन की १ ढाल, कालू गुण वर्णन की ४ ढालें, साधु-साध्वी शिक्षा की १ ढाल (मतिमत मुणी……) एवं २०० गाथाओ का स्वाध्याय ।

२१ सूत्रों का अर्थ-श्रवण किया ।

कुल ६५ लाख पद्यो का स्वाध्याय (पुनरावर्तन) किया।

ध्यान—सं० २०२२ से २०२६ तक प्रतिदिन खड़े-खड़े एक घंटा ध्यान किया।

जाप—ओम् शांति, नमस्कार-महामंत्र तथा विघ्नहरण मंगल-करण……आदि पद्यों का लगभग ५२ लाख, ३६ हजार वार जाप किया।

मौन—सं० २०३१ ज्येष्ठ महीने से प्रतिदिन २१ घंटे मौन रखा।

तपस्या—उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९
१६६५	६०	१५	६	६	१	२	१	१

प्रतिवर्ष दस प्रत्याख्यान किये। तप के कुल दिन १९४८, जिनके ५ वर्ष, तीन महीने और २८ दिन होते हैं।

(निबंध से)

४. सं० २००९ मे आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी किस्तूरांजी का सिंघाड़ा बनाया। तब से साध्वी पारवतांजी उनके साथ वहिर्विहार करने लगी। वृद्धावस्था होने पर भी उनका मनोवल मजबूत था। ६७ वर्ष की अवस्था तक पूर्ण स्वस्थ रहती हुई उन्होंने सौराष्ट्र, मैसूर, तमिलनाडू, नेपाल, सिक्किम, भूटान, विहार, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान आदि प्रान्तों में लगभग साठ हजार किलोमीटर की यात्रा की। वार्धक्य वय, सुदूर यात्रा, दीर्घ विहार और प्राकृतिक सर्दी-गर्मी आदि के अनेक परिषह, फिर भी साध्वीश्री सहनशीलता व समता-भाव में रत रहकर आचार्यप्रवर के अनुशासन का निष्ठापूर्वक पालन करती हुई शासन का गौरव बढाती रही।

(निवन्ध से)

५. सं० २०२८ में साध्वी किस्तूरांजी का चातुर्मास अहमदाबाद मे था। साध्वी पारवतांजी उनके साथ मे ही थी। श्रावण शुक्ला ६ के दिन साध्वीश्री एक सड़क पार कर रही थी। अचानक सामान से भरी हुई एक हाथगाड़ी उनको कुचलती हुई निकल गयी। प्रकृति के प्रकोप से एक भयंकर दुर्घटना हो गयी। जिससे साध्वी पारवतांजी के शरीर की लगभग छोटी-बड़ी ८० हड्डियां क्रेक हो गईं। फिर भी उनका मनोवल इतना रहा कि पूर्ण सचेतावस्था मे ओम् भिक्षु और कालूगणी के नाम का स्मरण करती रही। तदनन्तर साध्वियों द्वारा उन्हें अस्पताल पहुंचाया गया। पैर का ऑपरेशन हुआ पर संयोगवश पैर मे नासूर रह गया। जिसके कारण निरन्तर पांच वर्षों तक पैर से छटांक, डेढ छटांक पीप निकलता रहा। उस पर मरहम

पट्टी की जाती। पट्टी बांधने में लगभग ७०, ८० रूई के बंडल लग गये। फिर भी कोई लाभ नही हुआ। शरीर क्रमश. कमजोर होता चला गया। साध्वीश्री अपने कृत कर्मो का परिणाम समझकर समभावो से वेदना को सहन करती। अपनी नियमित दिनचर्या को अक्षुण्ण रखती हुई स्वाध्याय, ध्यान, जप आदि मे संलग्न रहती। विहार न कर सकने के कारण उन्हे छह साल अहमदावाद मे ही रुकना पड़ा।

साध्वीश्री के दुर्घटना ग्रस्त होने पर तथा घोर वेदना के समय आचार्य-प्रवर ने अपने सदेशो द्वारा उनकी सहनशीलता की सराहना की और विशेष रूप से अन्तर्मुखी वनने के लिए प्रोत्साहित किया।

आचार्य प्रवर के संदेश

(१) साध्वी पारवतांजी अहमदावाद मे भयंकर रूप से दुर्घटनाग्रस्त हो गई। यह हमको वहा के पत्रो द्वारा व आगन्तुको द्वारा ज्ञात हुआ। मन मे वडी वेचैनी हुई। उनकी यह तो अवस्था और दूर का प्रवास, वैसी हालत मे साध्वी किस्तूराजी आदि को पूरी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। पर साध्वी पारवतांजी का मनोबल वहुत मजवूत है, यह जानकर वडी प्रसन्नता होती है। असात-वेदनीय का उदय होना एक वात है पर उस समय इस तरह दृढ रहना, 'ओम् शांति' तथा 'ओम् भिक्षु' के सिवाय और सव भूल जाना क्या दृढता का परिचय नही है?

साध्वियां तन, मन से एक जुट होकर सेवा कर रही हैं। यह हमारे सघ का एक अपूर्व क्रम है। वल्कि अहमदावाद के श्रावक-श्राविका भी जो हार्दिक सेवा दे रहे है यह भी कम वात नही है। मेरा विश्वास है साध्वी पारवताजी उसी धैर्य और साहस के साथ इस आयी हुई वेदना को समभाव से सहकर निकट भविष्य मे पूर्ण स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करेगी और अपने आप को शासन-सेवा मे लगायेगी।

लाडनू—८ अगस्त १९७१ —आचार्य तुलसी

(२) साध्वी पारवताजी अनेक वीमारियो से ग्रस्त हैं और अव ठीक होने की आशा से भी दूर समझी जा रही है। ऐसी हालत मे उनके लिए यही श्रेय है कि वे वार-वार 'आत्मा भिन्न शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न शरीर भिन्न है' इसी भावना का विशेष आराधन करे और गजसुकुमाल, खन्धक आदि ऋषियों को याद करे। मनोवल को अधिक मजवूत रखने का प्रयत्न करें।

पारवतांजी की शासन में अति सेवा रही है। उनके कल्याण की विशेष शुभकामता है।

साध्वियों ने उनकी विशेष सेवा की व कर रही हैं। विशेष प्रसन्नता है। यही उनका कर्त्तव्य है, यही अपने शासन की पद्धति है।

प्रायश्चित्त व आलोचना रूप में एक तेला व ६ उपवास विधि से उतार दें। शेष कुशल।

—आचार्य तुलसी

भादासर, दि० ३१-१-७३
सं० २०२६ माघ कृष्णा १२

६. साध्वी पारवतांजी ने गहराई से चिन्तन कर तप-अनशन करने का निर्णय किया। फलतः सं० २०३३ भाद्रव शुक्ला ५ से संलेखना-तप चालू कर दिया। वर्धमान भावों से वे उत्तरोत्तर आगे वढती रहीं। उसके वीच उन्हें आचार्यप्रवर का मंगल आशीर्वाद और शुभकामना भी प्राप्त होती रही। वे इस प्रकार हैं—

(१) आज चरमोत्सव के वीच अहमदावाद का संवाद मिला कि साध्वी पारवताजी तपस्या कर रही है। उनके आठ दिन से तपस्या चल रही हैं। यह शुभ संवाद है और पारवतांजी जैसी आत्मार्थिनी साध्वी के लिए वहुत ही अच्छी वात है। ऐक्सीडेंट हुआ वह हमारे हाथ की वात नहीं है, किन्तु इस कारणावस्था मे भी उन्होने जिस मनोवल का परिचय दिया यह वहुत अच्छी वात है। उनके जीवन के लिए तो अच्छी है ही किन्तु हमारे साधु-साध्वियो के लिए भी गौरव की वात है। हमारी साध्वियां कष्टों मे भी कितना मनोवल रखती हैं। और अव जो तपस्या करने में तुली है तो मैं उनसे कहता हूं कि तपस्या चलती रहे, अनशन की जल्दवाजी न करे। तपस्या-तपस्या है, अनशन-अनशन है। इसलिए अनशन का जव मौका आये तव सोच विचार-पूर्वक करें, किन्तु तपस्या मे कोई हरज नहीं है। जव तक तपस्या चले, तपस्या चलावो, किन्तु जव यह समझ मे आ जाये कि अव तो शरीर की कोई स्थिति नही है, तव अनशन किया जा सकता है। मेरी साध्वी पारवताजी के लिए यही शुभकामना है। साध्वी कस्तूरांजी वड़ा सहयोग दे रही है। उनके दोहरा काम है—उनको सहयोग देना, शहर परो-

टना, श्रावको को संभालना। फिर भी बड़े मनोवल से, धैर्य से काम कर रही है। सव उनको पूरा-पूरा सहयोग दे और उनकी तपस्या मे और अधिक सहयोग दें। तपस्या मे उनको वार-दार सुनाना-सभलाना करें, जिससे उनका मनोबल वढ़े। मैं आशा करता हूं साध्वी पारवतांजी तपस्या से अपना वांछित कार्य पूर्ण करें।

सरदारशहर —आचार्य तुलसी
सं० २०३३ भाद्रव शुक्ला १३

(२) साध्वी पारवतांजी तपस्या कर रही है। उनका मनोवल वहुत ऊंचा है। मैं समझता हूं कि यह धर्म का ही चमत्कार है। तपस्या का प्रभाव आम जनता पर भी पड़ता है। यही कारण है कि अहमदावाद में हमारे समाज के लोगो मे धर्म की धूम मची हुई हैं। साध्वी पारवतांजी का आत्मवल वढ़ता रहेगा और अपनी तपस्या के द्वारा वे ऊचे से ऊंचे परिणाम पर पहुंचेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है। तपस्या के साथ ही मौन का क्रम भी चालू है यह और अच्छी वात है।

सरदारशहर —आचार्य तुलसी
१८ सितम्वर, १९७६

(३) अहमदावाद मे साध्वी पारवताजी ने पर्वत से भी कठोर काम स्वीकार किया हैं। मौन तपस्या और उसमे आजीवन संलेखना (संथारा)। इसका अहमदावाद मे श्रावको, खास तौर से युवको पर वहुत प्रभावकारी असर हुआ है। हमारे संघ की गरिमा है, एक-एक साध्वियां उत्कृष्ट मनो-चित का परिचय देती है।

कहा गया है—मरण समं नत्थि भय—मौत के समान भय नहीं। उस मौत का मुकावला करना कितना भयंकर काम है। अव दृढ़ वाजी परिणामो पर है। परिणाम जितने वर्धमान रहेंगे, उतनी ही उत्कृष्ट निर्जरा होगी। पुनः पुनः शुभकामना।

सरदारशहर —आचार्य तुलसी
२६-९-१९७६

साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी ने भी उनके प्रति शुभकामना अभिव्यक्त की—

साध्वीश्री पारवतांजी के आज तपस्या का इक्कीसवां दिन है। तपस्या

के साथ मौन, जप, तप, समता और समाधि की स्थिति उनके लिए जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही धर्म-संघ की प्रभावना करने वाली है। समता साधु जीवन की उत्कृष्ट उपलब्धि है।

परमाराध्य आचार्यप्रवर के शासन-काल मे हमारे धर्म-संघ मे साधना के अनेक नये क्षेत्र खुले हैं। समता-साधना की विशेष प्रेरणा हमें आचार्यश्री के जीवन से मिलती है। समता की पौध को तपस्या का सिंचन देकर साध्वीश्री पारवतांजी आगे बढ रही है। तत्रस्थ साध्वियां भी उनकी साधना में बहुत-बहुत सहभागिनी बन रही है। साध्वीश्री की तपस्या के प्रति शुभाशंसा।

—साध्वी-प्रमुखा कनक प्रभा

उपर्युक्त संदेशों द्वारा साध्वीश्री को बड़ा बल मिला और आनंदानुभूति हुई। तप के छब्बीसवें दिन उन्होंने पूर्ण जागरूकता एव निर्मल भावना के साथ आश्विन कृष्णा १५ को मौन सहित आजीवन तिविहार अनशन ग्रहण कर लिया। आत्मालोचन तथा क्षमायाचना कर आत्म-समाधि मे लीन हो गई।

अनशन के पूर्व साध्वीश्री पारवतांजी ने निम्नोक्त उद्गार व्यक्त किये :—

"अहमदाबाद का श्रावक म्हारी घणी सेवा करी है। जिसी सेवा म्हारी करी है विसी ही सेवा संघ का सारा साधु-साध्वियां की करता रहीज्यो। शासन समुद्र है, शासन बड़ो उजलो है। आचार्यश्री बड़ा पुन्यवान है। आचार्यश्री जो भी करावै है वो ठीक है। सगला ने आचार्यश्री के प्रति पूरी निष्ठा राखणी चाहीजै। आज आपां फल्या-फूल्या दिखा हां ओ सगलो आचार्यश्री को ही प्रताप है। मैं संथारो करूं हूं आ शक्ति मनैं आचार्यश्री ही भेजी है। आ म्हारी आत्मा की आवाज है। मैं आज आचार्यश्री की शक्ति स्यूं ही संथारो पचखू हूं।"

अनशन की सूचना पाकर सारे अहमदाबाद शहर मे एक नई लहर दौड़ गई। प्रतिदिन हजारों की संख्या मे जनता दर्शनार्थ आती और साध्वीश्री के त्याग, तपोबल की मुक्त कंठों से प्रशंसा करती हुई भाव-विभोर हो जाती। श्रद्धा से उनका शिर झुक जाता। जैन शासन एव भैक्षव-शासन की बड़ी प्रभावना हुई।

तप और अनशन के समय भाई और बहिनों मे मौन और जप का नियमित क्रम चलता रहा।

संथारे के समय आचार्य प्रवर के मंगल संदेश मिलते रहे, जिससे साध्वीश्री का आत्मवल अपूर्व उल्लास लिए हुए बढ़ता रहा ।

दिनांक ७-१०-७६ को आचार्यश्री तुलसी द्वारा साध्वीश्री पारवताजी के संथारे के उपलक्ष मे व्यक्त किये हुए उद्गार—

"मन में बहुत उल्लास व प्रसन्नता है कि साध्वी पारवताजी जको धर्म-संघ को काम करयो है ओ बडो विलक्षण काम है । ५ वर्ष तक अहमदावाद मे रह्या, म्हारै मन मे वार-वार आयो कि कद भेज्या किता दिन हुग्या ? अब मालूम पड़ै है कि वे रहणे को सार निकाल लीयो । जिसा लाडनू का हा विसा ही लाडनूं को नाम दिपायो । मैं समझूं हूं संथारे के वास्ते वांरै मन मे बहुत वडी श्रद्धा है और म्हारी वानै बहुत-बहुत शुभकामना है । जका दृढ़ परिणामां स्यू वै संथारो कर्‌यो बांरा विसा ही वढ़ता-चढता परिणाम रहसी और वढता-चढता परिणामां स्यूं वै इं संथारे ने सम्पन्न करसी । इण मे कोई संदेह की वात नही है । संथारे मे परिणामां की ही खूबी है । परिणाम जिता बढसी वितो ही संथारो दीपसी । १० दिन निकलो, २० दिन निकलो, चाहे २५ दिन निकलो, ईंरी चिन्ता नही ।

शास्त्रा मे कह्यो है "न मरणासंसे, न जीवियासंसे" अनशन वाला न जीणे की इच्छा करे न मरणो की इच्छा करे । जीणे की इच्छा करे तो वा एक गलती है । म्हारे जीणे स्यूं म्हारो वड़ो भारी नाम हुवै । मरणे की इच्छा हुवै कि म्हारो ओ काम जल्दी हुज्यासी तो बा भी एक गलती है । वे तो आत्म विकास की इच्छा करै । ईं वास्ते शासन आ ही चावै कि खूब चढ़ता-बढ़ता परिणामां स्यू आत्मकल्याण करो और शासण को नाम बढावो ।

वठै को श्रावक समाज वांरी वडी स्यू वडी सेवा कर रह्यो है । हर काम मे ज्यादा स्यू ज्यादा सहयोग देवै । वानै खूब भजन सुणावै, बांरा परिणाम नै ऊंचा चढ़ावै आ ही शासन की सेवा है । श्रावक-श्राविका जका वहुत अच्छी सेवा कर रह्या है और मनै ईं वात की बड़ी खुशी है कि अहमदावाद को युवक समाज शासण की किती वड़ी सेवा कर रह्यो है । रोजाना हजारूं-हजारूं आदमी वठै इकट्ठा हुवै और भजना को जको प्रवाह चाल रह्यो है ओ मै समझू कि अहमदावाद के वास्ते गौरव की वात है जको पनपसी और पनप रह्यो है ।"

साध्वीश्री का अनशन अमित उत्साह के साथ आखिर २९ वें दिन

सं० २०३३ कार्त्तिक कृष्णा १३ (धनतेरस) को रात के ११ बजकर १७ मिनिट पर सम्पन्न हो गया। कुल ५४ दिन हुए—२५ दिन संलेखना-तप और २९ दिन तिविहार अनशन । साध्वीश्री का संयम-पर्याय ४४ वर्षों का रहा। उनकी कुल आयु ७३ साल की थी।

दूसरे दिन साढ़े नौ बजे व्यवस्थित जुलूस के साथ उनकी शोभायात्रा निकाली गई। उसमें हजारों नर-नारियों ने भाग लिया। अध्यात्म-गीतों व जय नारों से आकाश-मंडल गुंजायमान हो रहा था। शाहपुर श्मशान गृह के विशेष खंड में उनके शरीर का दाह संस्कार किया गया।

७. आचार्यश्री तुलसी ने उनकी स्मृति मे एक छप्पय बनाया । उसमें उनके तपोबल आदि की भूरि-भूरि सराहना की—

बणी पार्वती पार्वती सती तपोबल साध ।
भारी संघ-प्रभावना करी अहमदाबाद ।
करी अहमदाबाद दिवस चौपन संलेखण ।
दृढ़ता रा संवाद थके लिख लिखती लेखण ।
जिण शासण रो जगत में गूंज्यो सिंहनिनाद ।
बणी पार्वती पार्वती सती तपोबल साध ।।

(तुलसीगणी की ख्यात)

८. साध्वी किस्तूरांजी (९३६) आदि ने उन्हें रुग्णावस्था व समाधि-मरण के समय जो सहयोग दिया वह विशेष उल्लेखनीय है । तप, अनशन तथा दिवंगत होने के पश्चात् कई साधु-साध्वियो ने साध्वीश्री के संबंध मे गीतिका आदि रचकर उनके आत्म-पौरुष व उत्कट त्याग का अनुमोदन करते हुए यशोगान गाया। अहमदाबाद के युवकों ने उन गीतिकाओ का चयन कर लघु पुस्तक मे प्रकाशन किया।

९३०।८।२०५ साध्वीश्री सुगनांजी (श्रीडूंगरगढ़)

(दीक्षा सं० १९८९, वर्तमान)

परिचय—साध्वी श्री सुगनांजी का जन्म श्रीडूंगरगढ़ (स्थली) के झुंडलिया (ओसवाल) परिवार में सं० १९६४ ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को हुआ। उनके पिता का नाम दुलीचंदजी और माता का सेरांवाई था। सुगनांजी का विवाह ११ वर्ष की लघुवय में स्थानीय पुरखचन्दजी वोथरा (छतीदासजी के छोटे भाई) के पुत्र जीवनमलजी के साथ सं० १९७५ में कर दिया गया।

वैराग्य—विधि के लेख विचित्र होते हैं, जिससे सुगनांजी की शादी के एक साल बाद ही उनके पति जीवनमलजी का देहान्त हो गया। इस विपदा को सुगनांजी ने बड़े धैर्य से सहन किया और अपना मन धर्म-ध्यान में लगाया। साधु-साध्वियो का सम्पर्क कर वैराग्य-वृत्ति बढ़ाने लगी। विविध त्याग-तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को साधना की कसौटी पर कसा। गृहस्थावास में रहते हुए भी उन्होने उपवास से ११ दिन तक लड़ीवद्ध तप तथा पन्द्रह दिन का थोकड़ा किया। कुछ वर्षो वाद उनकी दीक्षा लेने की प्रवल उत्कण्ठा हो गई। जव उन्होंने अपने विचार सास के सम्मुख रखे तव सास ने कहा—'मैं दीक्षा की स्वीकृति नही दूगी, क्योकि लोग मुझे कहेंगे कि पुत्र की मृत्यु हो गई अत: पुत्रवधू को दीक्षा दिला रही है।' पर सुगनांजी का दृढ़ संकल्प था, इसलिए कुछ समय तक प्रयास करने के वाद उन्हें पारिवारिक-जन की अनुमति मिल गई। फिर आचार्यवर कालूगणी से प्रार्थना करने पर साधु-प्रतिक्रमण सीखने का तथा दीक्षा का आदेश मिल गया।

दीक्षा—उन्होने सं० १९८९ कार्तिक कृष्णा ९ को आचार्यवर कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली १३ दीक्षाओं का वर्णन साध्वी श्री पारवतांजी (९२९) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

उनके परिवार की निम्नोक्त दीक्षाएं हुई :—

१. साध्वी श्री चादांजी (७५१) मोमासर, ताऊजी की वेटी-वहिन दीक्षा सं० १९६८।

२. मुनि नवरत्नमल (५२३) मोमासर, नानदा, दीक्षा सं० १९९४
३. साध्वी तीजांजी (१०६५) मोमासर, नानदी, दीक्षा स० १९९६
४. साध्वी जड़ावाजी (१०६७) श्रीडूंगरगढ़, जेठूतरी, दीक्षा सं० १९९६
५. साध्वी भीखांजी (११७१) ,, देवर की पुत्री, दीक्षा सं० २००२
(ख्यात)

विहार—दीक्षित होने के चार महीनो बाद आचार्यवर कालूगणी ने साध्वी सुगनांजी को साध्वी श्री मनोरांजी (६७६) 'भिवानी' के सिंघाड़े में भेज दिया। वे चार साल उनके साथ रहीं। सं० १९९३ मे उनके दिवंगत होने के पश्चात् साध्वी सुन्दरजी (८९७) 'सरदारशहर' के सिंघाड़े मे तथा सं० २००९ में उनके दिवंगत होने पर साध्वी तीजांजी (१०२०) 'सरदारशहर' के साथ सं० २०२७ तक विहार किया। फिर आंखो की ज्योति चली जाने के कारण लाडनू 'सेवाकेन्द्र' मे स्थायी वास कर रही है।

कंठस्थ ज्ञान—उन्होने निरन्तर सीखने की लगन रखते हुए हजारो पद्य कंठस्थ कर लिये। जिनकी सूची इस प्रकार है—दशवैकालिक, पच्चीस-बोल, चर्चा, तेरहद्वार, लघुदण्डक, हितशिक्षा के पच्चीस बोल, बावनबोल, इक्कीसद्वार, इकतीसद्वार, कर्मप्रकृति, पच्चीस बोल की चर्चा, हरखचन्दजी स्वामी की चर्चा, संजया, गमा, भिखुपृच्छा, सासता-असासता, पांच भावो का थोकड़ा, कालूतत्त्वशतक आदि थोकड़े। कर्मचन्दजी स्वामी का ध्यान, पन्नवणा सूत्र की जोड़, आराधना, चौवीसी, २४ तीर्थंकरो का लेखा, स्मरणात्मक तथा औपदेशिक लगभग १०० गीतिकाएं तथा आचार्यश्री द्वारा रचित लगभग १०० गीतिकाएं।

तपस्या—उनकी सं० २०४२ तक की कुल तपस्या निम्न प्रकार है—

गृहस्थ जीवन में—

उपवास	४	५	१५	कर्मचूर तप	दसप्रत्याख्यान
१०००	१०	१३	१	१	३१

अढ़ाई-सौ प्रत्याख्यान	२४ तीर्थंकरो की लडियां
२	१

तथा परदेशी राजा के १२ बेले तथा १ तेला।

साधु-जीवन में—

उपवास	२	३	४	५	आयम्बिल
१०००	५३	७	७	५	५१

दसप्रत्याख्यान
——————।
१५

त्याग—सं० २००८ माघ शुक्ला १२ को आजीवन सेलडी की वस्तु का त्याग किया। सं० २०३१ से आजीवन कड़ाही विगय का त्याग।

स० २०३२ से आजीवन दो विगय तथा २१ द्रव्यो के अतिरिक्त न लेना।

साधना—साध्वीश्री के नियमित रूप से साधना का क्रम चलता है।

स्वाध्याय—अब तक लगभग ५५ लाख गाथाओं का स्वाध्याय हो चुका है। वर्तमान मे प्रतिदिन एक-डेढ हजार गाथाओ का स्वाध्याय करती है।

जप—तीर्थंकरो तथा नमस्कार महामन्त्र आदि का एक करोड, ५४ लाख का जप किया।

मौन—सं० २०३१ से प्रतिदिन पाच घटे मौन।

ध्यान—सं० २०३४ कार्त्तिक महीने से प्रतिदिन तीन घंटे ध्यान।

विशेषता—साध्वीश्री स्वभाव से ऋजु, पापभीरु और समता की प्रतिमूर्ति है। आचार्यश्री तुलसी एवं साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी ने साध्वीश्री की विशेषताओ को अभिव्यक्त करते हुए उनके प्रति मगल कामना प्रकट की है। पढिये निम्नोक्त पत्र—

साध्वी शिष्या सुगनाजी अचक्षु होने पर भी विवेक चक्षु से चक्षुष्मती है। ऋजु है। सहज है। सबको मन भाती है।

सेवा, स्वाध्याय, जप और ध्यान मे सलग्न रहकर विशेष निर्जरा करती रहो। मानसिक समाधि सहित रहो। यही शुभ-कामना।

ज्येष्ठ सुद ६, २०४१ लाडनू —**आचार्य तुलसी**

साध्वीश्री सुगनांजी !

साधु-जीवन की सफलता का सूत्र है समभाव। आपने अपने जीवन मे समभाव की साधना की है और कर रही है, यह बहुत अच्छी बात है। अब

आप और अधिक अन्तर्मुखता और पापभीरुता का विकास करें। 'समयं गोयम ! मा पमायए' इस आगम-वाणी को याद रखें और पल-पल को सफल बनाएं।

सं० २०४१, ज्येष्ठ शुक्ला ७ —कनकप्रभा
लाडनूं

आभास—(१) साध्वीश्री जिस दिन दीक्षित हुई उसी दिन रात्रि के समय स्वप्न मे उनके स्वर्गीय पति ने दर्शन किये और पूछा—'दुःख के कारण दीक्षा ग्रहण की है या वैराग्य भाव से ? उन्होने उत्तर दिया—'दुःख से दीक्षा नहीं ली जा सकती। हां, उससे प्रेरणा अवश्य मिलती है। मैंने पूर्ण वैराग्य-भाव से दीक्षा स्वीकार की है।'

(२) सं० २०२७ के रीछेड़ चातुर्मास के पश्चात् साध्वी सुगनांजी साध्वीश्री तीजांजी (१०२०) 'सरदारशहर' के साथ राजनगर मे थी। वहां एक दिन रात्रि के समय स्वप्न मे साध्वी सुगनांजी को विचित्र वेश-भूषा में खड़े हुए लाडनूं वाले पीरजी दिखाई दिए।

साध्वीश्री ने पूछा—आप कौन हैं ?

वे बोले—मैं लाडनू से आया हूं। गुरुदेव ने आपको लाडनूं जाने का आदेश दिया है।

साध्वीश्री—हमें तो अभी तक कोई आदेश नही मिला है।

पीरजी—कल आदेश आ जायेगा।

इस प्रकार कहकर वे अदृश्य हो गए। साध्वीश्री ने सुबह होते ही साध्वियो को उक्त घटना सुनाई। फिर उसी दिन पत्र द्वारा सूचना मिली कि आचार्यप्रवर ने साध्वीश्री को लाडनूं जाने का आदेश दिया है।

ऐसे अनुभव जीवन मे कभी-कभी होते है जो मनुष्य को आश्चर्य-चकित कर देते है।

(३) साध्वी सुगनांजी की आंखो मे कई वर्षों से ज्योति नही थी। एक दिन रात्रि के समय उन्हे अचानक सुनना भी बन्द हो गया। इससे उनके मन मे चिंतन आया—'आंखो से मुझे दिखाई नही दे रहा है और कानो से सुनना भी बन्द हो गया है, अत: अब मुझे शीघ्रातिशीघ्र संलेखना-तप एवं अनशन करके अपना कल्याण कर लेना चाहिए।' ऐसा सोचकर उन्होने आचार्य भिक्षु के नाम का जप चालू कर दिया। कुछ समय बीता कि उन्हें ऐसा आभास हुआ

मानो सामने स्वामीजी आकर खड़े हो गए और कहने लगे—'अभी अनशन मत करना, सफल नहीं होगा।'

साध्वीश्री वोली—तो मैं फिर क्या करूं ? या तो आंखें खुल जाएं या सुनाई देने लग जाए।'

स्वामीजी ने कहा—आंखो मे तो ज्योति नही आ सकेगी, क्योकि निकाचित कर्म बंधे हुए हैं। फिर कहा—क्या मेरी आवाज सुनाई देती है ? उसी क्षण उन्हे सुनाई देने लग गया। फिर सामने कोई भी दिखाई नही दिया।

यह एक चामत्कारिक घटना थी, जो सं० २०३८ लाडनू मे घटित हुई।

संस्मरण—

न हिन्दू न मुसलमान—साध्वी सुगनांजी ने सं० २०१३ का चातुर्मास साध्वी तीजांजी के साथ अहमदगढ़ (पजाव) मे किया। चातुर्मास के पश्चात् गुरु-दर्शनार्थ स्थली की ओर आते समय रास्ते में एक दिन एक सिक्ख मिला और बोला—'तुम हिन्दू हो मुसलमान ?' साध्वी सुगनांजी भारी धर्म संकट मे पड़ गई। पर उनके मुंह से सहजतया निकल गया—'हम न हिन्दू हैं और न मुसलमान, हम तो अल्लाह है।' अल्लाह का नाम सुनते ही सिक्ख श्रद्धा-भाव से झुक गया और दूर चला गया। साध्वी सुगनांजी कुछ ही आगे चलने वाली साध्वी जड़ावांजी (८४४) के निकट पहुंची और वोली—'आज तो गुरुदेव के प्रताप से ही वची, वरना न जाने क्या घटना घटित होती।'

अपना बचाव—साध्वीश्री तीजांजी सं० २०१४ के पचपदरा चातुर्मास के वाद जोधपुर पहुंची। वहां उन्हें वापस समदड़ी के चोखले मे जाने का आदेश मिला। कुछ दिन वाद विहार कर सूरजमलजी वैगानी (लाडनूं) के सिनेमा हॉल वाले मकान मे ठहरी। सूरजमलजी वैगानी की धर्मपत्नी सुखी देवी उसी दिन वहां पहुंची। उन्होंने साध्वियो से कुछ दिन ठहरकर सेवा कराने के लिए कहा। परन्तु अवकाश न होने के कारण साध्वी तीजाजी आदि तीन साध्वियो ने विहार कर दिया। दो साध्वियो—जड़ावांजी, सुगनांजी को वहा रखा। दूसरे दिन उन्होने विहार किया। रास्ते मे कुछ ही दूर पर सडक के दोनो तरफ इधर-उधर घूमते हुए लगभग १०० अंग्रेज मिले। वे अजनवी साध्वियों को देखकर वार-वार उनकी ओर झांकने लगे। साध्विया भयभीत और आशंकित होने लगी। मन में सोचने लगी कि ये लोग कही हमारा

स्पर्श आदि नहीं कर लें। कुछ आगे बढ़कर एक छोटे से मकान में आकर दोनों साध्वियों ने पुरुष की तरह अपना वेप कर लिया। नमस्कार महामंत्र, भिक्षु स्वामी आदि आचार्यों का स्मरण कर तुरन्त वहां से रवाना हो गई और क्षेम कुशल से अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच गईं।

(परिचय-पत्र)

९३१।८।२०६ साध्वीश्री नाथांजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९८९, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री नाथांजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के श्यामसुखा (ओसवाल) परिवार मे सं० १९६७ आश्विन कृष्णा अष्टमी को हुआ। उनके पिता का नाम किसनचन्दजी और माता का सुगरता वाई था। वालिका नाथां पांच साल की हुई तब उनकी माता का देहान्त हो गया। बालिका तेरह साल की हुई तब उनका विवाह स्थानीय धनराजजी वैद के पुत्र प्रतापमलजी के साथ कर दिया गया।

वैराग्य—विवाह के पांच साल वाद नाथांजी के पति प्रतापमलजी का देहावसान हो गया। इस घटना से नाथांजी को सांसारिक सुखों की नश्वरता का बोध हुआ। वे प्रतिदिन वैराग्य भावना बढ़ाती हुई दीक्षा के लिए उद्यत हो गईं। पांच साल की कठिन परीक्षा के वाद पारिवारिक-जन की आज्ञा मिली। गुरुदेव से निवेदन करने पर साधु-प्रतिक्रमण सीखने का आदेश भी मिल गया।

दीक्षा—नाथांजी ने पति वियोग के वाद सं० १९८९ कार्तिक कृष्णा ९ को आचार्य श्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १३ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री पारवताजी (९२९) के प्रकरण में कर दिया गया है।

सहवास—दीक्षित होने के वाद गुरुदेव ने साध्वी नाथांजी को साध्वी श्री कुन्नणाजी (७२४) 'सरदारशहर' (जो उनकी संसार-पक्षीय जेठानी थी) के सिंघाडे में भेज दिया। वे उनके साथ २४ साल तक रही। सं० २०१५ मे उनके दिवगत होने के पश्चात् आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी कंचनकंवरजी (१२६३) 'उदयपुर' का सिंघाड़ा वनाया। साध्वी नाथांजी उनके साथ १७ वर्ष तक विहार करती रही। उसके वाद वृद्धावस्था के कारण पांच साल लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे स्थायी वास किया। फिर पांच साल से राजलदेसर में स्थिरवास कर रही है।

तपस्या—उन्होने अपने जीवन मे स० २०४२ तक इस प्रकार तप किया—

गृहस्थ जीवन में—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९
२४२	६	६	२	२	२	२	२	२

साधु-जीवन में—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८
२०२५	१३०	३१	७	२	१	१	१

स्वाध्याय—वे प्रतिदिन पांच-सौ गाथाओं का स्वाध्याय करती हैं। ध्यान, मौन का क्रम भी चलता है।

(परिचय-पत्र)

६३२।८।२०७ साध्वीश्री लिछमांजी (सिरसा)

(दीक्षा सं० १६८६, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री लिछमांजी का जन्म अलीमोहम्मद गाव मे सं० १६६७ (साध्वी-विवरणिका मे १६६४ कार्त्तिक शुक्ला ६) में हुआ। उनके पिता का नाम हनूतमलजी और माता का सेखां वाई था। लिछमांजी का विवाह सिरसा (पजाब) के डेडराजजी पारख (ओसवाल) के साथ कर दिया गया।

दीक्षा—लिछमाजी ने पति वियोग के वाद सं० १६८६ कार्त्तिक कृष्णा ६ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १३ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री पारवताजी (६२६) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

तपस्या—साध्वीश्री ने स० २०४१ ने तक निम्न प्रकार तप किया—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	६	१०	११	१२
३६०५	१४१	४४	१०	१६	१	१	३	१	१	१	१

१३	१४	१५	१६	१७	१८	१६	२१	२२	२३	२८
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१

२६	३०	३१
१	१	१

। तप के कुल दिन ४८१४, जिनके ७ वर्ष, ४ महीने और १४ दिन होते हैं।

वे यथाशक्य स्वाध्याय, जप तथा प्रतिदिन एक घंटा मौन करती हैं।

कई वर्षो से साध्वीश्री मोहनांजी (१०५८) 'तारानगर' के साथ विहार कर रही हैं।

(परिचय-पत्र)

६३३।८।२०८ साध्वीश्री रामूजी (नोहर)

(दीक्षा सं० १६८६, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री रामूजी का जन्म सिरसा के डागा परिवार में सं० १६६८ मृगसर शुक्ला १० को हुआ। उनके पिता का नाम हुकमचंदजी और माता का पूरांबाई था। रामूजी की १२ वर्ष की लघुवय मे नोहर (स्थली) के सीपाणी (ओसवाल) परिवार मे शादी कर दी गई। उनके पति का नाम डूंगरमलजी था।

वैराग्य—शादी के पाच साल बाद उनके पति भयंकर बीमारी से पीड़ित हो गये और फिर दो साल बाद उनका देहान्त हो गया। इस घटना से रामूजी के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। कुछ ही दिनो बाद उन्हे एक स्वप्न आया जिससे उनकी भावना तीव्र हो गई।

दीक्षा—उन्होने पति वियोग के बाद सं० १६८६ कार्तिक कृष्णा ६ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १३ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री पारवताजी (६२६) के प्रकरण में कर दिया गया है।

कंठस्थ ज्ञान—साध्वीश्री ने निम्नोक्त सूत्र, थोकड़े आदि कंठस्थ किये—दशवैकालिक तथा बृहत्कल्प सूत्र, पच्चीस बोल, चर्चा, तेरहद्वार, लघु-दंडक, बावनबोल, इक्कीसद्वार, संजया, हितशिक्षा के पच्चीस बोल, जाणपणे के पच्चीस बोल, अल्पाबहुत, गुणस्थानद्वार, खंडाजोयण आदि थोकड़े। राम-चरित्र, धनजी आदि व्याख्यान तथा चौबीसी, शील की नौ बाड़, आचार-बोध, सिन्दूरप्रकर, भक्तामर आदि।

कला—रंग-रोगन, चित्रकला आदि का विकास किया।

वाचन—३२ सूत्रो का वाचन किया।

तपस्या—उनके सं० २०४१ तक के तप की सूची इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९
४०७०	६५	१३	७	७	१	२	१	१

आयम्बिल ४१, आयम्बिल के तेले ५० तथा दसप्रत्याख्यान ४१ बार

किये।

सेवा—साध्वी रामूजी ने दीक्षित होते ही साध्वी हुलासांजी (७०८) 'सरदारशहर' के साथ लाडनूं की चाकरी की। फिर २० वर्ष (सं १६६१ से २००१ तक) साध्वीश्री लिछमांजी (४६४) 'सुजानगढ' के सिंघाड़े मे रही। साध्वी लिछमांजी के गठिया की वीमारी होने से उनके शरीर मे काफी वेदना रहती। १७ मील उन्हें उठाकर चूरू लाया गया। पांच साल वहां पर वास किया। साध्वी रामूजी ने उनकी अच्छी परिचर्या की।

साधना—वे प्रतिदिन सूत्र के ५०० गाथाओ का स्वाध्याय, एक घंटा ध्यान, तीन घंटे मौन और सूत्र-गाथा की १ माला का स्मरण करती हैं।

जप—उन्होने इस प्रकार जप किया—

ऋषभ प्रभु का—सवा तीन लाख
चन्द्र प्रभु का—सवा चार लाख
नेमि प्रभु का—सवा तीन लाख
पार्श्व प्रभु का—सवा चार लाख
भिक्षु स्वामी का—सवा चार लाख
जयाचार्य का—सवा लाख
कालूगणी का—सवा दो लाख
नमस्कार महामंत्र का—सवा लाख।

(परिचय-पत्र)

६३४।८।२०६ साध्वीश्री मनोरांजी (मोमासर)

(दीक्षा सं० १६८६, वर्तमान)

'५७वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री मनोरांजी का जन्म मोमासर (स्थली) के सेठिया (ओसवाल) परिवार में सं० १६७३ कार्तिक कृष्णा तृतीया को हुआ। उनके पिता का नाम पूरणचंदजी और माता का भूरीबाई था।

वैराग्य—जन्मान्तर संस्कार एवं साधु-साध्वियो के सम्पर्क से वैराग्य की उत्पत्ति हुई।

दीक्षा—मनोरांजी ने १६ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) में सं० १६८६ कार्त्तिक कृष्णा ६ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से सरदारशहर मे संयम ग्रहण किया। उस दिन होने वाली १३ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री पारवताजी (६२६) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सहवास—साध्वी मनोराजी दीक्षित होने के वाद १३ साल साध्वीश्री केशरजी (६२६) 'तारानगर' और २६ साल साध्वीश्री प्रतापांजी (७८६) 'वीदासर' के सिंघाड़े मे परम समाधि पूर्वक रही। कुछ वर्ष अन्य सिंघाड़ो के साथ रही। वृद्धावस्था के कारण सं० २०३५ से लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' मे स्थिर-वास कर रही है।

कंठस्थ ज्ञान—साध्वीश्री ने दशवैकालिक, लगभग २५ थोकड़े, २५ व्याख्यान, १५० गीतिकाएं कंठस्थ की।

तपस्या—उनकी सं० २०४१ भाद्रव शुक्ला १५ तक की तपस्या इस प्रकार है—

उपवास	२	३	दसप्रत्याख्यान	अढ़ाई-सौ प्रत्याख्यान
१६२६	६१	४	२२	१

एकासन का कर्मचूर	आयम्विल	आयम्विल के तेले	एकासन
१	२६६	१०	६०१

उन्होने सं० २०३७ से वर्षी तप चालू किया। अभी पांचवां वर्षी तप चल रहा है। तप के साथ अभिग्रह का क्रम भी चलता रहता है।

स्वाध्याय—लाखों गाथाओं का स्वाध्याय (पुनरावर्तन) तथा वाचन किया।

(परिचय-पत्र)

९३५।८।२१० साध्वीश्री केशरजी (श्रीडूंगरगढ़)

(दीक्षा सं० १९८९, वर्तमान)

'५८वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री केशरजी का जन्म श्रीडूंगरगढ़ (स्थली) के मालू (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७७ श्रावण कृष्णा ७ (साध्वी-विवरणिका में श्रावण शुक्ला ७) को हुआ। उनके पिता का नाम जीवराजजी और माता का छोटांवाई था।

दीक्षा—केशरजी ने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १९८९ कार्त्तिक कृष्णा ९ को अपने पिता जीवराजजी (४८५) और छोटे भाई संपतमलजी (४८८) के साथ आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से सरदारशहर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १३ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री पारवतांजी (९२९) के प्रकरण में कर दिया गया है।

इनकी संसारपक्षीया बड़ी बहिन साध्वीश्री सिरेकंवरजी सं० १९८२ में दीक्षित हो गई थी। परिवार की अन्य दीक्षाओं का उल्लेख साध्वी सिरेकंवरजी के प्रकरण में कर दिया गया है।

साध्वी केशरजी साध्वीश्री सिरेकंवरजी के साथ विहार कर रही है।

९३६।८।२११ साध्वीश्री किस्तूरांजी (लाडनूं)

(दीक्षा सं० १९८९, वर्तमान)

'५९ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री किस्तूरांजी का जन्म लाड़नूं (मारवाड़) के वोथरा (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७९ माघ शुक्ला १३ को हुआ। उनके पिता का नाम आसकरणजी और माता का पारवतांजी था।

वैराग्य—पूर्वजन्म के सस्कारो से दीक्षा लेने की भावना हो गई।

दीक्षा—किस्तूराजी ने १० वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) में अपनी माता पारवतांजी (९२९) के साथ स० १९८९ कार्त्तिक कृष्णा ९ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १३ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री पारवताजी के प्रकरण मे कर दिया गया है।

शिक्षा—साध्वीश्री दीक्षित होने के पश्चात् लगभग २१ साल गुरुकुल-वास मे रही। आचार्यश्री तुलसी के पदासीन होने के वाद आपके सान्निध्य मे अनेक साध्वियां व्यवस्थित रूप से अध्ययन करने लगीं। उनमे एक साध्वी किस्तूरांजी थी। उन्होने हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत आदि का अध्ययन किया। हजारो पद्य कठस्थित किये।

आगम—दशवैकालिक।

थोकड़े—पच्चीस वोल, चर्चा, लघुदण्डक, वावनवोल, इक्कीसद्वार, इकतीसद्वार, कर्मप्रकृति, सजया, नियठा।

संस्कृत-व्याकरण आदि—कालुकौमुदी, अष्टाध्यायी, अभिधान-चिंतामणि कोप, भक्तामर, कल्याणमन्दिर, सिन्दूरप्रकर, शात-सुधारस, तत्त्वार्थ-सूत्र, जैनसिद्वान्तदीपिका, भिक्षुन्यायकर्णिका, अनुयोग-व्यवच्छेदिका, षड्दर्शन-समुच्चय।

वाचन—३२ सूत्रो का तथा भगवती की जोड़ का वाचन किया।

साहित्य—साध्वीश्री ने चंदचरित्र, जिनसेन-रामसेन चरित्र, ऋपिदत्त-चरित्र, भीमसेन-चरित्र, हरिसेन-चरित्र, विद्या विकास-चरित्र आदि व्याख्यानों की पद्यमय रचना की। संस्कृत मे भक्तामर की समस्यापूर्ति की। धर्म-पोडश,

कर्त्तव्यअष्टक आदि बनाये। हिन्दी में कविता, मुक्तक गीतिकाएं आदि बनाईं।

अवधान—साध्वी-समाज में सर्वप्रथम सौ अवधान कर शतावधानी बनी।

प्रतिलिपि—साध्वीश्री ने लिपिकला का विकास कर भिक्षुशब्दानुशासनम् की लघुवृत्ति, अष्टाध्यायी, अभिधानचिन्तामणि कोष, कालूयशोविलास, रामचरित्र, चन्दन की चुटकी भली, जैनसिद्धान्तदीपिका, भिक्षु-न्यायकर्णिका, तुलसी मंजरी, शिक्षाषण्णवति, शैक्ष-शिक्षा, संस्कृत-कथाकोश आदि अनेक ग्रन्थ लिपिबद्ध किये।

पुरस्कृत—सं० २००१ माघ शुक्ला ६ को सुजानगढ में साधु-साध्वियों की गोष्ठी मे आचार्यप्रवर ने साध्वीश्री को दशवैकालिक, नाममाला, कालु-कौमुदी और अष्टाध्यायी कंठस्थ कर पाने पर तीस हजार गाथाओ से पुरस्कृत किया।

(तुलसीगणी की ख्यात)

विहार—साध्वीश्री ने स० १९९९ का चातुर्मास रामगढ मे किया। सं० २००९ मे आचार्यश्री तुलसी ने उनका स्थायी सिंघाड़ा बना दिया। उन्होने गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, पंजाब, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, आसाम, सिक्किम, नेपाल, भूटान, मैसूर, तमिलनाडु आदि प्रदेशों की यात्रा कर धर्म का प्रचार-प्रसार किया और कर रही है। लगभग एक लाख किलोमीटर की यात्रा हो चुकी है। साध्वी-समाज मे सर्वप्रथम दक्षिण प्रान्त की यात्रा की। दूसरी बार फिर दक्षिण-यात्रा पर है। काठमाडू (नेपाल) में सर्वप्रथम गमन किया। उनके चातुर्मासो की सूची इस प्रकार है—

सं० १९९९	ठाणा ५	रामगढ़
सं० २०१०	,, ५	बीकानेर
सं० २०११	,, ५	राजनगर
सं० २०१२	,, ५	उदयपुर
सं० २०१३	,, ५	कांकरोली
सं० २०१४	,, ५	जामनगर
सं० २०१५	,, ५	बैंगलोर
सं० २०१६	,, ५	,,
सं० २०१७	,, ५	मैसूर

सं० २०१८	ठाणा ६	उदयपुर
सं० २०१९	,,	उदयपुर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २०२०	,, २४	सरदारशहर 'शिक्षाकेन्द्र'
सं० २०२१	,, १८	गंगाशहर[1]
सं० २०२२	,, ६	कलकत्ता
सं० २०२३	,, ६	कलकत्ता (हवड़ा)
सं० २०२४	,, ६	भागलपुर
सं० २०२५	,, ६	फारविसगंज
सं० २०२६	,, ६	किशनगंज
सं० २०२७	,, ६	विराटनगर
सं० २०२८	,, ५	अहमदावाद (शाहीवाग)
सं० २०२९	,, ५	,,
सं० २०३०	,, ५	,,
सं० २०३१	,, ५	,,
सं० २०३२	,, ५	,,
सं० २०३३	,, ५	,,
सं० २०३४	,, ५	चूरू
सं० २०३५	,, ३०	लाडनूं 'सेवाकेन्द्र'
सं० २०३६	,, ५	दिल्ली (सदरबाजार)
सं० २०३७	,, ५	अमृतसर
सं० २०३८	,, ५	भुज
सं० २०३९	,, ५	गांधीधाम
सं० २०४०	,, ५	अहमदावाद
सं० २०४१	,, ५	के० जी० एफ०
सं० २०४२	,, ५	मद्रास

(चातुर्मासिक तालिका)

तपस्या—सं० २०४१ तक उनके तप की तालिका इस प्रकार है :—

---

१. साध्वी प्रतापांजी (७१२) 'सरदारशहर' तथा साध्वी सोनांजी (८२५) 'साजनवासी' का संयुक्त चातुर्मास था।

उपवास	२	३	४
१५००	१	३	१

सेवा—साध्वीश्री अणचांजी ने चौथी परिपाटी की तब छह महीनों तक उनकी सेवा की। साध्वी पारवतांजी की विशेष रुग्णावस्था में पांच साल परिचर्या की।

व्यवस्थापिका—आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी-समाज मे शिक्षण की व्यवस्था की। साध्वी किस्तूराजी को शिक्षाकेन्द्र की व्यवस्थापिका बनाकर सं० २०२० का चातुर्मास सरदारशहर मे कराया।

आचार्यप्रवर ने सं० २०२० माघ कृष्णा ६ को लाडनूं मे साध्वी-समाज मे प्रायोगिक रूप से निकाय-व्यवस्था की। प्रवर्तन विभाग, व्यवस्था-विभाग तथा शिक्षा-साधना विभाग। साध्वी किस्तूरांजी को व्यवस्था-विभाग की व्यवस्थापिका के रूप मे नियुक्त किया। उन्होने दो साल तक व्यवस्था का कार्य संभाला।

(परिचय-पत्र)

आशीर्वाद—सं० २०१८ गंगाशहर में धवल-समारोह के अवसर पर आचार्यश्री ने साध्वीश्री को आशीर्वाद-पत्र दिया। वह इस प्रकार है—
सुशिष्या किस्तूरांजी !

तुमने सुदूर प्रान्त दक्षिण मे अणुव्रत-आन्दोलन की प्रगति के लिए जो प्रयत्न किया, उससे मैं प्रसन्न हूं। कार्य-क्षमता की प्रगति के लिए इस धवल-समारोह के अवसर पर मै तुम्हे आशीर्वाद देता हू।

(तुलसीगणी की ख्यात)

६३७।८।२१२ साध्वीश्री मूलांजी (लूनकरणसर)

(दीक्षा सं० १९८९, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री मूलांजी का जन्म उदासर (स्थली) के मुणोत (ओसवाल) गोत्र मे सं० १९६१ पौष कृष्णा १५ को हुआ। उनके पिता का नाम गोविन्दरामजी और माता का भूरी वाई था। मूलांजी का विवाह लूनकरणसर के दूगड़ परिवार मे किया गया। उनके पति का नाम रामलालजी था। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम गजराज था। कुछ वर्षों वाद रामलालजी का देहावसान हो गया।

वैराग्य—साधु-साध्वियों के उपदेश से विरक्त होकर माता मूलांजी अपने पुत्र के साथ मे ही दीक्षित होने के लिए तैयार हो गई। दोनो साथ मे दीक्षित होना चाहते थे। पर देवर की आज्ञा न मिलने के कारण मूलांजी की दीक्षा कुछ समय के लिए रुक गई। गजराजजी ने माता मूलांजी की आज्ञा से दीक्षा ग्रहण कर ली[1]। वाद में मूलांजी को देवर की आज्ञा भी प्राप्त हो गई।

दीक्षा—मूलांजी ने पति वियोग के वाद सं १९८९ कार्त्तिक शुक्ला १३ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सरदारशहर मे दीक्षा ग्रहण की। उनके साथ मुनि हनुमानमलजी (४९०) और जयचन्दलालजी (४९१) 'सरदारशहर' की दीक्षा भी हुई[2]।

उनके संसारपक्षीय जेठूत मुनि सोहनलालजी (४८६) तथा पुत्र गजराजजी (४८९) की दीक्षा उनसे वीस दिन पूर्व कार्तिक कृष्णा ९ को हो गई थी।

सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के पश्चात् सं० २०२३ तक गुरुकुल-

---

१. गजराजजी साधुत्व न निभा पाने के कारण सं० २००५ मे गण से पृथक् हो गये।

२. कार्त्तिक सुद तेरस वलि त्रिण तर्‌या सतोरां।
   हनुमान और जयचन्द शहर-सरदारी।
   मूलां गज्जू री मां कृपया गुरु तारी।
   (कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० ३१)

वास में साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी, झमकूजी एवं लाडांजी के सान्निध्य में रही। फिर मातुःश्री वदनांजी की सेवा मे बीदासर रही। सं० २०३३ में उनके दिवंगत होने के बाद लाडनूं सेवाकेन्द्र मे स्थिरवास कर रही है।

सेवा—साध्वी सूरजकंवरजी (६६४) 'राजगढ़' को छापर से सुजानगढ़ तक उठाकर लाया गया। उसमे साध्वी मूलांजी ने सहयोग किया। आचार्यप्रवर ने उन्हें ५ वारी की वक्शीश की।

तपस्या—सं० २०४१ तक की उनकी तपस्या इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५
१८०४	४५	३	२	१

(परिचय-पत्र)

६३८।८।२१३ साध्वीश्री मनोहरांजी (चाड़वास)

(संयम-पर्याय सं० १९८९-१९९९)

छप्पय

चाड़वास पितृ-भूमिका चाड़वास ससुराल।
श्रीडूगरगढ़ में मिली संयम की वरमाल[1]।
संयम की वरमाल खिली है सती मनोरां।
दस दर्षों तक भव्य भरा है सुकृत-कटोरा।
वीदासर से ली विदा नवति-नवाधिक साल[2]।
चाड़वास पितृ-भूमिका चाडवास ससुराल॥१॥

१. साध्वीश्री मनोहराजी की ससुराल चाडवास (स्थली) के दूगड़ (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर वही चोरड़िया गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९६४ मे हुआ। उनके पति का नाम हरखचन्दजी था।

मनोहरांजी ने पति वियोग के बाद सं० १९८९ माघ शुक्ला १४ को साध्वी फूलकंवरजी (६३९) तथा मुनि नेमीचदजी (४९२) 'श्रीडूगरगढ़' के साथ आचार्यवर कालूगणी के हाथ से श्रीडूगरगढ मे संयम ग्रहण किया[1]। दीक्षा-महोत्सव पर लगभग ७ हजार जनो की उपस्थिति थी।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वीश्री दस वर्ष साधना कर सं० १९९९ फाल्गुन शुक्ला ९ को वीदासर मे दिवगत हो गई।

(ख्यात)

साध्वी-विवरणिका मे स्वर्गवास-तिथि फाल्गुन शुक्ला १० है।

---

१. मा० सुद पख नेमू, मनहर फूलकुमारी।

(कालू० उ० ३ ढा० १६ गा० ३२)

९३६।८।२१४ साध्वीश्री फूलकंवरजी (गंगाशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९८९-१९९३)

'६०वीं कुमारी कन्या'

छप्पय

फूलकुमारी ने किया अच्छा अनुसंधान ।
लघुवय में संयम लिया दिया समय पर ध्यान ।
दिया समय पर ध्यान शहर गंगा से आई ।
गण-गंगा में स्नान चार वत्सर कर पाई ।
अल्पावधि में शिखर पर पहुंच गया है यान[1] ।
फूलकुमारी ने किया अच्छा अनुसंधान ॥१॥

दोहा

शारीरिक अस्वस्थता, होने से स्वर्गस्थ ।
गुरु-दर्शन का आखिरी, योग मिल गया स्वस्थ ॥२॥

नवति-तीन की साल का, आया मृगसर मास ।
पहुना में पंडित-मरण, प्राप्त किया सोल्लास[2] ॥३॥

१. साध्वीश्री फूलकंवरजी गंगाशहर (स्थली) निवासी सेरमलजी चोरड़िया (ओसवाल) की पुत्री थी। उन्होने १२ साल की अविवाहित वय (नाबालिग) मे सगाई छोड़कर सं० १९८९ माघ शुक्ला १४ को साध्वी मनोहरांजी (९३८) 'चाड़वास' और मुनि नेमीचंदजी (४९२) 'श्रीडूंगरगढ़' के साथ आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से श्रीडूंगरगढ़ मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वी फूलकंवरजी ने साध्वी केशरजी (८९२) 'रतनगढ़' के साथ सं० १९९३ का चातुर्मास पहुना (मेवाड़) मे किया। वहां शारीरिक अस्वस्थता के कारण चातुर्मास के पश्चात् उनका विहार नही हो सका। मृगसर कृष्णा ६ के दिन आचार्यश्री तुलसी गंगापुर चातुर्मास सम्पन्न कर पहुना

पधारे और रुग्ण साध्वी को दर्शन दिये। साध्वीश्री गुरुदेव के अन्तिम दर्शन पाकर परम प्रसन्न हुई। उसी रात्री को प्रतिक्रमण करने के पश्चात् उनका स्वर्गवास हो गया। उस समय उनकी अवस्था १६ साल की थी। चार साल की अल्पावधि में अपना कल्याण कर लिया।

(तुलसीगणी की ख्यात)

९४०।८।२१५ साध्वीश्री चूनांजी (डीडवाना)

(दीक्षा सं० १९८९-२०३६)

छप्पय

लिया नंदना साथ में चूनां ने चारित्र।
तप-जप में तल्लीन हो जीवन किया पवित्र।
जीवन किया पवित्र डीडवाना पुर गाया।
वंशज डूंगरवाल भाल कुल का चमकाया।
अभयदान दे अभय का खींचा अभिनव चित्र।
लिया नंदना साथ में चूनां ने चारित्र ॥१॥

एकम सित आषाढ़ की साल नवासी भव्य।
शहर लाडनूं में लगी चरणोत्सव-छवि नव्य।
चरणोत्सव-छवि नव्य सभी जन के मन भाई।
शरण सुगुरु की श्रेष्ठ सुता युत माता पाई।
सीखा मैत्री मंत्र को समझा सबको मित्र[1]।
लिया नंदना साथ में चूनां ने चारित्र ॥२॥

पढ़ी-लिखी ज्यादा नहीं पर मृदु सरल स्वभाव।
रम संयम में हर समय रखती निर्मल भाव।
रखती निर्मल भाव ज्ञान कुछ-कुछ कर पाई।
कर तप-जप स्वाध्याय सुकृत-सरिता भर पाई[2]।
सफल साधना कर चली बजे सुयश-वादित्र।
लिया नंदना साथ में चूनां ने चारित्र ॥३॥

दोहा

दो हजार-छत्तीस का, मास आ गया ज्येष्ठ।
ऊदासर में हो गया, चरम-महोत्सव श्रेष्ठ[1] ॥४॥

सती मोहनां आदि ने, की सेवा हर वार।
चूनां को जिससे मिली, चित्त-समाधि उदार ॥५॥

चूना-स्मृति में सुगुरु ने, व्यक्त किये उद्गार।
धन्य-धन्य वे हो गई, करके आत्मोद्धार[४] ॥६॥

१ साध्वीश्री चूनाजी की ससुराल डीडवाना (मारवाड) के डूगरवाल (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर लाडनू के कुचेरिया गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९५९ आश्विन कृष्णा १४ को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम सिरेमलजी, माता का राजां वाई और पति का मांगीलालजी था।

(सा० वि०)

चूनाजी ने पति वियोग के वाद अपनी पुत्री मोहनाजी (९४१) के साथ आचार्यवर कालूगणी के हाथ से सं० १९८९ आषाढ़ शुक्ला १ को लाडनूं मे दीक्षा स्वीकार की।[१] साध्वी सूरजकंवरजी (९४२) 'जयपुर' की दीक्षा भी उनके साथ हुई। दीक्षा स्थानीय इन्द्रचदजी वैगानी के नोहरे मे हुई।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२ साध्वीश्री प्रकृति से सरल, शात और विनम्र थी। सयम-चर्या मे जागरूक रहकर अपने जीवन को निखारने लगी। अक्षर ज्ञान न होने पर भी निरन्तर प्रयत्न करते-करते उन्होने हजारो गाथाएं कठस्थ कर ली—चार प्रकार के पचीस वोल, चरचा, तेरहद्वार, आराधना, चौवीसी, शील की नौ वाड़, २२ परिपह की ढाले, अन्य सैकड़ो गीतिकाएं आदि।

वे यथाशक्य तप-जप, स्वाध्याय करती रहती। उन्होने हजारो उपवास तथा कुछ वेले किये। आठ दिन तक लडीवद्ध तप किया।

३ साध्वीश्री अन्तिम दिनो मे अस्वस्थ रहने लगी। आखिर सं० २०३६ (२०३७ चैत्रादि) द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला ६ को उदासर मे सानंद पडित-मरण प्राप्त कर स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया। उन्होने ४७ साल सयम-पर्याय का

१. निव्वे पावस स्यू पहिला चन्देरी मे,
मां-वेट्या डीडवाण री व्रत-सेरी मे।
चूना, मोहना.................... ।

(कालू० उ० ४ ढा० १६ गा० २)

पालन किया। उनकी कुल आयु ७८ साल की थी।

४. साध्वीश्री मोहनांजी आदि ने सेवा-सुश्रूषा द्वारा उन्हें अच्छा सहयोग दिया। जिससे साध्वी चूनांजी के मन मे पूर्ण समाधि रही।

साध्वीश्री की स्मृति मे आचार्यप्रवर ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा—

"आज उदासर से समाचार आया है कि साध्वी चूनांजी का स्वर्गवास हो गया है। साध्वी चूनांजी साध्वी मोहनांजी (डीडवाना) की संसार-पक्षीया मा थी। वे अधिक पढ़ी लिखी नही थी पर बहुत सरल। उन्होंने कुशलता से अपनी संयम-यात्रा पूरी की। इसकी मेरे मन मे बहुत प्रसन्नता है। उदासर के श्रावक अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग हैं। उन्होंने साध्वियों की बहुत अच्छी सेवा की और कर रहे हैं। दिवंगत आत्मा के प्रति शुभकामना।"

(विज्ञप्ति क्रमांक ४९९)

९४१।८।२१६ साध्वीश्री मोहनांजी (डीडवाना)

(दीक्षा सं० १९८९, वर्तमान)

'६१ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री मोहनाजी का जन्म दौलतपुरा (मारवाड) के डूंगरवाल (ओसवाल) गोत्र मे सं० १९७७ फाल्गुन शुक्ला १४ को हुआ। उनके पिता का नाम मांगीलालजी और माता का चूनाजी था। कुछ वर्षों बाद उनके परिवार वाले डीडवाना बस गये। बालिका जब चार साल की हुई तब उनके पिता का देहान्त हो गया। कुछ समय पश्चात् उनके एक भाई और एक वहिन की भी मृत्यु हो गई। मांगीलालजी आदि चार भाइयो के परिवार मे एक ही संतान बालिका मोहना थी अतः पारिवारिक जन का उन्हे अत्यधिक स्नेह मिला। क्रमश वे बड़ी हुई और माता के साथ साधु-साध्वियों के दर्शन तथा व्याख्यान-श्रवण आदि करने लगी।

वैराग्य—जन्मजात संस्कारो एवं डीडवाना मे विराजित स्थिरवासिनी साध्वीश्री नानूजी (४२२) 'खीचन' एव उनकी सहयोगिनी साध्वीश्री सुखदेवाजी (७८४) 'राजलदेसर' की प्रेरणा से बालिका मोहनां अपनी माता चूनाजी के साथ दीक्षित होने के लिए उद्यत हो गई। उन्होने अपनी भावना प्रकट की तब उनकी दादीजी ने कहा—'मै फूल जैसी सुकुमाल पोती को दीक्षा की अनुमति कैसे दे सकती हूं ! फिर हमारे परिवार मे आंखो की पुतली के समान एक मात्र यही संतान है।' परन्तु जिनका दृढ निश्चय होता है उन्हें कोई नहीं रोक सकता। आखिर उनकी तीव्र भावना देखकर सभी अभिभावक जन सहमत हो गये।

दीक्षा—मोहनाजी ने साधिक बारह साल की अविवाहित वय (नाबालिग) मे अपनी माता चूनाजी के साथ स० १९८९ आषाढ शुक्ला १ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सुजानगढ मे दीक्षा स्वीकार की। साध्वी सूरजकंवरजी (९४२) 'जयपुर' की दीक्षा भी उनके साथ मे हुई। दीक्षा स्थानीय इन्द्रचदजी बैगानी के नोहरे मे हुई।

सहवास—दीक्षित होने के बाद साध्वीश्री मोहनाजी अपनी माता साध्वी चूनाजी सहित एक साल गुरुकुलवास मे रही। फिर पाच साल छापर

मे स्थिरवासिनी साध्वीश्री जड़ावांजी (४८७) 'वोरावड़' के सिंघाड़े में रहकर ज्ञान, कला आदि का विकास किया। कुछ चातुर्मास अन्य सिंघाड़ो के साथ किये।

कंठस्थ—उन्होंने साध्वीश्री जड़ावांजी की सतत प्रेरणा से निम्नोक्त ज्ञान कंठस्थ किया—दशवैकालिक सूत्र, थोकड़े—चार प्रकार के पचीस वोल, चरचा, तेरहद्वार, लघुदंडक, वावनवोल, कायस्थिति, संजया, नियंठा, महादंडक, गुणस्थानद्वार। सस्कृत—भक्तामर, कल्याणमंदिर, सिंदूरप्रकर, शांतसुधारस, देवगुरु स्तोत्र, पंचतीर्थी आदि।

वाचन—लगभग १५,२० सूत्र, कुछ संघीय एवं कुछ अन्य साहित्य का वाचन किया।

कला—सिलाई, रंगाई, रजोहरण, टोकसिया आदि वनाने की कला मे प्रगति की। सं० २०१२ के भिवानी चातुर्मास मे चालीस टोकसियां वनाई और आचार्यप्रवर को भेट की। कई वार एक की जगह दो-दो रजोहरण भेट किये। कई वार जाल व वारीक अक्षरो से अंकित टोकसियां भी तैयार की।[1]

तपस्या—उपवास से पंचोले तक तप किया।

सेवा-साध्वीश्री राजांजी 'गंगाशहर' लगभग ३३ साल साध्वी मोहनाजी के साथ मे रही। साध्वी राजांजी के १८ वर्षो तक कैंसर की वीमारी रही। अतिम सात वर्षो मे उसने उग्र रूप धारण कर लिया। स्तन तथा वगल में वहुत वड़ी गाठ हो गई तथा दोनो गांठों पर अनेक गांठें हो गईं। जिनसे खून व पीप अधिक मात्रा मे गिरने लगा। अन्तिम तीन साल तक उदासर मे रहना पडा। साध्वीश्री मोहनाजी तथा उनकी सहवर्तिनी साध्वी किस्तूरांजी (१२०६) 'सरदारशहर' और गुणश्रीजी (१२२४) 'लाडनूं' ने उनकी अग्लान-भाव से परिचर्या की। जिसने देखा-सुना उसने तेरापंथ की सेवा-प्रणाली की मुक्त कंठो से प्रशंसा की। धर्मसघ की अच्छी प्रभावना हुई। अन्त मे साध्वी राजाजी ११ दिन का चौविहार अनशन करके दिवंगत हो गई। सभी साध्वियों का पूरा-पूरा सहयोग रहा।

(परिचय-पत्र)

विहार—आचार्यश्री तुलसी ने स० २००४ मे साध्वीश्री मोहनांजी

---

१. इन सवमें सहवर्त्तिनी साध्वी गुणश्रीजी (१२२४) 'लाडनूं' एवं किस्तूरांजी (१२०६) 'सरदारशहर' का भी अच्छा सहयोग रहा।

का सिंघाड़ा वनाया। उन्होंने ग्रामानुग्राम विहरण कर धर्म का प्रचार किया और कर रही हैं। सैकड़ों व्यक्तियों को गुरु-धारणा करवाई, सुलभबोधि तथा अणुव्रती बनाये। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है—

सं० २००५	ठाणा	५	वड़ाखेडा
सं० २००६	,,	५	खीवाड़ा
सं० २००७	,,	५	लूनकरणसर
सं० २००८	,,	५	सायरा
सं० २००९	,,	५	वोरियापुर
सं० २०१०	,,	५	लाछुड़ा
सं० २०११	५	५	सिरसा
सं० २०१२	,,	५	भिवानी
सं० २०१३	,,	५	भीनासर
स० २०१४	,,	५	गोगुन्दा
सं० २०१५	,,	५	शाहदा
सं० २०१६	,,	५	भुसावल
सं० २०१७	,,	५	साकरी
सं० २०१८	,,	५	सूरतगढ
सं० २०१९	,,	५	कालू
सं० २०२०	,,	५	झखनावद
सं० २०२१	,,	५	उज्जैन
सं० २०२२	,,	५	सुनाम
सं० २०२३	,,	५	देशनोक
सं० २०२४	,,	३०	लाडनूं (सुन्दरजी (८४५) मोमासर का संयुक्त)
सं० २०२५	,,	५	पुर.
सं० २०२६	,,	६	आमेट
सं० २०२७	,,	६	आसीद
सं० २०२८	,,	५	टापरा
सं० २०२९	,,	५	गंगाशहर
सं० २०३०	,,	५	लूनकरणसर
सं० २०३१	,,	५	तारानगर

सं० २०३२	ठाणा ५	पीपाड़	
सं० २०३३	,, ५	देशनोक	
सं० २०३४	,, ५	नोखा	
सं० २०३५	,,	गंगाशहर	(आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
स० २०३६	,, ६	उदासर	
सं० २०३७	,, ५	,,	
सं० २०३८	,, ६	,,	
सं० २०३९	,, ६	टोहाना	
सं० २०४०	,, ५	हिसार	
सं० २०४१	,, ५	ईड़वा	
सं० २०४२	,, ४	छापर	

(चातुर्मासिक तालिका)

६४२।८।२१७ साध्वीश्री सूरजकंवरजी (जयपुर)

(दीक्षा सं० १९८९, वर्तमान)

'६२वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री सूरजकंवरजी का जन्म जयपुर (राजस्थान) के बांठिया (ओसवाल) परिवार में सं० १९७७ फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को हुआ। उनका नाम माणक रखा गया। उनके पिता का नाम मोतीलालजी और माता का मनसुखी बाई था। दोनो ही अत्यन्त दृढ़धर्मी और तत्त्वज्ञ थे। उनके पांच पुत्रिया तथा पन्नालालजी, धन्नालालजी नाम के दो पुत्र हुए। चार पुत्रियां तेरापथ धर्मसंघ में दीक्षित हो गई।

वैराग्य—बालिका माणक को बचपन से ही चारित्रात्माओ की सेवा का अवसर मिलता रहता। कभी-कभी रात्रि में सतियो के यहां नीद आ जाती और वापस घर जाने के लिए जगाया जाता तो अबोध बालिका सोचती—'यदि मैं भी साध्वी होती तो लोग मेरे पास मे आते और मुझे घर नही जाना पड़ता।' जब किशोरावस्था आने लगी तो लड़कियो को विवाह के पश्चात् विदा होते देखती तो उसे आश्चर्य होता, यह कैसा विचित्र रिवाज है कि एक सर्वथा अपरिचित व्यक्ति के साथ लड़कियां घर छोड़कर चली जाती हैं। इस प्रकार बालिका माणक के हृदय मे चिन्तन चलता।

सं० १९८८ मे साध्वीश्री सुदरजी (लाडनूं) का चातुर्मास फतेहपुर में था। प्रागदीक्षित साध्वीश्री कमलूजी (बड़ी बहिन) उनके साथ मे थी। बालिका माणक अपने घर वालो के साथ साध्वियो की सेवा मे गई। वहां उन्हे देखने के लिए कही बुलाया गया तो उन्होने तत्काल उत्तर देते हुए कहा—'मुझे विवाह करना ही नही है, मैं तो दीक्षा लूगी।' उनके पिता मोतीलालजी तक बात पहुची तो उन्होने पुत्री से कहा—'अभी नही, विवाह के बाद दीक्षा ले लेना।' पर बालिका की भावना प्रबल थी अतः पूज्य कालूगणी चूरू पधारे तब पिताजी के मना करने पर भी उन्होने दीक्षा की प्रार्थना कर दी। उनकी दृढ़-भावना देखकर आचार्यवर ने साधु-प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया। बालिका ने पूर्ण रूप से तैयारी कर ली।

दीक्षा—उन्होने १३ साल की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं०

१९८९ आषाढ शुक्ला १ को साध्वीश्री चूनांजी (९४०) और मोहनांजी (९४१) के साथ आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से लाडनू मे दीक्षा स्वीकार की।[1]

उनकी संसार-पक्षीया बड़ी बहिन साध्वीश्री कमलूजी (८७४) ने सं० १९८३ में, छोटी बहिन साध्वी पानकंवरजी (११२७) और रायकंवरजी (११३१) ने सं० १९९९ मे तथा उनकी मामा की बेटी बहिन साध्वीश्री सुन्दरजी (८०७) लाडनू ने सं० १९७६ मे और धनकवरजी (८२३) ने सं० १९७८ मे दीक्षा स्वीकार की।

साध्वी बनते ही बहिन माणक का नाम 'सूरजकंवर' रखा गया। उस समय संघ में चांदकंवर नाम तो था पर सूरज नाम नहीं था, अतः बड़ी साध्वियों के सुझाव से सूरज नाम दे दिया गया। उसी समय मंत्री मुनि मगनलालजी ने आचार्यश्री कालूगणी से निवेदन किया—'यह तो इसके दादा का नाम है।' इस पर आचार्यवर ने फरमाया—'तब तो और भी ठीक है, यह अपने दादा के नाम को भी अपने नाम के साथ चमकाएगी। इस प्रकार के नामकरण के साथ साध्वी सूरजकंवरजी को गुरुदेव का आशीर्वाद भी प्राप्त हो गया।

सुन्दर सहवास—साध्वी सूरजकंवरजी को दीक्षित होने के बाद तीन साल तक गुरुकुल-वास मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सं० १९९३ से वे साध्वीश्री सुन्दरजी के साथ रही। साध्वीश्री सुन्दरजी धर्मसघ की विशिष्ट साध्वियों मे से एक थी। सैद्धान्तिक ज्ञान, तत्त्वज्ञान, लेखनकला, व्याख्यान कला, रजोहरण बनाना, रंगाई, सिलाई आदि कलाओ में अत्यन्त निष्णात थी। उनके सान्निध्य मे निरन्तर अठारह वर्षों तक रहकर साध्वी सूरजकंवरजी ने ज्ञान, कला आदि मे प्रगति की।

साध्वीश्री सुन्दरजी ने खानदेश, बम्बई, जयसिंहपुर आदि क्षेत्रों की पहली बार यात्रा की तब साध्वी सूरजकंवरजी आदि तीनो बहिनें उनके साथ थी (साध्वीश्री कमलूजी गुरु-सेवा मे थी)। साध्वीश्री सुन्दरजी ने बड़े श्रम से तीनो साध्वियो को पढ़ाया और विविध शिक्षाओं द्वारा उनका विकास किया।

---

१. चूना, मोहनां, जयपुर री सूर्यकुमारी,
कमलू-लघु-भगिनी संयम-श्री स्वीकारी।
(कालू० उ० ४ ढा० १६ गा० २)

कंठस्थ ज्ञान—साध्वीश्री ने हजारों पद्य कंठस्थ किये :—

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग।

संस्कृत—नाममाला, सिन्दूरप्रकर, शांत-सुधारस, श्लोकशतक।

व्याख्यान—रामचरित्र, हरिशचंद्र।

थोकड़े—लगभग ३०।

कला—साध्वीश्री सिलाई-रंगाई आदि कलाओ के साथ लिपिकला में भी निपुण बनी। उन्होने आगम, व्याख्यान तथा संस्कृत ग्रन्थ आदि के हजारों पृष्ठ लिपिवद्ध किये।

तपस्या—उनके द्वारा की गई सं० २०४१ तक की तपस्या इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५
१०००	१०	१०	१	१

साधना—ध्यान, मौन, स्वाध्याय का नियमित क्रम चलता है।

विहार—सं० २०१० मे आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी सूरजकंवरजी को अग्रगण्या बनाया। उन्होंने अनेक प्रांतो मे विहरण कर धार्मिक-प्रचार किया और कर रही है। उल्लासनगर (सिन्धी कैम्प बम्बई) मे सर्वप्रथम चातुर्मास किया। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है—

सं० २०११	ठाणा	५	नोहर
सं० २०१२	,,	४	शार्दूलपुर
सं० २०१३	,,	५	थामला
सं० २०१४	,,	४	पुर
सं० २०१५	,,	५	भगवतगढ
सं० २०१६	,,	५	सवाई माधोपुर
सं० २०१७	,,	५	भिवानी
सं० २०१८	,,	४	काकरोली
सं० २०१९	,,	५	देवगढ
सं० २०२०	,,	५	जयपुर
सं० २०२१	,,	५	बाव
सं० २०२२	,,	४	गोगुन्दा
सं० २०२३	,,	४	थामला

सं० २०२४	ठाणा ४	पेटलावद
सं० २०२५	,, ५	उल्लासनगर (बम्बई)
सं० २०२६	,, ५	कुर्ला (बम्बई)
सं० २०२७	,, ५	उल्लासनगर (बम्बई)
सं० २०२८	,, ५	लुधियाना
सं० २०२९	,, ५	सूरत
सं० २०३०	,, २६	लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' (सा० विजयश्रीजी (९४७) 'रतनगढ़' का संयुक्त)।
सं० २०३१	,, ५	जयपुर
सं० २०३२	,, ४	भीलवाड़ा
सं० २०३३	,, ५	हिसार
सं० २०३४	,, ५	बोरावड़
सं० २०३५	,, ४	ब्यावर
सं० २०३६	,, ५	सी-स्कीम (जयपुर)
सं० २०३७	,, ५	हिसार
सं० २०३८	,, ५	भिवानी
सं० २०३९	,, ५	सिरसा
सं० २०४०	,, ५	जोजावर
सं० २०४१	,, १९	राजलदेसर
सं० २०४२	,, ५	कालू

(चातुर्मासिक तालिका)

आशीर्वाद एवं शिक्षा—समय-समय पर आचार्यप्रवर द्वारा साध्वीश्री सूरजकंवरजी को संदेश और प्रेरक शिक्षा-सूत्र मिलते रहे। उनमें से कुछ निम्नांकित हैं :—

"शिष्या सूरजकंवरजी आदि,

सुखपृच्छा ! थे उल्लासनगर में चौमासो कियो, घणो उपकार कियो। कष्ट घणो पड़्यो पण कोई परवाह नहीं राखी। अबकी बार भी फिर पूरी चेष्टा करणी है।

म्हारी मंगलकामना थांरे साथ है।"

हैदराबाद
११ फरवरी, १९७०

—आचार्य तुलसी

"शिष्या सूरज (जयपुर) !

तुमने चाहा कि मैं तुम्हें कुछ लिखित संदेश दूं और तुमने यह भी कहा कि लिखित संदेश तुम्हे अब तक कभी नही मिला। तो लो, मैं तुम्हें तीन बातें सुझाना चाहता हूं—

१. अपने आप मे हीनता को कभी प्रश्रय मत दो, क्योंकि इस दुनिया में कोई भी पूर्ण नही है और पुरुपार्थ करने मे तुम भी पीछे नही हो फिर निराशा किसलिये ?

२. कपाय-मुक्त जीवन ही जीवन है अतः जब तक कपाय-मुक्त नहीं हो जाओ तब तक पीछा नही छोड़ना है। प्रयत्न करते ही रहना है।

३. मन को संदिग्ध या कुण्ठित मत रखो। कोई भी बात मन में आती है उसे स्पष्ट कर लो। वहम से अपनी मानसिक शक्ति को क्षीण मत करो। अपनी साधना अपने द्वारा ही होगी। प्रामाणिकता से अपने आपको साधती रहो।"

लाडनूं —आचार्य तुलसी

१ अप्रैल, १९७४

(परिचय-पत्र)

६४३।८।२१८ साध्वीश्री सुजाणांजी (मोमासर)

(संयम-पर्याय सं० १९९०, २०४२)

छप्पय

सती सुजानां ने किया वीरवृत्ति का काम।
तप अनशन की चढ़ शिखा लिखा ख्यात में नाम।
लिखा ख्यात में नाम संयमी सदन सझाया।
स्वर्ण-कलश सिरमोर गौर कर ऊर्ध्व चढ़ाया।
फहरा कर अनशन-ध्वजा पहुंची सुरपुर-धाम।
सती सुजानां ने किया वीरवृत्ति का काम ॥१॥

गोत्र नाहटा वंश का हटा न पीछे वंश।
उसी वंश की कुल-वधू वही वीरता-अंश।
वही वीरता-अंश धर्म में परिणति की है।
सुता साथ सानंद राह शिवपुर की ली है।
आकर गुरु की शरण में माना परमाराम[1]।
सती सुजानां ने किया वीरवृत्ति का काम ॥२॥

दोहा

सजनां श्रमणी साथ में, रही साल पच्चीस।
फिर इन्द्रू परिपार्श्व में, संवत्सर चौबीस[2] ॥३॥

छप्पय

बावन वर्षों तक लिया संयम रस का स्वाद।
पौरुष का परिचय दिया करके दूर प्रमाद।
करके दूर प्रमाद सजग चर्या में पल-पल।
सविनय ज्ञानाभ्यास साधना करती निर्मल।
ध्यान, मौन, स्वाध्याय के खोल दिये आयाम[3]।
सती सुजानां ने किया वीरवृत्ति का काम ॥४॥

सोरठा

तपस्विनी अनुरूप, तपः-साधना में लगी।
खड़ा कर दिया स्तूप, अंतिम वर्षों में वड़ा ॥५॥

छप्पय

कर्मचूर तप आदि कर किये कर्म चकचूर।
गंगापुर की भूमि पर लाभ लिया भरपूर[४]।
लाभ लिया भूरपूर आ गई फिर गुरु-गंगा।
अमृत-महोत्सव-दृश्य निहारा वड़ा सुरंगा।
कली-कली उनकी खिली इच्छा फली तमाम।
सती सुजानां नें किया वीरवृत्ति का काम ॥६॥

दोहा

दर्शन सेवा सुगुरु की, कर फूली अत्यंत।
नई शक्ति पाई सती, लाई नया वसंत[५] ॥७॥

छप्पय

आखिर तप-संलेखना कर पाई प्रारंभ।
चौथे दिन पुरुषार्थ भर रोपा अनशन-स्तंभ।
रोपा अनशन-स्तंभ आठ दिवसों का आया।
भावों से उत्तंग रंग तो नया लगाया।
सिद्ध काम सब कर सती चली गई सुर-धाम।
सती सुजानां ने किया वीरवृत्ति का काम ॥८॥

साध्वी इन्द्रू आदि ने रखकर अति उपयोग।
सती सुजानां को दिया सभी तरह सहयोग।
सभी तरह सहयोग मातृ-ऋण पूर्ण चुकाया।
हुए प्रभावित लोग संघ का यश फैलाया।
मुख-मुख पर ध्वनि गूंजती मुख-मुख पर गुण-ग्राम[१]।
सती सुजानां ने किया वीरवृत्ति का काम ॥९॥

दोहा

स्मृति में श्री गुरुदेव ने, व्यक्त किये उद्‌गार।
उनके प्रति शुभ कामना, की है शत-शत वार ॥१०॥

तपस्विनी-इतिहास में, अंकित उनका नाम।
साधुवाद नवरत्न मुनि, देता है सर नाम॥११॥

१. साध्वीश्री सुजानांजी का जन्म राजलदेसर (स्थली) के वैद (ओसवाल) परिवार मे सं० १९६० माघ कृष्णा नवमी को हुआ। उनके पिता का नाम प्रतापमलजी और माता का मौला देवी था। सुजानांजी की अवस्था जब पन्द्रह साल की हुई तब उनका विवाह मोमासर के नाहटा परिवार मे कर दिया गया। उनके पति का नाम खूबचंदजी (छोगमलजी के पुत्र) था। समयान्तर से उनके एक पुत्री हुई जिसका नाम इन्द्रू (वर्तमान में आनंदकुमारी) रखा गया।

सुजानांजी की बचपन से ही धार्मिक अभिरुचि थी फिर राजलदेसर में साध्वी-प्रमुखा जेठांजी का स्थिरवास होने से निरंतर साध्वियो के सम्पर्क का अवसर मिलता रहा। जिससे उन्होने नमस्कार महामत्र से लेकर पचीस बोल, चरचा आदि कंठस्थ कर लिए। त्याग-प्रत्याख्यान की ओर अग्रसर होती रही। त्यागों की सूची इस प्रकार है :—

(क) सात वर्ष की उम्र मे आजीवन पंच तिथियो को रात्रिभोजन एवं हरी सब्जी खाने का त्याग।
(ख) दस वर्ष की उम्र में आजीवन जमीकंद खाने का त्याग।
(ग) पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वस्त्रो की मर्यादा।
(घ) पचीस वर्ष की अवस्था में सर्व सचित्त वस्तु तथा रात्रिभोजन का आजीवन त्याग।
(च) छब्बीस वर्ष की अवस्था में चारों खंद उठा दिये।

विवाह के बाद सुजानांजी अपने पति खूबचंदजी के साथ आसाम (सापट गांव) में रहने लगी। वहां पुत्री इन्द्रू का जन्म हुआ। वे जब पांच साल की हुई तब खूबचदजी का अचानक देहावसान हो गया। सुजानांजी ने उस विपदा को धैर्य से सहन किया और धर्म का आलंबन लिया। तत्पश्चात् वे अपनी पुत्री सहित कभी राजलदेसर और कभी मोमासर रहने लगी। अपने जीवन को साधु-साध्वियो की सेवा मे लगा दिया। त्याग-विराग भावना बढ़ाने लगी। साथ-साथ उनकी पुत्री में भी वैराग्य के अकुर प्रस्फुटित हो गये। मां-पुत्री दोनो पारिवारिक-जन की अनुमति लेकर दीक्षा के लिए दृढ़-

संकल्पित हो गई ।

सुजानांजी ने पचीस वर्ष की अवस्था मे अपनी पुत्री इन्द्रूजी (६४८) के साथ सं० १६८६ कार्तिक कृष्णा ६ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सुजानगढ़ मे दीक्षा स्वीकार की । दीक्षा पनेचंदजी सिंघी के मंदिर में विशाल जन-समूह के बीच हुई । उस दिन कुल आठ दीक्षाएं हुईं—दो भाई, छह बहिनें[1] । उनके नाम इस प्रकार है :—

१. मुनिश्री हजारीमलजी (४६६) सरदारशहर
२. ,, मिलापचंदजी (४६७) बीदासर
३. साध्वीश्री सुजाणांजी (६४३) मोमासर
४. ,, धनकंवरजी (६४४) सरदारशहर
५. ,, रायकंवरजी (६४५) रतनगढ़
६. ,, राजकंवरजी (६४६) नोहर
७. ,, वरजूजी 'विजयश्रीजी' (६४७) रतनगढ़
८. ,, इन्द्रूजी (६४८) मोमासर

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

उनके परिवार की अन्य दीक्षाएं—

१. साध्वीश्री राजांजी (८००) जिठानी, दीक्षा सं० १६७६
२. ,, लिछमांजी (८०१) ननद, दीक्षा सं० १६७६
३. ,, रायकंवरजी (६२८) नानदी, दीक्षा सं० १६८८
४ ,, इन्द्रूजी (६४८) पुत्री, दीक्षा सं० १६६०
५. मुनि नवरत्नमल (५२३) जेठूत, दीक्षा सं० १६६४

---

१. उगणीसैं निव्वैं सुजानगढ़ चोमासे,
दीक्षा है आठ हुई विद कार्तिक मासे ।
धनकवरी जोड़ायत सह स्वयं हजारी,
सेखाणी संत मिलाप महाव्रतधारी ।
मोमासर री इन्द्रू युत मात सुजाणां,
वसुगढ़ री रायकंवर धारी गुरु-आणां ।
वरजू-विजयश्री, नोहर-राजकुमारी,
चौथे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री ॥

(कालू० उ० ४ ढा० १६ गा० २)

६. साध्वीश्री तीजांजी (१०६५) जेठूतरी, दीक्षा सं० १९९६

७. ,, कानकंवरजी (११४३) नानदी, दीक्षा सं० २००० ।

२. दीक्षित होने के वाद साध्वी सुजाणांजी साध्वी इन्द्रूजी सहित दो साल गुरुकुलवास मे रहीं। फिर पूज्य कालूगणी ने साध्वीश्री सजनाजी (८७८) 'वीकानेर' के सिंघाड़े मे भेज दिया । २५ साल तक उनके साथ पूर्ण समाधिस्थ होकर रही । सं० २०१७ मे आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी इन्द्रूजी को अग्रगण्या वना दिया तब से अन्त तक उनके साथ विहार करती रहीं ।

३ .साध्वी सुजानांजी विनय, ज्ञानाराधना एवं साधना के विविध उपक्रमों द्वारा अपने संयमी-जीवन की चमक वढाती रही ।

कंठस्थ ज्ञान—दशवैकालिक (अपूर्ण), पचीस वोल, पाना की चरचा, तेरह-द्वार, लघुदंडक, वावनवोल, इक्कीसद्वार, इक्कतीसद्वार, गतागत, कर्मप्रकृति, संजया, खंडाजोयण, हरखचंदजी स्वामी की चर्चा, भ्रमविध्वंसन की हुंडी, गुणस्थान द्वार आदि ३३ थोकड़े । झीणी चर्चा, नव पदार्थ, अनुकम्पा की चौपाई, आराधना एवं चौवीसी के अतिरिक्त २० व्याख्यान तथा अनेक स्मरणात्मक गीतिकाएं आदि कंठस्थ की । प्रायः ३२ सूत्रो का साध्वियों द्वारा श्रवण किया ।

साधना—

१. सं० १९९९ से आजीवन नवकारसी ।

२. सं० २००७ से ,, दो विगय का वर्जन ।

३. सं० २०१७ से विशेष परिस्थितियो के अतिरिक्त एकांतर तप चालू ।

४. सं० २०१७ से प्रतिदिन दो प्रहर (१ चौविहार, १ तिविहार)।

५. सं० २०१७ से प्रतिदिन तीन-सौ गाथाओं का तथा सं० २०३१ से पांच-सौ गाथाओ का स्वाध्याय ।

६. सं० २०१७ से प्रतिदिन १ घंटा मौन ।

७. सं० २०३१ से प्रतिदिन पांच घंटे मौन ।

८. सं० २०३१ से प्रतिदिन आधा घंटा ध्यान ।

९. सं० २०३१ से २०४० तक प्रति वर्ष एक लाख, ८० हजार गाथाओं का स्वाध्याय किया ।

१०. सं० २०३१ से २०४० तक प्रतिवर्ष २५ लाख, २० हजार पद्यों का जप (सूत्र के सात श्लोकों का) किया ।

११. सं० २०३४ से प्रतिदिन १७ नवकार मंत्र की माला, २ अनुपूर्वी और लोगस्स की एक माला का वज्रासन मे स्मरण किया।

४. साध्वीश्री ने तप का आयाम चालू किया जो क्रमशः सरिता-प्रवाह की तरह् बढ़ता चला गया। उनके जीवन की कुल तपस्या के आंकड़े इस प्रकार हैं :—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१३	१४	१५
५८६६	२०५	८९	३१	२७	३	३	३	२	१	२	१	२	१

तप के कुल दिन ६९७२, जिनके १९ वर्ष, ४ महीने और ११ दिन होते हैं।

साध्वीश्री सुजानांजी साध्वी इन्द्रूजी (आनदकुमारीजी) के साथ सं० २०४० आपाढ़ कृष्णा चतुर्थी को गंगापुर पधारी। गगापुर आगमन के साथ ही उन्होने विशेष तप का क्रम प्रारंभ कर दिया। वि० सं० २०४० आषाढ़ कृष्णा चतुर्थी से वि० सं० २०४२ आषाढ कृष्णा तृतीया तक निम्नोक्त तप किया—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१३	१४	१५
१८१	३७	२४	१७	१३	१	२	२	१	१	१	१	२	१

गंगापुर में कुल २४ महीनो का प्रवास किया जिसमे ५५८ दिन तपस्या के हुए। कर्मचूर तप मे उपवास १२५, बेले ४२, तेले २३, चोले १७, पंचोले १३ और अठाई २ की जाती हैं। साध्वीश्री ने उक्त तप के अन्तर्गत उसे भी प्रायः पूरा कर लिया, केवल पांच बेले अवशेष रहे।

साध्वीश्री पारणे के दिन भी भोजन अल्पमात्रा मे लेती। जिस दिन पारणा करती उस दिन स्वास्थ्य ठीक नही रहता और तपस्या के दिनो मे स्वास्थ्य ठीक हो जाता। उनका मनोबल बड़ा ऊंचा और मजबूत था। जिससे ८२ वर्ष की अवस्था मे भी तपस्या का इतना लम्बा क्रम चल सका।

५. आचार्यश्री तुलसी के शासनकाल का पचासवां वर्ष अमृत-महोत्सव रूप मे मनाया गया। उसके प्रथम चरण का शुभावसर आचार्यश्री तुलसी की पदाभिषेक-भूमि गंगापुर को मिला। प्रथम चरण का मांगलिक दिन था—वि० सं० २०४२ वैशाख शुक्ला ८। आचार्यप्रवर श्रमण-श्रमणी परिवार से गंगापुर पधारे। अमृत-महोत्सव का आयोजन उल्लासमय वातावरण मे संपन्न हुआ।

साध्वीश्री सुजानांजी को भी गुरुदेव के दर्शन एवं सेवा का अभीष्ट

लाभ मिल गया। उनकी उत्कृष्ट अभिलाषा थी वह पूर्ण हो गई। वे आचार्य प्रवर के आशीर्वादमय शब्दो को सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुईं। उन्होने आचार्य-प्रवर के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा-'गुरुदेव! जो मैं तपस्या कर रही हूं वह एकमात्र आपका ही प्रभाव है, आपकी ही शक्ति है। आपकी कृपा से सभी साध्वियां मेरी पूर्ण मनोयोग से परिचर्या करती हैं और सहयोग देती हैं।'

६. वि० सं० २०४२ ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को साध्वीश्री सुजानांजी ने संलेखना-तप प्रारंभ किया। तप के चौथे दिन उनकी आत्मा में एक अपूर्व शक्ति जगी और उन्होने साध्वी आनंदकुमारीजी की तरफ देखा और अनशन करवाने का संकेत किया। साध्वी आनंदकुमारीजी ने उनके मनोभावों को समझ कर ज्येष्ठ शुक्ला ६ को प्रातः ७ बजकर ५ मिनिट पर उनको तिविहार अनशन करा दिया।

अनशन की सूचना सुनते ही अनेक लोग साध्वीश्री के दर्शनार्थ आने लगे[1]। श्रद्धाभावो से नतमस्तक होकर विविध प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान करते। ऊर्ध्वभावो के साथ सानंद अनशन चलता रहा। आठ दिन निकल गये। अंत मे चौविहार संथारा कराया गया। आखिर सं० २०४२ आषाढ कृष्णा तृतीया, बुधवार (५ जून १९८५) को ६ बजकर १५ मिनिट पर साध्वीश्री ने पंडित-मरण प्राप्त कर लिया। ३ दिन संलेखना-तप. ८ दिन का तिविहार एवं दो घटे का चौविहार अनशन आया।

साध्वीश्री आनंदकुमारीजी आदि सभी साध्वियों[2] ने तपस्विनी साध्वी सुजानांजी की बहुत परिचर्या की और पूर्ण रूप से सहयोगिनी रही। साध्वी आनन्दकुमारीजी मातृ-ऋण से उऋण हो गई।

दूसरे दिन उनकी स्मृति-सभा मनाई गई तथा श्रावक-श्राविकाओ ने भी अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि प्रस्तुत की।

७. साध्वीश्री की स्मृति मे आचार्यप्रवर ने अपने उद्‌गार व्यक्त करते

---

(१) केवलचंदजी नाहटा जो कि साध्वीश्री के रिश्तेदार थे, सपरिवार गंगापुर पहुंचे।

(२) १. साध्वीश्री विदामांजी (११००) 'पींपली'
　　२. साध्वीश्री भीखांजी (११११) 'पींपली'
　　३. साध्वीश्री वसुमतीजी (१२५०) 'सरदारशहर'
　　४. साध्वीश्री उज्ज्वलरेखाजी (१४२१) 'सरदारशहर'।

हुए फरमाया—

साध्वीश्री सुजानांजी का आठ दिनो के अनशन से गंगापुर मे स्वर्गवास हो गया। अनशन स्वीकार करने से पूर्व उनके तेले की तपस्या थी। साध्वी सुजानांजी मोमासर की थी। वे अपनी संसार-पक्षीया पुत्री आनदकुमारीजी के साथ दीक्षित हुई थीं। वर्षों से उनके एकांतर-तप चल रहा था। बीच-बीच मे तेले, पंचोले, अठाई जैसी तपस्याएं भी कर लेती थी। अभी जब मैं गंगापुर गया, तब उन्हे दर्शन दिये तो उन्होने कहा—अंतिम अवस्था में मुझे आपके दर्शन हो गये, मैं निहाल हो गई। अब मेरे मन की सारी कामनाएं पूरी हो गई हैं। एक ही कामना अवशेष रही है—संथारा करने की। उनकी यह अंतिम इच्छा भी पूरी हुई और वे अनशन पूर्वक स्वर्गवासी हो गईं। उनके भावी आध्यात्मिक जीवन के प्रति शुभकामना।

(विज्ञप्ति संख्या ७४६)

साध्वीश्री ने लगभग ५२ साल संयम-यात्रा कर एवं अंत मे तप-अनशन द्वारा अपने जीवन को सोने की तरह तपाया और चमकाया। शासन को गौरवान्वित करती हुई इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठो मे अपना नाम अंकित कर दिया।

उक्त अधिकांश विवरण साध्वीश्री आनंदकुमारीजी द्वारा लिखित निबंध के आधार से लिखा गया है।

९४४।८।२१९ साध्वीश्री धनकंवरजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९९०-२०२९)

दोहा

वास शहर सरदार में, श्वसुर-वंश का खास।
दीक्षित हो धनकंवर ने, किया संघ में वास[1] ॥१॥

जीवन भर करती रही, संयम-रस का पान।
चरम लक्ष्य की प्राप्ति का, रखा निरन्तर ध्यान ॥२॥

दो हजार-उनतीस का, आया श्रावण मास।
विदा 'सायरा' से हुई, कर पूरी अभिलाष[2] ॥३॥

१ साध्वीश्री धनकंवरजी की ससुराल सरदारशहर (स्थली) के नाहटा (ओसवाल) गोत्र मे थी। उनका पीहर राजलदेसर के वैद परिवार में था। उनका उन्म सं० १९६९ आषाढ शुक्ला १२ को हुआ। (साध्वी-विवरणिका मे स० १९६६ ज्येष्ठ कृष्णा १० है।)

(ख्यात)

उनके पिता का नाम कालूरामजी, माता का मानाबाई और पति का हजारीमलजी था।

(साध्वी-विवरणिका)

धनकंवरजी ने बाईस साल की सुहागिन वय में अपने पति हजारीमलजी[1] (४९६) के साथ सं० १९९० कार्तिक कृष्णा ९ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से सुजानगढ मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली आठ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री सुजाणांजी (९४३) के प्रकरण में कर दिया गया है।

२. उन्होने उनचालीस वर्ष संयम का पालन कर सं० २०२९ श्रावण महीने में सायरा मे स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया।

(ख्यात)

उस वर्ष साध्वीश्री रूपाजी (९९४) 'लाडनूं' का चातुर्मास सायरा में था।

(चा० ता०)

---

१. हजारीमलजी सं० २०१५ में गण से अलग हो गये।

९४५।८।२२० साध्वीश्री रायकंवरजी (रतनगढ़)

(दीक्षा सं० १९९०, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री रायकंवरजी का जन्म रतननगर (स्थली) के हीरावत (ओसवाल) परिवार मे स० १९७२ द्वितीय वैशाख कृष्णा अष्टमी को हुआ। उनके पिता का नाम धनराजजी और माता का हुलासीबाई था। रायकंवरजी का विवाह रतनगढ़ के बैंद परिवार मे कर दिया गया। उनके पति का नाम महालचंदजी (संतोकचंदजी के पुत्र) था।

वैराग्य—अपनी माताजी की मृत्यु को देखकर रायकंवरजी का मन संसार से विरक्त हो गया।

दीक्षा—रायकंवरजी ने १८ वर्ष की अवस्था मे पति को छोड़कर सं० १९९० कार्तिक कृष्णा ९ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सुजानगढ़ में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली ८ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री सुजाणांजी (९४३) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

साध्वीश्री वरजूजी (विजयश्रीजी) इनकी संसार-पक्षीया ननद हैं जो इनके साथ दीक्षित हुई।

गुरुकुलवास—दीक्षित होने के बाद साध्वी रायकंवरजी को १३ साल गुरुकुलवास मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साध्वी-प्रमुखा झमकूजी की सेवा का भी विशेष अवसर मिला। आचार्यप्रवर का अनुग्रह एव साध्वी-प्रमुखाजी का वात्सल्य पाकर साध्वी रायकंवरजी यथाशक्य ज्ञानार्जन कर विकास की ओर बढती गई।

विहार—सं० २००३ में आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी रायकंवरजी का सिंघाडा बनाया। उन्होने धार्मिक-प्रचार करते हुए निम्नोक्त स्थानो मे चातुर्मास किये—

सं० २००४	ठाणा ५	आषाढ़ा
सं० २००५	,, ५	वणोल
सं० २००६	,, ५	केलवा
सं० २००७	,, ५	फतेहपुर
सं० २००८	,, ५	जावद

स० २००९ ठाणा ५ लाछुड़ा
सं० २०१० ,, ५ गडवोर
सं० २०११ ,, ५ गंगानगर
सं० २०१२ ,, ५ रायसिहनगर
सं० २०१३ ,, ५ झकणावद
सं० २०१४ ,, ५ पेटलावद
सं० २०१५ ,, ४ रतननगर
सं० २०१६ ,, ४ ईड़वा
सं० २०१७ ,, ५ रतलाम
सं० २०१८ ,, ५ आदर्शनगर (सीमेन्ट फेक्टरी)
सं० २०१९ ,, ५ खीवाड़ा
सं० २०२० ,, ५ ध्रांगध्रा
सं० २०२१ ,, ५ वरवाला
सं० २०२२ ,, ४ धुरी
सं० २०२३ ,, ५ वाव
सं० २०२४ ,, ४ देवगढ़
सं० २०२५ ,, ५ उज्जैन
सं० २०२६ ,, ५ ,,
सं० २०२७ ,, ५ ,,
सं० २०२८ ,, ४ जोजावर
सं० २०२९ ,, ४ सोजतरोड़
सं० २०३० ,, ४ ,,
सं० २०३१ ,, ४ सुधरी
सं० २०३२ ,, ४ ब्यावर
सं० २०३३ ,, ६ रतनगढ़ (साध्वी गणेशांजी (९२२) 'लाडनूं' का संयुक्त)
सं० २०३४ ,, ४ वरार
सं० २०३५ ,, ४ सेमड़
सं० २०३६ ,, ४ चूरू
सं० २०३७ ,, ५ टमकोर
सं० २०३८ ,, ४ खीवाड़ा

सं० २०३९	ठाणा ५	रामामंडी
सं० २०४०	,, ५	रामपुराफूल
सं० २०४१	,, २७	लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' (साध्वी धनकंवरजी (१००८) 'सरदारशहर' का संयुक्त
सं० २०४२	,, ४	पाली

(चातुर्मासिक तालिका)

तपस्या—उनके द्वारा की गई सं० २०४१ तक की तपस्या इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५	६	९
२२१५	४५	११	५	३	१	१

संस्मरण

स्मरण की महिमा—(१) साध्वीश्री सं० २००९ का चातुर्मास करने के लिए केलवा जा रही थीं। मार्ग में जोजावर की घाटी पड़ती है। घाटी इतनी डरावनी थी कि देखते ही साध्वियों के दिल मे कंपन-सा हो गया। धीरे-धीरे आगे बढी तो एक शेर का छोटा बच्चा सामने आकर खडा हो गया। उसे लांघकर जाना कठिन हो गया। साध्वियां वही पर खडी-खडी भिक्षु-स्वामी के नाम का जाप करने लगी। जप मे वे इतनी एकाग्र हो गईं कि शेर का बच्चा कब और किधर गया, इसका पता भी नही चला।

(२) साध्वीश्री सं० २०१७ का चातुर्मास करने रतलाम जा रही थी। रास्ते मे आकीया नामक गाव मे ठहरी। रात्रि मे अचानक चार डाकू साध्वियो के स्थान पर आकर खड़े हो गये। सभी साध्वियो ने साहस बटोर कर भिक्षु स्वामी का स्मरण करना शुरू कर दिया। डाकू लूट-खसोट या अन्य उपद्रव करने के लिए आये थे पर स्वामीजी के प्रभाव से वे न तो कमरे मे प्रवेश कर सके और न किसी प्रकार का उपद्रव। सुबह होते ही डाकू चले गये और साध्वियो ने सानन्द विहार कर दिया।

वास्तव मे श्रद्धापूर्वक अपने इष्टदेव के स्मरण से संकट स्वतः दूर हो जाता है।

६४७।८।२२२ साध्वीश्री विजयश्रीजी (रतनगढ़)

(दीक्षा सं० १६६०, वर्तमान)

'६४ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री विजयश्रीजी (मूल नाम वरजूजी) का जन्म रतनगढ़ (स्थली) के वैद (ओसवाल) परिवार मे सं० १६७८ फाल्गुन शुक्ला तृतीया को हुआ। उनके पिता का नाम संतोपचंदजी और माता का लच्छी बाई था।

वैराग्य—संसार-पक्षीया भाभी रायकंवरजी द्वारा विरक्ति की बातें सुनकर विजयश्रीजी की भी दीक्षा लेने की भावना हो गई।

दीक्षा—उन्होने बारह वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १६६० कार्तिक कृष्णा ६ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा सुजानगढ में दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली ८ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री सुजानांजी (६४३) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

इनकी संसारपक्षीया भाभी साध्वी रायकंवरजी (६४५) की दीक्षा भी इनके साथ मे हुई।

गुरुकुलवास—साध्वीश्री को दीक्षित होने के बाद २४ साल गुरुकुल-वास में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

शिक्षा—साध्वीश्री ने शिक्षा के क्षेत्र मे प्रगति करते हुए निम्नोक्त आगम, ग्रन्थ आदि कंठस्थ किये।

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन (कुछ अध्ययन), बृहत्कल्प।

संस्कृत—कालुकौमुदी, अष्टाध्यायी, अभिधानचिंतामणि कोप, भक्तामर, कल्याणमंदिर, सिन्दूरप्रकर, शांतसुधारस, षड्दर्शनसमुच्चय, रत्नाकर पच्चीसी, अन्ययोग-व्यवच्छेदिका, परमात्मद्वात्रिंशिका, कर्त्तव्यपट्त्रिंशिका आदि।

व्याख्यान—रामचरित्र, अग्निपरीक्षा, समता का समंदर आदि।

साध्वीश्री को संस्कृत व्याकरण की विशेप रुचि थी, जिसका अच्छा ज्ञान किया। योग्य तीन वर्ष तथा योग्यतर प्रथम वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण की।

वाचन—३२ सूत्रों का एकवार तथा कई सूत्रों का अनेक वार वाचन किया। भिक्षुग्रंथरत्नाकर, भ्रमविध्वंसन, सद्धर्ममंडन, संदेहविषौषधि, आचार्य-चरितावली, एकला चलो रे, प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा आदि पुस्तकों का वाचन किया।

दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, सूत्रकृतांग आदि आगमों की संस्कृत-टीकाएं, दर्शन एवं काव्य ग्रंथ पढ़े।

शिक्षा-व्यवस्थापिका—एक साल (सं० २०१६) शिक्षाकेन्द्र की व्यवस्थापिका रहकर साध्वियो को संस्कृत, व्याकरण आदि पढाने का कार्य किया।

कला—साध्वीश्री ने लेखनकला, सिलाई-रंगाई तथा बुनाई आदि कार्यों में दक्षता प्राप्त की।

प्रतिलिपि—भिक्षुशब्दानुशासन की लघुवृत्ति, अष्टाध्यायी, जैन-सिद्धांत दीपिका तथा भिक्षुन्यायकर्णिका, शैक्षशिक्षा आदि के लगभग दो हजार पृष्ठ लिपिवद्ध किये।

पुरस्कृत—सं० २००१ माघ शुक्ला ६ को सुजानगढ़ मे साधु-साध्वियों की गोष्ठी मे आचार्यप्रवर ने साध्वीश्री को दशवैकालिक, नाममाला, कालू-कौमुदी और अष्टाध्यायी कंठस्थ कर पाने पर तीन हजार गाथाओं से पुरस्कृत किया।

समय-समय पर और भी गाथाएं आदि वख्शीश की। एक वार एक रजोहरण वख्शीश किया।

विहार—सं० २०१० मे आचार्यश्री तुलसी ने साध्वीश्री विजयश्रीजी को अग्रगण्या वनाया। उन्होंने निकट-दूर प्रान्तो में विहरण कर धर्म का प्रचार-प्रसार किया और कर रही है। अव तक लगभग ३६ हजार किलो-मीटर की यात्रा हो चुकी है। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार हैं—

सं० २०११	ठाणा ४	माटुगा (वम्वई)
सं० २०१२	,, ५	भुसावल
सं० २०१३	,,	सरदारशहर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०१४	,,	सुजानगढ़ (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०१५	,, ६	छापर (खूमाजी (७००) लाडनूं का संयुक्त)

सं० २०१७	ठाणा १०	हांसी (साध्वी नोजांजी (७६१) 'सरदारशहर' का संयुक्त)
सं० २०१८	,, ५	गंगापुर
सं० २०१६	,, ५	राणावास
सं० २०२०	,, ५	जोधपुर
सं० २०२१	,, १६	गंगाशहर 'शिक्षाकेन्द्र'
सं० २०२२	,, ५	भिवानी
सं० २०२३	,, ५	उदयपुर
सं० २०२४	,, ४	घाटकोपर
सं० २०२५	,, ४	जयसिंहपुर
सं० २०२६	,, ५	मद्रास
सं० २०२७	,, ५	वीड
सं० २०२८	,, ५	वालोतरा
सं० २०२६	,, १०	रतनगढ़
सं० २०३०	,, २६	लाडनू 'सेवाकेन्द्र' (सूरजकुमारीजी (६४२) 'जयपुर' का सयुक्त)
सं० २०३१	,, ४	जोधपुर
सं० २०३२	,, ५	वाव
सं० २०३३	,, ५	नाभा
सं० २०३४	,, ५	संगरूर
सं० २०३५	,, ५	पटियाला
सं० २०३६	,, ५	आमेट
सं० २०३७	,, ५	नाथद्वारा
सं० २०३८	,, ५	सवाईमाधोपुर
सं० २०३६	,, ५	अजमेर (महावीर कोलोनी)
सं० २०४०	,, ५	लावा सरदारगढ़
सं० २०४१	,, ५	रतनगढ़
सं० २०४२	,, ५	भिवानी

(चातुर्मासिक तालिका)

तपस्या—सं० २०४१ तक उनके तप की तालिका इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	८
४६१	७	२	१	१	१

साधना—स्वाध्याय, ध्यान और मौन का यथाशक्य क्रम चलता है।

संस्मरण

जिधर से आया उधर चला गया—साध्वीश्री महाराष्ट्र की यात्रा सम्पन्न कर मध्यप्रदेश की ओर विहार करती हुई आ रही थी। रास्ते में लगभग १७-१८ किलोमीटर का जंगल था। बीच में ठहरने का समुचित स्थान नहीं था। विहार लम्बा होने के कारण सेवार्थी लोग गाड़ी द्वारा अगली मंजिल पर पहुंच चुके थे। कासीद बूढ़ा होने के कारण पीछे रह गया था। पांचों साध्वियां अपनी गति से आगे बढ़ीं तो जंगल की भयंकरता नजर आने लगी। झाड़ियों और पहाड़ियों से आकीर्ण मार्ग मे सिर्फ सड़क के सिवाय इधर-उधर कुछ भी दिखाई नही दे रहा था। अचानक दाईं ओर से झाड़ियों को चीर कर एक हिंसक जानवर सामने आया। उसकी अपलक नजर साध्वियो पर पड़ी। साध्वी विजयश्रीजी ने भी उसको देखा। संकट की घड़ियां समझकर सभी साध्वियो ने भिक्षु स्वामी का स्मरण कर आगे कदम बढ़ाये। कुछ क्षणो बाद वापस मुड़कर देखा तो वह जानवर उसी जगह खड़ा-खड़ा साध्वियों की तरफ देख रहा है। थोड़ी देर बाद पुनः देखा तो वह जिधर से आया था उधर ही जाता हुआ दिखाई दिया। साध्वियां सकुशल अपने गंतव्य स्थान पर पहुंच गईं।

स्थान मिल गया—साध्वीश्री शिमला (हिमाचल प्रदेश) की यात्रा कर रही थी। एक दिन उन्हें विहार कर शिमला जाना था पर लगभग ११, १२ मील तक शिमला की सड़क के आस-पास कोई वस्ती नहीं थी। सिर्फ ६, ७ मील पर एक बहुत बड़ी होटल थी, जिसके एक कमरे का दैनिक किराया दो सौ रुपये था। लम्बा विहार न कर सकने के कारण पांचों साध्वियां वहां पहुंचीं। साथ मे एक कासीद था। साध्वियो ने ठहरने के लिए स्थान मांगा तब वहां के मैनेजर साहब बिलकुल इनकार हो गये। उन्होंने कहा—'बिना किराये स्थान नही दे सकते। फिर ऊपर कोई ऑफिसर आ जाये तो हमारे मुसीबत हो सकती है। मेरे पास व्यक्तिगत केवल एक कमरा है, जिसमे हमारी फैमेली रहती है। अतः यहां आपके ठहरने की व्यवस्था संभव नहीं है।'

साध्वियों ने उसी क्षण स्वामीजी के नाम का स्मरण कर उन्हें आचार्यश्री तुलसी एवं अणुव्रत-आंदोलन की जानकारी दी। तब रवैया बदलते हुए मैनेजर साहब बोले—'क्या वे आचार्यश्री तुलसी, जिनकी बहुत बार अखबारों में अणुव्रत-विषयक चर्चा पढ़ने को मिलती है?'

साध्वियां—हां।

मैनेजर—अच्छा, आप उनकी शिष्याएं हैं?

साध्वियां—हां।

मैनेजर—तब तो आप आराम से ठहरिये। एक दिन हम तो बाहर ही बैठ जायेंगे।

साध्वियां वहां सानंद ठहर गईं। फिर उनसे काफी वार्तालाप हुआ। साध्वियों ने कलात्मक वस्तुएं दिखाईं और तेरापंथ की गतिविधि से उन्हें अवगत किया। वे बहुत प्रभावित हुए। आने वाले व्यक्तियों को भी साध्वियों से सम्पर्क करने की प्रेरणा देते रहे। दूसरे दिन साध्वियां विहार करने लगीं तब उन्होंने निवेदन किया—'पुनः आते समय आपको यहीं ठहरना होगा।'

यह आचार्यश्री के व्यापक दृष्टिकोण का ही प्रभाव था, जिससे साध्वियों को सहजतया स्थान मिल गया।

(परिचय-पत्र)

९४८।८।२२३ साध्वीश्री आनन्दकुमारीजी (मोमासर)

(दीक्षा सं० १९९०, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री इन्द्रूजी का जन्म मोमासर (स्थली) के नाहटा (ओसवाल) परिवार में सं० १९७९ मृगसर शुक्ला १३ को हुआ। उनके पिता का नाम खूबचन्दजी (छोगमलजी के पुत्र) और माता का सुजानांजी था। बालिका क्रमशः किशोरावस्था को प्राप्त हुई।

वैराग्य—सं० १९८६ मे साध्वीश्री भूरांजी (३७८) 'लाडनूं' राजलदेसर पधारीं। उनके साथ साध्वीश्री लिछमांजी (८०१) 'मोमासर' थी, जो बालिका इन्द्रा की संसार-पक्षीया बुआ थी। उस समय बालिका ने जब उनके दर्शन किए तब साध्वीश्री ने प्रतिबोध देते हुए बालिका को दीक्षित होने के लिए प्रेरित किया, पर बालिका ने सिर हिलाते हुए बिलकुल इनकार कर दिया। उसके बाद तो दीक्षा के नाम से ही बालिका के मन में इतना भय बैठ गया कि उसने साध्वियों के स्थान पर जाना भी बन्द कर दिया।

जन्मान्तर के संस्कार समय आने पर ही परिपक्व होते है। कुछ समय बीता कि एकाएक बालिका की भावना मे परिवर्तन आ गया। एक दिन बालिका ने पड़ोस के मकान में करुण कोलाहल सुना। पूछने पर पता चला कि कुछ ही महीने पूर्व जिस बहिन की शादी की गई थी उसके पति का देहान्त हो गया, जिससे वह वैधव्य दशा को प्राप्त हो गई। सारा परिवार शोक-संतप्त होकर रुदन मचा रहा है।

बालिका को संसार की नश्वरता का बोध हुआ और साध्वी लिछमांजी द्वारा दिया गया उपदेश स्मृतिगत हो गया। मन मे दीक्षा की भावना उभरने लगी। फिर माता सुजानांजी (जो पहले से विरक्त थी) द्वारा सारी गति-विधि जानकर तात्त्विक जानकारी प्राप्त की और उनके साथ सयम लेने के लिए संकल्पबद्ध हो गई।

दीक्षा—इन्द्रूजी (वर्तमान में आनन्दकुमारीजी) ने ११ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) मे अपनी माता सुजानाजी (९४३) के साथ सं० १९९० कार्त्तिक कृष्णा ९ को आचार्यश्री कालूगणी के कर कमलों से सुजानगढ मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली ८ दीक्षाओं का वर्णन

साध्वीश्री सुजानांजी के प्रकरण में कर दिया गया है। पारिवारिक दीक्षाओं का विवरण भी वहां दे दिया गया है।

शांत सहवास—साध्वी इन्द्रूजी दीक्षित होने के बाद साध्वी सुजानाजी सहित एक साल गुरुकुल-वास मे रही। फिर सं० १९९२ से २०१७ तक साध्वीश्री सजनांजी (८७८) 'बीकानेर' के सिंघाडे मे रहकर अपने जीवन को विकसित किया। साध्वी सजनांजी द्वारा बाल साध्वी इन्द्रूजी को अच्छे संस्कार मिले। वे साधु-चर्या मे रत रहकर ज्ञान-ध्यान एवं कला आदि में प्रगति करने लगी। कुछ वर्षो बाद उनके सिंघाड़े का व्याख्यान आदि का कार्य भी संभाल लिया।

कंठस्थ ज्ञान—साध्वीश्री ने क्रमशः हजारो पद्य कंठस्थ कर लिए :—

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन (अपूर्ण), वृहत्कल्प, नंदी।

तात्त्विक—पच्चीसबोल तीन प्रकार के, पाना की चर्चा, तेरहद्वार, लघुदण्डक, बावनबोल, इक्कीसद्वार, कर्म प्रकृति, संजया, नियंठा, गुणस्थानद्वार, भ्रमविध्वंसन की हुंडी आदि।

संस्कृत—कालुकौमुदी (पूर्वार्द्ध), जैनसिद्धान्तदीपिका, भक्तामर, कल्याणमन्दिर, सिन्दूरप्रकर, शांत-सुधारस, शिक्षा-षण्णवति, कर्त्तव्यषट्त्रिंशिका आदि।

व्याख्यान—रामचरित्र, अग्नि-परीक्षा, मुनिपत, आषाढ़भूति, आषाढ मुनि, चन्द्रसेन-चद्रावती आदि।

इनके अतिरिक्त आराधना, चौबीसी, शील की नौ बाड़, उत्तराध्ययन की जोड़ की १० गीतिकाएं याद की।

विहार—आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी आनन्दकुमारीजी का सं २०१७ मे सिंघाड़ा बनाया। उन्होने ग्रामानुग्राम विहारकर कर जन-जन को धार्मिक उद्बोधन दिया और दे रही है। लगभग २८ हजार किलोमीटर की यात्रा की। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार हैं—

सं० २०१८	ठाणा ७	आमेट
सं० २०१९	,, ५	उज्जैन
सं० २०२०	,, ५	पेटलावद
सं० २०२१	,, ८	रतनगढ
सं० २०२२	,, ४	विष्णुगढ

सं० २०२३	ठाणा	८	जसोल (साध्वी पारवतांजी (७८६) बीदासर का संयुक्त)
सं० २०२४	,,	५	बाडमेर
सं० २०२५	,,	५	बालोतरा
सं० २०२६	,,	५	ब्यावर
सं० २०२७	,,	५	टाडगढ
सं० २०२८	,,		लाडनूं (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २०२९	,,	५	टोहाना
सं० २०३०	,,		हिसार (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०३१	,,	५	हांसी
सं० २०३२	,,	५	शार्दूलपुर
सं० २०३३	,,	५	चाड़वास
सं० २०३४	,,		बीदासर 'समाधिकेन्द्र'[1]
सं० २०३५	,,		,, 'समाधिकेन्द्र'[2]
सं० २०३६	,,	६	सरदारगढ़
सं० २०३७	,,	६	देवगढ़
सं० २०३८	,,	५	पाली
सं० २०३९	,,	५	केलवा
सं० २०४०	,,	६	गंगापुर
सं० २०४१	,,	६	,,
सं० २०४२			आमेट (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)

(चातुर्मासिक तालिका)

तपस्या—सं० २०४२ तक उनकी तपस्या इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५
८१३	१६	९	२	१

। दसप्रत्याख्यान दो बार, अढ़ाई--

---

१. व्यवस्थापिका साध्वी सोहनकुमारीजी (१११५) 'छापर' थी।
२. ,, साध्वी संघमित्राजी (११७०) 'श्रीडूंगरगढ़' थी।

सौ प्रत्याख्यान एक वार । आयम्बिल के तेले २१, एकासन लगभग एक सौ ।

साधना—वे वीस वर्षों से प्रतिदिन आधा घंटा ध्यान, १ घंटा मौन तथा तीन-सौ से एक हजार गाथाओ तक का स्वाध्याय करती हैं । ४३ वर्षों से प्रतिदिन नवकारसी तथा प्रतिमास मौन सहित एक उपवास करती हैं ।

सेवा—घोर तपस्विनी साध्वीश्री भूरांजी (३७८) 'लाडनूं' की महाभद्रोतर तप के समय आमेट में १३ महीने सेवा की ।

स्थविर साध्वीश्री प्रतापांजी(७८६)'वीदासर', साध्वी नानूजी (८६०) 'सरदारशहर' तथा रुग्ण साध्वी सूरजकंवरजी (११६०) 'शार्दूलपुर' की जसोल में १४ महीने एवं रुग्ण साध्वी संतोकांजी (६२०) 'सरदारशहर' की रतनगढ़ मे ६ महीने परिचर्या की।

दैविक उपद्रव—साध्वीश्री सजनांजी ने स० २००२ का चातुर्मास देशनोक में किया । साध्वी इन्द्रूजी उनके साथ में थी । देशनोक से चार मील दूर रासीसर में साध्वीश्री तखतांजी (६२३) 'वम्वू' का चातुर्मास था । चातुर्मास मे साध्वी सजनांजी कई वार रासीसर गई पर साध्वी इन्द्रूजी को साथ नही ले गईं । इसका कारण था कि उन्हें प्रात.कालीन व्याख्यान देना पड़ता था । कार्त्तिक महीने मे साध्वी सजनांजी रासीसर गईं तव साध्वी तखतांजी ने कहा—'अव चातुर्मास पूरा होने जा रहा है अतः नानकी (इन्द्रूजी) को एक वार तो रासीसर भेज दो ।' साध्वी सजनांजी हां भरकर वापस देशनोक लौट आई । संयोग ऐसा मिला कि एक दिन सुवह होते ही देशनोक का नाहटा परिवार बैलगाड़ी द्वारा रासीसर के लिए रवाना हुआ । उन्होने भी साध्वी इन्द्रूजी को रासीसर भेजने के लिए कहा । साध्वी सजनांजी ने साध्वी इन्द्रूजी को आदेश दे दिया । साध्वी इन्द्रूजी साध्वी पन्नांजी (१०५२) 'राजलदेसर' को साथ लेकर रासीसर के लिए रवाना हो गई । जैसे ही स्थान से वाहर पैर रखा तो एक भाई ने मारवाड़ी भाषा मे कहा—'आप कठे पधारो हो ?' साध्वीश्री क्षण भर रुककर वोली—रासीसर । भाई—'क्या आप अकेली हो, कोई भाई सेवा मे नही है ?' साध्वीश्री—'मैं रास्ता जानती हूं, फिर भी तुम सेवा करना चाहो तो कर सकते हो?' भाई—'मैं तो अभी कार्यवश नही आ सकता, अन्य किसी को भेज दूगा ।' वह भाई चला गया । कुछ देर इन्तजार करने पर भी जव कोई भाई नही आया तव दोनो साध्वियो ने रेल के रास्ते से रासीसर की ओर प्रस्थान कर दिया । साध्वियां शीघ्र गति से चल रही थी लेकिन बैलगाड़ी उनकी नजर मे नही आ रही थी । आखिर

पता चला कि बैलगाड़ी जाने का रास्ता दूसरा है और यह दूसरा।

रासीसर लगभग डेढ-मील दूर रहा तव रास्ते में अचानक साध्वी इन्द्रूजी को पृष्ठ भाग की ओर से एक भैंस के वच्चे के चिल्लाने की आवाज सुनाई दी। साध्वी इन्द्रूजी ने तत्काल पीछे की तरफ मुह किया तो उनके सामने एक भयंकर साप दौड़ा और आकाश मे उछला। सांप चमकीला सिन्दूरी रंग में काले धव्वे वाला, खूव मोटा और लम्वा था। देखते-देखते वह वापस जमीन पर आ गया। फिर साध्वीश्री की तरफ दौड़ा और छलाग भरी। साध्वीश्री ने देखा यह तो मेरे ऊपर ही आ रहा है तो इसकी दौड के आगे हम कितनी दूर जा सकेंगी अतः यहा रुक जाना अच्छा है।

साध्वीश्री इन्द्रूजी साध्वी पन्नाजी सहित पटरी के वाहर 'भिक्षु-भिक्षु, अरिहन्त-अरिहन्त' दो शब्दों का स्मरण करती हुई सांप की ओर मुंह करके खडी हो गई। तीसरी छलांग मे नाग निकट आया और साध्वीश्री के सामने फण करके विलकुल नजदीक वैठ गया। साध्वीश्री जप में तल्लीन थी। वह भी उनकी तरफ टकटकी लगाये देख रहा था। कुछ समय तक यहीं स्थिति रही। फिर साध्वी पन्नांजी ने साध्वी इन्द्रूजी को पीछे से चलने के लिए सकेत किया। तव सांप को मंगल पाठ आदि सुनाकर वे आगे रवाना हो गईं।

कुछ दूर तक वह सांप वैसे ही बैठा हुआ दिखाई दिया, फिर आखो से ओझल हो गया। साध्वियो के पैर शिथिल हो गये और चलने की गति धीमी पड़ गई। आखिर चलते-चलते लगभग १२ वजे रासीसर पहुंची। साध्वी इन्द्रूजी को वहुत तेज बुखार भी हो गया। साध्वी तखतांजी आदि ने आंगतुक साध्वियो का स्वागत किया। दो घंटे रासीसर मे ठहरकर लगभग २ वजे वहां से विहार कर दिया। सूर्यास्त के पहले-पहले दोनो साध्वियां सानंद देशनोक पहुंच गईं। वाद मे उक्त घटना की चर्चा की तव पता चला कि यह दैविक उपद्रव था। जप के प्रभाव से सब संकट दूर हो गया।

(परिचय-पत्र)

६४६।८।२२४ साध्वीश्री मीरांजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९९१-२०३६)

लय—लूंटा कर लंका रो राज....

जवर किया 'मीरां' ने काम, जीत लिया भारी संग्राम।
तप-अनशन की अद्‌भुत छटा लगाई। मीरां श्रमणी की....
मुख-मुख पर महिमा छाई है, जय-विजय ध्वजा फहराई है॥१॥

पिता 'कुंभ' मां चोखां बाई, घर में चार बहिन छह भाई।
ज्ञातृ-भूमि सरदारशहर कहलाई। मीरां....॥२॥

लघुवय में कर दिया विवाह, ली पति ने परभव की राह।
मनो-मनोरथ सबही हुए हवाई। मीरां....॥३॥

हुआ धर्म की तरफ झुकाव, जिससे भरे दुःख के घाव।
मुनि सतियों से सुन्दर शिक्षा पाई। मीरां....॥४॥

सामायिक पौषध उपवास, तप-जप करके भरा प्रकाश।
सोलह दिन तक क्रमशः लड़ी बनाई। मीरां....॥५॥

चला हृदय मे विरति-प्रवाह, ग्रहण किया संयम सोत्साह।
शहर जोधपुर में अभिनव छवि छाई[१]। मीरां....॥६॥

साधु-क्रिया में रम हरवार, लगी खींचने तन से सार।
सरल स्वभाव भाव-उज्ज्वलता लाई। मीरां....॥७॥

सतियों सह बहु चातुर्मास, फिर चंदेरी में स्थिरवास।
सेवाकेन्द्र प्रमुख की आब बढ़ाई। मीरां....॥८॥

तप का है लम्बा अधिकार, आयम्बिल तप का विस्तार।
तेरह मासी तक की शिखा चढ़ाई। मीरां....॥९॥

ध्यान, मौन, स्वाध्याय व जाप, करती नियमित अपने आप।
सुकृत-सुधा-संचय में शक्ति लगाई[२]। मीरां....॥१०॥

तप-अनशन कर आखिरकार, वढ़ी भावना से दिलदार।
तिरपन दिन तक अनशन अलख जगाई। मीरां…. ॥११॥

पाया आराधक पद खास, स्वर्ग-सदन में किया निवास।
श्रावण सित तेरस शुभ तिथि आई। मीरां…. ॥१२॥

मालू, कमला का सहयोग, चांद, पान आदिक का योग।
सतियों ने मिल सेवा सभी सवाई। मीरां…. ॥१३॥

मिला मुझे भी कुछ-कुछ लाभ, लिख पाया मै नई किताब।
तपोधनी मुनि सतियों की स्तुति गाई[१]। मीरां…. ॥१४॥

शासन है वीरों (हीरों) की खान, पीठ थापते सुगुरु प्रधान।
समय-समय पर बजती है शहनाई[६] मीरां…. ॥१५॥

१. साध्वीश्री मीराजी का जन्म सं० १९५७[१] ज्येष्ठ शुक्ला १४ को सरदारशहर (स्थली) के पुगलिया (ओसवाल) परिवार मे हुआ। उनके पिता का नाम कुभकरणजी और माता का चोखी बाई था। मीराजी के छह भाई और तीन बहिने थी। मीराजी का विवाह छोटी उम्र मे ही सरदारशहर निवासी जयचंदलालजी डागा के साथ कर दिया गया। विधि का योग बड़ा विचित्र होता है, जिससे विवाह के दो महीने बाद ही उनके सुहाग का चिन्ह खत्म हो गया। उनके दिल में बड़ा आघात लगा पर काल के आगे किसी का वश चल नही सकता। उन्होने साध्वियो का सम्पर्क कर उनसे उद्‌वोधन प्राप्त किया और अपना मन धर्म-ध्यान मे लगाया। वे प्रतिदिन साधु-साध्वियो के दर्शन, सामायिक, नियमित उपवास, पौषध तथा स्वाध्याय-जाप मे सलग्न रहकर अपना जीवन बिताने लगी। तपस्या मे विशेष रुचि रखती। उन्होने उपवास से १६ दिन तक क्रमबद्ध तप किया तथा एक वार कर्मचूर किया।

मीरांजी जब युवावस्था को प्राप्त हुई तब उनका मन संसार से विरक्त हो गया। उन्होने अपने पारिवारिक-जन से स्वीकृति प्राप्त कर पूज्य

१. इनका जन्म-संवत् पुस्तक मे सं० १९४७, ख्यात मे १९६७ और साध्वी-विवरणिका मे १९५७ है। ख्यात मे ३४ साल की अवस्था मे दीक्षित होने से साध्वी-विवरणिका मे उल्लिखित संवत् १९५७ यथार्थ लगता है।

कालूगणी के सम्मुख दीक्षा के लिए निवेदन किया। आचार्यप्रवर ने वैराग्य की प्रवल भावना देखकर उन्हें दीक्षा की अनुमति प्रदान कर दी।

(पुस्तक के आधार से)

मीरांजी ने ३४ साल की अवस्था मे सं० १९९१ कार्त्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा जोधपुर मे दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा-समारोह सरदार स्कूल के विशाल मैदान मे हुआ। दर्शक लोगो की उपस्थिति लगभग पन्द्रह हजार थी। उस दिन कुल २२ दीक्षाएं हुईं। ६ भाई, १६ वहिने। सोलह वहिनो मे १० कुमारी कन्याए, २ सुहागिन (पति को छोड़कर) और ४ विवाहित (पति वियोग के वाद) थी।

वहां विपक्षी लोगो ने वाल-दीक्षा के लिए पुर-जोर विरोध किया पर आचार्यवर कालूगणी के वर्चस्वी प्रभाव से दीक्षाएं सानंद सम्पन्न हो गईं।[1]

तेरापंथ मे एक साथ वाईस दीक्षा होने का वह सर्वप्रथम अवसर था जिससे चतुर्विध धर्मसघ मे नया उल्लास उमड रहा था। सभी पूज्यपाद कालूगणी की भाग्यशीलता का उल्लेख करते हुए हर्षोत्फुल्ल हो रहे थे। २२ दीक्षाओ की सूची इस प्रकार है[2] :—

---

१. विस्तृत वर्णन पढ़े—कालूयशोविलास उ० ६ ढा० ६, ७ मे।

२. एकाणू पावस जबर झंड जोधाणै,
दीक्षा वाईस हुई मोटै मडाणै।
हस्ती समदड़ी, 'जाली' हरियाणे रो,
मोहन सुजान, चम्पक पड़िहार वसेरो।
वच्छावत चाड़वास रो नेमू निरखो,
मोती कुचेरियो चन्देरी रो परखो।
छव सत शेष सोलह संख्या सतिया री,
चोथे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री॥
मीरां, गोरांजी, पूनां, पानकंवारी,
मग्घू, छगनांजी, रायकवारी, भारी।
सातू सरदारशहर की सतियां सोहै,
गिरिगढ की गोगां, उदियापुर की जो है—
लिछमांजी, इक सन्तोकां जनमी हासी,
सन्तोकां, सूरज, रतन राजगढ़वासी।

१. मुनिश्री हस्तीमलजी (५००) समदड़ी
२. „ जालीरामजी (५०१) मोठ
३. „ मोहनलालजी (५०२) सुजानगढ
४. „ चम्पालालजी (५०३) पडिहारा
५. „ नेमीचंदजी (५०४) चाड़वास
६. „ मोतीलालजी (५०५) लाडनूं
७. साध्वीश्री मीराजी (६४६) सरदारशहर
८. „ गोगांजी (६५०) श्रीडूंगरगढ़
९. „ गोरांजी (६५१) सरदारशहर
१०. „ पूनांजी (६५२) सरदारशहर
११. „ पानकंवरजी (६५३) „
१२. „ मघूजी (६५४) „
१३. „ लिछमांजी (६५५) उदयपुर
१४. „ संतोकांजी (६५६) हांसी
१५. „ रतनकवरजी (६५७) राजगढ़
१६. „ वखतावरजी (६५८) गंगाशहर
१७. „ मानकंवरजी (६५९) वीदासर
१८. „ संतोकांजी (६६०) राजगढ़
१९. „ छगनांजी (मंजूश्रीजी) (६६१) सरदारशहर
२०. „ मोहनांजी (६६२) टमकोर
२१. „ रायकंवरजी (६६३) सरदारशहर
२२. „ सूरजकंवरजी (६६४) राजगढ़

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वीश्री मीरांजी दीक्षित होने के पश्चात् दो साल आचार्यश्री कालूगणी की सेवा मे रही। फिर साध्वीश्री सुखदेवांजी (७८४) 'राजलदेसर' के सिंघाड़े में रहकर तप-स्वाध्याय आदि का अभ्यास करती रही। वे

वखतावर और मोहनां मानकंवारी,
चोथे उल्लासे सुणो ख्यात दीक्षा री ॥
एक साथ वाईस, उपर्युक्त दीक्षित किया।
कालू शासण-ईश, नूतन वात शताब्दि मे ॥
(कालू० उ० ४ ढा० १६ गा० ५,६ सो० ७)

स्वभाव से सरल, शांत और मृदु थी। वृद्धावस्था प्राप्त होने पर उन्होंने सं० २०१७ से लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' में स्थायीवास कर दिया। वहां आने के वाद वे विशेष रूप से तप, स्वाध्याय, ध्यान, मौन और जप मे संलग्न होकर संयमी-जीवन मे निखार लाने लगी। उनकी सं० १९९१ से २०२३ तक की तप की सूची इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	७	८
८५५	२८८	७५	५१	२२	१	२

। तप के कुल दिन १२९२, जिनके ३ वर्ष, ७ महीने, २ दिन होते हैं।

साध्वीश्री आयम्बिल-तप मे प्रविष्ट होकर क्रमशः आगे वढ़ती रही। उनके सं० २०१७ से २०२२ तक के आयम्बिल-तप का विवरण इस प्रकार है—

कर्मचूर	मासखमण	दोमासी	चारमासी	छहमासी	तेरहमासी
१	१	१	१	१	१

आयम्बिल-तप के कुल दिन १२०७ हुए। इस प्रकार के आयम्बिल-तप[1] का तेरापंथ मे प्रथम कीर्त्तिमान था।

सं० २०१७ में लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' की चाकरी मे साध्वीश्री गुलावांजी (८६९) 'भादरा' थी। उस समय साध्वी मीराजी ने आयम्बिल-तप का क्रम चालू किया जो सं० २०२३ तक चला। सं० २०२३ मे साध्वी पानकंवरजी (८६४) 'पचपदरा' और सोनांजी (८७७) 'डीडवाणा' चाकरी मे थी। उस समय उन्होने आयम्बिल-तप की तेरहमासी की। प्रारंभ मे उनका विचार तेरहमासी का नही था। पर आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त पत्र[2] मिला एवं उसे पढ़ा तव एकाएक भावना वढ़ गई। छुपी हुई आत्मा की अपूर्व शक्ति जागृत हो

---

(१) आयम्विल का तात्पर्य है कि दिन मे एक वार एक धान्य के सिवाय नही खाना। चाहे गेहूं, चावल, वाजरा, चना आदि का वना हुआ किसी भी प्रकार का द्रव्य हो, सिर्फ पानी और एक प्रकार के द्रव्य के अतिरिक्त कुछ नही खाना।

(२) "शिष्या मीराजी स्यूं सुखसाता वंचे। थे आयंविल तप कर रह्या हो वहुत अच्छी वात है। छहमासी आगैं करी ही। अवकी वार साता रेवैं तो आगे चालू राखीज्यो। चित्त-समाधि स्यूं रहीज्यो।"

सं० २०२२ आषाढ़ शुक्ला १३ वीदासर —आचार्य तुलसी

उठी। उन्होने दृढ आस्था के साथ अपने आयम्बिल-तप का क्रम चालू रखा और तेरहमासी संपन्न की।

साध्वीश्री ने केवल आयम्बिल-तप ही नहीं वल्कि उसके साथ अनवरत स्वाध्याय, ध्यान, मौन और जप का क्रम भी चालू रखा। उसका लेखा-जोखा निम्न प्रकार है :—

स्वाध्याय—प्रतिदिन ४ घंटे स्वाध्याय, कुल १३ महीनों मे १५६० घंटो का स्वाध्याय हुआ। प्रतिदिन पाच-सौ गाथाओं का स्वाध्याय (पुनरावर्तन), कुल १३ महीनों मे एक लाख, ९५ हजार गाथाओं का स्वाध्याय हुआ।

ध्यान—प्रतिदिन ३ घंटे ध्यान, कुल तेरह महीनों में ११८५ घंटों का ध्यान किया।

जप—तेरह महीनो मे सवा लाख का जप किया।

मौन—प्रतिदिन १३ घंटे मौन रखा। कुल तेरह महीनो में ४१३५ घंटों का मौन हुआ।

सं० २०२४ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को तेरहमासी आयविल-तप सपन्न हुआ। सेवाकेन्द्र में नियुक्त साध्वी सुंदरजी (८४५) 'मोमासर' और मोहनांजी (९४१) 'डीडवाणा' के हाथ से पारणा किया। उस उपलक्ष मे लाडनूं में स्थित साध्वियो तथा श्रावक-श्राविकाओं ने जो तप किया उसकी कुल सूची इस प्रकार है :—

आयम्बिल तप—

उपवास	२	३	४	५	६	८
६३१	८६	५०	२५	२०	१	१

। कुल दिन ११६७ हुए।

तप—

उपवास	२	३	४
१६५	४	२	१

। कुल दिन १८३ हुए।

उस दिन वीदासर, छापर तथा सुजानगढ से १० साध्वियां लाडनूं आईं। अनेक भाई-वहिनो ने भी तपस्विनी साध्वी के दर्शन किये।

वीदासर से आने वाली साध्वियो के साथ साध्वी-प्रमुखा लाडांजी ने साध्वी मीरांजी को एक पत्र भेजा। उसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है :—

"तपस्विनी साध्वी मीरांजी !"

घणी-घणी सुखपृच्छा। थे सुखसाता स्यूं आछी तरह पारणे पर साधना अच्छी राखीज्यो। चित्त समाधि स्यूं रहीज्यो।

म्हारी पारणे पर आणै री इच्छा तो घणी है पण माजी महाराज आण ही कोनी देवै और मैं आंने छोड़ आ ही कोनी सकूं।

मीरांजी ! थांरो नाम मीरां है, विस्या ही थे वण्या वणाया सागीड़ा मीरां ही हो, जो इयांकली तपस्या कर शासन री नींव मजबूत कर रह्या हो।

गुरुदेव रै प्रताप स्यूं थांरी भावना और तपस्या सफल हुसी और इयां ही तपस्या रै नीर स्यूं शासन री नीव सीचता रहीज्यो।

'सर्व वडा सत्यां स्यूं वन्दना तथा छोटा सत्यां स्यूं सुख-पृच्छा ज्ञात हो।' शेप कुशल

सं० २०२४ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी

'साध्वी प्रमुखा लाड'

(तपस्विनी साध्वी मीरांजी की जीवन झांकी पुस्तक के आधार से)

३. स० २०३६ (चैत्रादि क्रम से) आषाढ़ कृष्णा पंचमी को साध्वी मीराजी ने अपने पास की कुछ छुटपुट सामग्री साध्वियो को संभलाते हुए कहा—'अब मेरी तपस्या करने की प्रवल उत्कंठा है। मैं कल से अन्तिम संलेखना प्रारभ करना चाहती हूं।' इस दृढतम संकल्प व निर्णय के साथ उन्होंने सेवाकेन्द्र में नियुक्त साध्वी मालूजी (१०६४) 'चूरू' की अनुमति लेकर आपाढ कृष्णा छठ से उपवास प्रारंभ कर दिया। छठ तिथि चुनने का तात्पर्य था कि उस दिन साध्वी-प्रमुखा झमकूजी (७०३) की स्वर्गवास-तिथि थी। साध्वीश्री झमकूजी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। संभवत: उन्हें कोई आभास मिला हो तो भी आश्चर्य नही।

धीरे-धीरे वर्धमान भावना के साथ दिन निकलने लगे। फिर तो उनकी आजीवन अनशन करने की प्रवल इच्छा हो गई। आचार्यप्रवर से आदेश भी प्राप्त कर लिया। आखिर तप के तेईसवे दिन साध्वी मालूजी व कमलश्रीजी (१२४३) 'विष्णुगढ़' द्वारा आमंत्रित करने पर मैं (मुनि नवरत्न) साधुओ के साथ साध्वियो के स्थान पर गया। उनकी उत्कट भावना देखकर तथा अच्छी तरह पूछ-ताछ कर साधु-साध्वी एव श्रावक-श्राविकाओ के समक्ष उन्हे विधिवत्

अनशन करवा दिया। वह दिन २०३६ आपाढ़ शुक्ला १३ और वार शनिश्चर था।

साध्वी मीरांजी अमित उत्साह और पुरुषार्थ के साथ अनशन में जूंझती रही। भावो की श्रेणी वृद्धिगत होती रही। आत्मालोचन, क्षमायाचना एवं महाव्रतो का श्रवण कर आत्म-समाधि में रमण करने लगीं। साध्वियो ने आराधना आदि गीतिकाओ को सुनाने का नियमित क्रम चालू रखा। आचार्यप्रवर द्वारा आदेश प्राप्त होने से समय-समय पर मैं भी उन्हें सुनाने के लिए जाता। मैंने उस समय उन्हें सुनाने के लिए आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्य तुलसी तक विशेप तप तथा संथारा करने वाले साधु-साध्वियो की पद्यात्मक नौ लड़िया बनानी प्रारंभ की। संथारा ३१ दिनो तक चला तब तक तथा कुछ बाद मे उन लड़ियो को पूर्ण रूप से तैयार कर जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। जिनका पद्य-परिमाण अनुमानतः आठ-सौ, नौ-सौ हो गया। एक पुस्तक के रूप में तैयार हो गई।[1]

आखिर २२ दिन के तप एवं ३१ दिन के तिविहार अनशन से सं० २०३६ श्रावण शुक्ला १३ को पूर्ण सचेतावस्था मे उनका स्वर्गवास हो गया। अन्त मे उन्हे दो घंटे का चौविहार संथारा आया। संथारे मे कई दिनों तक उनके भयंकर उदर-व्यथा तथा दस्तो का उत्पात रहा। परन्तु उनकी सहनशीलता, समता एवं मानसिक प्रसन्नता उल्लेखनीय थी।

साध्वीश्री मालूजी, कमलश्रीजी तथा उनकी सहयोगिनी साध्वी पानकवरजी (१०६०) 'लाडनूं' और चादकंवरजी (६८६) 'हांसी' आदि ने उनकी भूरि-भूरि परिचर्या कर समाधि-मरण मे अच्छा सहयोग दिया।

४. आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी मीरांजी के उपलक्ष मे निम्नोक्त विचार तथा सोरठा व्यक्त किया—

'साध्वी मीरांजी हमारे धर्मसंघ की एक विशिष्ट तपस्विनी साध्वी थी। उन्होने तेरह मास तक आयंबिल की विशिष्ट तपस्या करके एक कीर्त्तिमान स्थापित किया। वे लाडनू मे स्थिरवासिनी थी। वहां भी तपस्या का क्रम चालू था। अत मे वे शरीर के प्रति सर्वथा अनासक्त हो गई। उन्होने कहा—'लोग मौत से घबराते हैं और मै मौत का मुकाबला करना चाहती हूं।' साध्वी मीराजी ने अनशन शुरू कर दिया। ५३ दिनो तक

---

१. पुस्तक का नाम है—'निर्वाण की खोज' जो कजोड़ीमल वोहरा (आमेट) द्वारा प्रकाशित की गई है।

उनका अनशन चला। परिणाम बहुत ऊंचे रहे। अत्यंत शुभ परिणामों के साथ साध्वी मीरांजी का स्वर्गवास हुआ। दिवंगत तपस्विनी साध्वी के भावी जीवन के प्रति शुभकामना।

सेवाकेन्द्र, शिक्षाकेन्द्र की साध्वियां और विशेषकर मुनि नवरत्नमलजी ने अनशन के समय स्वाध्याय का जो क्रम चलाया, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(विज्ञप्ति क्रमांक ४६०)

मीरां सती महान, तप अनशन तिरपन दिवस।
गण में कीरतिमान, तेरह माह आंबिल किया॥

(विज्ञप्ति क्रमांक ४६१)

९५०।८।२२५ साध्वीश्री गोगांजी (श्रीडूंगरगढ़)

(दीक्षा सं० १९९१, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री गोगांजी का जन्म मोमासर (स्थली) के कुहाड़ (ओसवाल) गोत्र में सं० १९६७ (साध्वी विवरणिका मे सं० १९६८ भाद्रव शुक्ला ९ है) में हुआ। उनके पिता का नाम हीरालालजी और माता का किस्तूरांजी था। गोगांजी का विवाह श्रीडूंगरगढ़ के झावक परिवार में हुआ। उनके पति का नाम भीखणचंदजी था।

दीक्षा—गोगांजी ने पति वियोग के वाद सं० १९९१ कार्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से जोधपुर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री मीरांजी (९४९) के प्रकरण में कर दिया गया है।

साध्वी गोगांजी अनेक वर्षों तक साध्वीश्री सिरेकंवरजी (८६२) 'श्रीडूंगरगढ़' के साथ विहार करती रही। सं० २०४० से वृद्धावस्था के कारण लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' में स्थिरवास कर रही है। यथाशक्य तप, जप स्वाध्याय आदि करती है।

(परिचय-पत्र)

९५१।८।२२६ साध्वीश्री गौरांजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९९१, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री गौरांजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के बोथरा (ओसवाल) परिवार मे सं० १९६७ भाद्रव कृष्णा ९ को हुआ। उनके पिता का नाम फतेहचंदजी और माता का धाईवाई था। यथासमय गौरांजी का विवाह सरदारशहर मे ही सोहनलालजी (जोरावरमलजी के पुत्र) सुराणा के साथ कर दिया गया।

दीक्षा—गौरांजी ने पति वियोग के वाद २४ वर्ष की अवस्था मे सं० १९९१ कार्त्तिक कृष्णा ९ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा जोधपुर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन २२ दीक्षाएं हुईं, जिनका वर्णन साध्वीश्री मीरांजी (९४९) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सहवास—साध्वी गौरांजी दीक्षित होने के वाद ४५ साल तक साध्वीश्री जुहारांजी (८६०) 'मोमासर' के सिंघाड़े मे जम कर रही। अंत तक उनकी अच्छी सेवा-सुश्रूषा की। सं० २०३८ से वे लाडनू 'सेवाकेन्द्र में स्थिरवास कर रही है।

तपस्या—वे यथाशक्य स्वाध्याय, जप तथा तप करती रहती है। उनके सं० २०४१ तक की तप. तालिका इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८
२७२५	१५१	३५	२७	१०	२	१	३

। धर्मचक्र तप १ वार, दसप्रत्याख्यान ४५ वार।

उन्होने गृहस्थावास मे भी काफी तप किया।

(परिचय-पत्र)

९५२।८।२२७ साध्वीश्री पूनांजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९९१, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री पूनांजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के डागा (ओसवाल) परिवार में सं० १९७० (ख्यात) (साध्वी विवरणिका में सं० १९६९ कार्त्तिक शुक्ला २ है)। उनके पिता का नाम सुजाणमलजी और माता का हुलासी बाई था। पूनांजी का विवाह सरदारशहर में ही मोहनलालजी (चुन्नीलालजी के पुत्र) श्यामसुखा के साथ कर दिया गया।

वैराग्य—पूनांजी छह साल सुहागिन अवस्था में रही। तत्पश्चात् पति का देहान्त होने पर उनका मन संसार से विरक्त हो गया। उन्हीं दिनों कई पारिवारिक व्यक्तियों की मृत्यु देखकर वैराग्य भावना और अधिक बढ़ गई।

दीक्षा—उन्होने २१ साल की अवस्था में सं० १९९१ कार्त्तिक कृष्णा ९ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा जोधपुर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री मीरांजी (९४९) 'सरदारशहर' के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सहवास—साध्वीश्री पूनांजी दीक्षित होने के बाद दो साल गुरुकुल-वास में रही। फिर सहयोगिनी रूप में सिंघाड़बंध साध्वियों के साथ विहार करती रहीं। सं० २०३७ से राजलदेसर में स्थिरवास कर रही हैं। इससे पूर्व कुछ वर्षो तक लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' में रही थीं।

कंठस्थ ज्ञान—उन्होंने दशवैकालिक, १३ थोकड़े तथा रामचरित्र आदि कई व्याख्यान कंठस्थ किए।

तपस्यादिक—उन्होंने सं० २०४१ तक निम्न प्रकार तप किया—

उपवास	२	३	४	५	
२७००	१५	१३	४	२	तथा एक बार अढ़ाई-सौ प्रत्याख्यान।

शीतकाल में सात साल तक एक पछेवड़ी में रहकर शीत सहन किया। स्वाध्याय-ध्यान तथा मौन का प्रतिदिन नियमित क्रम चलता है।

(परिचय-पत्र)

६५३।८।२२८ साध्वीश्री पानकंवरजी (सरदारशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९९१-२०१९)

छप्पय

पानकुमारी ने लिया तार विरति से जोड़।
यौवन-वय में रमण का संग दिया है छोड़।
संग दिया है छोड़ शहर सरदार-निवासी।
थे दोनों परिवार धर्म में दृढ़ विश्वासी।
नवति-एक की साल में की संयम में दौड़[१]।
पानकुमारी ने लिया तार विरति से जोड़ ॥१॥

वत्सर अट्ठाईस तक चला साधना-यंत्र।
तप-जप आदिक का पढ़ा शुद्ध भाव से मंत्र[२]।
शुद्ध भाव से मंत्र लाभ वांछित मिल पाया।
दो हजार-उन्नीस महीना कार्त्तिक आया।
रोम-रोम विकसित हुए साढ़े तीन करोड़।
पानकुमारी ने लिया तार विरति से जोड़[३] ॥२॥

१. साध्वीश्री पानकंवरजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के बोथरा (ओसवाल) गोत्र मे सं० १९७३ भाद्रव कृष्णा तृतीया (सा० वि० मे भाद्रव शुक्ला तृतीया) को हुआ। उनके पिता का नाम तनसुखदासजी था। पानकंवरजी का विवाह सरदारशहर मे ही करणीदानजी दफ्तरी के पुत्र ऋद्धकरणजी के साथ सं० १९८५ में कर दिया गया।

(ख्यात, साध्वी विवरणिका)

साधु-साध्वियो के हृदयोद्बोधक उपदेशो से पानकंवरजी के दिल में विरति की लौ प्रज्वलित हो उठी। विवाह के चार साल बाद ही सं० १९८९ में उन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार कर लिया। एक साल बाद दीक्षा के लिए अनुनय करने पर आचार्यवर कालूगणी ने उन्हें साधु-प्रतिक्रमण सीखने का आदेश दे दिया।

२ साध्वी पानकंवरजी दीक्षित होने के बाद तीन साल गुरुकुलवास मे रही। फिर आचार्यवर ने उन्हें साध्वीश्री आशांजी (८०३) 'राजलदेसर' के सिंघाड़े में भेज दिया। उनके सान्निध्य में लगभग २५ साल तक शांत-सुखद सहवास किया।

वे हिम्मत वाली साध्वी थी। उनमे सेवा और अध्ययन की प्रबल भावना थी। यथाशक्य तप, स्वाध्याय आदि का अभ्यास कर अपनी आत्मा को उज्ज्वल बनाया। उनके तप की तालिका इस प्रकार है—

उपवास	२	५	४
६७५	२०	३	२

(ख्यात)

३. सं० २०१६ कार्त्तिक कृष्णा २ को रामसिंहजी का गुड़ा मे उनका स्वर्गवास हो गया।

(ख्यात)

साध्वी-विवरणिका मे स्वर्गवास-तिथि कार्त्तिक कृष्णा १४ है।

६५४।८।२२६ साध्वीश्री मघूजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १६६१, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री मघूजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के लूनिया (ओसवाल) परिवार में सं० १६७२ कार्त्तिक कृष्णा १० (ख्यात मे कृष्णा ११) को हुआ। उनके पिता का नाम शोभाचंदजी और माता का लूनी देवी था। मघूजी आदि छह बहनें और चार भाई थे। मघूजी १३ साल की हुई तब उनका विवाह सरदारशहर के दूगड़ परिवार मे सं० १६८५ माघ कृष्णा ७ को कर दिया गया। उनके पति का नाम सोहनलालजी (चुन्नीलालजी के सात पुत्रों मे पांचवें पुत्र) था।

वैराग्य—सं० १६८६ मे अष्टमाचार्यश्री कालूगणी का चातुर्मास सरदारशहर मे था। रात्रिकालीन प्रवचन मे गुरुदेव रामचरित्र का वाचन करते थे। मघूजी भी व्याख्यान सुनने जाया करती थी। व्याख्यान के अन्तर्गत राम द्वारा सीता के परित्याग का प्रसंग सुना तो उनके दिल मे वैराग्य की लहर उमड़ पड़ी। उन्होंने सांसारिक सुख-सयोगो की नश्वरता को समझा और दीक्षा के लिए दृढ़ संकल्प कर लिया। साधना का क्रम चालू करते हुए चारो स्कंधों का परित्याग कर दिया। पारिवारिक जन से दीक्षा की आज्ञा मांगी तब उनके पति सोहनलालजी रोक-थाम करने लगे। भय दिखाते हुए दो-तीन दिन तक खाना भी नही खाया। पर मघूजी अपने विचारो पर अटल थी, जिससे शीघ्र ही पति की स्वीकृति मिल गई। उनके श्वसुर चुन्नीलालजी का पूरा-पूरा सहयोग रहा। आचार्यवर कालूगणी से निवेदन करने पर साधु-प्रतिक्रमण सीखने का तथा दीक्षा का आदेश प्राप्त हो गया। बड़ी धूमधाम से दीक्षा-महोत्सव मनाया गया।

दीक्षा—मघूजी ने १८ वर्ष की सुहागिन अवस्था में पति, सास, ससुर, देवर, जेठ, देरानिया-जेठानिया आदि विपुल परिवार को छोड़कर बड़े वैराग्य से स० १६६१ कार्त्तिक कृष्णा ८ को पूज्य कालूगणी के हाथ से जोधपुर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री मीरांजी (६४६) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सुखद-सहवास—साध्वीश्री मघूजी को दीक्षित होने के बाद पांच साल

तक गुरुकुलवास मे रहने का सौभाग्य मिला । फिर लगभग २३ साल साध्वीश्री कमलूजी (८४०) 'राजलदेसर' के तथा १६ साल साध्वीश्री भीखांजी (१०३०) 'सरदारशहर' के सिंघाड़े मे पूर्ण समाधिपूर्वक रही । ६ वर्षों से मोमासर में स्थिरवासिनी साध्वीश्री संतोकांजी (८१८) 'लाडनूं' के साथ में हैं ।

वे संयम में दत्तावधान होकर विनय, सेवा, ज्ञान और कला के क्षेत्र में निरंतर आगे बढ़ती रहीं ।

कंठस्थ ज्ञान—उन्होने क्रमशः प्रयत्न करते-करते निम्नोक्त हजारों पद्य कंठस्थ कर लिये :—

आगम—दशवैकालिक ।

थोकड़े आदि—तीन प्रकार के २५ बोल, चर्चा, तेरहद्वार, लघुदंडक, बावनबोल, कर्मप्रकृति, गतागत, इक्कीसद्वार, संजया, नियंठा, महादंडक, ज्योतिष्चक्र, गमा, हरखचंदजी स्वामी कीचर्चा, हेमराजजी स्वामी के पच्चीस बोल, पांच ज्ञान तथा पदवी का थोकड़ा, भावों का बासठिया, सौ बोल, भ्रमविध्वंसन, उत्तराध्ययन के दसवें अध्ययन की जोड़ ।

व्याख्यानादि—रामचरित्र, धनजी, मुनिपत, शालीभद्र आदि । चौबीसी, आराधना, शील की नौ वाड़, औपदेशिक तथा स्मरणात्मक लगभग २०० गीतिकाएं ।

संस्कृत—भक्तामर, शांत-सुधारस, देवगुरु स्तोत्र, रत्नाकर पच्चीसो, महावीर स्तोत्र, पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि कई स्तोत्र तथा कई अष्टक ।

कला—साध्वीश्री सिलाई-रंगाई तथा रजोहरण, मुखवस्त्रिका, टोकसिया आदि वस्तु निर्माण की कला में प्रवीण हुई । सैकड़ो टोकसियां बनाकर एवं रंग-रोगन कर तैयार की । प्लास्टिक व चंदन की लकड़ी की कई चीजें बनाई—खरल, आईग्लास, चम्मच आदि ।

तपस्या—उनके द्वारा की गई सं० २०४१ तक की तपः तालिका इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	६	७	८	६	१०	१५
२३६१	२०२	७७	१५	२	२	२	१	१	३

अढाई-सौ प्रत्याख्यान	दसप्रत्याख्यान	तीर्थंकरो की लड़ियां	कंठीतप
१	१३	१	१

त्रिपिटक तप	धर्मचक्रावली तप	आयम्बिल	एकासन
१	१	५३	५१

गृहस्थावास मे भी उन्होने काफी तपस्या की :—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८
६००	२५	१८	५	६	२	२	१

। अढ़ाई-सौ प्रत्याख्यान दो वार तथा दस-प्रत्याख्यान ७ वार ।

साधना—साध्वीश्री प्रतिदिन ७०० गाथाओ का स्वाध्याय, एक घंटा ध्यान (२५ सूत्र की गाथाओ का अर्थ सहित चिंतन) तथा तीन घंटे मौन करती है। प्रत्येक महीने मे एक दिन पूरा मौन रखती है।

वाचन—आगम-बत्तीसी का दो वार वाचन किया । कई व्याख्यान तथा ऐतिहासिक ग्रंथ पढ़े ।

सेवा—(क) साध्वीश्री कमलूजी (राजलदेसर) के १८ वर्षो तक कैंसर की वीमारी रही। अंतिम वर्षो मे उसने भयंकर रूप ले लिया। साध्वी मघूजी ने उनकी वड़ी तत्परता से परिचर्या की, जिससे साध्वी कमलूजी को अत्यधिक समाधि मिली ।

(ख) सं० १६६५ के सरदारशहर चातुर्मास मे साध्वी लिछमांजी (६०६) 'सरदारशहर' के टी० बी० की बीमारी मे दस्तों का कारण बहुत रहा। उनकी चार महीनों तक सेवा की ।

सं० २०३३ मे साध्वी कानकवरजी (१०८५) 'लाडनू' ने सुजानगढ़ के हॉस्पिटल मे घुटने की हड्डी का इलाज कराया तब साध्वी भीखाजी (१०३०) 'सरदारशहर' के साथ मघूजी ने ४० दिन तक उनकी सेवा की।

(ग) सं० १६६३ मे साध्वी सूरजकंवरजी (६६४) 'राजगढ' को व्यावर से सुजानगढ तक उठाकर लाया गया ।

स० १६६७ मे साध्वीश्री सजनांजी की सहवर्तिनी साध्वी भमकूजी (८६१) 'सरदारशहर' को दिमाग की खरावी होने पर नीम्वी से लाडनू तक उठाकर लाया गया ।

सं० २०२१ मे साध्वी दीपाजी (८३०) 'सिरसा' की सहयोगिनी

साध्वी मोहनांजी (६६२) 'टमकोर' को खारची से पाली तक उठाकर लाया गया।

सं० २०३१ साध्वी लाधूजी (८६८) 'सरदारशहर' संतोकांजी (६२०) 'सरदारशहर' को सरदारशहर से बीदासर तक साधन द्वारा पहुंचाया गया।

सं० २०३५ मे मोहनांजी (६४१) 'डीडवाना' की सहवर्तिनी साध्वी राजांजी (१०६६) 'गंगाशहर' और चूनांजी (६४०) 'डीडवाना' को नोखा से भीनासर तक साधना द्वारा पहुंचाया गया।

इन सबमे अन्य साध्वियों के साथ साध्वी मधूजी का भी विशेष सहयोग रहा।

(घ) साध्वी जयकंवरजी (१२६१) 'छोटी खाटू' के गले की गांठ का तथा साध्वी चौथाजी (६१८) 'गंगाशहर' के पैर की एडी का ऑपरेशन किया।

संस्मरण

हाथ में रत्न—सं० १६६१ भाद्रव शुक्ला चतुर्दशी के दिन मधूजी के उपवास था। रात्रि के समय वे मां के पास छत पर सो रही थी। पश्चिम रात्रि मे उन्हे एक स्वप्न में महिला के रूप मे एक देवी दिखाई दी। मधूजी ने पूछा—'तुम कौन हो'? वह बोली—'मैं देवी हूं, तुम्हें रत्न दे रही हूं, दाहिना हाथ आगे बढाओ।' तब मधूजी ने हाथ आगे कर दिया। देवी ने सफेद चमकीला बहुमूल्य रत्न हाथ मे रख दिया और कहा—'मुट्ठी बंद कर लो।' मधूजी ने प्रश्न किया—'इसका मूल्य कितना है।' देवी ने उत्तर दिया—'नौ करोड़ से अधिक।' इतने में मधूजी की मां ने उठने की आवाज दी कि मधूजी की आखे खुल गई।

संयोग ऐसा मिला कि भाद्रव शुक्ला १५ को जोधपुर में आचार्यश्री कालूगणी ने मधूजी को दीक्षा का आदेश दे दिया[1]। जिसकी सूचना टेलीग्राम द्वारा सरदारशहर पहुंची। तब मधूजी ने अपनी मां को उक्त स्वप्न की बात बतलाई। मां ने कहा—'बेटी! तुम्हारे हाथ मे संयम रूपी रत्न आ गया है।' इस प्रकार स्वप्न यथार्थ हो गया।

अंतिम आहार चावल—सुजानगढ़ की घटना है। सं० २०१६ वैशाख

---

१. सं० १६६० आश्विन शुक्ला दसमी को साधु-प्रतिक्रमण सीखने का आदेश मिल गया था।

शुक्ला १० को दोपहर मे तीन बजे साध्वी मघूजी साध्वीश्री कमलूजी (चूरू) के पास सोयी हुई थी। स्वप्न में उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो साध्वी कमलूजी उनको कह रही है—'बाई ! मै तो अब रवाना हो रही हूं, मुझे थोड़े से चावल लाकर खिला दो।' फिर आवाज आई—'मैं तो जा रही हूं, तुम अच्छी तरह रहना।' इतने मे साध्वी मघूजी की आंखे खुल गई। तुरन्त उठकर देखा तो साध्वी कमलूजी पास मे सोयी हुई हैं। मघूजी ने स्वप्न की बात साध्वी भीखांजी (सरदारशहर) को भी बतला दी।

शाम को साध्वी पानकंवरजी (१०२७) 'सरदारशहर' गोचरी गई पर गोचरी में खिचड़ी नहीं मिली। उन्होने वापस आकर साध्वी मघूजी से कहा—'आज तो खिचड़ी नही मिली।' साध्वी कमलूजी प्रायः खिचड़ी लेती थी। मघूजी बोली—'थोड़े से चावल ले आओ।' साध्वी पानकंवरजी चावल ले आई। मघूजी ने थोड़े से चावलो मे घी और चीनी मिलाकर एक कवल साध्वी कमलूजी के मुंह मे दिया। दूसरा कवल देने लगी तो उन्होंने मना कर दिया।

दूसरे दिन साढ़े दस बजे साध्वी कमलूजी अनशन कर साढे बारह बजे दिवंगत हो गई। इस प्रकार साध्वी कमलूजी का अंतिम आहार चावल ही रहा और साध्वी मघूजी का स्वप्न सत्य हो गया।

अज्ञात आवाज—साध्वी मघूजी मोमासर मे स्थिरवासिनी साध्वीश्री संतोकांजी के साथ मे थी। सं० २०३८ पौष कृष्णा ६ को मध्याह्न के समय भोजराजजी संचेती ने साध्वियो के स्थान पर जाकर कहा—'आसकरणजी नाहटा'[1] की नब्ज ठीक नहीं चल रही है अतः आप उन्हे दर्शन देने की कृपा करें।' साध्वी मघूजी और पूनांजी ने आसकरणजी को दर्शन दिये और अनशन के लिए पूछा। वे बोले—'अभी नही।' उसी समय श्रीडूंगरगढ़ से तोलारामजी बोथरा वहां पहुचे। उन्होने पूछा तो आसकरणजी ने अनशन के लिए तुरन्त हां भरली और साध्वी मघूजी से अनशन कराने के लिए कहा। साध्वी मघूजी ने विधिवत् चौविहार अनशन करा दिया।[2] दोनो साध्वियां वापस स्थान पर आ गईं। रात्रि के आठ बजे अनशन सम्पन्न हो गया।

---

१. मेरे (मुनि नवरत्न) संसारपक्षीय पिताजी।

२. पौष कृष्णा ८ को उन्होने उपवास किया। नवमी के दिन पारणे की इच्छा थी, तैयारी भी कर ली थी पर एकाएक उनकी भावना मे परिवर्तन आया और अनशन स्वीकार कर लिया।

साध्वी मघूजी उस समय ध्यान कर रही थी। उन्हें प्रकाश-सा दिखाई दिया और आसकरणजी की आवाज सुनाई दी—'मैं तीसरे (देवलोक) में गया हूं।' थोड़ी देर बाद कुछ भाई आये और बोले—आसकरणजी का स्वर्गवास हो गया। दूसरे दिन उनकी स्मृति-सभा मनाई जिसमे साध्वी मघूजी ने दो दोहे जोड़कर सुनाये—

नाड़ी देखी भोज ने, की फुरती तिणवार।
सतियां ने बोलाय कै, पचख लियो संथार ॥१॥
बेले रै तप में करचो, चौविहार संथार।
आसा पूरी आस री, सफल कियो अवतार ॥२॥

(परिचय-पत्र)

६५५।८।२३० साध्वीश्री लिछमांजी (उदयपुर)

(दीक्षा सं० १९९१, वर्तमान)

'६६ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री लिछमाजी का जन्म उदयपुर (मेवाड) के पोरवाल वंश (कोठारी गोत्र) मे सं० १९७५ मृगसर कृष्णा ११ को हुआ। उनके पिता का नाम कन्हैयालालजी और माता का धापू वाई था । धार्मिक परिवार एवं धर्म-निष्ठ माता-पिता होने के कारण वालिका लिछमा को वचपन से सत्संस्कार मिलते रहे ।

वैराग्य—वालिका १३ साल की हुई तब उनकी सगाई उदयपुर मे ही स्थानकवासी सम्प्रदाय मे कर दी गई । मेवाड़ मे यह चिर प्रचलित परम्परा है कि कुमारी कन्या को वधू के रूप मे ससुराल बुलाते हैं । उसी परम्परा के अनुसार वालिका लिछमां भी एक वार अपनी ससुराल गई हुई थी । वहां एक दिन स्थानकवासी सम्प्रदाय के साधु आये । तव परिवार वालो ने कहा—'वीनणी ! इनको वन्दना करो' पर तेरापथ के संस्कारो से आप्लावित होने के कारण उनका अन्तर्मन उन साधुओं को वन्दना करने के लिए साक्षी नहीं दे रहा था अत: उन्होने वन्दना नही की । तव पाम मे वैठी उनकी ननद ने व्यंग मे कहा—'तुम्हें इनको तो वन्दना करनी ही होगी क्योंकि तुम्हारे तो यही पांती मे आये हैं ।' यह वात उनको कडी तो वहुत लगी पर उस समय वे कुछ नही कह सकी ।

स० १९९१ मे अष्टमाचार्य कालूगणी का चातुर्मास जोधपुर मे था । वालिका लिछमा अपने माता-पिता के साथ गुरु-दर्शनार्थ गई । एक दिन साध्वीश्री चादाजी (मुनि सुखलालजी की ससार-पक्षीया माता) ने वालिका से कहा—'अभी तो तुम आचार्यवर की तथा तुम्हारी संसार-पक्षीया बुआ साध्वीश्री वृद्धांजी एवं वुआ की वेटी वहिन साध्वीश्री सोहनांजी आदि की सेवा करती हो, पर शादी के वाद कैसे कर सकोगी क्योकि तुम्हारा रिश्ता तो स्थानकवासियों के यहा किया हुआ है ।' यह सुनकर वालिका जोर-जोर से रोने लगी । साध्वीश्री ने कहा—'बहिन रोती क्यों हो, उनके यहा जाने का तुम्हारा मन नही है तो तुम भी दीक्षा ले लो ।' वालिका वोली—'मै दीक्षा

कैसे लूं, बिल्कुल भी पढी लिखी नहीं हूं।' उस समय पास में बैठे उनके बड़े भाई तखतमलजी और मीठालालजी ने कहा—'हम तुमको अध्ययन करा देंगे।' उनकी प्रेरणा से बालिका ने पढना शुरू कर दिया और विवाह का विचार छोडकर संयम ग्रहण करने का दृढ निश्चय कर लिया। दीक्षा की तैयारी करने लगी।

एक दिन लिछमाजी के पिता कन्हैयालालजी और बड़े पिता गेहरीलालजी ने पूज्य कालूगणी से निवेदन किया—'गुरुदेव ! दीक्षा के समय हमारी पुत्री की दीक्षा का भी ध्यान रखाएं।' गुरुदेव ने कहा—'ससुराल वालो की सहमति के बिना दीक्षा कैसे हो सकती है ?' तब गेहरीलालजी और कन्हैयालालजी दोनों भाइयों ने उदयपुर आकर उनसे बातचीत की तो वे आवेश मे आकर बोले—'हमारी मगेतर को हमारे घर भेज दो, हम समझा देंगे।' फिर दोनो भाइयो ने ससुराल वालो को अच्छी तरह समझाया और सारी स्थिति बतलाई तब वे सहमत हो गये। वापस जोधपुर आकर प्रार्थना की तो आचार्यवर ने दीक्षा का आदेश दे दिया।

दीक्षा—लिछमाजी ने १६ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सगाई एवं माता-पिता, भाई आदि को छोड़कर सं० १६६१ कात्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से जोधपुर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री मोरांजी (६४६) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

उनके छोटे भाई मीठालालजी (५१०) सं० १६६२ मे दीक्षित हुए एवं स० २०२६ में गणमुक्त हो गये।

उनकी बुआ साध्वी श्री वृद्धांजी (७६८) तथा बुआ की बेटी बहिन साध्वीश्री सोहनांजी (७६६) 'राजनगर' सं० १६६६ में दीक्षित हो गई थी।

सुखद-सहवास—दीक्षित होने के पश्चात् आचार्यश्री कालूगणी ने साध्वी लिछमांजी को साध्वीश्री सोहनाजी के सिंघाड़े मे भेज दिया। साध्वी लिछमांजी ने लगभग ३३ वर्षों तक उनके सान्निध्य मे रहकर अपने जीवन को विकसित किया। दो साल गुरुकुलवास मे रहकर अध्ययन किया।

कंठस्थ-ज्ञान—उन्होने दशवैकालिक सूत्र, पच्चीस बोल, चर्चा, तेरहद्वार, कालतत्त्वशतक, बावनबोल, इक्कीसद्वार, गुणस्थानद्वार, संजया, जाणपणे

का पच्चीस बोल, गतागत आदि थोकड़े तथा कालुकौमुदी (पूर्वार्द्ध), भक्तामर, आदिनाथ स्तोत्र, आराधना, चौबीसी, शील की नव वाड़, सात छोटे व्याख्यान और कई गीतिकाएं कंठस्थ की।

वाचन—सात आगमों का वांचन किया।

साधना—वे प्रतिदिन तीन घंटे स्वाध्याय, तीन घंटे मौन और प्रतिदिन आधा घंटा ध्यान करती हैं।

सेवा—साध्वीश्री सोहनांजी की अम्लपित्ती की बीमारी में सात साल एवं साध्वीश्री वृद्धांजी (७६८) 'राजनगर' की लकवा की भयंकर बीमारी में २६ साल अग्लान भाव से सेवा की।

तपस्या—उनकी सं० २०४१ तक की तपस्या इस प्रकार है :—

उपवास	२	३	४	५	६	८
९४५	३३	३	१	१	१	१

तथा दस-प्रत्याख्यान ७ बार किये।

सहज-सरल—साध्वीश्री स्वभाव से सरल और विनम्र है। आचार्यश्री के शब्दों मे—'साध्वी लिछमांजी वड़ा सुदा है।'

(परिचय-पत्र)

विहार—सं० २०२३ में आचार्यश्री ने उनका सिंघाड़ा बनाया। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार हैं :—

सं० २०२४	ठाणा ४	राणी
सं० २०२५	,, ४	जोजावर
सं० २०२६	,, ४	ईड़वा
सं० २०२७	,,	सरदारशहर[1]
सं० २०२८	,,	,,
सं० २०२९	,,	,,
सं० २०३०	,, ४	शार्दूलपुर
सं० २०३१	,, ५	नोहर
सं० २०३२	,, ४	छापर

१. स्वास्थ्य लाभ के लिए सं० २०२७ से सं० २०२९ तक सरदारशहर रही। अग्रगण्या साध्वी सुन्दरजी (१०००), कानकुमारीजी (१११३) 'सरदारशहर' तथा संघमित्राजी (११७०) 'श्रीडूंगरगढ़' थी।

सं० २०३३ ठाणा राजलदेसर (साध्वी खूमांजी (७००) लाडनूं के साथ)

सं० २०३४ ,, ५ छोटी खाटू

सं० २०३५ ,, ५ ईडवा

सं० २०३६ ,, ४ बड़ीपादू

सं० २०३७ ,, ४ डीडवाना

सं० २०३८ से बीदासर 'समाधि-केन्द्र' में स्थिरवास कर रही हैं।

(चातुर्मासिक तालिका)

९५८।८।२३१ साध्वीश्री संतोकांजी (हांसी)

(दीक्षा सं० १९९१, वर्त्तमान)

'६७ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री संतोकांजी का जन्म हरियाणा प्रान्त के अन्तर्गत हांसी के अग्रवाल (गर्ग गोत्र) परिवार मे सं० १९७५ पौष कृष्णा २ को हुआ। उनके पिता का नाम फतैचंदजी और माता का नीबा (नेमा) बाई था।

वैराग्य—किसी घटना विशेष को देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया।

दीक्षा—उन्होने १६ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) सं० १९९१ कार्त्तिक कृष्णा ८ का आचार्यश्री कालूगणी द्वारा जोधपुर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री मीरांजी (९४९) के प्रकरण में कर दिया गया है।

सुखद-सहवास—वे आचार्यवर के आदेशानुसार अनेक वर्षों तक साध्वीश्री हुलासांजी (७०८) 'सरदारशहर' के सिंघाड़े मे रहीं। सं० २०२५ से साध्वी कमलूजी (११०४) उज्जैन के साथ विहार कर रही हैं।

कंठस्थ ज्ञान—उन्होने निम्नोक्त हजारों पद्य कंठस्थ किये—

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी, बृहत्कल्प।

थोकड़े—पच्चीस बोल दो प्रकार के, चर्चा, तेरहद्वार, लघु दंडक, बावनबोल, कर्मप्रकृति, इक्कीसद्वार, संजया, नियंठा, जैनतत्त्वप्रवेश, कालूतत्त्वशतक।

संस्कृत—भक्तामर, कल्याणमंदिर, सिन्दूरप्रकर, शांत-सुधारस, शारदीया नाममाला, कर्त्तव्यषर्ड्त्रिंशिका।

व्याख्यान—रामचरित्र, अग्नि-परीक्षा, चन्द्रसेन-चन्द्रावती आदि छोटे बड़े १५, २० व्याख्यान।

अन्य—आचार बोध, विचार बोध, आराधना, चौबीसी आदि।

वाचन—८, ९ आगमो का वाचन किया।

कला—सिलाई-रंगाई की कला प्राप्त की।

साधना—साध्वीश्री प्रतिदिन ५०० गाथाओं का स्वाध्याय करती हैं। वे चौदह वर्षों से प्रत्येक महीने में तीन दिन पूर्ण मौन तथा १६ वर्षों से प्रतिदिन १० घंटे मौन रखती हैं।

तपस्या—उनके द्वारा किया गया सं० २०४१ तक का तप इस प्रकार है—

उपवास	२	८
१६००	३२	१ |।

(परिचय-पत्र)

९५७।८।२३२ साध्वीश्री रतनकंवरजी (राजगढ़)

(संयम-पर्याय सं० १९९१-२०२५)

'९८ वीं कुमारी कन्या'

छप्पय

रत्नकुमारी ने किया कला-केन्द्र में वास।
स्थान प्रमुख उसमें लिया करके कला-विकास।
करके कला-विकास वास नृपगढ़ में उनका।
फूल-नंदना खास सुराणा गोत्र स्वजन का।
पन्द्रह वार्षिक आयु में चरण लिया सोल्लास[1]।
रत्नकुमारी ने किया कला-केन्द्र में वास ॥१॥

रह पाई वहु वर्ष तक हीरां श्रमणी साथ।
हस्तकलादिक क्षेत्र में गई वढ़ाती हाथ[2]।
गई वढ़ाती हाथ एकदा रास्ता भूली।
सावधान हो शीघ्र स्थान पर आकर फूली।
चिंतन-पूर्वक भर लिया अन्तर आत्म-प्रकाश[3]।
रत्नकुमारी ने किया कला-केन्द्र में वास ॥२॥

नेत्र-चिकित्सा आदि में वन पाई है दक्ष।
किये ऑपरेशन सफल सतियों के प्रत्यक्ष।
सतियों के प्रत्यक्ष 'मोतिया' दूर हुआ है।
खुली पांख सम आंख हर्ष भरपूर हुआ है।
साध्वी-प्रमुखा आदि से मिला उन्हें शावाश[4]।
रत्नकुमारी ने किया कला-केन्द्र में वास ॥३॥

दो हजार-पच्चीस का कालू चातुर्मास।
फिर वसुगढ़ पहुची सती आया फाल्गुन मास।
आया फाल्गुन मास साध्वियां कुछ चल आई।
नेत्र-चिकित्सा हेतु व्यवस्था स्वस्थ वनाई।
किन्तु प्रकृति ने पलक में सबको किया निराश।
रत्नकुमारी ने किया कला-केन्द्र मे वास ॥४॥

दोहा

अकस्मात् हैजा हुआ, उष्मा बढ़ी विशेष।
रतनकंवर ने ली विदा, आयु हो गई शेष ।।५।।

स्मृति में गुण-वर्णन किया, सतियों ने साभार।
'चली गई कामल सती' गुरु-मुख के उद्‌गार[१] ।।६।।

१. साध्वीश्री रतनकंवरजी का जन्म राजगढ़ (रथली) के सुराणा (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७६ भाद्रव शुक्ला ६ को हुआ। उनके पिता का नाम फूलचंदजी और माता का विरधांजी था।

साधु-साध्वियों द्वारा प्रतिवोध पाकर रतनकंवरजी ने १५ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९९१ कार्त्तिक कृष्णा ८ को आचार्यवर कालूगणी द्वारा जोधपुर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री मीरांजी (९४९) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वी रतनकंवरजी गुरुदेव के आदेशानुसार साध्वीश्री हीरांजा (६२०) 'नोहर' के सिंघाड़े मे कई वर्षों तक रही। उनके द्वारा शिक्षा प्राप्त कर विनय, सेवा एवं कला के क्षेत्र में अच्छी प्रगति की। हस्त-कौशल मे पूर्ण निष्णात वनीं। उनका हाथ वहुत हल्का था। लेडी डॉक्टर के पास कई दिनों तक अभ्यास कर उन्होने आंख का ऑपरेशन करना भी सीख लिया।

(ख्यात)

३. साध्वीश्री हीरांजी वृद्धावस्था के कारण मोमासर मे स्थिरवास कर रही थी। साध्वी रतनकंवरजी उनके पास थी। एक वार शारीरिक अस्वस्थता के कारण इलाज कराने के लिए वे रतनगढ़ गई। साथ में दूसरी साध्वी पानकवरजी (१२०६) 'चूरू' थी। साध्वी रतनकंवरजी ने औषधादि उपचार चालू किया, पर कुछ सुख-सुविधा के लिए प्रमादवश दवाईयो को संग्रहीत कर रात्रि मे रख लिया। अन्य साध्वियों तथा वहिनो को पता चलने पर उन्हे सावधान किया। इससे उनका मन आशंकाओ से भर गया। वे भय भ्रान्त होकर साध्वी पानकंवरजी के साथ गण से अलग होकर दूसरे गांव चली गईं। वाद मे श्रावको द्वारा समझाने पर उन्हे अपनी स्खलना तथा संघ से

पृथक् होने का बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने पुनः संघ में स्थान देने के लिए आचार्यप्रवर को निवेदन करवाया। आचार्यश्री उस समय बंबई की यात्रा पर थे अतः सरदारशहर मे विराजित मंत्री मुनि मगनलालजी को सारी स्थिति संभालने का आदेश दिया। मंत्री मुनि ने विधिवत् चिंतन करके जैसा निर्देश दिया उसी तरह रतनगढ़ मे स्थित साध्वियों ने उन्हे प्रायश्चित्त देकर संघ में सम्मिलित कर लिया। यह घटना अनुमानतः २०११ के शेषकाल की है।

साध्वीश्री ने प्रमादवश भूल की पर तत्काल आत्म-निरीक्षण द्वारा उसका परिष्कार कर उत्तम काम किया।

४. साध्वीश्री ने साध्वी-प्रमुखा लाडांजी आदि कई साध्वियो की आंखों का ऑपरेशन किया। उनके द्वारा किये गये सभी ऑपरेशन सफल रहे, जिससे संघ मे उनकी अच्छी ख्याति फैल गई। आचार्यप्रवर एवं साध्वी-प्रमुखा लाडाजी आदि ने उनके हस्त-कौशल की प्रशंसा की।

५. सं० २०१४ मे आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी रतनकंवरजी को अग्रगण्या बनाया। उन्होने सं० २०२५ का चातुर्मास 'कालू' में किया। फाल्गुन महीने मे वे कई साध्वियो के आखो का ऑपरेशन करने के लिए रतनगढ पहुंची। साध्वी खूमांजी (७००) लाडनू, हुलासांजी (७५९) 'सिरसा' और राजीमतीजी (१२२२) 'रतनगढ' का सिघाडा भी वहा पहुंच गया। तीन साध्वियो की आखों मे मोतिया हो गया था। उनकी शल्य-क्रिया करने के उद्देश्य से वहा २१ साध्वियां इकट्ठी हुई थी। पर प्राकृतिक विधि-विधान को कोई बदल नही सकता। ऑपरेशन का दिन व समय निश्चित कर लिया गया। औषध, औजार आदि सारी सामग्री जुटा ली गई। ऑपरेशन कराने वाली साध्वियां तथा करने वाली साध्वी रतनकंवरजी भी पूर्ण रूपेण तैयार हो गई। पर अचानक हैजा होने के कारण साध्वी रतनकंवरजी अस्वस्थ हो गई। कोई उपचार लाभप्रद नही हुआ। आखिर शारीरिक स्थिति बिगडती हुई देखकर उन्हे सचेत अवस्था मे चौविहार अनशन करवा दिया गया। दो घटे बाद देखते-देखते उन्होने स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया। वह दिन था—सं० २०२५ फाल्गुन शुक्ला ४। सभी साध्वियां हताश-सी होकर देखती ही रह गई। उन्होने चार 'लोगस्स' का ध्यान किया तथा साध्वी रतनकवरजी की पुनीत स्मृति मे गीतिका द्वारा अपने-अपने हृदयोद्‌गार प्रकट किये।

(गुण वर्णन ढाल के आधार से)

उनके संबंध मे आचार्यश्री तुलसी ने फरमाया—'कामल साध्वी थी जो चली गई'

(ख्यात)

९५८।८।२३३ साध्वीश्री बखतावरजी (गंगाशहर)

(संयम-पर्याय सं० १९९१-२००१)

'६९ वीं कुमारी कन्या'

गीतक-छन्द

छलानी कुल-गोत्र गाया गंगाशहर-निवासिनी ।
बनी बखतावर महाव्रत-धर्म की अभ्यासिनी[1] ।
संयमी-पर्याय मे दस साल बीते क्षेम से ।
लक्ष्य पूर्वक तप-जपादिक रही करती प्रेम से ॥१॥

सोरठा

दो हजार की एक, मृगसर कृष्णा सप्तमी ।
कर अनशन सविवेक, स्वर्ग खिवाड़ा से गई[2] ॥२॥

१. साध्वीश्री बखतावरजी का जन्म गंगाशहर (स्थली) के छलानी (ओसवाल) गोत्र मे सं १९७७ माघ कृष्णा ५ हुआ। उनके पिता का नाम सोहनलालजी और माता का पानीबाई था।

(ख्यात)

बखतावरजी ने १४ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिक) मे सं० १९९१ कार्त्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा जोधपुर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री मीरांजी (९४९) के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात)

२. साध्वीश्री लगभग दस वर्ष ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करती रही। आखिर सं० २००१ मृगसर कृष्णा ७ को खिवाड़ा मे पांच घंटों के सागारी अनशन से दिवंगत हो गई।

(ख्यात)

साध्वी-विवरणिका मे स्वर्गवास-तिथि मृगसर कृष्णा १० है।

९५९।८।२३४ साध्वीश्री मानकंवरजी (बीदासर)

(दीक्षा सं० १९९१, वर्तमान)

'७० वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री मानकंवरजी का जन्म बीदासर (स्थली) के बैगानी (ओसवाल) परिवार में सं० १९७७ पौष कृष्णा सप्तमी (ख्यात में मृगसर शुक्ला ११) को हुआ। उनके पिता का नाम तिलोकचंदजी और माता का पूनीबाई था।

दीक्षा—जन्मान्तर संस्कारों से वैराग्य भावना उत्पन्न होने पर मानकंवरजी ने १४ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) मे सं० १९९१ कार्त्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से जोधपुर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री मीरांजी (९४९) के प्रकरण में कर दिया गया है।

शिक्षा—उन्होंने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कालुकौमुदी, नाममाला, शांतसुधारस, जैनसिद्धान्तदीपिका, रामचरित्र, मुनिपत आदि व्याख्यान कंठस्थ किये। कई आगमो का वाचन किया।

कला—सिलाई, रंगाई तथा लिपिकला का विकास किया। कई ग्रथ लिपिबद्ध किये।

तपस्या—उनकी सं० २०४१ तक की तपस्या इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५	६	८
१८३५	४१	३	१	१	१	१

(परिचय-पत्र)

९६०।८।२३५ साध्वीश्री संतोकांजी (राजगढ़)

(दीक्षा सं० १९९१, वर्तमान)

'७१ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री संतोकांजी का जन्म राजगढ (स्थली) के सुराणा ओसवाल परिवार मे सं० १९७८ मृगसर कृष्णा १२ को हुआ। उनके पिता का नाम सरदारमलजी और माता का जोरावरवाई था।

दीक्षा—संतोकाजी ने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) में सं० १९९१ कार्त्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से जोधपुर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री मीरांजी (९४९) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सुखद सान्निध्य—दीक्षित होने के तीन महीने वाद आचार्यश्री कालूगणी ने साध्वी संतोकांजी को साध्वीश्री अभांजी (५२५) 'सरदारशहर' के साथ भेज दिया। वे विनयावनत होकर उनके सान्निध्य में पांच वर्षों तक रही। तत्पश्चात् साध्वीश्री जड़ावांजी (६७५) 'तारानगर' के सिघाड़े में २१ वर्षों तक रहकर ज्ञान, कला और सेवाभावना का विकास किया।

शिक्षा—उन्होने गृहस्थवास मे विशेष अध्ययन नहीं किया केवल वर्णमाला ही सीखी थी। दीक्षित होने के वाद सतत परिश्रम करते-करते सूत्र, थोकडे तथा व्याख्यानादिक की लगभग दस-हजार गाथाएं कंठस्थ कर ली।

स्वाध्याय-जप—साध्वीश्री स्वाध्याय-जप मे विशेष रुचि रखती है। प्रतिवर्ष लगभग साढे-पांच-लाख गाथाओं का स्वाध्याय एवं साढे-पांच-लाख पद्यो का जप करती है। स्वाध्याय से कंठस्थ-ज्ञान सुरक्षित रहता है और जप से एकाग्रता का अभ्यास होता है।

त्याग-तपस्या—साध्वीश्री ने सं० १९९३ में आजीवन मिष्टान्न विगय का तथा सं० २००० मे दो विगय के अतिरिक्त खाने का त्याग कर दिया।

उनके द्वारा की गई सं० २०४१ तक की तपस्या इस प्रकार है—

उपवास	२	३	४	५	६	७	८
२९६०	२९१	४४	४	३	१	१	१

उन्होने सं० २०१० के पादू चातुर्मास मे श्रावण-भाद्रव दो महीने एकांतर तप किया। सं० २०१४ से २०१७ तक खीवाडा मे तथा सं० २०३४ केसूर चातुर्मास मे चार महीने एकांतर तप किया।

विहार—साध्वीश्री जड़ावांजी के दिवंगत होने के वाद सं० २०१७ आमेट में आचार्यश्री तुलसी ने साध्वीश्री संतोकांजी को अग्रगण्या वनाया। उन्होने ग्रामानुग्राम विहरण कर धर्म का प्रचार-प्रसार किया और कर रही है। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है—

सं० २०१८	ठाणा ४	सिसोदा
सं० २०१६	,, ५	राजगढ़
सं० २०२०	,, ५	घानीण
सं० २०२१	,, ४	दौलतगढ़
सं० २०२२	,, ४	रायसिंहनगर
सं० २०२३	,, ५	अहमदगढ
स० २०२४	,, ४	कालावाली
सं० २०२५	,, ४	नोहर
स० २०२६	,, २३	लाडनू 'सेवाकेन्द्र' (साध्वी भीखांजी (१०३०) 'सरदारशहर' का संयुक्त)
सं० २०२७	,, ५	कालू
सं० २०२८	,, ५	कांकरोली
सं० २०२६	,, ५	वाड़मेर
सं० २०३०	,, ५	वालोतरा
सं० २०३१	,, ६	जसोल
सं० २०३२	,, ४	धुरी
सं० २०३३	,, ४	इन्दौर
सं० २०३४	,, ४	कैसूर
सं० २०३५	,, ४	झकणावद
सं० २०३६	,, ४	पड़िहारा
सं० २०३७	,, ५	वोरावड़
सं० २०३८	,, ४	पीपाड

सं० २०३६	ठाणा ५	लाछुड़ा
सं० २०४०	,, ५	वंणोल
सं० २०४१	,, ५	टॉडगढ
सं० २०४२	,, ५	राणावास

(चातुर्मासिक तालिका)

सेवा—साध्वीश्री जड़ावांजी (६७५) वृद्धावस्था के कारण पांच साल खिवाड़ा मे स्थिरवासिनी रही। साध्वी संतोकांजी ने उनकी मनोयोग से परिचर्या की।

सं० २०२५ के नोहर चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री ने साध्वीश्री को पीलीवंगा भेजा। वे अविलम्ब वहां पहुंची और कैसर से ग्रसित साध्वी मोहनांजी की परिचर्या मे लग गई।

सं० २०१८ मे साध्वीश्री सोनांजी (६७४) 'सरदारशहर' के सहयोग के लिए पड़िहारा और उसके बाद साध्वी हरकंवरजी (८४२) 'फतेहपुर' के सहयोग के लिए चूरू भेजा गया।

सं० २०२० में लुहारिया (मेवाड़) मे कई साध्वियो ने बवासीर का इलाज कराया तब उनकी सेवा मे रखा गया।

सं० २०२७ मे साध्वीश्री जुहाराजी (८६०) 'मोमासर' को सरदारशहर से छापर तक साधन द्वारा लाया गया।

आचार्यप्रवर के आदेशानुसार साध्वीश्री संतोकांजी ने उक्त साध्वियो को पर्याप्त सहयोग दिया।

गुरु-इंगित पर—आचार्यप्रवर ने साध्वीश्री संतोकांजी का सं० २०३८ का चातुर्मास जोजावर के लिए घोपित किया। उस वर्ष पीपाड़ मे जिन साध्वियो का चातुर्मास फरमाया हुआ था, वे कारणवश वहां नही पहुंच सकीं। तब पीपाड़ के श्रावको ने जयपुर मे आचार्यश्री के दर्शन कर निवेदन किया—'गुरुदेव ! इस वर्ष पीपाड़ में स्थानकवासी तथा मंदिरमार्गी साधुओ के चातुर्मास है अतः अपने साधु-साध्वियो का चातुर्मास होना अत्यावश्यक है अन्यथा अपनी श्रद्धा के लोगो का झुकाव अन्यत्र होने की संभावना है।'

उस समय चातुर्मास प्रारंभ होने के केवल १५ दिन शेष थे। आचार्यप्रवर ने चिंतन करके फरमाया—'यदि साध्वी संतोकांजी वहां जा सके तो जा सकती है।' भाइयो ने तत्काल रामसिहजी का गुड़ा में विराजित साध्वी संतोकांजी के दर्शन कर सारी बात कही। साध्वीश्री ने गुरु-इंगित को समझ

कर तुरंत वहा से विहार कर दिया। रास्ते मे कठिनाई भी रही। सहवर्तिनी दो साध्वियो—गुलाबांजी 'सरदारशहर' तथा धनकंवरजी 'लाडनूं' को 'लू' भी लग गई फिर भी हिम्मत कर वहां पहुंच गईं और सं० २०३८ का चातुर्मास पीपाड़ मे किया।

(परिचय-पत्र)

६६१।८।२३६ साध्वी मंजूश्रीजी (छगनांजी) (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९९१, २०३८ में गणवाहर)

'७२वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वी मंजूश्रीजी (छगनाजी) का जन्म सरदारशहर (स्थली) के दसाणी (ओसवाल) परिवार में सं० १९७८ पौष शुक्ला ११ को हुआ। उनके पिता का नाम वृद्धिचंदजी और माता का हुलासी बाई था।

दीक्षा—छगनांजी ने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सगाई छोड़कर सं० १९९१ कार्त्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से जोधपुर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री मीराजी (६४६) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

इनकी छोटी बहिन चांदकवरजी (६७८) ने सं० १९९२ में दीक्षा स्वीकार की।

विहार—उन्होने कुछ वर्ष गुरुकुल-वास में रहकर अध्ययन आदि किया। सं० १९९८ में आचार्यश्री तुलसी ने उनका सिंघाड़ा बनाया। उन्होंने निकट-दूर प्रान्तो में विहरण कर धर्म का प्रचार-प्रसार किया।

उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है—

सं० १९९९	ठाणा	५	पडिहारा
सं० २०००	,,	५	नाथद्वारा
सं० २००१	,,	५	बोरियापुर
सं० २००२	,,	५	भीलवाड़ा
सं० २००३	,,	४	बहावलनगर
सं० २००४	,,	५	फतेहगढ़
सं० २००५	,,	५	नोहर
सं० २००६	,,	५	संगरूर
सं० २००७	,,	५	रामामंडी
सं० २००८	,,	४	धुरीमंडी
स० २००९	,,	५	अहमदगढ़

सं० २०१०	ठाणा १०	बाव (सा० सुखदेवांजी (१००२) 'सरदारशहर' का संयुक्त)
सं० २०११	,, ५	बेला
सं० २०१२	,, ५	बाड़मेर
सं० २०१३	,,	सरदारशहर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २०१४	,, ५	ध्रांगध्रा
सं० २०१५	,, ५	बालोतरा
सं० २०१६	,, ६	जोधपुर
सं० २०१७	,, ५	फिलौर
सं० २०१८	,, ५	जालना
सं० २०१९	,, ५	औरंगाबाद
सं० २०२०	,, ५	बोलारम
सं० २०२१	,, ५	हैदराबाद
सं० २०२२	,, ५	हुबली
सं० २०२३	,, ५	घाटकोपर
सं० २०२४	,, ५	उदयपुर
सं० २०२५	,, ५	आमेट
सं० २०२६	,, १०	सरदारशहर
सं० २०२७	,, २५	लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' (साध्वी इन्द्रूजी (१०४५) 'लाडनूं का संयुक्त)
सं० २०२८	,,	लाडनूं (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०२९	,, ५	जयपुर
सं० २०३०	,, ५	भगवतगढ़
सं० २०३१	,, ५	फतेहपुर
सं० २०३२	,, ५	अमृतसर
सं० २०३३	,, ५	फिल्लौर
सं० २०३४	,, ५	धूरी
सं० २०३५	,, ५	अहमदगढ़

सं० २०३६	ठाणा	५	भीखी
सं० २०३७	,,	५	भवानीगढ़
सं० २०३८	,,	५	उदयपुर

(चातुर्मासिक तालिका)

संघ से अलग—साध्वी मंजूश्री अपनी बहिन चांदकंवरजी (६७८) 'सरदारशहर' तथा दीपांजी (११८६) 'श्रीडूंगरगढ़' सहित सं० २०३८ मृगसर कृष्णा १ को उदयपुर में गण से पृथक् होकर नव तेरापंथ में सम्मिलित हो गई। अलग होने का कारण था—पारस्परिक गठबंधन।

९६२।८।२३७ साध्वी मोहनांजी (टमकोर)

(दीक्षा सं० १९९१, २०३८ में गणबाहर)

'७३वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वी मोहनांजी का जन्म टमकोर (ढूंढाड़) के चोरड़िया (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७८ श्रावण शुक्ला ३ को हुआ। उनके पिता का नाम बालचंदजी और माता का तीजां बाई था।

दीक्षा—मोहनांजी ने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १९९१ कार्त्तिक कृष्णा ८ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा जोधपुर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली २२ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री मीरांजी (९४९) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

विहार—साध्वी मोहनांजी बहुत वर्षों तक साध्वीश्री दीपांजी (८३०) 'सिरसा' के सिंघाडे मे रही और अध्ययन आदि किया। दीपांजी के दिवंगत होने के बाद सं० २०२९ मे आचार्यश्री तुलसी ने मोहनांजी का सिंघाड़ा बनाया। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार है :—

सं० २०३०	ठाणा ५	दिवेर
सं० २०३१	,, ५	टाडगढ़
सं० २०३२	,, ४	राणी
सं० २०३३	,, ४	सिसाय
सं० २०३४	,, ५	मलेरकोटला
सं० २०३५	,, ५	धूरी
सं० २०३६	,, ४	फूलमंडी
सं० २०३७	,, ४	फतेहपुर

(चातुर्मासिक तालिका)

गण से अलग—साध्वी मोहनांजी की शिकायत आने पर आचार्यप्रवर ने उनका सिंघाडा नही रखा। उन्हे साध्वी कमलश्रीजी (१२४३) 'टमकोर' के साथ रखा और सं० २०३८ का चातुर्मास बीकानेर करवाया। वहां मृगसर महीने में सुमंगलाजी (१२७७) 'चूरू' (जो पहले उनके सिंघाड़े मे थी)

समय यक्ष का जोर नहीं चल सका। किन्तु पारणे के दिन यक्ष ने फिर कुछ उपद्रव किया; लेकिन साध्वी गौरांजी पर इसका कोई असर नहीं हुआ। फिर कुछ-कुछ तप चालू रखा। यक्ष कभी-कभी दिखाई देता रहा।

चातुर्मास सम्पन्न होने पर साध्वीश्री पन्नांजी ने अपनी सहयोगिनी साध्वियो के साथ जयपुर मे आचार्यप्रवर के दर्शन किये। साध्वीश्री ने आचार्यश्री को सारी घटनाओ से अवगत कराया। दूसरे ही दिन साध्वी गौरांजी ने आचार्यश्री से निवेदन किया—'प्रभो! मेरी तपस्या एवं अनशन करने की इच्छा है अतः आप कृपा कर तपस्या का आदेश प्रदान करें।' आचार्यप्रवर ने कहा—'अभी यहा पर तपस्या करने का अवसर नही है जहां चातुर्मास हो वहा कर लेना।' साध्वी पन्नाजी को भी तपस्या कराने का निर्देश दे दिया। उस दिन गौराजी के वेले की तपस्या थी। लम्बी तपस्या की इच्छा होते हुए भी गुरु-आज्ञा न मिलने पर 'जिन शासन में आज्ञा वड़ी' गाथा का उच्चारण करते हुए पारणा कर लिया।

साध्वीश्री पन्नाजी ने फाल्गुन कृष्णा चतुर्थी को जयपुर से विहार किया। गावो का क्रमशः स्पर्श करती हुई सवाई माधोपुर पधारी। साध्वी गौराजी ने रास्ते मे उपवास तथा आयम्बिल की तपस्या चालू रखी। सवाई माधोपुर मे एक सप्ताह का प्रवास रहा। वहा एक आश्चर्यजनक घटना घटी। प्रतिदिन एक वंदरिया आती, साध्वी गौरांजी के चरणो मे हाथ लगाकर नमस्कार करती और चुपचाप चली जाती। दूसरी किसी भी साध्वी को वदना नही करती। एक दिन साध्वी गौरांजी कमरे में स्वाध्याय-ध्यान कर रही थी। साध्वी श्री पन्नाजी सलक्ष्य दरवाजे पर खड़ी थी। ठीक उसी समय वदरिया आई, उसने इधर-उधर झांका, दरवाजे के वीच साध्वी पन्नांजी को देखकर निराश हो गई। कमरे मे एक झरोखा था, वंदरिया छलांग लगाकर झरोखे से कमरे के भीतर पहुंची, गौरांजी के पैरो को हाथ लगा कर नमस्कार किया और उसी झरोखे से फिर बाहर निकल गई। जब तक सवाई माधोपुर सतियां विराजी तव तक वंदरिया नियमित वंदना करने आती रही।

सवाई माधोपुर से विहार कर वैशाख कृष्णा चतुर्थी को साध्वीश्री पन्नांजी 'जटवाड़ा' पधारी। वहा पश्चिम रात्रि मे स्मरण-स्वाध्याय करते समय साध्वी गौरांजी ने देखा कि वे एक विमान मे बैठी हैं और छत्र-चंवर डुल रहे हैं। प्रातः गौरांजी ने साध्वी पन्नाजी को इस घटना से अवगत

कराया तो उन्होने कहा—'कही स्वप्न देखा होगा।' गौरांजी ने दृढ़ता से उत्तर दिया—'स्वप्न नहीं, विल्कुल यथार्थ है।

वैशाख कृष्णा पंचमी को साध्वीश्री सूरवाल पधारी। वहां सरदारमलजी पोरवाल के मकान मे ठहरी। मकान को देखकर गौरांजी ने कहा—'यह मकान तपस्या के उपयुक्त है, मैं यहां तपस्या करूंगी।' सहयोगिनी साध्वी नोजांजी ने कहा—'तुम ऐसी वातें क्यों कर रही हो।' गौरांजी—मैं ठीक कह रही हूं, अव इतना ही है·······। आठ दिन से ज्यादा तो तपस्या होगी नही। लोगों ने पूछा—'वह कौनसा घर है जिस घर की सौलह दीक्षाएं हुईं?' गौरांजी ने उत्तर दिया—'वह सामने वाला घर है।' उसी दिन प्रातःकालीन व्याख्यान के वाद कहा—'आज अंतिम व्याख्यान है तथा अंतिम आहार है।' सायं गुरु-वंदना के समय उन्होंने उपवास का संकल्प कर लिया। रात्रि के समय साध्वी नोजांजी से कहा—'मैं जितनी वार कहूं आप उतनी वार मुझे आराधना आदि सुनाना।' उस रात्रि को उन्हे नींद नही आई। साध्वी नोजांजी द्वारा अध्यात्म गीतिकादि सुनती रही। ठीक वारह वजते ही वह यक्ष फिर आया और डरावने स्वर मे वोला—'रण्डी यह शासन छोड़ दे, शासन छोड दे·······।'

गौरांजी—'मैं शासन हरगिज नही छोड़ूंगी। मै साध्वी हूं फिर तुम मुझे वार-वार रण्डी कहकर क्यो पुकारते हो।'

यक्ष—'मैं तुम्हारी परीक्षा करूगा, तू वार-वार अपने गुरु का नाम क्यो लेती है?' इस प्रकार अनेक बार कहने पर भी नाम नही छोडा तव कहा—'अव मैं तुम्हारी पूरी परीक्षा करूंगा।' गौरांजी—'कर लेना, मुझे शासन को छोडने का त्याग है।' फिर गोचरी आदि जाते समय भी वह पुरुप नग्न रूप में दिखाई देत तव गौरांजी मुंह ढक लेती, वार-वार त्याग का उच्चारण करती। साध्वियां पूछती तव कहती—'क्या करू, दरिद्र पुरुप कराता है, तव करती हूं।'

वैशाख कृष्णा ५ को साध्वी पन्नाजी ने कहा—'माधोपुर के वाद आचार्यप्रवर के समाचार नही मिले।' गौरांजी ने कहा—'आज दिल्ली पधारेंगे, लगभग सात-सौ से एक हजार लोग होंगे वहां वहुत उपकार होगा, आप जाए तव सुन लेना।' पन्नाजी—'तुमने तो दिल्ली देखा ही नहीं।' गौरांजी—'वह सामने दीख रहा है।' फिर परस्पर संवाद करते हुए कहा—'मुझ मे शक्ति नही है, गुरुदेव के पास से आ रही है, वह आ गई अव कर लो

परीक्षा।' यक्ष—'अब निगाह रखना।' गौरांजी—'तैयार हूं।' तत्काल आचार्यप्रवर की दिशा की ओर वन्दन करके कहा—'गुरुदेव मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करो कि मैं इस परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाऊं। इस प्रकार आधे घंटे तक गुणगान कर पन्नांजी के पास पहुंची और कहा—तपस्या की अनुमति दो। पन्नांजी ने पूछा—तुमने आज रात भर क्या किया? गौरांजी—मैंने स्वाध्याय किया। वह यक्ष परीक्षा लेने आया है, मैं उसके लिए तैयार हूं, आप सब मुझे सहयोग देना। पन्नांजी ने आचार्यश्री की ओर वन्दन करके उन्हें चौविहार उपवास पचखा दिया। कुछ समय पश्चात् ध्यानस्थ अवस्था मे (पद्मासन करते हुए) बैठकर पन्नांजी के सम्मुख ही उस यक्ष को फटकार लगाते हुए कहा—'देख! अब मैं शक्ति दिखा रही हूं। गुरुदेव की आज्ञा की बात तो अलग है अन्यथा चौदस तक चौविहार तपस्या चालू करती हूं। यदि इतने दिनों मे भी पूरी परीक्षा न कर सको तो आगामी चवदस तक के त्याग है, तब तक कर लेना। बाद मे साधु-साध्वियो को दुःख देना बहुत नीच कार्य है, मेरे से तुम्हारा इतना क्या वैर है, इत्यादिक बहुत कुछ कहा। फिर साध्वियो को आराधना सुनाने के लिए कहा। स्वयं ने दिनभर भजन किया। कुछ रजोहरण की फलियां भी बंटी। बेले तक स्थिति सामान्य रही। कुछ-कुछ उपद्रव चालू रहा। तेले की रात मे पन्नाजी से कहा—'आज की रात सोने के लिए थोड़े ही है।'

रात को बारह बजे उस पुरुष ने कहा—'तुम्हारे गुरु बड़े भाग्यशाली हैं, तेजस्वी है, मै उनका तेज सहन नही कर सकता। मैने तुम्हारी परीक्षा कर ली है, अब मै जाता हूं और तुम्हारे से क्षमायाचना भी करता हूं। मुझे वैर लेना था वह ले लिया। तुम्हारी तपस्या का प्रभाव सह नही सकता। तुमने गुरु के आदेश से यह कार्य किया है अतः मैं कुछ भी कर गुजरने के लिए असमर्थ हूं।' गौरांजी ने कहा—ठहर-ठहर अभी क्या जा रहा है, देखना तो अभी बाकी है। तुम्हारे मन में हो तो और भी परीक्षा कर लेना, फिर उससे क्षमायाचना कर पद्मासन लगाकर खंभे के पास बैठ गई। साध्वियों ने 'लोगस्स' की २१ और देव अरिहंत, गुरु निग्रन्थ, धर्म केवली भाषित की २१ माला का जाप कराया। ध्यान को संपन्न कर साध्वी गौरांजी बोली—'देव, गुरु और धर्म की जय, आचार्यश्री तुलसी की जय।' बस, आज से मेरा उपद्रव दूर हो गया है। मेरे मे शक्ति नहीं थी पर गुरुदेव के प्रभाव से मै इस विकट स्थिति को पार कर चुकी। अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूं। आराधना तथा

चौवीसी का स्मरण करना प्रारंभ कर दिया। चोले के दिन दोपहर को पन्नांजी से कहा—मैंने उसे दुष्ट ! ठहर ठहर कह दिया, इसका मुझे प्रायश्चित्त दो। फिर भाइयो को एक घंटे तक शिक्षा दी। दोपहर मे साध्वियो से कहा—'अपने यहां पुरानी रीति है कि तपस्या विशेप एवं अनशन हो वहां आहार नही लाना चाहिए। तत्पश्चात् २१ वार गुरु दिशा की ओर वंदन कर, एक पैर के सहारे विना सहारा लिए खड़े होकर भक्तामर का पाठ किया और २१ 'लोगस्स' का ध्यान किया।

तीन चार दिनो से दृष्टि (नजर) प्रायः लुप्त हो चुकी थी, पर क्षमायाचना कर लेने के वाद वह वापस लौट आई। झरोखे से हवा आती तव कहती—'नंदन वन से लहरे आ रही है, दिल्ली से शक्ति का श्रोत मेरे पास आ रहा है।' वे विशेप गुणगान करना नही जानती थी तथा हिन्दी भापा का भी उन्हे ज्ञान नही था, फिर भी उपवास के दिन से हिन्दी मे वोलने लगी। वे कहती—'मैं आराधक हूं, अव मुझे आराधना की जरूरत नही। मुझे गुरु की स्तुति व मंगल-मंत्र सुनाओ।' पंचोले के दिन कहा—'मैं इस कमरे मे दो घटे तक शीर्पासन करके घूमूंगी अतः कम्वल विछाओ।' साध्वियो ने कवल विछाया। दो घटे तक शीर्पासन के रूप मे प्रायः समूचे कमरे का स्पर्श किया। वीच मे एक आला था, झुककर उसमे सिर रखा और उसके ऊपरी भाग को छुआ। साध्वियों ने पूछा—यह क्यो?' उत्तर मे कहा—'शरीर का क्या होना है, कर्मो की विशेष निर्जरा करनी है। और सव जगह जाऊंगी, जहां पुस्तकें पड़ी है वहां नही जाऊंगी।' पन्नांजी ने साध्वियो से घडी देखने के लिए कहा। वे देख ही नही पाई थी कि गौराजी ने कहा—'समय संपन्न होने मे एक मिनिट वाकी है। कवल सीधा कर दो।' साध्वियो ने देखा तो ठीक वही समय था। आसन कर वे कुछ देर तक कवल पर लेट गईं और वोली—'अव शक्ति कुछ कम हो रही है, आज रात को सुनाने का ध्यान रखना, एक मिनिट भी खाली मत जाने देना।'

तपस्या के छठे दिन प्रातःकाल सूर्योदय से पहले कहा—'अभी तक मेरे आयुष्य का वंध नही हुआ है, आज होने वाला है। साढे ग्यारह वजे तक मुझे खूव सुनाना।' साढ़े ग्यारह वजे पन्नाजी ने पूछा—'क्या आयुष्य का वंध हो गया?' गौराजी—'हा, चौथा देवलोक।' पन्नाजी—'इन्द्र या सामानिक?' गौरांजी—कुछ भी हो पर असंयती। और कहा—अभी कुछ देर है जल्दी न करें, अभी वह देव जहा मुझे जाना है च्युत नहीं हुआ है।

दूसरे देव जल्दी कर रहे हैं पर जल्दी नहीं करनी चाहिए। यों कहीं द्वेष हो जाए। मैं अन्त तक अचेत नही होऊंगी।' भोजन के समय साध्वियां नीचे गईं। पन्नांजी वापस आई तब कहा—'आपने आज आयम्बिल किया है, चने खाये हैं।' पन्नांजी ने कहा—'हां।' (पहले उन्हें किंचित् भी पता नही था)। फिर बैठकर दो ढालें बनाईं। उसमें आचार्यश्री, मंत्रीमुनि मगनलालजी भाइजी महाराज (मुनिश्री चंपालालजी) तथा साध्वी-प्रमुखा लाडांजी, मातुःश्री वदनांजी की स्तवना की। सायं प्रतिक्रमण के पश्चात् आधे घंटे तक शासन व आचार्यश्री के गुणगान किये। फिर जो वार्तालाप हुआ वह निम्न प्रकार है—

गौरांजी—साध्वी वधूजी ने आपसे कहा था कि गौरांजी भोली भाली है अत. इसे साथ रखना, वह वात आज मिल गई। अव मेरा कार्य आपके सान्निध्य मे ही सिद्ध हो रहा है।

पन्नांजी—देखो, तुम कितना वीरवृत्ति का काम कर रही हो।

गौरांजी—मै तो कुछ भी नही हूं। संघ मे अनेक साधु-साध्वियां एक-एक से वढकर हैं।

पन्नांजी—एक दिन तो वह था कि साध्वी रंभाजी (सं० २००१ मे गण से पृथक हो गई थी) की स्थिति देखने को मिली और एक आज का शुभ दिन है जो तुम्हारी स्थिति देख रही हूं।

गौरांजी—रंभाजी तथा गण से वहिर्भूत अन्य व्यक्तियो का जीवन प्रायः दुःखद व अनुताप-जनक होता है। मेरा निवेदन है कि आप सव गुरु-वचनो पर आस्था रखना। गुरुदेव कोई वात पूछे तो बैठे-बैठे जवाव नही देना। मैं क्या कहूं आप स्वय समझदार हैं। फिर कुछ देर लेटकर बैठी हुई और बोली—'क्या अपने गण में अलग विहार मे साधु-साध्वियो द्वारा दीक्षा होती है?'

पन्नांजी—पहले तो हुई थी पर आजकल प्रायः आचार्यप्रवर के पास ही होती है। अव तुम वताओ—'क्या साधु-साध्वियो द्वारा कहीं दीक्षा होगी?'

गौरांजी—हां होगी और वह भी वड़े ठाटवाट से।[1]

---

१. सं० २००७ कात्तिक कृष्णा ७ को धूलिया (खानदेश) मे साध्वीश्री भत्तूजी (८९९) ने आचार्यश्री के आदेशानुसार साध्वी पद्मावतीजी (१२२१) 'शाहदा' को दीक्षा प्रदान की।

पन्नांजी—देखो ! कितना उपकार हो रहा है अपने शासन में ।
गौरांजी—हुआ वह ठीक है किन्तु अव देखना कितना उपकार होगा ।
पन्नांजी—आज (तप के सातवें दिन) तुम्हारे शरीर मे तकलीफ है अतः प्रतिलेखन न भी करें तो कोई आपत्ति नही ।
गौरांजी—नही, मेरा प्रतिलेखन वाकी नही रखना है । लेटने-वैठने मे तकलीफ भी हो तो चिन्ता नहीं, विशेप कर्म निर्जरा होगी ।

आचार्यप्रवर ने टमकोर पर कृपा कर सात साध्वियों का चातुर्मास फरमाया है किन्तु चातुर्मास होगा नही । फिर कहा—'गुरुदेव परिवर्तन भी करायेंगे, फिर भी चातुर्मास नहीं होगा ।'

पन्नाजी—यहां से तार चले जाने पर भी टमकोर से तुम्हारे ज्ञाति क्यो नही आये ?

गौरांजी—वे आयेगे जरूर पर वाद मे पहुंचने से दर्शन नही होगे ।

पन्नांजी ने साध्वियो से कहा—'गुलावांजी आ रही है सामने जाओ । गौराजी वोली—गुलावाजी तो संध्या के समय आयेगी, यहा से जो साध्वियां गई थी उनके साथ एक अन्य साध्वी आ रही है । वास्तव मे वही हुआ कि एक साध्वी पहले आई और गुलावाजी शाम को पहुंची ।

माधोपुर से एक डॉक्टर आया और वोला—'आप दवा ले लीजिए, इतना कठोर तप क्यो कर रही है ? गौरांजी—'मैं जो कर्म काटने की दवा ले रही हूं वह आपके पास नही है ।' एक दर्जी ने आकर कहा—'या तो आप आहार पानी ले लें वरना मैं पंचो को एकत्रित करता हूं ।' गौरांजी—'मेरे शरीर पर पंचो का अधिकार नही है ।' सूरवाल के ठाकुर दर्शनार्थ आये तव उन्हें दस मिनिट तक हिन्दी में उपदेश दिया। साध्वियो के साथ साध्वी इन्द्रूजी आई तव उन्हे वंदना करते हुए कहा—'देखो, कैसी एकता है जिनशासन मे !' वाहर के लोग काफी आये हुए थे, उनके सामने १५ मिनिट तक शासन का यशोगान किया ।

दोपहर के समय साध्वी गौरांजी ने कहा—'आज दिल्ली से दो पत्र आने वाले हैं, उनमे मेरे से सवंधित समाचार होगें ?' पन्नाजी नीचे गई, इन्द्रूजी, गौरांजी के पास थी । गौरांजी ने उन्हे सम्वोधित करते हुए कहा—'आप खड़ी क्या कर रही है, दिल्ली से दो पत्र आ गये हैं ।' इन्द्रूजी ने नीचे आकर पन्नाजी से पूछा—'क्या दिल्ली से कोई पत्र आया है ? पन्नांजी—'नही ।' इतने में सूरवाल-वासी गोपीचंदजी ने आकर कहा—'दिल्ली से दो

पत्र आये हैं ।' गौरांजी ने सतियों के साथ कहलाया—'मैं भी पत्र सुनना चाहती हूं ।' तब गोपीचंदजी ने ऊपर आकर पत्र पढ़े । पत्र मे था—'पांच दिन की तपस्या के सचाचार यहां पहुंच गये हैं । आगे उनके (गौरांजी) भाव कैसे हैं ?' यह सुनते ही गौरांजी ने साध्वी पन्नांजी को तपाक से कहा—'देखो, मेरे से सम्बन्धित समाचार आ गये हैं । अब मेरे भाव है वैसा आप करें । गुरुदेव से पहले आज्ञा ली हुई है ही, आप मेरे विचारो को जानती ही हैं, अतः अब मेरा मनो-मनोरथ शीघ्र सिद्ध होना चाहिए ।' उन्होने कुछ देर बाद आचार्यप्रवर को वंदन किया । सायंकाल साध्वी गुलाबांजी आई तब वे उठी और लोगो के समक्ष शासन की महिमा गाते हुए कहा—'बात बताने का अवसर तो अब ही है, पर आज शक्ति कम है ।' पन्नाजी ने पूछा—'क्या तुम्हें कोई ज्ञान हुआ है ?' गौरांजी—गुरुदेव का प्रताप है । केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद जाता नही किन्तु यह किसी कारण से चला भी जाता है । आप मुझे बार-बार मत पूछें, मैं जो कुछ कहूं वह सुनती रहे । १६ वर्ष लगभग मैं आपके साथ (बघूजी के सिंघाडे से साथ थी) रही । न तो कोई मेरे मे बुद्धि और न हिन्दी भाषा का ज्ञान । फिर भी यह सब गुरुदेव का प्रताप है । प्रतिलेखन के पश्चात् उनके कहने पर साध्वियो ने उनका बिछौना किया । सायं प्रतिक्रमण के बाद साध्वियां स्वाध्याय कराने लगी तब कहा—'आज एक क्षण भी बिना सुनाये नही जाना चाहिए । मैं गुरुदेव के गुणगान करना चाहती हूं पर बोल नही सकती । सब साध्वियां थोड़ी-थोड़ी देर गुणानुवाद करके मुझे सुनाओ ।

गौरांजी—अहा ! कैसी नंदनवन की लहरे आ रही हैं, कैसा आनंद हो रहा है । यह कहते-कहते शरीर पसीने से तर-बतर हो गया । थोड़ी देर बाद कहा—'कोई भी उपद्रव हो तो घबराना नही । गुरुदेव के नाम का स्मरण करना जिससे अपने आप शांत हो जायेगा, मैंने इसका अनुभव किया है ।' यह कहकर सो गई । फिर बार-बार उठकर गुरु-दिशा मे वदन कर गुण-गान किया । दो घड़ी लगभग रात बाकी रही तब कहा—'सतियांजी ! आप सब कृपा कर मुझे दर्शन दे ।' गुरु दिशा में वंदन कर गुरु की जय बोले । मैं सभी के साथ क्षमायाचना करती हूं । पन्नांजी से कान मे कहा—'मेरी शक्ति क्षीण हो गई है, अब मुझे त्याग करवा दे ।' पन्नांजी कुछ विचार करने लगी तब गौरांजी ने कहा—आप विचार क्यों करती हैं, मेरे अधिक दिनों का काम नहीं है, अगर छह महीने निकले तो भी चिन्ता की बात नही है ।'

पन्नांजी—'क्या तिविहार अनशन ?' गौरांजी—'नही-नही चौविहार ।' गुरु-दिशा मे वंदन करते हुए उन्होने चौविहार अनशन ग्रहण कर लिया और कहा—'संलेखना और अनशन मे कोई विशेष अंतर नही है । फिर भी जब तक मैं नही कहूं तब तक मेरी बात प्रकट मत करना ।' साध्वियों ने अनशन के उपलक्ष में छहों विगय का त्याग कर दिया। गौरांजी ने उन्हें त्याग करवाया। छह बजे तब कहा—आज प्रतिक्रमण कराते समय मुझे छूना मत। प्रतिलेखन ऊपर के वस्त्रो का कर देना नीचे से नही। भीतर ले चलने के लिए कहा तब साध्वियां उन्हें कम्बल सहित अन्दर ले गई।

आठवा दिन आया। गौराजी ने पन्नाजी से आखे गिली करने के लिए कहा । पन्नांजी बोली—'सथारे के समय पानी से क्या ?' पन्नांजी बाहर गई और कुछ देर तक वापस नही आई; तब गौरांजी ने कहा—'वे घबरा गई हैं क्या ?' मै तो केवल परीक्षा लेना चाहती थी । दिन बीता, सन्ध्या के समय साध्वियो ने उन्हे बाहर लाकर बिछौने पर लेटा दिया। साध्वी चौथांजी ने कहा—'मैं अनशन करूं तब मुझे सहयोग देना ।' गौरांजी ने मुट्ठी बंद कर मजबूती के साथ कहा—'आचार्यप्रवर सभी को सहयोग देते है, जो अच्छा कार्य होता है वह उनकी कृपा से होता है। आचार्यप्रवर तीर्थंकर देव के तुल्य है, साध्वी-प्रमुखा लाडाजी चन्दनबाला के समान है, मातु श्री वदनाजी मरुदेवी माता के समान सरल व भद्र है। संघ मे साधु-साध्वियो की व ज्ञान-ध्यान आदि की चतुर्मुखी वृद्धि होगी।' इन्द्रूजी ने कहा—'गौरांजी ! तुम्हारे मन मे और भी कुछ है क्या ?' गौराजी—'और तो कुछ भी नही, पर गुरुदेव की मुख-मुद्रा सामने नही है ।' रामविलासजी एक-दो फोटो लाये तब गौरांजी ने कहा—मैं इनके क्या दर्शन करूं ! पन्नांजी ने कहा—क्या बाद मे आचार्यप्रवर के दर्शन करोगी ? गौराजी—इच्छा तो है । पन्नांजी—प्रकट रूप में करना। गौरांजी—'यह तो समय पर देखा जायेगा, जैसा अवसर होगा वैसा.......... ।' पन्नाजी आदि साध्वियो के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा—'आपने मुझे बहुत-बहुत सहयोग दिया है। मैं पूर्ण सतुष्ट हूं। आप सभी से क्षमायाचना करती हूं। बस ! अब थोड़ी ही देर है। मे परम प्रसन्न और समाधि मे हूं । नीचे बिछाये हुए वस्त्र अपने आप बाहर निकाल दिये और कहा—'मेरे पैरो के कोई हाथ न लगाये ।' सोये-सोये गुरु-दिशा मे वंदन किया।' 'जय हो गुरुदेव की जय हो गरुदेव की' कहते-कहते स्वर्गगमन कर दिया। अन्त समय तक आंखे खुली रही, सावधानता बनी रही।

इस प्रकार सात दिन संलेखना एवं १४ घंटे और १३ मिनिट के चौविहार अनशन से सं० २००६ (चैत्रादि क्रम से २००७) वैशाख कृष्णा १३ को सूरवाल में स्वर्गवास हुआ। जिस स्थान पर उनके शरीर का दाह-संस्कार किया गया वहां १२ दिनों तक बहुत सुगंध रही।

साध्वी पन्नांजी ने आचार्यप्रवर को उपर्युक्त समग्र घटना वृत्तान्त सुनाया। मुनिश्री नथमलजी (युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ) ने उसे लिपिबद्ध किया। उसके आधार से उक्त विवरण संकलित किया गया है।

साध्वी विजयश्री (११४५) 'सरदारशहर' ने इसी संदर्भ मे विस्तार पूर्वक निबंध लिखा; जो जैन भारती वर्ष ३०, अंक २६ से ३३ में प्रकाशित है।

साध्वी गौरांजी द्वारा अन्तिम दिनो में कथित कतिपय घटनाएं ऐसी हैं जो अवधिज्ञान की द्योतक है।

९६७।८।२४२ साध्वीश्री सूवटांजी (लाडनूं)

(संयम-पर्याय सं० १९९२-२०३५)

छप्पय

चरण सूवटां ने लिया सुता 'सोहनां' युक्त।
समता का अनुभव किया होकर ममता मुक्त।
होकर ममता मुक्त लाडनूं शहर निवासी।
था उनका परिवार धर्म में दृढ़ विश्वासी।
भाग्योदय. से उभय को मिला मार्ग उपयुक्त।
चरण सूवटां ने लिया सुता 'सोहनां युक्त ॥१॥

शहर उदयपुर में खिला अजब-गजब का सीन।
कार्तिक कृष्णा पंचमी साल नवति-दो पीन।
साल नवति-दो पीन भाग्यशाली गणमाली।
पन्द्रह दीक्षा साथ दिशा में फैली लाली।
दीक्षित हो माता सुता गण में हुई नियुक्त[1]।
चरण सूवटां ने लिया सुता 'सोहनां' युक्त ॥२॥

दोहा

केशर चूनां हरकंवर, श्रमणी सह सोमंग।
फिर विहरण करती रही, सती सोहनां संग[2] ॥३॥

छप्पय

सती सूवटां साधना करने लगी यथेष्ट।
ध्यान मौन,स्वाध्याय सह विविध त्याग तप श्रेष्ठ।
विविध त्याग तप श्रेष्ठ अन्त में करके अनशन।
दिखलाया पुरुषार्थ निखारा संयम-जीवन।
याद किया प्रभु-वचन को जो आगम में उक्त।
चरण सूवटां ने लिया सुता 'सोहनां' युक्त ॥४॥

अनशन का पंजाब में फैला बहुत प्रभाव।
चमत्कार से हृदय में जागा श्रद्धा-भाव।
जागा श्रद्धा-भाव, सभी जन शीष झुकाते।
मुख-मुख पर जय घोष सती गुण गरिमा गाते।
निकले दिन छब्बीस कुल तप-अनशन संयुक्त।
चरण सूवटां ने लिया सुता 'सोहनां' युक्त ॥५॥

दोहा

दो हजार पैंतीस का, आया कार्तिक मास।
दीपमालिका के निकट, धनतेरस दिन खास ॥६॥

'भीखी' में पंडित-मरण, प्राप्त किया सोल्लास।
शिखा चढ़ी आकाश में, लिखा नया इतिहास ॥७॥

सती सोहनां ने दिया, जीवन भर सहयोग।
उऋण मातृ-ऋण से हुई, रख हर क्षण उपयोग ॥८॥

स्तुति गाई गुरुदेव ने, खींच लिया है सार।
साध्वी-प्रमुखा आदि ने, व्यक्त किये उद्गार ॥९॥

१. साध्वीश्री सूवटाजी का जन्म सं० १९६४ कार्तिक कृष्णा १३ को लाडनूं (मारवाड) के बोरड (ओसवाल) परिवार मे हुआ। उनके पिता का नाम चंदनमलजी और माता का फूली बाई था। सूवटांजी आदि चार भाई और दो बहिने थी। छह भाई बहिनो में सूवटांजी सबसे छोटी थी। वे जब तेरहवें साल मे प्रविष्ट हुई तब उनका विवाह लाडनूं में ही चूनीलालजी बैद (ओसवाल) के सुपुत्र मनसुखलालजी के साथ कर दिया गया। उनका दाम्पत्य-जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा। पांच साल बाद उनके एक पुत्री हुई जो एक महीने बाद मृत्यु को प्राप्त हो गई। फिर एक पुत्री हुई जिसका नाम रखा सोहनां। सोहनां जब दो साल की हुई तब उसके पिता मनसुखदासजी का देहांत हो गया। प्रकृति ने सूवटांजी के सुहाग चिह्न को लूट लिया। उन्होंने उस आघात को धैर्य से सहा। पति वियोग के बाद वे अधिकतर अपने पीहर मे रहने लगी। नेमीचंदजी आदि चारों भाई उन्हें अपने पांचवें भाई

की तरह ही समझते और सम्मान की दृष्टि से देखते। वहिन सूवटांजी भाइयो का स्नेह पाकर सानंद रहती और अपने जीवन को धर्म-ध्यान में लगाकर साधु-साध्वियो की सेवा का लाभ उठाती। पुत्री को ही आधार-शिला मनाकर उसका पालन-पोषण करती और उसमें धार्मिक संस्कार भरती। पुत्री सोहनांजी जव नौ साल की हुई तव धार्मिक संस्कारो ने वल पकड़ा और वैराग्य के अंकुर फूट पड़े। पुत्री का वैराग्य दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया और वे दीक्षा के लिए दृढ़ संकल्प हो गईं। माता के मन में विविध विकल्प पैदा होने लगे—'क्या मैं इसके साथ दीक्षा ग्रहण कर लू या गृहस्थावास मे रहकर धर्म-जागरणा करती रहूं, इत्यादि........।' एक दिन वे आराम से सो रही थी कि एक आवाज कानो में गूंजने लगी—'तुम भी संयम के लिए तैयार हो जाओ, यदि पीछे घर मे रहोगी तो तुम्हारे दोनो पैर सड जायेंगे।' सुवह उठते ही उन्होने सब वात भाइयो से कही और पुत्री के साथ दीक्षित होने का दृढ निश्चय कर लिया।

स० १९९० मे पूज्य कालूगणी का चातुर्मास सुजानगढ़ मे था। मा-पुत्री दोनो ने गुरुदेव के दर्शन कर अपनी भावना अभिव्यक्त की। आचार्यवर ने फरमाया—'अभी सोहनां छोटी है।' फिर स० १९९१ के मर्यादा-महोत्सव पर सुधरी मे दर्शन कर निवेदन किया तव गुरुदेव ने साधु-प्रतिक्रमण सीखने की आज्ञा प्रदान की। दोनों ने शीघ्र ही साधु प्रतिक्रमण याद कर लिया।

(पुस्तक से)

तत्पश्चात् माता सूवटांजी ने २७ साल की अवस्था मे अपनी नव-वर्षीया पुत्री सोहनांजी (९०१) के साथ सं० १९९२ कार्त्तिक कृष्णा ५ को आचार्यवर कालूगणी के हाथ से उदयपुर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन कुल पद्रह दीक्षाएं हुईं—३ भाई, १२ वहिनें।[1] उनके नाम इस प्रकार हैं :—

---

१. उदयचंद भाग्योदये, जोड़ायत संघात।
पंद्रह दीक्षा मे प्रथम, ललित लूणिया जात॥
अर्जुन नाथद्वार रो, कोठारी-सुत भाल।
मीठालाल मनोवली, वालक-भाल विशाल॥
चंदेरी री सूवटां, सुता सोहनां भेट।
भत्तू पुर-सरदार री, लिछमां पुर आमेट॥
रतनी पानकंवर उभय, भगिनी पुर-शार्दूल।
गुलावां उदियापुरी, पिता-नाम शशि फूल॥

१. मुनिश्री उदयचंदजी (५०८) सरदारशहर
२. ,, अर्जुनलालजी (५०९) नाथद्वारा
३. ,, मीठालालजी (५१०) उदयपुर
४. साध्वीश्री सूवटांजी (९६७) लाडनूं
५. ,, भत्तूजी (९६८) सरदारशहर
६. ,, लिछमांजी (९६९) आमेट
७. ,, मनोरांजी (९७०) सरदारशहर
८. ,, रतनकंवरजी (९७१) शार्दूलपुर
९. ,, गुलाबाजी (९७२) उदयपुर
१०. ,, चम्पाजी (९७३) राजलदेसर
११. ,, पानकंवरजी (९७४) शार्दूलपुर
१२. ,, कमलूजी (९७५) नोहर
१३. ,, केशरजी (९७६) पड़िहारा
१४. ,, सोहनांजी (९७७) लाडनूं
१५ ,, चादकंवरजी (९७८) सरदारशहर

दीक्षा-समारोह बड़ी धूम-धाम से हुआ। राजकीय लवाजमा—हाथी, घोडे, सरकारी बैंड-वाजा आदि जुलूस मे आया। दीक्षा सूरजपोल दरवाजा के वाहर महाराणा कॉलेज मे लगभग २० हजार जन की उपस्थिति मे हुई। वाहर से गुरुदेव की सेवा में आने वाले यात्रियो की संख्या लगभग ७ हजार थी।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

विस्तृत जानकारी के लिए पढ़ें—कालूयशोविलास उल्लास ५ ढा० १ से ३।

२. दीक्षा लेते ही मा-पुत्री दोनो ने पहला चातुर्मास (सं० १९९३) साध्वी केशरजी (८१२) 'श्रीडूंगरगढ़' के साथ पुर (मेवाड़) मे किया। चातुर्मास के वाद मर्यादा-महोत्सव पर आचार्यवर ने दोनों को साध्वी चूनांजी

चम्पा राजलदेस री, कमलू नोर (नोहर) निहार।
केशर पुर पड़िहार री, चांदकंवर सुखकार॥
कार्त्तिक कृष्णा पंचमी, मानै परम प्रमोद।
न्हावै निज आमोद में, उपशम रस रै होद॥

(कालू० उ० ४ ढा० १६ गा० ९ से १४)

(८१६) 'बीदासर' के सिंघाड़े मे भेज दिया। उनके साथ दोनो चार साल रही। उसके बाद साध्वी हरकंवरजी (८४२) 'फतेहपुर' के साथ भेज दिया गया। उनके सान्निध्य मे पांच साल तक रहकर साध्वी सोहनांजी पढ़-लिखकर तैयार हो गई तब सं० २००२ में आचार्यश्री ने उन्हें अग्रगण्या बना दिया। तब से ३३ साल तक साध्वी सूवटांजी साध्वी सोहनांजी के साथ विहार करती रही।

(पुस्तक से)

३. साध्वी सूवटांजी पढी-लिखी नही थी। पर उनमे संघ-संघपति के प्रति अच्छी निष्ठा थी। ध्यान, मौन, त्याग-तपस्या द्वारा अपने संयमी जीवन को विशेष रूप से सुशोभित करती रही।

नियम—सं० २०२४ से प्रतिदिन ११ घंटा मौन तथा सं० २०३२ से पांच घंटा मौन। सं० २०२४ से प्रतिदिन पांच हजार पद्य का जाप तथा २०० गाथाओ का स्वाध्याय।

खाद्य संयम—सं० २००१ से आजीवन ४ विगय खाने का त्याग तथा आजीवन ३१ द्रव्यो से अधिक खाने का त्याग।

भोजन के बाद घंटे दो घंटे तक कुछ भी न खाने का त्याग।

तपस्या

गृहस्थाश्रम की—

उपवास	३	४	५	७	८
३६१	८	४	२	१	१

साध्वी जीवन की—

उपवास	२	३	५
६३२	३३	४	२

। तथा दस बार दसप्रत्याख्यान किये।

(परिचय-पत्र)

४. सं० २०३४ से साध्वी सूवटांजी का शरीर बीमारियो के कारण काफी कमजोर चल रहा था। अवस्था भी लगभग सत्तर साल की हो चुकी थी। फिर भी वेदना को शांत भाव से सहती हुई विहरण करती रही। सं० २०३७ मे आचार्यश्री ने साध्वी सोहनांजी का चातुर्मास भीखी फरमाया। साध्वी सूवटाजी अस्वस्थ होने पर भी साहसपूर्वक छोटे-छोटे विहार कर भीखी पहुंची और गुरुदेव के आदेश को क्रियान्वित किया।

वहां जाने के बाद उनकी भावना मे परिवर्तन आया। उन्होंने सोचा—अव मैं अवस्था प्राप्त हो चुकी हूं। शरीर विविध रोगो से प्रतिदिन कृश होता जा रहा है, दवाइयां कोई लाभ नही उठा रही है अत. अच्छा हो कि सलेखना (तप विशेप) कर समाधि-मरण को प्राप्त करूं। उन्होने सलक्ष्य आश्विन शुक्ला २ को तप चालू कर दिया। आश्विन शुक्ला १२ को साध्वी सोहनांजी द्वारा पत्र लिखवाकर अपनी भावना आचार्यप्रवर तक पहुंचाई—

"श्री गुरुदेव रे चरणां में वन्दना।"

गुरुदेव ! ओ भिक्षु-शासन भाग्यशाली नैं ही मिलै। ई शासन और शासनपति री मैं कांई महिमा वताऊं। महिमा घणी है, म्हारी जीभ एक है। आपकी छत्र-छाया मे ४३ वर्प नन्दन-वन का सुख देख्या। ओ सारो स्वामीजी व आपरो ही प्रभाव है। आपरे प्रताप स्यूं सत्यां म्हारी घणी-घणी चाकरी करै है। आं ११ महिना वीमारी में जका शारीरिक कष्ट मैं भोग्या, वै केवली भगवान जाण सकै या अै सत्यां जाणै। वीमारी रो अंत आतो दिस्यो कोनी, दवाई आदि स्यूं शांति मिली कोनी, जद मैं भिक्षु स्वामी रो नाम लेकर तपस्या शुरू करी हूं, आज तांई आं वर्पा में संवत्सरी के सिवा पोहर भी कोनी करी। पण गुरुदेव आप अन्तर्यामी हो। आपके नाम स्यूं ही म्हारी भावना पूरी होसी। अव म्हारो विचार ऊंचो चढणै रो है आप साहरो देईज्यो और मैं संथारे री आज्ञा मंगाऊं जद आप आज्ञा दिराने री कृपा कराइज्यो।

गुरुदेव ! भवानीगढ़, संगरूर, सुनाम व भीखी आं च्यार ही जग्यां का भाई-वहन रोग अवस्था में पूर्ण सजगता स्यूं सेवा करी ओ सव आपको ही पुण्य प्रताप हो। ई भिक्षु-शासन में रोगी और ग्लानि री सेवा हुवै विसी दूसरी जग्यां न हुवै न होसी। म्हारै मन में इस्यो अनुभव है कि भीखणजी स्वामी अव शक्ति दे रह्या है और संथारो व तपस्या करणै री भावना म्हारै मन में उत्कृष्टी पैदा हुई है।

आप आज्ञा दिराओ मैं जल्दी स्यूं जल्दी म्हारी भावना पूरी करूं। म्हारो मन वहुत मजबूत हैं ई पर आप विश्वास रखाइज्यो।

—आपकी आज्ञाकारिणी शिष्या मूवटी"

आचार्यप्रवर का आदेश प्राप्त कर साध्वीश्री तप को आगे वढ़ाती रही। कार्त्तिक कृष्णा २ रविवार को दिन के ११ वजे तपस्या के १९वे दिन

ऊर्ध्व भावो से गुरुदेव के गुणगान करती हुई साध्वी सोहनाजी द्वारा आजीवन अनशन ग्रहण किया। अनशन की सूचना मिलते ही आस-पास की जनता साध्वीश्री के दर्शनार्थ उमड़ पड़ी। उस समय एक अभूतपूर्व बात यह हुई कि जिस दिन उन्होने अनशन किया उस दिन से अंत तक पंजाब के काफी क्षेत्रों में कई बार केशर व चंदन की सूक्ष्म-सूक्ष्म बूंदो की वर्षा हुई। उसकी इतनी सौरभ फैली कि जन-जन मे एक अलौकिक चमत्कार हो गया। नई जागृति की लहर दौड़ गई। श्रद्धा से सबका सिर झुक गया। तेरापथ धर्मसंघ की अपूर्व महिमा फैली।

सं० २०३५ कार्तिक कृष्णा १३ को भीखी मे उन्होने समाधिपूर्वक पंडित-मरण प्राप्त किया। १८ दिन के तप और ८ दिन अनशन, कुल २६ दिन से अपना कार्य सिद्ध कर लिया। साध्वी सोहनांजी आदि सभी साध्वियो ने उन्हे बहुत सहयोग दिया। साध्यी सोहनांजी साध्वी सूवटाजी की आजीवन सहायिका रहकर एवं शेष में तप अनशन करवाकर मातृ-ऋण से उऋण हो गई।

(पुस्तक से)

आचार्यश्री तुलसी तथा साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी ने साध्वीश्री की स्मृति मे निम्नोक्त उद्‌गार व्यक्त किये:—

"साध्वी सूवटांजी (लाडनू) साध्वी सोहनाजी की संसार-पक्षीया माता थी। इस वर्ष उनका चातुर्मास भीखी (पंजाब) था। काफी समय से अस्वस्थ थी। अस्वस्था मे तपस्या की भावना जगी और फिर उन्होने संथारा करने का निश्चय किया, उनकी भावना साकार हुई।

संथारे मे विशुद्ध परिणामो से उन्होने पंडित-मरण को प्राप्त किया। पंजाब मे इसकी बहुत प्रभावना हुई। अन्तिम सस्कार मे लगभग दस हजार लोगो ने भाग लिया।

स्थानीय लोग कहते है कि संथारे से लेकर स्वर्गवास होने तक पचास-पचास मील के क्षेत्र मे केशर की वर्षा हुई।

हमारा धर्मसंघ सौभाग्यशाली है। जब तक शरीर साथ देता है साधु-साध्वियां जागरूकतापूर्वक संयम का पालन करते हैं। जब शरीर साथ नहीं देता है, तो अनशनपूर्वक शरीर को छोड देते हैं।

साध्वी सूवटांजी ने अनशन पूर्वक शरीर का परित्याग करके जीवन को धन्य बनाया है और शासन की शोभा बढ़ाई है।"

—आचार्य तुलसी

मृगसर कृष्णा ७.

"साध्वीश्री सूवटांजी (लाडनूं) एक ऐसी साधिका थी जो अपनी पुत्री (साध्वीश्री सोहनांजी के साथ साधना पथ पर अग्रसर हुई। वे अधिक पढ़ी लिखी नही थीं, पर धर्म-संघ और संघपति के प्रति उनके मन में अटूट आस्था थी, उनका जीवन सहज सादा और संयत था। स्वाध्याय उनकी रुचि का विषय था। उनके जीवन में कर्मठता थी। वृद्धावस्था आने के बाद वे अपने पास रहने वाली छोटी-छोटी साध्वियों के काम में हाथ बंटाया करती थी। उन्हे जब कहा जाता कि आप वृद्ध हो गई हैं छोटी साध्वियों को काम करने दें, तब वे कहा करती थी—'मैं न पढ़ सकती हूं न लिख सकती हूं अतः उस निर्जरा को क्यो खोऊं।'

साध्वी सूवटांजी अपने जीवन के अन्तिम वर्ष तक यात्रा करती रही। पंजाब आने के बाद उनके स्वास्थ्य मे कुछ गड़बड़ हुई। इससे अन्तर्मुखता बढ गई। शरीर की नश्वरता का उन्हे आभास हुआ और उन्होने यावज्जीवन अनशन स्वीकार कर लिया।

अनशन काल में उनके परिणामो की विशुद्धि बढ़ती गई। उनके अनशन से पंजाब क्षेत्र मे धर्म शासन की बड़ी प्रभावना हुई।

दिवंगत आत्मा जल्दी से जल्दी मुक्ति की ओर अग्रसर हो इसी शुभ कामना के साथ......................।"

—प्रमुखा साध्वी कनकप्रभा

'साधना की महक' नामक एक प्रकाशित लघु पुस्तिका है, उसमे साध्वीश्री की स्मृति मे कई साध्वियो द्वारा व्यक्त किये गये विचार संकलित हैं।

९६८।८।२४३ साध्वीश्री भत्तूजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९९२, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री भत्तूजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के दफतरी (ओसवाल) परिवार में सं० १९६९ आपाढ शुक्ला १२ को पुष्य नक्षत्र मे हुआ। उनके पिता का नानूरामजी और माता का सेरांवाई था। सेरांवाई श्रद्धानिष्ठ श्राविका थी और तपस्या मे सदैव आगे रहती थी। उन्होंने अपने जीवन में उपवास से इकतीस दिन तक क्रमवद्ध तप किया। माता की प्रेरणा से वालिका भत्तू में धार्मिक संस्कार पनपने लगे और त्याग-तपस्या के प्रति झुकाव होता गया। दो भाई और तीन वहिनो मे वालिका भत्तू सवसे छोटी संतान थी। सं० १९८० में भत्तूजी जव ग्यारह साल की हुई तव उनका विवाह सरदारशहर में ही भीखमचंदजी गधैया के सुपुत्र जयचंदलालजी के साथ कर दिया गया। समयान्तर से उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम वच्छराज रखा गया। भत्तूजी गृहस्थवास मे रहती हुई कुछ वर्षों तक यथाशक्य धर्म-ध्यान करती रही।

वैराग्य—अपने ज्येष्ठ भ्राता करणीदानजी की आकस्मिक मृत्यु को देखकर भत्तूजी को संसार की नश्वरता का वोध हुआ। उनकी चिंतन धारा वैराग्य मे परिणत होती गई। उन्होंने दीक्षा लेने का निर्णय कर लिया। दीक्षा की अनुमति मांगी तव परिवार वाले सहमत नहीं हुए। इसके लिए भत्तूजी ने अपनी साधना चालू रखते हुए एक महीने तक छह विगय खाने का परित्याग रखा। चार महीने चार द्रव्य (मोठ, बाजरे की रोटी, फली की सब्जी, कढी, खिचडी) के अतिरिक्त कुछ नहीं खाया। आखिर उनकी दृढ़ता के सामने सभी अभिभावक जन झुक गए और सहर्ष दीक्षा की आज्ञा दे दी।

दीक्षा—भत्तूजी ने २३ वर्ष की सुहागिन अवस्था में पति तथा नव-वर्षीय पुत्र (वच्छराज) को छोडकर सं० १९९२ कार्त्तिक कृष्णा पंचमी को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा उदयपुर में दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली १५ दीक्षाओं का वर्णन साध्वी श्री सुवटांजी (९६७) के प्रकरण में कर दिया गया है।

साधना—साध्वी भत्तूजी संयमचर्या का पालन करती हुई सेवाभावना, तपस्या और स्वाध्याय में उत्तरोत्तर वृद्धि करती रही। सं० २०२७ से साध्वीश्री सुखदेवांजी (११३२) 'चूरू' के सिंघाड़े[1] मे रहकर साधना आदि में निखार ला रही है।

तपस्या—साध्वीश्री विविध तपस्या करके तपस्विनी साध्वियों की कोटि में समाविष्ट हो गई। उनके द्वारा की गई सं० २०३८ तक की तपः तालिका निम्न प्रकार है—

तिविहार तप

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९
१७४०	९७	३८	१८	१०	१	१	१	१

आछ के आधार से

६ दिन सं० २०१५ टाडगढ़ मे।

१३५ दिन (साढ़े चारमासी) सं० २०१७ राजनगर मे द्वि-शताब्दी समारोह के शुभ अवसर पर आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य मे।

१८० दिन (छहमासी) मौन सहित सं० २०२० गोगुन्दा मे।

४७ दिन (डेढ़मासी) मौन सहित सं० २०३४ आसीन्द में।

९१ दिन (तीनमासी) सं० २०३८ रीछेड़ मे। प्रतिदिन २२ घंटे मौन तथा ग्यारह हजार पद्यो का जप किया।

आयम्बिल तप

१९० दिन—लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप की प्रथम परिपाटी (अर्थात् उपवास आदि के स्थान पर आयम्बिल किये) सं० २०१५ टाडगढ़ मे प्रारंभ कर शेषकाल मे विहरण करते हुए संपन्न की।

३० दिन सं० २०२६, खीवाड़ा मे।

१५ दिन स० २०३१, ऊमरा मे।

३२ दिन सं० २०३५, भीलवाड़ा में।

३० दिन सं० २०३६, आदर्शनगर (सवाईमाधोपुर) में।

उक्त तप के अतिरिक्त कंठीतप, धर्मचक्रतप, धर्मचक्रवाल तप तथा अढ़ाई-सौ प्रत्याख्यान किये। गृहस्थ जीवन मे उपवास से ९ दिन तक लड़ीवद्ध

१. पहले अन्य अग्रगण्या साध्वियो के साथ विहार किया।

तप किया ।

तप से स्वास्थ्य लाभ—(क) साध्वीश्री के सं० १९९९ से हिस्टीरिया की वीमारी थी । जिसका लगभग १८ वर्षो वाद सं० २०१७ मे साढ़े चार-मासी (आछ के आधार से) तप करने से निवारण हो गया ।

(ख) जयाचार्य निर्वाण-शताब्दी वर्ष (सं० २०३८) मे साध्वीश्री के तीन महीने की तपस्या (आछ के आधार से) चल रही थी, उसके ६६वें दिन अकस्मात् रक्त-वमन का प्रकोप हो गया जिससे काफी दुर्वलता वढ़ती गई । तपस्या के वाद में भी उसका प्रभाव दो वर्षो तक रहा । आखिर तप-औषध के उपचार से वीमारी समाप्त हो गई ।

इस प्रकार साध्वीश्री भत्तूजी ने विविध तप किया और कर रही है । ऐसे तपस्वी साधु-साध्वियो द्वारा तेरापंथ धर्मसंघ गौरवान्वित हो रहा है ।

(परिचय-पत्र)

९६१।८।२४४ साध्वीश्री लिछमांजी (आमेट)

(संयम-पर्याय सं० १९९२-२०२४)

सोरठा

लिछमां सती विनीत, अम्बापुर की वासिनी।
कर संयम से प्रीत, बनी मोक्ष-पथ-गामिनी[1] ॥१॥

होकर के निर्भीक, कदम बढ़ाती ही गई।
की मंजिल नजदीक, संवत्सर बतीस से ॥२॥

सित तेरस आसोज, दो हजार चौवीस की।
भर सुकृतात्मक ओज, स्वर्ग लाडनूं से गई[2] ॥३॥

१. साध्वीश्री लिछमांजी की ससुराल आमेट (मेवाड़) के लोढ़ा (ओसवाल) गोत्र मे और पीहर कांकरोली के पगारिया गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९७० आषाढ कृष्णा १० को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम रंगलालजी, माता का सुन्दरबाई और पति का बहादुरमलजी था।

(साध्वी-विवरणिका)

लिछमांजी ने पति वियोग के बाद सं० १९९२ कार्त्तिक कृष्णा ५ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से उदयपुर में दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली १५ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री सूवटांजी (९६७) 'लाडनूं' के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. उन्होंने बत्तीस साल संयम में रमण कर सं० २०२४ आश्विन शुक्ला १३ को लाडनूं में अपना कार्य सिद्ध कर लिया।

(ख्यात)

उस वर्ष लाडनूं 'सेवाकेन्द्र' में साध्वीश्री सुन्दरजी (८४५) 'मोमासर' और मोहनांजी (९४१) 'डीडवाना' थीं।

(चातुर्मासिक तालिका)

९७०।८।२४५ साध्वी मनोहरांजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९९२, १९९७ में गणबाहर)

दोहा

वास शहर सरदार में, गोत्र लूनिया ज्ञेय।
मनोहरां नै पति सहित, अपनाया पथ श्रेय[1] ॥१॥

कर न सकी वे नियति वश, संयम का निर्वाह।
ली है गण से अलग हो, वापस घर की राह[2] ॥२॥

१. मनोहरांजी की ससुराल सरदारशहर (स्थली) के लूनिया (ओसवाल) गोत्र में और पीहर वही दूगड गोत्र मे था। उनका जन्म सं० १९७३ फाल्गुन शुक्ला १४ को हुआ।

(ख्यात)

उनके पिता का नाम जुहारमलजी, माता का हुलासीबाई और पति का उदयचंदजी था।

(साध्वी-विवरणिका)

मनोहरांजी ने १९ वर्ष की सुहागिन वय मे अपने पति उदयचंदजी (५०८) के साथ सं० १९९२ कार्त्तिक कृष्णा ५ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा उदयपुर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली १५ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री सूवटाजी (९६७) 'लाडनूं' के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

उनकी संसार-पक्षीया दो ननदें—साध्वीश्री छगनांजी (९००) 'राजलदेसर' और पानकंवरजी (९०२) 'सरदारशहर' सं० १९८५ में दीक्षित हो गई थी।

२. मनोहरांजी पांच साल धर्म-संघ मे रही, फिर साधुव्रत न निभा सकने के कारण सं० १९९७ मृगसर शुक्ला ६ को पेटलावद (मालवा) में गण से पृथक् हो गईं।

९७१।८।२४६ साध्वी रतनकंवरजी (शार्दूलपुर)

(दीक्षा सं० १९९२, २०१८ में गणबाहर)

'७७वीं कुमारी कन्या'

रामायण-छन्द

'पुर शार्दूल' निवासी परिजन कोठारी कुल कहलाया।
रतनकंवर ने लघु भगिनी सह संयम का पथ अपनाया।[1]
लेकिन उग्र प्रकृति के कारण उलटा चलता गया दिमाग।
अनुशासन की अवगणना से उजड़ गया जीवन का बाग ॥१॥

दोहा

आकर के आवेश में, अनशन किया विरंग।
निभ न सका तब शेष में, पड़ा छोड़ना संघ[2] ॥२॥

१. रतनकंवरजी का जन्म शार्दूलपुर (स्थली) के कोठारी (ओसवाल) गोत्र में सं० १९७७ आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को हुआ (साध्वी विवरणिका में आश्विन कृष्णा अमावस्या है)। उनके पिता का नाम कुन्नणमलजी और माता का जमना बाई था।

(ख्यात)

रतनकंवरजी ने १५ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १९९२ कार्तिक कृष्णा ५ को अपनी छोटी बहिन पानकंवरजी (९७४) के साथ आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से उदयपुर में दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली १५ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री सूवटांजी (९६७) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. रतनकंवरजी की प्रकृति अत्यन्त उग्र थी, जिससे कोई भी अग्रगण्या साध्वी उन्हे साथ ले जाने के लिए तैयार नही होती। फिर भी आचार्यश्री उनका निर्वाह करवाने के लिए प्रतिवर्ष उपयुक्त व्यवस्था करवाते।

उनको तथा उनकी दूसरी वहिन साध्वी पानकंवरजी को साथ-साथ रखते। आचार्यप्रवर के आदेश से साध्वियां साथ में ले जाती और उन्हे समुचित सहयोग देतीं। लगभग २५ साल वीत गए, फिर भी प्रकृति मे कोई परिवर्तन नहीं आया। सं० २०१८ फाल्गुन महीने में गंगाशहर में आचार्यश्री ने उनसे कहा—'तुम दोनो वहिनो को साथ मे रखना लाभदायी नहीं है अतः अलग-अलग रखने का विचार है। यह सुनते ही रतनकंवरजी ने आवेश मे आकर कहा—'मुझे आहार करने का परित्याग है, अर्थात् अनशन कर दिया।' आचार्यश्री ने फरमाया—'अच्छी वात है, अपने नियम को निभाओ।' जव तक साधुत्व का पालन करोगी तव तक साध्विया तुम्हारी सेवा करेंगी।' उनके संवंधियों को भी इस स्थिति से अवगत करवा दिया गया।

कुछ दिनो वाद उनकी भावना कमजोर हो गई। आखिर नियम न निभा पाने के कारण १८ वें दिन चैत्र कृष्णा ३ को रात्रि के ५ वजे गण से पृथक् होकर गृहस्थ वन गई।

(तुलसीगणी की ख्यात)

९७२।८।२४७ साध्वी गुलाबांजी (उदयपुर)

(दीक्षा सं० १९९२, २०३१ में गणबाहर)

'७८वीं कुमारी कन्या'

परिचय—गुलाबांजी का जन्म उदयपुर (मेवाड़) के पोरवाल परिवार मे सं० १९७८ पौष शुक्ला तृतीया को हुआ। उनके पिता का नाम फूलचंदजी और माता का लाडांजी था।

दीक्षा—उन्होने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १९९२ कार्त्तिक कृष्णा ५ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा उदयपुर मे दीक्षा स्वीकार की। उस दिन होने वाली १५ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री सुवटांजी (९६७) 'लाडनूं' के प्रकरण मे कर दिया गया है।

उनकी संसार-पक्षीया छोटी बहिन जतनकंवरजी (९८१) ने सं० १९९३ में तथा दूसरी बहिन अभयश्रीजी (११४२) ने सं० २००० में दीक्षा ग्रहण की।

विहार—गुलाबांजी ने कुछ वर्ष गुरुकुलवास में रहकर ज्ञानार्जन किया। आचार्यश्री तुलसी ने सं० २००३ में उनका सिंघाड़ा बनाया। उन्होंने अनेक क्षेत्रों में विहरण कर धर्म का प्रचार-प्रसार किया। उनके चातुर्मास स्थल निम्न प्रकार हैं—

सं० २००४	ठाणा	५	आमेट
सं० २००५	,,	५	भीलवाड़ा
सं० २००६	,,	५	उदयपुर
सं० २००७	,,	५	जयपुर
सं० २००८	,,	५	जोधपुर
सं० २००९	,,	५	वढ़वाणसिटी
सं० २०१०	,,	५	बरवाला
सं० २०११	,,	५	रीछेड़
सं० २०१२	,,	५	बीकानेर
सं० २०१३	,,	५	लुधियाना
सं० २०१४	,,	५	अहमदाबाद

सं० २०१५	ठाणा	५	हिसार
सं० २०१६	"	५	आदमपुर
सं० २०१७	"		राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा मे)
सं० २०१८	"	४	आसीद
सं० २०१९	"	५	बीकानेर
सं० २०२०	"	५	गंगाशहर
सं० २०२१	"		गगाशहर (किस्तुरांजी (९३६) 'लाडनूं' आदि के साथ)
सं० २०२२	"	४	कंटालिया
सं० २०२३	"	४	सुधरी
सं० २०२४	"	४	जोधपुर
सं० २०२५	"		सरदारपुरा[1]
सं० २०२६	"		जोधपुर[2]
सं० २०२७	"	४	रीछेड
सं० २०२८	"	४	पडासली
सं० २०२९	"	४	राजाजी का करेड़ा
सं० २०३०	"	४	गोगुन्दा
सं० २०३१	"	४	उदयपुर

(चातुर्मासिक तालिका)

संघ से बहिष्कृत—आचार्यप्रवर ने साध्वी गुलाबांजी को सं० २०३१ के चातुर्मास के लिए राजनगर की ओर जाने का निर्देश दिया पर वे उदयपुर ही रहना चाहती थी। उनके अधिक आग्रह पर आचार्यप्रवर ने उनका चातुर्मास उदयपुर फरमा दिया। उस वर्ष मुनि डूगरमलजी का चातुर्मास भी उदयपुर था। उन्होंने चातुर्मास मे साध्वी गुलाबांजी को वत्सलता से कई वार समझाया। वे मुनिश्री की वत्सलता से बहुत सन्तुष्ट थी। चातुर्मास समाप्ति पर जब उन्हें फिर विहार करने का आदेश मिला तो वे विहार करने को तैयार नही हुई। तब आचार्यप्रवर ने मुनि डूंगरमलजी को एक विशेष संदेश दिया जिसमे था—अगर बीमार साध्वी तीजाजी (अभयश्रीजी)

१. चातुर्मासिक तालिका मे जतनकवरजी (उदयपुर) के नाम से चातुर्मास है।
२. चातुर्मासिक तालिका मे जतनकंवरजी (उदयपुर) के नाम से चातुर्मास है।

(११४२) 'उदयपुर' को गुलावांजी अपने साथ ही रखना चाहे तो वे विहार करके राजनगर आ जायें। अगर तीजांजी उदयपुर ही रहना चाहें तो उनकी सेवा में साध्वी कंचनकंवरजी (११८४) 'उदयपुर' आ जाये और साध्वी तीजांजी उनके साथ उदयपुर रह जायें।

साध्वी गुलावांजी आदि विहार करके एकवार दर्शन कर ले। उन्हें वापस वही भेजा जा सकता है पर एकवार यहां आ जाये। इन विकल्पों में अगर वे कोई भी विकल्प स्वीकार न करतीं हो, अनुशासन की अवहेलना करती हो तो उनका संघ से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया जाये।

मुनि डूंगरमलजी ने यह संदेश स्वयं साध्वी गुलावांजी को, उनके पारिवारिक जनों को तथा स्थानीय प्रमुख श्रावकों को भी वतलाया। सभी ने साध्वी गुलावांजी को समझाने की चेष्टा की पर वे नहीं मानी। मुनि डूंगरमलजी ने उनके सामने और भी विकल्प रखे पर वे नही मानीं। तव साध्वी कंचनकंवरजी ने साध्वी गुलावांजी एवं साध्वी जतनकुमारीजी (६८१) 'उदयपुर' का अनुशासन भंग करने के कारण संघ से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया।

साध्वी तीजांजी स्वयं स्वेच्छा से गुलावांजी के साथ चली गई। मुनि डूंगरमलजी ने सारी स्थिति को वहुत अच्छी तरह से संभाला।

विस्तृत जानकारी के लिए देखें—ख्यात-विशेप विवरण।

९७३।८।२४८ साध्वीश्री चंपाजी (राजलदेसर)

(संयम-पर्याय सं० १९९२-२०२६)

'७९वीं कुमारी कन्या'

छप्पय

भद्र प्रकृति चंपा सती चढ़ी ऊर्ध्व सोपान।
मंजिल पाई ऊर्ध्वतम दिया वस्तुतः ध्यान।
दिया वस्तुतः ध्यान; ग्राम था राजलदेसर।
स्वजन गोत्र से वैद धर्म में जो अग्रेसर।
चंपा ने चारित्र ले पाया गण में स्थान[1]।
भद्र प्रकृति चंपा सती चढ़ी ऊर्ध्व सोपान ॥१॥

सोरठा

गुरु-आज्ञा शिर धार, सतियों सह श्रमणी रही।
फिर छह वर्ष विहार, किया अग्रणी रुप में[2] ॥२॥

छप्पय

दो हजार छब्बीस का आया श्रावण मास।
रुकने से गति हृदय की बंद हो गया श्वास।
बंद हो गया श्वास स्वर्ग में वास किया है।
संवत्सर चौंतीस साधना-स्वाद लिया है।
संयममय जीवन-मरण दोनों ही फलवान[3]।
भद्र प्रकृति चंपा सती चढ़ी ऊर्ध्व सोपान ॥३॥

१. साध्वीश्री चंपाजी का जन्म राजलदेसर (स्थली) के वैद (ओसवाल) परिवार मे सं० १९७९ आश्विन शुक्ला २ को हुआ। उनके पिता का नाम भीवराजजी था।

चंपाजी ने १३ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) मे सं० १९९२ कार्त्तिक कृष्णा ५ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा उदयपुर में दीक्षा ग्रहण की।

उस दिन होने वाली १५ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री सूवटांजी (६६७) के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

२. साध्वीश्री प्रकृति से भद्र थीं। सं० २०२० में उनका सिंघाड़ा हुआ। उनके चातुर्मास स्थल इस प्रकार है :—

सं० २०२१	ठाणा	३	सायरा
सं० २०२२	,,	३	कुवाथल
सं० २०२३	,,	४	बोरियापुर
सं० २०२४	,,	४	वगड़
सं० २०२५	,,	४	थामला
सं० २०२६	,,		रेलमगरा[1]

(चातुर्मासिक तालिका)

३. सं० २०२६ में उनका चातुर्मास रेलमगरा (मेवाड़) में था। वहां श्रावण कृष्णा ३ को अकस्मात् हृदय-गति रुक जाने के कारण वे दिवंगत हो गईं।

(ख्यात)

---

१. चातुर्मास का प्रारंभ होते ही साध्वी चंपाजी का स्वर्गवास होने से चातुर्मासिक तालिका में साध्वीश्री दाखांजी (६८२) 'तिलोली' का नाम है।

९७५।८।२५० साध्वीश्री कमलूजी (नोहर)

(संयम-पर्याय सं० १९९२-२०२८)

८१वीं कुमारी कन्या

छप्पय

कमलू श्रमणी ने किया जीवन का उत्थान।
ध्यान दिया है वास्तविक तत्त्व लिया पहचान।
तत्त्व लिया पहचान जन्म नोहर में पाया।
विदित बरड़िया गोत्र विरति का घन उमड़ाया।
लघुवय में दीक्षित हुई कर आवश्यक ज्ञान[1]।
कमलू श्रमणी ने किया जीवन का उत्थान ॥१॥

किया साल इक्कीस तक विहरण सतियों साथ।
स्वाद साधना का चखा भरा ज्ञान रस क्वाथ।
भरा ज्ञान रस क्वाथ अग्रणी पद पर आई।
पुर-पुर धर्म-प्रचार साल पन्द्रह कर पाई[2]।
किया ब्रेमहेमरेज से शीघ्र स्वर्ग-प्रस्थान।
कमलू श्रमणी ने किया जीवन का उत्थान ॥२॥

सोरठा

आठ-बीस की साल, कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी।
चरमोत्सव सुविशाल, हुआ टाडगढ़ गांव में[3] ॥३॥

१. साध्वीश्री कमलूजी का जन्म नोहर (स्थली) के बरड़िया (ओसवाल) गोत्र मे सं० १९८० भाद्रव शुक्ला १३ को हुआ। उनके पिता का नाम बनेचंदजी और माता का मौलांजी था।

कमलूजी ने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में सं० १९९२ कार्तिक कृष्णा ५ को माता-पिता, भाई-भाभी[1] आदि परिवार को छोड़कर

१. उनके छह भाई थे—संतोपचन्दजी, डालचन्दजी, नेमीचन्दजी, झूमरमलजी, मन्नालालजी, रायचन्दजी।

आचार्यश्री कालूगणी द्वारा उदयपुर मे दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १५ दीक्षाओं का वर्णन साध्वीश्री सूवटांजी (९६७) के प्रकरण में कर दिया गया है।

(ख्यात, कालूगणी की ख्यात)

उनकी वडी वहिन साध्वीश्री मनोरांजी (९११) 'सरदारशहर' ने सं० १९८७ मे दीक्षा ग्रहण की।

२. साध्वी कमलूजी दीक्षित होने के तीन साल वाद क्रमश: साध्वीश्री सुन्दरजी (८०७) 'लाडनूं', साध्वीश्री चादांजी (६७३) 'सरदारशहर' और साध्वीश्री सुन्दरजी के साथ रही। दो साल पडिहारा मे स्थिरवासिनी साध्वीश्री भूरांजी (३७८) 'लाडनू' की सेवा में रही। पन्द्रह वर्ष साध्वीश्री लिछमांजी (८०१) 'मोमासर' के सिघाडे मे रही। सं० २०१२ मे साध्वी लिछमांजी का स्वर्गवास हो गया तव साध्वी कमलूजी ने स० २०१३ का चातुर्मास आचार्यश्री की सेवा मे सरदारशहर किया। वे यथाशक्य ज्ञानार्जन कर विकास की ओर अग्रसर होती रही।

सं० २०१३ मे आचार्यश्री तुलसी ने उनका सिंघाडा वनाया। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार हैं :—

स० २०१४	ठाणा ५	फूलमंडी
स० २०१५	,, ५	अहमदगढ
सं० २०१६	,, ५	कानपुर
सं० २०१७	,, ५	नाभा
सं० २०१८	,, ६	रतनगढ
स० २०१९	,, ५	नोहर
सं० २०२०	,, ५	शार्दूलपुर
सं० २०२१	,, ५	वाड़मेर
स० २०२२	,, ५	पीलीवंगा
स० २०२३	,, ५	कालांवाली
सं० २०२४	,, ६	चूरू
सं० २०२५	,, ५	,,
सं० २०२६	,, ६	,,
स० २०२७	,, ६	,,
सं० २०२८	,, ५	टाडगढ़

(चातुर्मासिक तालिका)

३. सं० २०२८ में साध्वीश्री कमलूजी का चातुर्मास टाडगढ़ में था। वहां कार्त्तिक कृष्णा त्रयोदशी (प्रथम) को रात्रि के तीन बजे अचानक मस्तिष्क की नस फटने से उनका स्वर्गवास हो गया।

(ख्यात)

९७६।८।२५१ साध्वीश्री केशरजी (पड़िहारा)

(दीक्षा सं० १९९२, वर्तमान)

'८२वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री केशरजी का जन्म पड़िहारा (स्थली) के दूगड़ (ओसवाल) गोत्र में सं० १९८० आश्विन कृष्णा ५ को हुआ। उनके पिता का नाम महालचंदजी और माता का नाम पांची देवी था।

वैराग्य—पांचीदेवी धार्मिक एवं पापभीरु महिला थी। प्रतिदिन साधु-साध्वियो के दर्शन तथा सामायिक आदि नियमित रूप से करती थी। पच्चीस बोल, तेरहद्वार, प्रतिक्रमण आदि उन्हें कंठस्थ थे। उपवास मे १५ दिन तक लड़ीवद्ध तप भी किया था। ऐसी धर्मनिष्ठ माता के संयोग से वालिका केशर को निरन्तर सत्संस्कार मिलते रहे और धार्मिक-भावना पनपती गई। महालचंदजी के पांच पुत्र और चार पुत्रियां थी। चार पुत्रियो में सवसे छोटी पुत्री केशर एवं दूसरे नम्वर की वड़ी वहिन थी धापू, जो सुजानगढ निवासी दीपचंदजी वाफणा को व्याही गई थी।

धापूदेवी ने एक दिन अपनी लाडली वहिन केशर को प्रतिवोध की भाषा मे कहा—'वहिन ! तेरे जीजाजी (वहनोईजी) इतना सट्टा करते हैं कि जिसमे उन्होने मेरे आभूपण भी वेच दिये हैं। घर की आन्तरिक स्थिति नाजुक हो रही है। संसार मे दु:ख ही दु:ख और चिन्ता ही चिन्ता है, अत: तुम दीक्षा ले लो सुखी हो जाओगी। इस प्रकार वडी वहिन की प्रेरणा से वालिका केशर के मन में वैराग्यांकुर प्रस्फुटित हो गए। उस समय पड़िहारा मे साध्वीश्री भूरांजी (३७८) 'लाडनूं' स्थिरवास कर रही थी। उनकी सहवर्तिनी साध्वी फूलांजी (५२९) 'मंदसोर' तथा साध्वी सुन्दरजी (८८१) 'श्रीडूंगरगढ' के योग से वालिका की भावना उत्तरोत्तर वढती गई और दीक्षित होने का दृढ संकल्प कर लिया।

दीक्षा—उन्होने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) मे सं० १९९२ कार्त्तिक कृष्णा ५ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा उदयपुर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन १५ दीक्षाएं हुईं, जिनका वर्णन साध्वीश्री सूवटांजी (९६७) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

सुखद सान्निध्य—साध्वीश्री केशरजी दीक्षित होने के बाद आठ महीने गुरुकुलवास मे रही। सं० १९९३ का चातुर्मास साध्वीश्री केशरजी (८१२) 'श्रीडूंगरगढ़' के साथ पुर में किया। तत्पश्चात् आचार्यश्री तुलसी ने साध्वी केशरजी को साध्वीश्री लाधूजी (६३२) 'सरदारशहर' के सिघाड़े में भेज दिया। केशरजी को पहले केवल अक्षर-ज्ञान ही था, फिर साध्वीश्री लाधूजी की सतत प्रेरणा से अध्ययन आदि कर क्रमशः ज्ञान एवं कला के क्षेत्र में विकास किया। उनके सान्निध्य मे लगभग १२ वर्षों तक (सं० २००४ में उनके स्वर्गवास तक) रहकर पूर्ण समाधि का अनुभव किया।

कंठस्थ ज्ञान—उन्होने दशवैकालिक, उत्तराध्ययन (२१ अध्ययन) भक्तामर, सिन्दूरप्रकर, शातसुधारस, श्लोक शतक, मनोनुशासन, शारदीया नाममाला, कालु कौमुदी (पूर्वार्द्ध) तथा रामचरित्र, शालिभद्र आदि कई व्याख्यान कंठस्थ किये।

वाचन—लगभग ३२ आगमो का वाचन किया।

कला—सिलाई-रंगाई तथा लिपिकला का अच्छा अभ्यास किया, लगभग ४०० पन्ने लिपिबद्ध किये।

तपस्या—उन्होने सं० २०४१ कार्त्तिक शुक्ला पूर्णिमा तक इस प्रकार तप किया—

उपवास	२	३	४	५
१३९८	४७	४	१	१

तीन बार एक-एक महीने एकान्तर उपवास तथा ६ बार दशप्रत्याख्यान किए।

वे ३५ वर्षो से प्रत्येक महीने की कृष्णा १२, शुक्ला ६ और शुक्ला १३ को ६ विगय का वर्जन करती हैं।

स्वाध्याय मौन—साध्वीश्री ४० वर्षो से प्रायः प्रतिदिन ३ घंटे मौन और डेढ़ घंटे स्वाध्याय करती हैं।

सेवा—(१) सं० २०२९ बीकानेर मे साध्वीश्री चांदांजी 'श्रीडूंगरगढ़' का आपरेशन हुआ। ज्येष्ठ महीने मे प्रतिदिन एक-डेढ़ कोस से दवा लाने आदि का सेवा-कार्य किया।

(२) सं० २०३० में साध्वी सूरजकंवरजी (११९०) 'शार्दूलपुर' को जसोल से लाडनूं लाया गया। अस्वस्थता के कारण

प्रतिदिन एक-डेढ़ कोस का विहार होता था। साध्वीश्री सुखदेवांजी (१००२) 'सरदारशहर' के साथ साध्वी केशरजी ने ७ महीने तक उनको सहयोग दिया।

(३) सं० २०२६ रतनगढ़ में साध्वीश्री संतोकांजी (६२०) 'सरदारशहर' की गठियावाय की बीमारी मे १२ महीनों तक तेल मालिश करना आदि परिचर्या की।

(४) सं० २०२० में मातुःश्री वदनांजी को छापर से सुजानगढ़ तक उठाकर लाने में सहयोगिनी बनी।

(परिचय-पत्र)

६७७।८।२५२ साध्वीश्री सोहनांजी (लाडनूं)

(दीक्षा सं० १९९२, वर्तमान)

'८३वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री सोहनांजी का जन्म लाडनूं (मारवाड़) के बैद (ओसवाल) गोत्र मे सं० १९८१ ज्येष्ठ शुक्ला १४ (सा० वि० में सं० १९८० है) को हुआ। उनके पिता का नाम मनसुखदासजी और माता का सूवटांजी था।

दीक्षा—सोहनांजी ने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) में अपनी माता साध्वीश्री सूवटांजी (९६७) के साथ सं० १९९२ कार्त्तिक कृष्णा ५ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा उदयपुर में दीक्षा ग्रहण की। उस दिन होने वाली १५ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री सूवटांजी के प्रकरण मे कर दिया गया है।

विहार—आचार्यश्री तुलसी ने सं० २००१ मे साध्वीश्री सोहनांजी का सिंघाड़ा बनाया। उन्होने अनेक क्षेत्रो में विहरण कर जन-जन को धार्मिक उद्‌बोधन दिया। उनके चातुर्मास-स्थल इस प्रकार हैं—

सं० २००२	ठाणा	५	दिवेर
सं० २००३	,,	५	कानोड़
सं० २००४	,,	५	बाड़मेर
सं० २००५	,,	७	बीदासर
सं० २००६	,,	५	डीडवाना
सं० २००७	,,	५	थामला
सं० २००८	,,		
सं० २००९	,,		
सं० २०१०	,,	५	नोखामंडी
सं० २०११	,,	५	पेटलावद
सं० २०१२	,,		उज्जैन (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)

सं० २०१३	ठाणा	५	नोहर
सं० २०१४	,,	५	आसींद
सं० २०१५	,,	५	रीछेड़
सं० २०१६	,,	५	सायरा
सं० २०१७	,,		राजनगर (आचार्यश्री तुलसी की सेवा में)
सं० २०१८	,,	५	सिरसा
सं० २०१९	,,	५	आडसर
सं० २०२०	,,	५	कानोड़
सं० २०२१	,,	५	वक्काणी
सं० २०२२	,,	५	जालन्धर
सं० २०२३	,,	५	जगरावां
सं० २०२४	,,	५	लाछुड़ा
सं० २०२५	,,	५	कानोड़
सं० २०२६	,,	४	पीपाड़
सं० २०२७	,,	४	जोजावर
सं० २०२८	,,	५	वाव
सं० २०२९	,,	५	समाना
सं० २०३०	,,	५	भवानीगढ़
सं० २०३१	,,	२७	लाडनूं (साध्वी रतनकंवरजी (६२३)'लाडनूं' का संयुक्त)
सं० २०३२	,,	५	राजनगर
सं० २०३३	,,	५	श्रीगंगानगर
सं० २०३४	,,	५	भवानीगढ़
सं० २०३५	,,	५	भीखी
सं० २०३६	,,	४	अहमदगढ़
सं० २०३७	,,	१३	राजलदेसर 'सेवाकेन्द्र,
सं० २०३८	,,	१५	,, ,,
सं० २०३९	,,	५	गंगापुर
सं० २०४०	,,	५	शाहदा
सं० २०४१	,,	५	भसावल
सं० २०४२	,,	५	साकरी

(चातुर्मासिक तालिका)

होने से पूरा विवरण नही लिखा गया।

९७८।८।२५३ साध्वी चांदकंवरजी (सरदारशहर)

(दीक्षा सं० १९९२, २०३८ में गणबाहर)

'८४वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वी चादकवरजी का जन्म सरदारशहर (स्थली) के दसानी (ओसवाल) परिवार मे सं० १९८१ भाद्रव शुक्ला १ को हुआ। उनके पिता का नाम वृद्धिचंदजी और माता का हुलासीदेवी था।

दीक्षा—उन्होने १२ वर्ष की अविवाहित वय (नाबालिग) मे सं० १९९२ कार्त्तिक कृष्णा ५ को आचार्यश्री कालूगणी के हाथ से उदयपुर में संयम ग्रहण किया। उस दिन होने वाली १५ दीक्षाओ का वर्णन साध्वीश्री सूवटांजी (९६७) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

उनकी बड़ी बहिन छगनांजी (मंजूश्रीजी (९६१) ने सं० १९९१ में दीक्षा ग्रहण की।

गण से पृथक्—वे अपनी बहिन मंजूश्रीजी के साथ सं० २०३८ मृगसर कृष्णा ३ को उदयपुर में गण से पृथक् होकर नव तेरापंथ में सम्मिलित हो गई। पृथक् होने का कारण था—पारस्परिक गठबंधन।

(ख्यात)

६७६।८।२५४ साध्वीश्री लालांजी (पेटलावद)

(दीक्षा सं० १९९२, वर्तमान)

परिचय—साध्वीश्री लालांजी का जन्म मालवा (मध्य प्रदेश) प्रान्त के केसूर नामक गांव में सं० १९७१ माघ शुक्ला तृतीया को हुआ। उनके पिता का नाम केशरीमलजी 'बंबोली' और माता का राधा बाई था। समयान्तर से लालांजी का विवाह पेटलावद के कासवा (ओसवाल) गोत्र में कर दिया गया। उनके पति का नाम पन्नालालजी (गुलाबचंदजी के पुत्र) था।

दीक्षा—लालाजी ने २२ वर्ष की सुहागिन वय मे अपने पति पन्नालालजी (५११) के साथ सं० १९९२ माघ शुक्ला १४ को आचार्यश्री कालूगणी द्वारा बड़नगर में दीक्षा ग्रहण की[1]।

दीक्षा सूरजमलजी चौधरी के बगीचे मे हुई। दीक्षा-समारोह में लगभग पांच हजार व्यक्ति उपस्थित हुए।

सुखद-सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के बाद सवा साल गुरुकुलवास में रही। फिर आचार्यश्री तुलसी ने सं० १९९३ मे उन्हें साध्वीश्री सिरेकंवरजी (८३२) 'श्रीडूंगरगढ़' के सिंघाड़े में भेज दिया। तब से अब तक (सं० २०४३) उनके साथ रहकर सानंद संयम-यात्रा कर रही है।

(परिचय-पत्र)

---

१. माह सुद में पन्नालाल और लालांजी,
बड़नगर सुगुरु-पादाम्बुज सेवा साझी।
(कालू० उ० ४ ढा० १६ गा० १८)

९८०।८।२५५ साध्वीश्री हुलासांजी (लाडनूं)

(दीक्षा सं० १९९२, वर्तमान)

'८५ वीं कुमारी कन्या'

परिचय—साध्वीश्री हुलासांजी का जन्म लाडनूं (मारवाड़) के वैद (ओसवाल) परिवार में सं० १९७८ श्रावण कृष्णा ४ को हुआ। उनके पिता का नाम धनराजजी और माता का सूरजदेवी था।

वैराग्य—धार्मिक परिवार में जन्म लेने से वालिका हुलासी को सत्संस्कार मिले। फिर साधु-साध्वियों द्वारा उद्‌वोधन मिलने से सांसारिक सुख-भोगों की अनित्यता का वोध हुआ।

दीक्षा—उन्होंने १५ वर्ष की अविवाहित वय (नावालिग) में सं० १९९२ चैत्र शुक्ला १० को साध्वीश्री खूमांजी (७००) 'लाडनूं' के हाथ से लाडनूं में दीक्षा स्वीकार की।

साध्वीश्री खूमांजी वीदासर में स्थित मातु:श्री छोगांजी (५४०) की सेवा मे थी। वहां से वे सात ठाणों से लाडनूं पधारी। उन्होंने आचार्यश्री कालूगणी के आदेशानुसार वहिन हुलासां को दीक्षा प्रदान की। उस समय कुल ३३ साध्वियां उपस्थित थी।

(१) वीदासर से समागत साध्वीश्री खूमांजी आदि ७।

(२) लाडनूं सेवाकेन्द्र में स्थित साध्वीश्री मनोरांजी (६७६) 'भिवानी' आदि २१।

(३) रतनगढ़ में स्थिरवासिनी साध्वीश्री गंगाजी (४४४) 'मांडा' के साथ की एक साध्वी-नजरकंवरजी (८२०) 'लाडनूं' जो साध्वी हुलासांजी की संसारपक्षीया वड़ी वहिन थी।

(४) राजलदेसर मे स्थिरवासिनी साध्वी-प्रमुखा कानकंवरजी के पास की १ साध्वी।

(५) सुजानगढ़ से समागत साध्वीश्री सोहनांजी (७६९) 'राजनगर' आदि ३ साध्वियां।

साध्वीश्री खूमांजी नव दीक्षित साध्वी हुलासांजी को साथ लेकर वापस वीदासर चली गई।

(कालूगणी की ख्यात)

वीदासर से साध्विया नवदीक्षित साध्वी हुलासांजी को राजलदेसर ले गई। वहा विराजित साध्वी-प्रमुखा कानकवरजी द्वारा उनकी बड़ी दीक्षा हुई।

उनके परिवार की निम्नोक्त दीक्षाएं हुईं—

१. साध्वी नजरकंवरजी (८२०) 'लाडनू' वड़ी वहिन, दीक्षा सं० १९७७।
२. साध्वी रामकंवरजी (१२०३) ,, सगी भतीजी, दीक्षा सं० २००४।
३. साध्वी जतनकंवरजी (१२०४) ,, भतीजी, दीक्षा सं० २००४
४. मंजुलाजी (१२२५) ,, चाचा की वेटी वहिन, दीक्षा सं० २००७।
५ साध्वी कनकप्रभाजी (साध्वी-प्रमुखा) (१३०३) 'लाडनू' चाचा की बेटी बहिन दीक्षा सं० २०१६।
६. साध्वी केशरजी (१०४४) 'लाडनू' भाभी (बुआ के वेटे की वहू) दीक्षा स० १९९५।
७ ,, लिछमाजी (९९९) 'सरदारशहर' भाभी (बुआ के वेटे की वहू) दीक्षा सं० १९९४।

सहवास—साध्वीश्री दीक्षित होने के बाद तीन साल मातुःश्री छोगांजी की सेवा मे, दो साल साध्वीश्री जुहारांजो (८६०) 'मोमासर' के साथ, एक साल साध्वी दीपांजी (८३०) 'सिरसा' के साथ, बाईस साल साध्वीश्री नजरकुमारीजी (८२०) 'लाडनूं' के साथ और सोलह साल साध्वी रामकुमारीजी (१२०३) 'लाडनू' के साथ रही। पांच चातुर्मास आचार्यश्री की सेवा मे किये—सं० २००५, २०१८, २०२८, २०४२, २०४३।

कंठस्थ ज्ञान—साध्वीश्री ने यथाशक्य ज्ञान, कला का अभ्यास करते हुए निम्नोक्त ग्रंथ कंठस्थ किये—

आगम—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, वृहत्कल्प, नंदी, सूत्रकृतांग, व्यवहार। इनमे सूयगडो, नन्दी तथा आयरो अर्थ सहित।

थोकड़े—पच्चीस बोल, पाना की चर्चा, तेरहद्वार, लघुदंडक, बावन बोल, इक्कीस द्वार, कर्मप्रकृति, गतागत, कायस्थिति, अल्पावहुत, जाणपणं का पच्चीस बोल, हितशिक्षा के पच्चीस बोल, संजया, नियठा, दण्डक द्वार।

अन्य—भिक्खुपृच्छा, जैनसिद्धान्तदीपिका, आराधना, चौबीसी, राम-चरित्र, अग्नि परीक्षा।

वाचन—२० आगम, शासन-समुद्र आदि कई ऐतिहासिक ग्रन्थ तथा आख्यानों का वाचन किया ।

तपस्या—

उपवास	५	२	३	४
८०१	५	११	३	३

(परिचय-पत्र)

परिशिष्ट १

प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित होने के वाद श्रीमत्कालूगणी के युग की दो साध्वियां दिवंगत हुई। उनका अंतिम समय का कुछ वर्णन इस प्रकार है:—

साध्वीश्री गणेशांजी (८५०) चाड़वास

साध्वीश्री गणेशांजी का सं० २०४२ पौष कृष्णा १२ को रात्रि के नौ बजे राजलदेसर में स्वर्गवास हो गया। आचार्यश्री तुलसी ने उनके विषय में फरमाया—साध्वी गणेशांजी ने पूज्य कालूगणी से दीक्षा ली थी। युवावस्था में अनेक क्षेत्रों में विचरण किया और कार्य किया। इन वर्षो मे वे पक्षाघात जैसी भयंकर वीमारी से ग्रस्त थी। सेवार्थी साध्वियो ने वहुत अच्छी सेवा की।

दिवंगत आत्मा के शुभकामना।

साध्वीश्री झमकूजी (८५८) राजलदेसर

साध्वीश्री झमकूजी लगभग ६ महीनो से काफी अस्वस्थ थी, लेकिन अन्तिम १५,२० दिनों में उलटी होना, वेचैनी रहना, अधिक दस्त होने के कारण उनका शरीर वहुत कमजोर हो गया पर मनोवल तो हरदम ऊंचा रहता, गुरुदेव के दर्शन की भावना प्रवल रहती पर दर्शन नहीं हो सके। मृगसर शुक्ला १४ वृहस्पतिवार को उन्होने उपवास किया। उस दिन स्थिति गंभीर देखी तो रात्रि के १२ वजकर २५ मिनट पर देव, गुरु, धर्म की साक्षी व चारो शरणो का उच्चारण कर साध्वियो ने उनको तिविहार अनशन करा दिया फिर दो वजकर १० मिनिट पर चौविहार अनशन करा दिया।

संथारा कराया उस समय अन्दर की चेतना थी। सुवह होते ही एक आश्चर्य कारिणी घटना हुई कि भंवरलालजी सुराणा (चूरू) तथा साध्वी चादकंवरजी ने जव साध्वीश्री झमकूजी को रात्रि में कराये गये संथारे के विषय मे अवगत कराया तव चेहरे पर मुस्कान आ गई और उन्होने संथारे को सहज भाव से स्वीकार किया उसके वाद मृगसर शुक्ला १५ (दिनांक २६-१२-८५) शुक्रवार को सुवह अनशन सम्पन्न हो गया। शहर मे संथारे की अच्छी प्रभावना हुई। उस समय चूरू से सुराणा परिवार के अनेक व्यक्ति, राजलदेसर के हनूतमलजी नाहर आदि

तथा जोधपुर के लालचंदजी सुराणा आदि सपरिवार साध्वीश्री की सेवा में उपस्थिति हुए। साध्वीश्री ने ६० साल संयमी जीवन का रसास्वादन कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। उनकी स्मृति मे आचार्यश्री तुलसी ने अपने उद्गार प्रकट करते हुए फरमाया—साध्वी झमकूजी चूरू निवासी मेघराजजी सुराणा (भक्त) की संसार पक्षीया बहिन थी और राजलदेसर के मघराजजी नाहर की संसारपक्षीया पुत्र-वधू थी। झमकूजी वहुत वर्षों तक साध्वी नोजांजी के साथ रही। साध्वी नोनांजी के स्वर्गवास के वाद वे अग्रणी वनीं और वर्षों तक उन्होंने विचरण किया। सं २०३५ में हमारे गंगाशहर चातुर्मास मे वे वहुत बीमार हो गईं, फिर भी विहार करती रहीं। आखिर देशनोक में अटक गईं। लगभग सात वर्षो तक देशनोक में स्थिरवासिनी रहीं और वहां वहुत अच्छा कार्य किया। अन्त समय में अनशन कर पंडित-मरण को प्राप्त हुईं। साध्वी झमकूजी, शासन-भक्त, समर्पित और कलाकार साध्वी थी। दिवंगत आत्मा के भावी आध्यात्मिक विकास की शुभकामना।